

## दो शब्द

विष्णुपुराण के इस द्वितीय खण्ड में जिन विषयों का विवेचन किया गया है वह अनेक दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसके चतुर्थ अंश में जो सूर्य और चन्द्रवश के राजाओं का वर्णन किया गया है वह सक्षिप्त होते हुये भी अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक क्रमबद्ध है और उसके पढ़ने से भारतवर्ष के इन दो प्रमुख शासक परिवारों के नरेशों का सामान्य परिचय अच्छी तरह मिल जाता है। यद्यपि पौराणिक वर्णनों में प्राचीन घटनाओं का जो समय दिया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें हजारों और लाखों की सख्या से कम की बात ही नहीं की गई है, तो भी भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की खोज करने वालों ने पुराणों की वशावलियों का उपयोग किया है और अनेक पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में दी गई राजाओं की नामावलियों की तुलना करके उस अज्ञात काल की एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की है। ऐतिहासिक विद्वानों ने इस निगाह से 'विष्णुपुराण' को अधिक प्राथमिक माना है और उसका जिक्र हम अनेक देशी और विदेशी इतिहास ग्रन्थों में पाते हैं।

पञ्चम अंश में जो कृष्ण चरित्र दिया गया है उसमें भी ऐसी ही विशेषताएँ पाई जाती हैं। यो तो 'भागवत' में भगवान् कृष्ण का जो वर्णन मिलता है वह भक्ति और साहित्यिक उन्नता की दृष्टि से सर्वाधिक प्रसिद्ध है और ब्रह्म-वैवर्तपुराण में भी गोकुल, वृन्दावन में निवास करने के समय का वर्णन बहुत विस्तार, रोचकता और शृङ्गार-रस के साथ वर्णन किया गया है, पर 'विष्णु-पुराण' में थोड़े से पृष्ठों में समस्त कृष्ण चरित्र जिस प्रकार स्वामाविक ढंग से लिखा गया है और व्रज तथा द्वारिका के कार्यकलापों के वर्णन में जो उचित अनुपात तथा सतुलन का ध्यान रखा गया है उससे इसकी लेखन सम्बन्धी श्रेष्ठता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि सभी पुराणों से छोटा होते हुये भी इसका महत्त्व अधिक माना गया है और विद्वन्मण्डलों में भागवत के पश्चात् इसी का प्रचार अधिक देखने में आता है।

अन्तिम अंश में कलियुग की जो विशेषताएँ और अध्यात्म मार्ग की शिक्षाएँ मिलती हैं उन्हें भी अपने ढंग की धनूठी ही कहा जा सकता है। लेखक ने वर्तमान युग की उपयोगिता जिस प्रकार प्रतिपादित की है वह निस्सन्देह प्रशसनीय है। अनेक पौराणिक लेखकों ने जिस प्रकार कलियुग को पापों की खान और दुष्कर्मों का भण्डार बतलाने में ही अपनी शक्ति खर्च कर दी है उसे व्यक्ति तथा समाज के कल्याण की दृष्टि से उपयोगी नहीं कहा जा सकता। किसी के दोषों का इच्छा पीटकर हम उसका अधिक सुधार नहीं कर सकते। इसका मार्ग तो यही है कि उसकी भ्रष्टाचारों को सामने लाकर उसे सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाय। 'विष्णुपुराण' में यही किया गया है।

इन बातों पर विचार करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह पुराण निस्सन्देह प्राचीन धार्मिक साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें धार्मिक शिक्षाओं को सरल तथा सुबोध रूप में उपस्थित करके पाठकों के लिये एक लाभकारी माध्यम प्रस्तुत किया गया है।

—सम्पादक

# विष्णु पुराण के द्वितीय खण्ड की

## विषय-सूची

### अध्याय

### चतुर्थ अंश

३. मान्धाता की संतति, सगर की उत्पत्ति और विश्व-विजय	६
४. सगर के साठ हजार पुत्रों का मरम होना, भागीरथ, सटवांग और भगवान राम का चरित्र	१४
५. इन्द्राकु के दूसरे पुत्र निमि के वंश का वर्णन	२५
६. चन्द्रवंश का वर्णन, राजा पुरुरवा तथा सर्वशी का सम्मिलन	३२
७. जम्बुका गंगा पान, जमदग्नि और विश्वामित्र की उत्पत्ति	४१
८. क्षत्रवृद्धि का वंश वर्णन, धन्वन्तरि का जन्म	४५
९. रजि के वंश का वर्णन, दैत्यो और देवताओं के युद्ध में रजि की विजय	४७
१०. नहुष पुत्र ययाति का चरित्र, पुरुरवा का अपने पिता को यौवन-दान	५१
११. यदुवंश का वर्णन और सहस्राजुन चरित्र	५४
१२. राजा ज्यामघ का चरित्र	५७
१३. सत्वंत की संतति का वर्णन, स्वयन्तक मणि की कथा, श्रीकृष्ण को अपवाद	६२
१४. धनमित्र वंश वर्णन	८२
१५. वसुदेव जी की संतति का वर्णन, कंस के हाथ छ' पुत्रों का वध श्री कृष्ण जन्म	८६
१६. दुर्वसु वंश वर्णन	९२
१७. द्रुपद वंश वर्णन	९३

१८ अनु वश-वर्णन	६३
१९ पुरु वश वर्णन, शकुन्तला की कथा	६५
२० कुरु वश वर्णन	१०२
२१. भविष्य में होने वाले कुरुवशीय नरेश	१०७
२२ भविष्य में होने वाले इक्ष्वाकुवशीय नरेश	१०८
२३ भविष्य में होने वाले मगधवशीय राजा	१०९
२४ कलियुगी राजाओं और कलि अवस्था-का वर्णन, राजवश वर्णन और उपसंहार	११०

### पंचम अंश

१ बसुदेव जी का विवाह, दैत्यो के भार से पीड़ित पृथ्वी का देवताओं सहित भगवान की शरण में जाना	१२७
२ देवताओं द्वारा देवकी की स्तुति	१३६
३ भगवान कृष्ण का जन्म और योगमाया द्वारा कंस को चेलावनी	१४२
४ कंस का असुरों को कृष्ण बच का आदेश और बभ्रुदेव देवकी का जेल से छुटकारा	१४७
५ पूतना बध	१४९
६, शकट भजन, यमलार्जुन उद्धार वृन्दावन निवास	१५३
७, कालिय दमन	१६०
८ धेनुकासुर का बध	१७३
९ प्रलम्ब नामक दैत्य का मारा जाना	१७५
१० शरद वर्णन तथा गोवर्धन पूजा	१८०
११ भगवान कृष्ण का गोवर्धन धारण	१८८
१२ इन्द्र द्वारा भगवान कृष्ण की पूजा	१९१
१३ गोपों द्वारा भगवान का स्तवन, श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ रास क्रीड़ा	१९५
१४ वृषभासुर का बध,	२०४



१५. श्रीकृष्ण जी को बुलाने के लिए कंस का अक्रूर-जी को भेजना	२०७
१६. केशी-वध	२१०
१७. अक्रूर जी की गोकुल यात्रा	२१४
१८. श्रीकृष्ण का मथुरागमन, गोपियों का विरह विलाप, अक्रूरजी का जमुना में भगवद् दर्शन	२१६
१९. भगवान का मथुरा में प्रवेश और माली पर कृपा	२२८
२०. कुब्जा से भेंट, धनुष भंग, कुवलियापीड़ तथा चारणूर आदि का नाश, कंस-वध	२३२
२१. उत्पत्ति का राज्याभिषेक, सदीपन के पास विद्याध्ययन	२४८
२२. जरासन्ध का मथुरा पर आक्रमण	२५२
२३. कालयवन की उत्पत्ति और मथुरा पर आक्रमण, श्री कृष्ण का द्वारका गमन, कालयवन का भस्म होना	२५५
२४. बलराम जी का यज्ञ गमन, गोपियों से भेंट	२६२
२५. बलराम का जमुना-भारुपण, रेवती से विवाह	२६५
२६. श्रीकृष्ण का रुक्मिणी जी से विवाह	२६८
२७. प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर द्वारा उसका हरण	२७०
२८. प्रद्युम्न का विवाह, बलराम की घूत फ्रीड़ा	२७५
२९. नरकासुर-वध	२७६
३०. स्वर्ग से पारिजात हरण, इन्द्र से सप्राप्त	२८४
३१. सोलह हजार कन्याओं से श्रीकृष्ण का विवाह	२८६
३२. उषा का स्वप्न प्रतिरुद्ध को देखकर मोहित होना	२८६
३३. श्रीकृष्ण और बाणासुर का युद्ध	३०३
३४. पौंड्रक और काशीराज का वध	३११
३५. साम्य का दुर्योधन की कन्या के साथ विवाह	३१८
३६. बलराम जी द्वारा द्विविद-वध	३२०
३७. ऋषियों के साथ में यदुवंश का विनाश और श्रीकृष्ण का परमधाम सिंघारना	३२६

३८. यादवों का अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षित का राज्याभियेक और पाण्डवों का हिमाचल गमन	३३६
---	-----

### पट्टम अंश

१. कलिघर्म निरूपण	३५०
२. श्री कृष्ण जी द्वारा कलियुग, क्षुद्र और स्त्रियों का महत्त्व वर्णन	३५७
३. निमेषादि काल-मान	३६२
४. नैमित्तिक और प्राकृतिक प्रलय	३६८
५. आध्यात्मिक आदि विविध तारों का वर्णन भगवान् के सगुण- निर्गुण रूप का वर्णन	३७४
६. केशिध्वज और खाण्डव संवाद	३८६
७. आध्यात्मविद्या तथा योग वर्णन	३९३
८. विष्णु पुराण पठन-पाठन का फल	४०८
विष्णु पुराण का निष्पक्ष नैतिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक अध्ययन	४१०-५०४

# श्रीविष्णुपुराण

(द्वितीय भाग)

चतुर्थ अंश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।  
देवीं सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

तीसरा अध्याय

अतश्च मान्धातुः पुत्रसन्ततिरभिधीयते ।१। अम्बरीषस्य मान्धा-  
तृत्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् ।२। तस्माद्वारीतः यतोऽङ्गीरसो हारीताः  
।३। रसातले मौनेया नाम गन्धर्वा बभूवुष्पट्कोटिसख्यातास्तैरशेषाणि  
नागकुलान्यपहृतप्रधानरत्नाधिपत्यान्यक्रियन्त ।४। तैश्च गन्धर्ववीर्या-  
वधुतैरुरगेश्वरैः स्तूयमानो भगवानशेषदेवेशः स्तवच्छ्रवणोन्मीलितोन्निद्र-  
पुण्डरीकनयनो जलशयनो निद्रावसानात् प्रबुद्धः प्रणिपत्याभिहितः  
भगवन्नस्माकमेतेभ्यो गन्धर्वेभ्यो भयमुत्पन्नं कथमुपशममेप्यतीति ।५।  
आह च भगवाननादिनिघनपुरुषोत्तमो योऽसौ यौवनाश्वस्य मान्धातुः  
पुरुकुत्सनामा पुत्रस्तमहमनुप्रविश्य तानशेषान् दुष्टगन्धर्वानुपशमं नयि-  
ष्यामीति ।६। तदाकर्ण्य भगवते जलशायिने कृतप्रणामाः पुनर्नागलोक-  
मागताः पद्मगाधिपतयो नमंदां च पुरुकुत्सानयनाय चोदयामासुः ।७।  
सा चैनं रसातलं नीतवती ।८।

अथ मान्धाता की सन्तति का वर्णन किया जाता है ॥१॥ राजा मान्धाता के पुत्र अम्बरीष के जो युवनाश्व नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उससे हारीत नामक पुत्र हुआ, जिससे आगिरम हारीतगण उत्पन्न हुए ॥२-३॥ पूर्व-काल की बात है—पाताल में मीनेय नाम के छः करोड़ गन्धर्व रहते थे, उन्होंने सभी नागकुलों के प्रमुख-प्रमुख रत्नों और अधिकारों का अपहरण कर लिया ॥४॥ जब गन्धर्वों के पराक्रम से तिरस्कृत हुए जन नागराजों द्वारा स्तुति की गई, तब उसे मुनते हुए जिनके पक्ष के समान विकलिन नेत्र खुल गये, ऐसे उन निद्रा से जगे हुए जलशायी सवदेवेश्वर प्रभु को प्रणाम करके उन नागों ने निवेदन किया—हे भगवन् ! इन गन्धर्वों से जो भय उत्पन्न हो गया है, उसकी शान्ति किस प्रकार हो सकेगी ? ॥५॥ इस पर आदि-अन्त-शून्य भगवान् श्री पुरुषोत्तमदेव बोले—हे नागगण ! युवनाश्व-पुत्र राजा मान्धाता के पुरुकुत्स नामक पुत्र के शरीर में प्रविष्ट होकर मैं उन सभी दुष्ट गन्धर्वों को नष्ट कर डालूँगा ॥६॥ यह सुन कर सब नागगण उन जलशायी भगवान् श्रीहरि को प्रणाम करते हुए नागलोक में लौट और पुरुकुत्स को खाने के लिए उन्होंने अपनी वहिन नर्मदा को प्रेरित किया जो पुरुकुत्स को रसातल में लिवा लाई ॥७-८॥

रसातलगतश्चासौ भगवत्तेजसाध्यायितात्मवीर्यस्सकलगन्धर्व-  
 त्रिजघान ॥९॥ पुनश्च स्वपुरमाजगाम ॥१०॥ सकलपन्नगाधिपतयश्च नर्म-  
 दायै वरं ददुः यस्तेऽनुस्मरणसमवेतं नामग्रहणं करिष्यति न तस्य सर्प-  
 विषभयं भविष्यतीति ॥११॥ अत्र च श्लोकः ॥१२॥ नर्मदायै नमः प्रात-  
 नर्मदायै नमो निशि । नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मा विपसर्पतः ॥१३॥  
 इत्युच्चार्यार्हनिशमन्धकारप्रवेशे वा सर्पेन दश्यते न चापि कृतानु-  
 स्मरणभुजो विषमपि भुक्तमुपघाताय भवति ॥१४॥ पुरुकुत्साय सन्तति-  
 विच्छेदो न भविष्यतीत्युरगपतयो वरं ददुः ॥१५॥

भगवान् विष्णु के तेज से प्रबुद्ध हुए उस पुरुकुत्स ने रसातल में पहुँच-  
 कर सभी गन्धर्वों का वध कर डाला और तब यह अपने नगर में लौट आया  
 ॥९-१०॥ उस समय सभी नागों ने नर्मदा को यह वर दिया कि तेरे स्मरण

पूर्वक जो कोई तेरे नाम का उच्चारण करेगा, उसे सर्प-विष का भय नहीं रहेगा ॥११॥ इस विषय में एक श्लोक है नर्मदा को प्रातःकाल नमस्कार, रात्रिकाल में भी नमस्कार । हे नर्मदे ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है, नुम विष और सर्प से मेरी रक्षा करो ॥१२-१३॥ इसके उच्चारण पूर्वक दिन या रात्रि में, किसी भी समय कहीं अंधेरे में जाने पर भी सर्प नहीं काटता तथा इसका स्मरण करके भोजन करने से, भोजन में मिला हुआ विष भी मारक नहीं होता ॥१४॥ उस समय पुरुकुत्त ने भी नागों को बर दिया कि तुम्हारी सन्तति अन्त को कभी भी प्राप्त नहीं होगी ॥१५॥

पुरुकुत्तो नर्मदाया त्रसद्स्युमजीजनत् ॥१६॥ त्रसद्स्युतस्सम्भू-  
तोऽनरण्यः यं रावणो दिग्विजये जघान् ॥१७॥ अनरण्यस्य पृषदश्वः पृषद-  
श्वस्य हर्यश्वः पुत्रोऽभवत् ॥१८॥ तस्य च हस्तः पुत्रोऽभवत् ॥१९॥ ततश्च  
सुमनास्तस्यापि त्रिधन्वा त्रिधन्वनस्त्रय्यारुणिः ॥२०॥ त्रय्यारुणोऽसत्यव्रतः  
योऽसौ त्रिशकुसज्ञामवाप ॥२१॥ स चाण्डालतामुपगतश्च ॥२२॥ द्वादश-  
वापिषयामनावृष्ट्या विश्वामित्रकलत्रापत्यपोषणार्थं चाण्डालप्रति-  
ग्रहपरिहरणाय च जाह्नवीतीरग्न्यग्नौ मृगमासमनुदिनं बबन्ध ॥२३॥ स तु  
परितुष्टेन विश्वामित्रेण सशरीरस्त्वर्गमारोपितः ॥२४॥

पुरुकुत्त ने अपनी उस भार्या नर्मदा से त्रसद्स्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१६॥ त्रसद्स्यु का पुत्र अनरण्य हुआ, जिसका दिग्विजय के समय रावण ने वध किया था ॥१७॥ उस अनरण्य का पुत्र पृषदश्व हुआ पृषदश्व का हर्यश्व, हर्यश्व का हस्त, हस्त का सुमना, सुमना का त्रिधन्वा और त्रिधन्वा का पुत्र त्रय्यारुणि हुआ ॥१८-२०॥ त्रय्यारुणि का पुत्र असत्यव्रत हुआ, वही फिर त्रिशकु नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२१॥ वह त्रिशकु चाण्डाल हो गया ॥२२॥ एक समय बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई । उस समय यह विश्वामित्रजी के सभी बालकों के पोषण के निमित्त तथा अपने चाण्डालत्व को दूर करने के लिए गंगातट स्थित बट गुप्त पर भृगु का मांस बाँध देता था ॥२३॥ उसके इस कार्य से प्रसन्न हुए महर्षि विश्वामित्र ने उसे देह सहित स्वर्ग में भेज दिया ॥२४॥

त्रिशकोर्हरिश्चन्द्रस्तस्माच्च रोहिताश्वस्ततश्च हरितो हरितस्य चञ्चुश्चञ्चोर्विजयवसुदेवो रुक्को विजयाद्रुक्कस्य वृकः ॥२५॥ ततो वृकस्य बाहुयोऽसौ हैहयतालजङ्घादिभिः पराजितोऽन्तर्वल्ग्या महिष्या सह वनं प्रविवेश ॥२६॥ तस्याश्च सप्तन्या गर्भस्तम्भनाय तरो दत्तः ॥२७॥ तेनास्या गर्भस्तप्तवर्पाणि जठर एव तस्थौ ॥२८॥ स च बाहुवृद्धभावा-  
दौर्वाश्रमसमीपे ममारः ॥२९॥ सा तस्य भार्या चिता कृत्वा तमारोप्या-  
नुमरणाकृतनिश्चयाभूत् ॥३०॥ अथैतामतीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी  
भगवानौर्वस्स्वाश्रमाश्रिगंत्याव्रवीत् ॥३१॥

उसी त्रिशकु से हरिश्चन्द्र हुए । हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व और रोहिताश्व से हरित हुआ । हरित से चञ्चु, चञ्चु से विजय और वासुदेव तथा विजय से रुक्क और रुक्क से वृक उत्पन्न हुआ ॥२५॥ वृक का बाहु हुआ, जिसे हैहय तथा तालजङ्घादि क्षत्रियो ने युद्ध में हरा दिया, इस कारण वह अपनी गर्भवती राजमहिषी को साथ लेकर वन में चला गया ॥२६॥ परन्तु राजमहिषी की सौत ने उसके गर्भ का स्तम्भन करने के विचार से उसे विष दे दिया ॥२७॥ उस विष के प्रभाव से उसका गर्भ सात वर्ष तक गर्भाशय में ही रुका रहा ॥२८॥ अन्त में वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बाहु की शीर्ष ऋषि के आश्रम के निकटवर्ती स्थान में मृत्पु हो गई ॥२९॥ तब उसकी महिषी ने चिता बनाकर उसमें अपने पति का शव रखा और उसके साथ सती हो जाना चाहा ॥३०॥ तभी भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञाता महर्षि शीर्ष ने अपने आश्रम से निकल कर राजमहिषी से कहा ॥३१॥

अलमलमनेनासन्द्राहेणाखिलभूमण्डलपतिरतिवीर्यपराक्रमो नैकयज्ञकुदरातिपथक्षयकर्त्ता तवोदरे चक्रवर्त्ती तिष्ठति ॥३२॥ नैवमति-  
साहसाध्यवसायिनी भवती भवत्वित्युक्ता सा तस्मादनुमरणनिर्वन्धा-  
द्विररामः ॥३३॥ तेनैव च भगवता स्वाश्रममानीता ॥३४॥ तत्र कतिपय-  
दिनाभ्यन्तरे च सहैव तेन गरेणातितेजस्वी बालको जज्ञे ॥३५॥ तस्यीर्वो  
जातकर्मादिक्रिया निष्पाद्य सगर इति नाम चकार ॥३६॥ कृतोपनयनं  
चैनसीर्वो वेदशास्त्राण्यस्य चाग्नेयं भार्गवाख्यमध्यापयामास ॥३७॥ उत्पन्न-

बुद्धिश्च मातरमब्रवीत् ॥३८॥ अम्ब कथमत्र वयं क्व वा तातोऽस्माकमित्येवमादिपृच्छन्तं माता सर्वमेवाबोचत् ॥३९॥ ततश्च पितृराज्यापहरणा-  
दमर्षितो हैहयतालजङ्घादिवधाय प्रतिज्ञामकरोत् ॥४०॥ प्रायशश्च हैह-  
यतालजङ्घाञ्जघान ॥४१॥

हे साध्वी ! यह दुराग्रह त्याग देने योग्य है । क्योंकि तेरे उदर में प्रत्यंत बलवीर्ययुक्त, अनेक यज्ञों का अनुष्ठाता, सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी तथा सभी दानुष्मो को मारने वाला चक्रवर्ती सम्राट् स्थित है ॥३२॥ इसलिए, तू ऐसे दुस्-  
साहस का प्रयत्न न कर । मुनि के वचन सुन कर उसने सती होने के आग्रह का परित्याग किया ॥३३॥ तब महर्षि शीघ्र उसे अपने आश्रम पर लिवा ले गये ॥३४॥ कुछ कालोपरान्त उस रानी के उदर से 'गर' (विष) के सहित एक तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ ॥३५॥ तब महर्षि शीघ्र ने उसका जातकर्म संस्का-  
रादि कर उसका 'सगर' नाम रखा और उपनयनादि संस्कार के पश्चात् उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र एवं भागव नामक आग्नेवास्त्रों की शिक्षा प्रदान की ॥३६-  
॥३७॥ जब उसकी बुद्धि विकसित हो गई तब वह बालक अपनी माता से बोला ॥३८॥ हे माता ! हम इस तप तपोवन में क्यों रह रहे हैं ? हमारे पिता कहां हैं ? इसी प्रकार के अन्य प्रश्न भी उसने पूछे तब उसकी माता ने उसे सब बातें बता दी ॥३९॥ माता के मुख से राज्यापहरण की बात सुन कर उस बालक के हैहय और तासजङ्घादि शत्रुओं का संहार करने की प्रतिज्ञा ली और कालान्तर में उसने उन सभी राजाओं को मार डाला ॥४०-४१॥

शक्यवनकाम्बोजपारदपल्लवाः हन्यमामास्तत्कुलगुरुं वसिष्ठं  
शरणं जग्मुः ॥४२॥ अयैरनान्वसिष्ठो जीवन्मृतकान् कृत्वा सगरमाह ॥४३॥  
वत्सालमेभिर्जीवन्मृतकरनुसृतैः ॥४४॥ एते च मयैव त्वत्प्रतिज्ञापरिपाल-  
नाय निजधर्मद्विजसङ्गपरित्यागं कारिताः ॥४५॥ तथेति तद्गुरुवचनम-  
भिनन्द्य तेषां वेदान्यत्वमकारयत् ॥४६॥ यवनान्मुण्डितधिरसोऽर्द्धं मुण्डि-  
ताञ्छाकान् प्रलम्बकेतान् पारदान् पल्लवाञ्छमश्रुधरान् निस्स्वाध्या-  
यवपट्कारानेतानन्यांश्च शत्रियांश्चकार ॥४७॥ एते चात्मधर्मपरित्यागा-

द्वाह्मणैः परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः ॥४८॥ सगरोऽपि स्वमधिष्ठानमा-  
गम्यास्खलितचक्रस्सप्तद्वीपवतोमिमामुर्वीं प्रशशास ॥४९॥

इसके अनन्तर उसने सऊ, यवन, काम्बोज, पारद और पल्लवगण को भी हताहत किया, जिससे वह सगर के कुलगुरु वसिष्ठजी की शरण को प्राप्त हुए ॥४९॥ वसिष्ठजी ने उन्हें जीवित रह कर भी मृतक समान करके राजा सगर से कहा ॥४३॥ हे वरुण ! इन जीवन्मृत मनुष्यों को मारने से क्या लाभ है ? ॥४४॥ मैंने तेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए ही इन्हें स्वधर्म और द्विजातियो के संसर्ग से बहिष्कृत कर दिया है ॥४५॥ राजा सगर ने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर उनकी वेश-भूषा में परिवर्तन करा दिया ॥४६॥ उसने यवनों के शीश मुँडवाये, शको के आधे सिर को मुँडवाया, पारदों के लम्बे बाल वाले बनाया, पल्लवों के मूँछ-दाढ़ी रचवाई तथा इन सब को और अगम्यान्व वैरियो को भी स्वाध्याय तथा षपट्कार आदि से वर्चित कर दिया ॥४७॥ स्वधर्म हीन होने के कारण आह्मणों ने भी इनका परित्याग कर दिया, इसलिए यह सब म्लेच्छ बन गये ॥४८॥ फिर महाराज सगर अपनी राजधानी में आ गये और सेना से युक्त होकर सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य करने लगे ॥४९॥



## चौथा अध्याय .

काश्यपदुहिता सुमतिर्विदमं राजतनया केशिनी च द्वे भायौ साग-  
रस्यास्ताम् ॥१॥ ताम्या चापत्यायमौवं. परमेण समाधिनाराधितो वर-  
मदात् ॥२॥ एका वंशकरमेकं पुत्रमपरा पष्टि पुनसहस्राणा जनयिष्य-  
तांति यस्या यदभिमत तदिच्छया गृह्यतामित्युक्ते केशिन्येकं वरयामास  
॥३॥ सुमति. पुनसहस्राणि पष्टि वव्रे ॥४॥ तयेत्युक्ते अत्पैरहोभिः  
केशिनी पुत्रमेकमसमञ्जासनामान वंशकरमसूत ॥५॥ काश्यपतनयायास्तु



सुमत्याः पष्टि पुत्रसहस्राण्यभवन् ॥६॥ तस्मादसमञ्जसादंशुमान्नाम  
कुमारो जने ॥७॥ स त्वसमञ्जसो बालो बाल्यादेवासद्वृत्तोऽभूत् ॥८॥  
पिता चास्याचिन्तयदयमतीतबाल्यः सुबुद्धिमान् भविष्यतीति ॥९॥ अथ  
तथापि च वयस्यतोते असच्चरितमेन पिता तत्याज ॥१०॥ तान्यपि पष्टिः  
पुत्रसहस्राण्यसमञ्जसचरितमेवानुचक्रुः ॥११॥

श्री पराशरजी ने कहा—काश्यपपुत्री सुमति और विदर्भराज की पुत्री  
केशिनी यह दोनों राजा सगर की भार्या हुई ॥१॥ उनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति  
की कामना के लिए आचारित होकर भगवान् श्रीव ने यह वर प्रदान किया  
॥२॥ तुम में से एक से वंश-वृद्धि करने चाहा एक पुत्र उत्पन्न होगा और दूसरी  
से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी । इनमें से दो वर जिस अच्छा लगे, उसी  
वर को वह माँग ले । ऋषि द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर केशिनी ने एक पुत्र  
और सुमति ने साठ हजार पुत्रों का वर माँगा ॥३-४॥ महर्षि के 'ऐसा ही हो'  
कहने पर केशिनी ने वंश की वृद्धि वाले असमजस नामक एक पुत्र को उत्पन्न  
किया और सुमति ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया ॥५-६॥ असमजस  
के अंशुमान नामक एक पुत्र हुआ ॥७॥ वह असमञ्जस अपने  
बाल्यकाल से ही दुराचरण वाला हुआ ॥८॥ पिता ने समझा कि जब इसकी  
बाल्यवस्था व्यतीत हो जायगी, तब यह सुधर जायगा ॥९॥ परन्तु उस समस्या  
के निकलने पर भी उसके आचरण में परिवर्तन न देख कर पिता ने उसका  
त्याग कर दिया ॥१०॥ तथा सगर के साठ हजार पुत्र भी असमजस के ही अनु-  
गामी हुए ॥११॥

ततश्चासमञ्जसचरितानुकारिभिस्सागरैरपथ्यस्तपज्ञादिसन्मार्गे  
जगति देवास्सर्वलविद्यामयमसस्पृष्टमशेषदोषैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्याश-  
भूत कपिल प्रणम्य तदर्थमूचुः ॥१२॥ भगवन्नेभिस्मयरतनयैरसमञ्जस-  
चरितमनुगम्यते ॥१३॥ कथमेभिरसद्वृत्तमनुसरद्भिर्जगद्भविष्यतीति  
॥१४॥ अत्यातं जगत्परित्राणाय च भगवतोऽयं शरीरग्रहणमित्याकर्ष्य  
भगवानाहाल्पैरेव दिनैर्विनङ्क्षयन्तीति ॥१५॥

अत्रान्तरे च सगरो हयमेघमारभत ॥१६॥ तस्य च पुत्रं रधिष्ठित-  
मस्याश्व कोऽप्यपहत्य भुवो विल प्रविवेश ॥१७॥ ततस्तत्तनयाश्चाश्व-  
खुरगतिनिर्वन्धेनावनीमेकैको योजन चरुनुः ॥१८॥ पाताले चाश्व परि-  
भ्रमन्त तमवनीपतितनयास्ते ददृशुः ॥१९॥ नातिदूरेऽवस्थितं च भगव-  
न्तमपघने शरत्कालेऽर्कमिव तेजोभिरनवरतमूर्ध्वमघश्चाशेषदिशश्चोद्भा-  
सयमान ह्यहर्त्तारं कपिलपिमपश्यन् ॥२०॥

उन असमजस के चरित्र का अनुगमन करने वाले साठ हजार सगर पुत्रों  
ने विश्व से यज्ञादि सन्मार्ग का उच्छेद किया, सब सकल विद्याओं के ज्ञाता  
भगवान् के भ्रंशभूत श्री कपिलजी को देवताओं ने प्रणाम कर उन सगर-पुत्रों  
के विषय में निवेदन किया ॥१२॥ हे भगवन् ! सगर के यह सभी पुत्र अस-  
मंजस के चरित्र का अनुकरण करने वाले हुए हैं ॥१३॥ इन सब के सन्मार्ग के  
विपरीत चलने से यह जगत किस दशा को प्राप्त होगा ? ॥१४॥ हे भगवन् !  
आपने दीनों की रक्षा करने के लिये ही यह देह धारण किया है । यह बात  
सुनकर कपिलजी बोले—इन सब का कुछ ही दिनों में नाश होना है ॥१५॥  
इसी अवसर पर महाराज सगर ने अश्वमेध का अनुष्ठान आरम्भ किया ॥१६॥  
तब उसके पुत्रों द्वारा सुरक्षित अश्व का अपहरण करके कोई पृथिवी में प्रविष्ट  
हो गया ॥१७॥ तब उस अश्व के खुर-चिह्नों का अनुसरण करते हुए सगर-  
पुत्रों में से प्रत्येक ने चार-चार योजन भूमि खोद डाली ॥१८॥ और पाताल  
में पहुँचकर उन्होंने अश्व को विचरण करते हुए देखा ॥१९॥ उनके निकट ही  
मेघ आवरण से रहित शरदकालीन सूर्य के समान अपने तेज से सब दिशाओं  
को प्रकाशमय करने वाले महर्षि कपिल अश्वहर्ता के रूप में बंटे हुए  
देखा ॥२०॥

तनश्चोद्यतायुधा दुरात्मानोऽयमस्मदपकारी यज्ञविघ्नकारी  
हन्यतां ह्यहर्त्ता हन्यतामित्यवोचन्नभ्यधावंश्च ॥२१॥ ततस्तेनापि भग-  
वता किञ्चिदीपत्परिर्वर्तितलोचनेनावलोकितास्त्वशरीरसमुत्थेनाग्निना  
दह्यमाना विनेशुः ॥२२॥

सगरोऽप्यवगम्याश्चानुसारितत्पुत्रवलमशेषं परमपिणा कपिलेन तेजसा दग्ध ततोऽशुमन्तमसमञ्जसपुत्रमश्वानयनाय युयोज।२३।सतु सगरतनयसातमार्गेण कपिलमुपगम्य भक्तिनम्रस्तदा तुष्टाव।२४। अयनं भगवानाह।२५। गच्छैनं पितामहायाश्च प्रापय वरं वृणीष्व च पुत्रकपौत्रश्च ते स्वर्गाद्गङ्गा भुवमानेष्यत इति।२६। अथाशुमानपि स्वर्ग्यताना ब्रह्मदण्डहतानामस्मत्पितृणामस्वर्गयोग्याना स्वर्गप्राप्तिकर वरमस्माकं प्रयच्छेति प्रत्याह।२७।

उन्हें इस प्रकार बेल कर के सब दुरात्मा सगरपुत्र अपने शास्त्रात्मों को सम्भास कर 'यही हमारा अपवार करने वाला और यज्ञ में बाधा डाने वाला है, इस अश्वघोर को मार दो, घघ कर डालो' कहते हुए कपिलजी की ओर दौड़ पड़े ॥२१॥ तब भगवान् कपिल ने अपने परिवर्तिन नेत्रों से देखा, जिससे वे सब अपने ही देह से प्रकट होते हुए अग्नि में भस्म हो गये ॥२२॥ जब राजा सगर को यह ज्ञात हुआ कि अश्व के पाछे रक्षक रूप से जाने वाले उनके सभी पुत्र भस्म हो गए हैं, तो उन्होंने असमजस के पुत्र अशुमान को अश्व प्राप्ति के कार्य में नियुक्त किया ॥२३॥ तब वह उन राजपुत्रों द्वारा छोड़े हुये मार्ग से कपिलदेव के पास गया और उसने अत्यन्त भक्तिभाव से नम्र होकर उनको प्रार्थन किया ॥२४॥ फिर प्रसन्न हुए उन कपिलजी ने अशुमान से कहा—हे यत्न ! इस अश्व को लेजाकर अपने दादा को और और जो तू चाहे वही शुभम मांग ले । तेरा पौत्र गंगाजी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाने में मगध होगा ॥२५-२६॥ इस पर अशुमान ने कहा—कि मेरे यह स्वर्ग को न प्राप्त हुए पितृ-यण ब्रह्मदण्ड से भस्म हुए हैं, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला पर प्रदान कीजिए ॥२७॥

प्रति त सद्यश्शरीरिण स्वर्गं नयतीत्युक्तं प्रणम्य भगवतेऽश्वमादाय  
 पितामहयज्ञभाजगाम ॥३१॥ सगरोऽप्यश्वमासाद्य त यज्ञं समापयामास  
 ॥३२॥ सागरं चात्मजप्रीत्या पुनत्वे कल्पितवान् ॥३३॥ तस्याशुमतो  
 दिलीप पुत्रोऽभवत् ॥३४॥ दिलीपस्य भगीरथः योऽसौ गङ्गा स्वर्गादिहा-  
 नीय भगीरथीसज्ञा चकार ॥३५॥

अशुमान की बात सुनकर भगवान् कपिलजी बोले—यह मैंने पहिले ही  
 कहा है कि तेरा पुत्र गंगाजी को स्वर्ग में उतारेगा ॥२८॥ और जैसे ही उनके  
 जल का स्पर्श उनकी अस्थियों से होगा, वैसे ही यह सब स्वर्ग को प्राप्त होंगे  
 ॥२९॥ भगवान् विष्णु के पादागुष्ठ से निर्गत हुए उस जन का यह माहात्म्य है  
 कि वह केवल अभीष्टमय स्नानादि कार्यों में ही प्रयुक्त नहीं होता, किन्तु बिना  
 किसी कामना के ही मृतक की हड्डी, चर्म, स्नायु या केशादि का उससे स्पर्श  
 होने या जिसमें उससे किसी अङ्ग के गिर जाने से भी उस प्राणी को तत्काल  
 स्वर्ग मिलता है । भगवान् कपिल का वचन सुन कर अशुमान ने उन्हें प्रणाम  
 किया और अश्व को साथ लेकर अपने दादा की यज्ञशाला में आकर उपस्थित  
 हुआ ॥३०-३१॥ तब राजा सागर ने उस अश्व को प्राप्त कर अपने यज्ञ को  
 सम्पूर्ण किया और अपने पुत्रों के द्वारा छोदे हुए उस सागर को ही उन्होंने अपना  
 पुत्र माना ॥३२-३३॥ उस अशुमान के दिलीप हुआ । दिलीप के भगीरथ हुआ,  
 जिसके प्रयत्न से गङ्गाजी स्वर्ग पर उतर आई और उनका नाम उसके नाम  
 पर ही भगीरथ हुआ ॥३४-३५॥

भगीरथात्सुहोत्रस्सुहोत्राच्छ तः तस्यापि नाभागः ततोऽम्बरीषः  
 तत्पुत्रस्तिन्धुद्वीप सिन्धुद्वीपादयुतायुः ॥३६॥ तत्पुत्रश्च श्रुतुपर्णः योऽसौ  
 ननगहायोऽश्वद्वयज्ञोऽभूत् ॥३७॥ श्रुतपर्णपुत्रस्सर्वकाम ॥३८॥ तत्तनय-  
 म्मुनिगः ॥३९॥ सुदामात्सीदामो मित्रगृहनामा ॥४०॥ स चाटव्या मृग-  
 यार्थो पर्यटन् व्याघ्रद्वयमपश्यत् ॥४१॥ ताभ्या तद्वनमपमृगं वृत्तमर्त्यकं  
 तयोर्व्याघ्रेण जघान ॥४२॥ त्रियमाणश्चामायतिभीषणावृत्तिरतिगल-  
 यदनो गङ्गानोऽभूत् ॥४३॥ द्विनोयोऽपि प्रतिजिया ते करिष्यामीत्युक्त्वा-  
 न्तर्धानं जगाम ॥४४॥

भगीरथ का सुहोत्र हुआ । सुहोत्र से श्रुति, श्रुति से नाभाग, नाभाग से अम्बरीष, अम्बरीष से सिधुद्वीप, सिधुद्वीप से अयुतायु और अयुतायु से ऋतुपर्ण हुआ, जो द्यूत क्रीडा का ज्ञाता और राजा नल का सहायक था ॥३६-३७॥ ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम हुआ । सर्वकाम का सुदास और सुदास का सोदास मित्रसह हुआ ॥३८-४०॥ उसने एक मृगया के लिए वन में विचरण करते-करते दो व्याघ्रों को देखा ॥४१॥ उनके सम्पूर्ण वन हीन को मृगहीन हुआ समझ कर उनमें से एक को उसने मार दिया ॥४२॥ मरणकाल में अत्यन्त घोर रुधिर और विकराल मुख वाला राक्षस बन गया ॥४३॥ और दूसरा जो मरने से बच गया वह 'मैं इसका प्रतिशोध लूँगा' कहना हुआ तत्काल अन्तर्धान हो गया ॥४४॥

कालेन गच्छता सोदासो यज्ञमयजत् ॥४५॥ परिनिष्ठितयज्ञे आचार्ये वसिष्ठे निष्क्रान्ते तद्रक्षो वसिष्ठरूपमास्थाय यज्ञावसाने मम नरमांसभोजनं देयमिति तत्संस्क्रियतां क्षणादानमिष्यामीत्युक्त्वा निष्क्रान्तः ॥४६॥ भूयश्च सूदवेयं कृत्वा राजाज्ञया मानुषं मांसं संस्कृत्य राज्ञे न्यवेदयत् ॥४७॥ असावपि हिरण्यपात्रे मांसमादाय वसिष्ठागमन-प्रतीक्षकोऽभवत् ॥४८॥ आगताय वसिष्ठाय निवेदितवान् ॥४९॥ स चाप्य-चिन्तयदहो अस्य राज्ञो दीक्षणीयं येनैतन्मांसमस्माकं प्रयच्छति किमेत-द्द्रव्यजातमिति ध्यानपरोऽभवत् ॥५०॥ अपश्यच्च तन्मांसं मानुषम् ॥५१॥ अतः क्रोधकलुषीकृतचेता राजनि शापमुत्सर्ज ॥५२॥ यस्मादभोज्यमेत-दस्मद्विधाना तपस्विनामवगच्छन्नपि भवान्मह्यं ददाति तस्मात्तवैवाश्र लोलुपता भविष्यतीति ॥५३॥

कुछ समय व्यतीत होने पर सोदास ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥४५॥ जब यज्ञ के समाप्त होने पर आचार्य वसिष्ठजी वहाँ में चले गए तब यह राक्षस वसिष्ठजी का रूप धारण कर वहाँ आकर कहने लगा—यज्ञ की समाप्ति पर मुझे मनुष्य-मांस युक्त भोजन कराया जाना चाहिए, इसलिए तुम वैसा भोजन बनवाओ, मैं शरण भर में सौट कर आता हूँ । यह कहता हुआ वह वहाँ से चला गया ॥४६॥ फिर उसने रसोक्षे का रूप धारण कर राजाज्ञा से मनुष्य

मांसमय भोजन बना कर राजा के समक्ष लाया ॥४७॥ राजा ने उसे स्वर्णपात्र में रखा और वसिष्ठजी के आने पर उसने उन्हे यह नरमांस निवेदन किया ॥४८-४९॥ तब वसिष्ठजी ने मन में विचार किया कि यह राजा कितना कुटिल है जो जानते हुए भी मुझे यह मांस दे रहा है । फिर यह जानने के लिये कि यह किस जीव का मांस है, उन्होंने समाधि का आश्रय लिया और ध्यानावस्था में उन्होंने जान लिया कि मनुष्य का मांस है ॥५०-५१॥ तब तो वसिष्ठजी अत्यन्त क्रोधित और दुःख मन हुए और उन्होंने तत्काल ही राजा को शाप दे डाला कि तूने इस अत्यन्त अभक्ष्य नर मांस को मेरे जैसे तपस्वी को जान-बूझ कर आहार हेतु दिया है, इसलिये तेरी ओलुपना नरमांस में ही होगी ॥५३॥

अनन्तरं च तेनापि भगवतैवाभिहितोऽस्मीत्युक्ते किं किं मया-  
 भिहितमिति मुनिः पुनरपि समाधौ तस्थौ ॥५४॥ समाधिविज्ञानावगता-  
 थंश्चानुग्रहं तस्मै चकार नात्यन्तिकमेतद्वादशाब्दं तव भोजनं भविष्य-  
 तीति ॥५५॥ असावपि प्रतिगृह्योदकाञ्जलिं मुनिशापप्रदानायोद्यतो भगव-  
 क्षयमस्मद्गुरुर्नाहिंस्येन कुलदेवताभूतमाचार्यं शप्नुमिति मदयन्त्या स्व-  
 पत्न्या प्रसादितस्सस्याम्बुदरक्षणार्थतच्छ्यापाम्बु नोर्व्या न चाकाशे  
 चिक्षेप किं तु तेनैव स्वपदौ सिपेच ॥५६॥ तेन च क्रोधाश्रितेनाम्बुना  
 दग्धच्छायौ तत्पादौ कल्माषतामुपगता ततस्स कल्माषपादसंज्ञामवाप  
 ॥५७॥ वसिष्ठाशापाच्च पठ्ठे पठ्ठे काले राक्षसस्वभावमेत्याटव्यां पर्यटन्न-  
 नेकशो मानुषानभक्षयत् ॥५८॥

फिर जब राजा ने यह कहा कि 'भगवन् आपकी ही ऐसी आज्ञा थी'  
 तो वसिष्ठजी ने कहा कि 'अरे क्या कहता है, मैंने ऐसा कहा था ? और यह  
 पुत्रः ध्यानावस्थित हुए ॥५४॥ तब उस ध्यानावस्था में उन्हे वास्तविकता का  
 ज्ञान हुआ और वह राजा पर अनुग्रह करते हुए बोले—तू अधिक समय के लिये  
 नरमांसभोजी नहीं होगा, केवल बारह वर्ष ही ऐसी अवस्था रहेगी ॥५५॥ जब  
 वसिष्ठजी का ऐसा वचन सुना तो राजा सौदास ने अपनी अञ्जलि में जल ग्रहण  
 किया और मुनिवर वसिष्ठ को शाप देने लगा, परन्तु उसकी पत्नी मदयन्ती ने  
 उसे यह बह कर शान्त किया कि हे स्वामिन् ! यह हमारे कुल गुरु हैं, इसलिये ॥

इन्हें शाप नहीं देना चाहिये । तब शाप के लिये ग्रहण किये हुये उस जल को राजा ने अन्न और मेघ की रक्षा के लिये पृथिवी या आकाश में नहीं फेंका, किन्तु उसे अपने ही पाँवों पर डाल लिया ॥५६॥ उस क्रोधमय जल के पड़ने से उसके पाँव दग्ध होकर चिनकबरे बरुं के हो गये । तभी मे वह कल्पापपाद पड़ा जाने लगा ॥५७॥ फिर वसिष्ठजी के शाप के प्रभाव से वह राजा तीसरे दिन के अन्तिम भाग में राक्षस स्वभाव होकर वन में विषरण करने और मनुष्यों को हानि में प्रवृत्त हुआ ॥५८॥

एकदा तु कश्चिन्मुनिमृतुकाले भार्यासङ्गत ददर्श ॥५९॥ तयोश्च तमतिभीषण राक्षसस्वरूपमवलोक्य आसाहस्पत्योः प्रधावितयोर्ब्राह्मणं जग्राह ॥६०॥ ततस्सा ग्राह्याणी बहुशस्तमभियाचितवती ॥६१॥ प्रसीदे-  
 क्ष्वाकुकुलतिलकभूतस्त्वं महाराजो मित्रसहो न राक्षसः ॥६२॥ नाहंसि स्त्रीधर्मसुखाभिजो मय्यकृतार्थायामस्मद्भूतारिं हन्तुमित्येव बहुप्रवारं तस्यां विलपन्त्यां व्याघ्रः पशुमिवारण्येऽभिमतं तं ग्राह्यणमभक्षयत् ॥६३॥ ततश्चातिकोपसमन्विता ग्राह्याणी त राजानं दशपा ॥६४॥ यस्मादेवं गच्छतृतायां त्वयामं मत्पतिर्भक्षितः तस्मात्त्वमपि कामोपभोगप्रवृत्तो-  
 ऽन्त प्राप्स्यसीति ॥६५॥ दाप्त्वा चैवं साग्निं प्रविवेध ॥६६॥

एक दिन उस राक्षसत्व प्राप्त राजा ने एक मुनि को ऋतुकाल में अपनी पत्नी से रमण करते हुये देखा ॥५९॥ उस घट्यन्त भीषण राक्षस रूप वाले राजा को देखकर भयसे भागने हुये उन दम्पति में से उसने मुनि को पकड़ लिया ॥६०॥ उस समय मुनि-पत्नी ने उसने अपने प्रवार अनुनय विनय करते हुये कहा—हे राजन् ! प्रसन्न होइये । आप राक्षस नहीं, इक्ष्वाकुवंश के तिलक रूप महाराज मित्रमह है ॥६१-६२॥ आप ग गेग गुन के जाना हैं, मुझ प्रवृत्ता के पनि की हत्या करना आपके लिये उचित नहीं है । इस प्रकार उस ग्राह्याणी द्वारा अपने प्रवार से विज्ञाप किये जाने पर भी जैसे व्याघ्र अपने इच्छित पशु को जङ्गल में पकड़ कर भक्षण कर लेता है, जैसे ही उस ग्राह्याणी को पकड़ कर खा लिया ॥६३॥ तब उस ग्राह्याणी ने अत्यन्त क्रोधपूर्ण राजा को शाप दिया कि घरे हुए । तूने मेरे अन्तम भक्षण में करते हुये भी मेरे स्वामी का

भाकर अपनी बुद्धि से तीनों लोकों को पार किया और सत्यरूप भगवान् श्रीहरि को प्राप्त कर लिया ॥८१-८२॥

खट्वाङ्गादीर्घबाहु. पुनोज्भवत् ॥८३॥ ततो रघुरभवत् ॥८४॥ तस्मादप्यज ॥८५॥ अजादशरथ ॥८६॥ तस्यापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्माशेन रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नरूपेण चतुर्धा पुनत्वमायासीत् ॥८७॥

रामोऽपि बाल एव विश्वामित्रयागरक्षणाय गच्छस्ताटका जघान ॥८८॥ यज्ञे च मारीचमिषुवाताहत समुद्रे चिक्षेप ॥८९॥ सुबाहुप्रमुखाश्च क्षयमनयत् ॥९०॥ दर्शनमात्रेणाहल्यामपापा चकार ॥९१॥ जनकगृहे च महेश्वर चापमनायासेन बभञ्ज ॥९२॥ सीतामयोनिजा जनकराजतनया वीर्यशुल्का लेभे ॥९३॥ सकलक्षत्रियक्षयकारिणमशेषहैहयकुलधूममेतुभूत च परशुराममपास्तवीर्यबलावलेप चकार ॥९४॥

खट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ । दीर्घबाहु का रघु और रघु का पुत्र भज हुआ । भज के पुत्र दशरथ हुए, जिनके पुत्र रूप में भगवान् पद्मनाभ इस विश्व की रक्षा के निमित्त अपने चार अन्तों से राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हुये ॥८३-८७॥ बाल्यकाल में ही श्री राम ने विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा करने के लिये जाते हुए मार्ग में ही ताटका नाम की राक्षसी का वध किया और यज्ञशाला में पहुँचकर अपने बाण रूपी बायु से मारीच पर आघात कर उसी समुद्र में कैला और सुबाहु आदि राक्षसों को मार डाला ॥८८-९०॥ उनके दर्शन करने से ही मुनि-पत्नी अहल्या पाप से मुक्त हो गई । उन्होंने राजा जनक के यहाँ पहुँच कर बिना किसी श्रम के ही शिवजी का धनुष तोड़ डाला और वैदल पुष्पाय से मिलने वाली जनकमुता धयोनिजा सीता को भार्या रूप में प्राप्त किया ॥९१-९३॥ फिर सब क्षत्रियों का सहार कर देने वाले तथा हैहय पक्ष रूपी पापों के निष्प्राप्ति के समान श्री परशुरामजी का बलवीर्ययुक्त गर्व क्षण्डन किया ॥९४॥

पितृवचनाश्रागणिनराज्याभिलाषो भ्रातृभार्यासमेतो यनं प्रवि-  
येन ॥९५॥ विराटगरदूषणादीन् वयन्धवालिनी च निजघान ॥९६॥ यद-



ध्वा चाम्भोनिधिमशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशाननापहृतां भाय ।  
 धादपहतकलङ्कामप्यनलप्रवेशशुद्धामशेषदेवसङ्घैः स्तूयमानशीलां उलो  
 कराराजकन्यामयोध्यामानिन्ये । ६७। ततश्चाभिषेकमङ्गलं मैत्रेय वर्षशते-  
 नापि वक्तु न शक्यते सङ्क्षेपेण श्रूयताम् । ६८।

फिर पिता के वचन के प्रागे राज्य को तुच्छ मान कर वह अपने छोटे  
 भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या सीताजी को साथ लेकर वन में गये । ६५। वहाँ  
 उन्होंने विराट्, खर, दूषण आदि राक्षसों को और कबंध तथा बाली को मारा  
 और समुद्र पर सेतु बन्धन कर सम्पूर्ण राक्षस कुल का संहार किया । फिर वह  
 राक्षसराज रावण द्वारा हरण की गई और उसके मरने के कारण निष्कलङ्क  
 होने पर भी अग्नि में प्रवेश करके शुद्ध हुई तथा सभी देवताओं द्वारा प्रशंसित  
 आचरण वाली अपनी धर्मपत्नी जनकपुत्री सीताजी को अपने साथ लेकर अयो-  
 ध्या में आ गए । ६६-६७। हे मैत्रेयजी ! उनके अयोध्या में लौट आने पर  
 राज्याभिषेक का जैसा महोत्सव हुआ, उसका वर्णन तो सौ वर्षों में भी नहीं  
 किया जा सकता । फिर भी मैं उसे संक्षेप में कहता हूँ, श्रवण करो । ६८।

लक्ष्मणभरतशत्रुघ्नविभीषणसुग्रीवाङ्गदजाम्बवन्तनुमत्प्रभृतिभि-  
 स्समुत्फुल्लवदनैश्छत्रचामरादियुतैः सेव्यमानो दाशरथिर्ब्रह्मन्द्राग्निय-  
 मनिष्टं तिवरुणवायुकुबेरेशानप्रभृतिभिस्सर्वामरेर्बसिष्ठवामदेववाल्मीकि-  
 मार्कण्डेयविश्वामित्रभरद्वाजागस्त्यप्रभृतिभिर्मुनिवरैः ऋग्यजुस्सामाथर्व-  
 भिस्संस्तूयमानो नृत्यगीतवाद्याचलिललोकमङ्गलवार्चवीणावेणुमृदङ्ग-  
 भेरीपटहशङ्खकाहलगोमुखप्रभृतिभिस्सुनादस्समस्तभूभृतां मध्ये सकल-  
 लोकरक्षार्थं यथोचितमभिषिक्तो दाशरथिः कोसलेन्द्रो रघुकुलतिलको  
 जानकीप्रियो भ्रातृत्रयप्रियसिंहासनगत एकादशाब्दसहस्रं राज्य-  
 मकरोत् । ६९।

श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या के राज्य सिंहासन पर विराजमान हुए । उस समय  
 लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, अंगद, जाम्बवन्त और हनुमान आदि छत्र-  
 चमर आदि सेवा करने लगे । श्री ब्रह्माजी, इन्द्र, अग्नि, यम, निष्टंति, वरुण,  
 वायु, कुबेर और ईशानादि सब देवता यथास्थान स्थित हुए । बसिष्ठ, वामदेव,

विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्यादि मुनि श्रेष्ठ ऋग्वेद, अथर्ववेद के द्वारा स्तुति करने लगे (नृत्य, गीत, वाद्यादि और वीणा, वेणु, मृदंग, भेरी, पटह, शंख, कातल तथा ङ बाजे बजने लगे ।) उस समय सभी राजाओं की उप-

स्थात में लोभ की रक्षा के निमित्त विधि पूर्वक उनका राज्याभिषेक हुआ । इस प्रकार दशरथ मन्दन, कोसलेन्द्र, रघुकुलतिलक, जानकीनाथ, अपने तीनों भाइयों के परमप्रिय भगवान् श्रीराम ने राज्यपद प्राप्त कर स्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया ॥६६॥

भरतोजित गन्धर्वविषयसाधनाय गच्छन् संग्रामे गन्धर्वकोटी-  
स्तिस्त्रो जघान ॥१००॥ शत्रुघ्नेनाप्यमितबलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणो  
नाम राक्षसो निहतो मयुरा च निवेशिता ॥१०१॥ इत्येवमाद्यतिबलपरा-  
क्रमयोरतिदुष्टसंहारिणोऽशेषस्य जगतो निष्पादितस्थितयो रामलक्ष्मण-  
भरतशत्रुघ्नाः पुनरपि दिवमारुन्धाः ॥१०२॥ येऽपि तेषु भगवदशेष्वनु-  
रागिणः कोसलनगरजानपदास्तेऽपि तन्मनसस्तत्सालोवयताम-  
वापुः ॥१०३॥

फिर भरतजी गन्धर्वलोक को जीतने के लिये गये और वहाँ युद्ध में उन्होंने तीन करोड़ गन्धर्वों का सहार किया तथा शत्रुघ्नजी ने अत्यन्त बलवान् एवं महान् पराक्रमी मधुपुत्र लवणामुर को मार कर मयुरा नामक नगर बसाया ॥१००-१०१॥ इस प्रकार अपने महान् बल-पराक्रम से विकराल दुष्टों का सहार करने वाले श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था की और फिर देवमोक्ष को चले गये ॥१०२॥ जो भयोघ्या निवासी उन भगवान् के वंशों में भरयन्त आसक्त थे, वे सब भी उनमें तस्तीने होने के कारण उन्हीं के साथ सालोवय को प्राप्त हुए ॥१०३॥

अतिदुष्टसंहारिणो रामस्य कुशलवो द्वौ पुत्रौ लक्ष्मणस्याङ्गद-  
चन्द्रवेनू तथापुष्पको भरतस्य सुबाहुनूरसेनौ शत्रुघ्नस्य ॥१०४॥ कुशस्या-  
तिविरतिपेरपि निषधः पुत्रोऽनूत् ॥१०५॥ निषधस्याप्यनलस्तम्मादपि  
नभाः नभगः पुष्टरोवस्तत्तनयः क्षेमघन्वा तस्य च देवानीवस्तस्याप्य-

हीनकोऽहीनकस्यापि रुस्तस्य च पारियात्रकः पारियात्रकाद्देवलो  
 देवलाद्वचलः तस्याप्युत्कः उत्काच्च वज्रनाभस्तस्माच्छृणुस्तस्माद्यु-  
 पिताश्वस्ततश्च विश्वसहो जज्ञे ॥१०६॥ तस्माद्विरण्यनाभः यो महायोगी-  
 श्वराज्जैमिनेदिशप्याद्याज्ञवल्क्याद्योगमवाप ॥१०७॥ हिरण्यनाभस्य पुत्रः  
 पुण्यस्तस्माद्घुवसन्धिस्ततस्सुदर्शनस्तस्मादग्निवर्णस्ततश्शीघ्रगस्तस्मादपि  
 मरुःपुत्रोऽभवत् ॥१०८॥ योऽसौ योगमास्थायान्वापि कलापग्राममाश्रित्य तिष्ठति  
 ॥१०९॥ आगामियुगे सूर्यवशक्षत्रप्रवर्त्तयिता भविष्यति ॥११०॥ तस्या-  
 स्मजः प्रसुश्रुतस्यापि सुसन्धिस्ततश्चाप्यमर्षस्तस्य च सहस्वास्ततश्च  
 विश्वभवः ॥१११॥ तस्य बृहद्वलः योऽर्जुनतनयेनाभिमन्युना भारतयुद्धे  
 क्षयमनीयत ॥११२॥ एते इक्ष्वाकुभूपालाः प्राधान्येन मयेरिताः । एतेषा  
 चरित शृण्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥११३॥

दुष्टों का सहार करने वाले श्रीराम के दो पुत्र हुए, जिनका नाम कुश  
 और लव था । लक्ष्मण के भी भगद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए । भरत  
 के तक्ष और पुष्कल तथा जत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नामक दो-दो पुत्र ही  
 हुए ॥१०४॥ कुश का पुत्र प्रतिधि हुआ । प्रतिधि का निषध, निषध का  
 धनन, धनन का नभ और नभ का पुण्डरीक हुआ । पुण्डरीक  
 का पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा का देवानीक, उसका अहीनक उसका रुद्र और  
 रुद्र का पारियात्रक हुआ । पारियात्रक का देवल, देवल का वचल, वचल का  
 उत्क और उत्क का वज्रनाभ हुआ । वज्रनाभ का शंखण और उसका पुत्र  
 युपिताश्व हुआ तथा युपिताश्व का पुत्र का नाम विश्वसह हुआ ॥१०५-१०६॥  
 उसी विश्वसह के पुत्र हिरण्यनाभने जैमिनि के शिष्य महायोगेश्वर याज्ञवल्क्यजी  
 से योग्य विद्या ग्रहण की थी ॥१०७॥ हिरण्यनाभ का पुत्र पुण्य हुआ, उसका  
 पुत्र घुवसन्धि और उसका सुदर्शन हुआ । सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण, अग्निवर्ण  
 का शीघ्रग और शीघ्रग का पुत्र मरु हुआ । वह शीघ्रग-पुत्र मरु अब भी कलाप-  
 ग्राम में योगाभ्यास-परायण रहता है ॥१०८-१०९॥ आने वाले युग में यही  
 सूर्यवशी क्षत्रियो का प्रवर्त्तक होगा ॥११०॥ उस मरु का पुत्र प्रसुधुत हुआ ।  
 प्रसुधुत वा सुसन्धि, सुसन्धि का अमर्ष, अमर्ष का सहस्वान्, सहस्वान् का

विश्वभव और विश्वभव का बृहद्बल हुआ, जो महाभारत युद्ध में अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु द्वारा मारा गया था ॥१११-११२॥ इस प्रकार यह इक्ष्वाकु वंश के सब प्रमुख-प्रमुख राजाओं का वंशान्त मैंने तुमसे किया है। इनके चरित्र का श्रवण करने से सभी पापों से छुटकारा होता है ॥११३॥



## पाँचवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिर्नाम ससन्नं वत्सरं सत्रमारंभे ।१।  
वसिष्ठं च होतारं वरयामास ।२। तमाह वसिष्ठोऽहमिन्द्रेण पञ्चवर्षंश-  
तयागार्यं प्रथमं वृतः ।३। तदन्तरं प्रतिपाल्यतामागतस्तवापि ऋत्वि-  
ग्भविष्यामीत्युक्तं स पृथिवीपतिर्न किञ्चिदुक्तवान् ।४। वसिष्ठोऽप्यनेन  
समन्वीप्सितमित्यमरपतेर्यागमकरोत् ।५। सोऽपि तत्काल एवान्यैर्गीत-  
मादिभिर्यागमकरोत् ।६।

श्री पराशरजी ने कहा—इक्ष्वाकु के निमि नामक पुत्र ने सहस्र वर्षों में सम्पन्न होने वाले यज्ञानुष्ठान का आरम्भ किया ॥१॥ उस यज्ञ में उमने होता के रूप में वसिष्ठजी का वरण किया ॥२॥ तब वसिष्ठ ने उससे कहा कि इन्द्र ने पाँच सौ वर्षों में सम्पन्न होने वाले यज्ञ के लिए मुझे पहिले से ही वरण किया हुआ है ।३। इसलिये तुम अभी इतने समय और द्यो, मैं वहाँ से लौटकर तुम्हारा ऋत्विक् बनूँगा । उनकी बात सुनकर राजा उन्हें कोई उत्तर न देकर चुप हो गया ॥४॥ वसिष्ठजी ने समझा कि राजा ने उनकी बात मान ली है, इसलिये वह इन्द्र का यज्ञ करने लगे । इधर राजा निमि ने गीतमादि अन्य होताओं को वरण कर उनके द्वारा अपना यज्ञ आरम्भ करा दिया ॥६॥

समाप्ते चामरपतेर्यागि त्वरया वसिष्ठो निमित्तज्ञं करिष्यामी-  
त्याजगाम ।७। तत्कर्मकर्तृत्वं च गीतमस्य दृष्ट्वा स्वपते तस्मै राज्ञे मा  
प्रत्याख्यायंतदनेन गीतमाय कर्मान्तरं समर्पितं यस्मात्तस्मादयं विदेहो

भविष्यतीति शार्प ददौ ।८। प्रबुद्धश्चासाववनिपतिरपि प्राह ।९। यस्मान्मामसम्भाष्याज्ञानत एव शयानस्य शापोत्सर्गमसौ दुष्टगुरुश्चकार तस्मात्तस्यापि देहः पतिष्यतीति शार्पं दत्त्वा देहमत्यजत् ।१०।

उधर वसिष्ठजी सोच रहे थे कि मुझे निमि का यज्ञ कराना है, इसलिये इन्द्र का यज्ञ समाप्त होते ही वह शोधना पूर्वक वहाँ आ गये ॥७॥ उस यज्ञ में आने स्थान पर गौतम को कर्म करते हुए देखकर सोते हुए राजा निमि को शाप दिया कि इसने गौतम को होता नियुक्त करके मेरा तिरस्कार किया है, इसलिये यह देह-रहित हो जायगा ॥८॥ जब राजा निमि सोकर उठा और उसे यह मालूम हुआ कि वसिष्ठजी ने ऐसा शाप दिया है, तब उसने भी शाप दिया कि इस दुष्ट गुरु ने मुझमें सम्भाषण किये बिना ही अज्ञानवश मुझ सोते हुये को शाप दिया है, इसलिये यह भी देह-रहित होगा । इस प्रकार शाप देकर राजा ने अपना देह त्याग दिया ॥९-१०॥

तच्छापाच्च मित्रावरुणयोस्तेजसि वसिष्ठस्य चेतः प्रविष्टम् ।११। उर्वशीदर्शनावुद्धतबीजप्रपातयोस्तयोस्त्राकाशाद्वसिष्ठो देहमपरं लेभे ।१२। निमेरपि तच्छरीरमतिमनोहरगन्धतैला दिभिरुपसस्क्रियमाणं नैव क्लेदादिक दोषमयाप सद्यो मृत इव तस्थौ ।१३। यज्ञसमाप्तौ भागग्रहणाय देवानागतानृत्विज ऊचुर्यजमानाय वरो दीयतामिति ।१४। देवैश्च छन्दितोऽसौ निमिराह ।१५। भगवन्तोऽखिलससारदुःखहन्तारः ।१६। नह्येतादृगन्यद्दुःखमस्ति यच्छरीरात्मनोर्वियोगे भवति ।१७। तदहमिच्छामि सकललोकलोचनेषु वस्तु न पुनश्शरीरग्रहणं कर्तुं मित्येवमुक्तं-देवैरसावशेषभूतानां नेत्रेष्ववतारित ।१८। ततो भूतान्युन्मेपनिमेपं चक्रुः ।१९।

राजा निमि के शाप में वसिष्ठजी का प्राण मित्रावरुण के वीर्य प्रविष्ट हुआ और जब उर्वशी को देखकर कामवश मित्रावरुण का वीर्य स्खलन होने से वसिष्ठ को उसी से पुनर्देह की प्राप्ति हो गई ॥११-१२॥ राजा निमि का देह भी अत्यन्त मनोहर गन्ध और तैल आदि के द्वारा सरलित किया जाने से खराब नहीं हुआ और उसी समय मरे हुए के समान बना रहा ॥१३॥ जब यज्ञ समाप्त

हुआ, तब सब देवता अपना-अपना भाग लेने के लिए वहाँ उपस्थित हुए । उस समय ऋत्विगों ने उनसे कहा कि यजमान, को वर प्रदान करिये ॥१४॥ यह सुन कर देवताओं ने राजा निमि के शरीर को, प्रेरित किया, तब उसने उनसे कहा ॥१५॥ हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण ससार-दुःख के हरण करने वाले हैं ॥१६॥ मैं समझता हूँ कि देह और आत्मा का वियोग होने में जो दुःख है, वैसा दुःख अन्य कोई भी नहीं है ॥१७॥ इसलिए अब मैं देह को पुनः ग्रहण नहीं करना चाहता, सब प्राणियों के नेत्रों में रहना चाहता हूँ । यह सुन कर देवताओं ने राजा निमि को सब प्राणियों के नेत्रों में स्थित कर दिया ॥१८॥ उसी समय में प्राणियों में उन्मेष-निमेष का आरम्भ हुआ ॥१९॥

अपुत्रस्य च भूभुजः शरीरमराजकभीरवो मुनयोऽरण्या ममन्युः ॥२०॥ तत्र च कुमारो जज्ञे ॥२१॥ जननाञ्जनकसंज्ञा चावाप ॥२२॥ अभूद्विदेहोऽस्य पितेति वैदेहः मथनान्मथिरिति ॥२३॥ तस्योदावसुः पुत्रोऽभवत् ॥२४॥ उदावसोर्नन्दिवर्द्धनस्ततस्सुकेतुः तस्माद्देवरातस्ततश्च बृहदुक्थः तस्य च महावीर्यस्तस्यापि सुधृतिः ॥२५॥ ततश्च धृष्टकेतुरजायत ॥२६॥ धृष्टकेतोर्हयश्चस्तस्य च मनुमंतो प्रतिकः तस्मात्कृतरथस्तस्य देवमीढः तस्य च विबुधो विबुधस्य महाधृतिस्ततश्च कृतरातः ततो महारोमा तस्य सुवर्णरोमा तत्पुत्रो ह्रस्वरोमा ह्रस्वरोम्णस्सोरध्वजोऽभवत् ॥२७॥ तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृपतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना ॥२८॥

फिर अराजकता फैलने की घासका से मुनियों ने उस पुत्रहीन राजा के देह को अरणि से मथना आरम्भ किया ॥२०॥ उससे एक बालक उत्पन्न हुआ जो स्वयं जन्म लेने के कारण 'जनक' कहा गया ॥२१-२२॥ इसके पिता के विदेह होने के कारण इसका नाम 'वैदेह' हुआ तथा मथन करने से उत्पन्न होने के कारण 'मिथि' भी कहा गया ॥२३॥ उसके पुत्र का नाम उदावसु हुआ ॥२४॥ उदावसु का पुत्र नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धन का सुकेतु और सुकेतु का पुत्र देवरात हुआ । देवरात का बृहदुक्थ बृहदुक्थ का महावीर्य और महावीर्य का सुधृति नामक पुत्र हुआ । सुधृति के पुत्र का नाम धृष्टकेतु हुआ । धृष्टकेतु का पुत्र हयश्च हुआ, जिससे मनु का जन्म हुआ । मनु से प्रतिक, प्रतिक से कृतरथ, कृतरथ से

देवमीढ, देवमीढ से विबुध और विबुध से महाधृति हुआ । महाधृति का पुत्र कृतरात, कृतरात का महारोमा, महारोमा का सुवर्गरोमा, उसका पुत्र ह्रस्वरोमा तथा उसका पुत्र सीरध्वज हुआ ॥२५ २७॥ वह सीरध्वज पुत्र प्राप्ति की इच्छा से यज्ञ भूमि को जोत रहा था, तभी उसके हल के अगले भाग से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम सीता हुआ ॥२८॥

सीरध्वजस्य भ्राता साङ्काश्याधिपति कुशध्वजनामासीत् ॥२९॥ सीरध्वजस्यापत्यं भानुमान् भानुमतश्शतद्युम्न तस्य तु शुचि तस्मा-  
ञ्चोर्जनामा पुत्रो जज्ञे ॥३०॥ तस्यापि शतध्वज तत कृति कृतेरञ्जन  
तत्पुत्र कुरुजित् ततोऽरिष्टनेमि तस्माच्छ्रुतायु भृतायुप सुपार्श्वं  
तस्मात्सृञ्जय तत क्षेमावी क्षेमाविनोऽग्नेना तस्माद्भौमरथ तस्य  
सत्यरथ तस्मादुपगुरुरूपगोरुपगुप्त तत्पुत्र स्वागतस्तस्य च स्वानन्द  
तस्माच्च सुवर्चा तस्य च सुपार्श्वं तस्यापि सुभाप तस्य सुश्रुत तस्मा-  
त्सुश्रुताञ्जय तस्य पुत्रो विजयो विजयस्य ऋत ऋतात्सुनय सुनया-  
द्वीतहव्य तस्माद्धृतिर्धर्तेर्बलाश्च तस्य पुत्र कृति ॥३१॥ कृतौ सतिष्ठ-  
तेऽयं जनकवश ॥३२॥ इत्येते मैथिला ॥३३॥ प्रायेणैते आत्मविद्याश्र-  
यिणो भूपाला भवन्ति ॥३४॥

साकाश्या धपति कुशध्वज सीरध्वज का भाई था ॥२९॥ सीरध्वज का पुत्र भानुमान् हुआ । भानुमान् का शतद्युम्न, शतद्युम्न का शुचि, शुचि का ऊर्जनामा, ऊर्जनामा का शतध्वज शतध्वज का कृति कृति का अञ्जन, अञ्जन का कुरुजित् और कुरुजित् का अरिष्टनेमि हुआ । अरिष्टनेमि का श्रुतायु, श्रुतायु का सुपार्श्व सुपार्श्व का सृञ्जय, सृञ्जय का क्षेमावी, क्षेमावी का अग्नेना, अग्नेना का भौमरथ, भौमरथ का सत्यरथ, सत्यरथ का उपगु, उपगु का उपगुप्त, उपगुप्त का स्वागत, स्वागत का स्वानन्द स्वानन्द का सुवर्चा, सुवर्चा का सुपार्श्व, सुपार्श्व का सुभाप, सुभाप का सुश्रुत और सुश्रुत का जय हुआ । जय के पुत्र का नाम विजय रखा गया । विजय का पुत्र ऋत, ऋत का सुनय सुनय का द्वीतहव्य, द्वीतहव्य का धृति, धृति का बहुलाश्व तथा बहुलाश्व का पुत्र कृति हुआ ॥३०-३१॥ कृति पर आकर यह जनक वश समाप्त हो गया । यह सभी मैथिल देश के राजा

गण ये ॥३२-३३॥ तथा यह सब पृथिवी-पालक नरेश आत्म विद्या के आश्रय-  
दाता हुए ॥३४॥



## छठा अध्याय

सूर्यस्य वश्या भगवन्कथिता भवता मम । सोमस्याप्यखिला-  
न्वश्याञ्छ्रोतुमिच्छामि पार्थिवान् ॥१॥ कीर्त्यते स्थिरकीर्तीना येपामद्यापि  
सन्तति । प्रसादसुमुखस्तान्मे ब्रह्मन्नाख्यातुमहंसि ॥२॥ श्रूयता मुनिशार्दूल  
वश प्रथिततेजस । सोमस्यानुक्रमात्ख्याता यत्रोर्वीपतयोऽभवन् ॥३॥  
अयं हि वशोऽतिबलपराक्रमद्युतिशीलचेष्टावद्भिरतिगुणान्वितनहुपय-  
यातिकातंवीर्यार्जुनादिभिर्भूपालैरलङ्कृतस्तमहं कथयामि श्रूयताम् ॥४॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! आपने सूर्य वश के राजाओं का  
वर्णन किया, अब मैं चन्द्रवश के शासकों का वर्णन सुनने की इच्छा करता हूँ ।  
जिन स्थिर वश वाले राजाओं की सन्तान का श्रेष्ठ वंश आज गाया जाता है,  
उन सभी का प्रसन्नता पूर्वक वर्णन करिये ॥१-२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे  
मुने ! अत्यन्त तेजस्वी चन्द्रवश का वर्णन सुनो । उस वंश में अनेकों प्रसिद्ध  
कीर्ति वाले राजा हुए हैं ॥३॥ इस वंश की अलङ्कृत करने वाले राजा नहुप,  
ययाति, कान्वीर्य, भर्जुन आदि अनेक अत्यन्त बली, पराक्रमी, तेजस्वी, क्रिया-  
शील और सद्गुण-सम्पन्न राजा हुए हैं उनका वर्णन सुनो ॥४॥

अखिलजगत्प्रपुत्रभगवतो नारायणस्य नाभिसरोजसमुद्भवाब्ज-  
योनेर्ब्रह्मण पुत्रोऽयं ॥१॥ अत्रेस्सोम ॥२॥ तं च भगवानब्जयोनि-  
अशेषोपधिद्विजनक्षत्राणामाधिपत्येऽभ्यषेचयत् ॥३॥ स च राजसूयमक-  
रोत् ॥४॥ तत्प्रभावादत्युत्कृष्टाधिपत्याधिष्ठातृत्वान्चैनं मद आविवेश ॥५॥  
मदावलेपाच्च सकलदेवगुरोर्वृहस्पतेस्तारा नाम पत्नी जहार ॥१०॥ बहु-



शश्च बृहस्पतिचोदितेन भगवता ब्रह्मणा चोद्यमानः सकलैश्च देवर्षिभि-  
र्याच्यमानोऽपि न मुमोच । ११ ।

तस्य चन्द्रस्य च बृहस्पतेर्द्वेषादुशना पार्ष्णिग्राहोऽभूत् । १२ ।  
अङ्गिरसश्च स काशादुपलब्धविद्यो भगवान्खद्रो बृहस्पतेः साहाय्य-  
मकरोत् । १३ ।

सम्पूर्ण विद्व के रचने वाले भगवान् श्री नारायण के नाभि-कमल से  
अवतीर्ण हुए श्री ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि प्रजापति हुये । ॥४॥ इन्ही अत्रि के पुत्र  
चन्द्रमा हुये । ॥६॥ पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माजी ने उनका सब औपधि, द्विजजन  
और नक्षत्रों के आधिपत्य पर आभिषेक किया । ॥७॥ तब चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ  
किया । ॥ अपने अत्यन्त उच्चाधिपत्य के अधिकार और प्रभाव से चन्द्रमा  
राजमद में भर गया । ॥८॥ इस प्रकार मदोन्मत्त हुये उस चन्द्रमा ने देवताओं के  
पूजनीय गुरु बृहस्पतिजी की पत्नी तारा का अपहरण किया । ॥१०॥ फिर उसने  
बृहस्पतिजी के प्रेरित किये हुये श्री ब्रह्माजी के बहुत बार अनुरोध करने पर तथा  
देवर्षियों द्वारा मागे जाने पर भी उसे मुक्त न किया । ॥११॥ बृहस्पतियों से द्वेष  
हूने के कारण शुक भी चन्द्रमा के सहायक हुए और अगिरा से विद्या प्राप्त करने  
के कारण भगवान् खद्र बृहस्पति के सहायक हो गये । ॥१२-१३॥

यतश्चोशना ततो जम्भकुम्भाद्याः समस्ता एव दैत्यदानवनिकाया  
महान्तमुद्यमं चक्रुः । १४ । बृहस्पतेरपि सकलदेवसैन्ययुतः सहायः शक्रो-  
ऽभवत् । १५ । एव च तयोरतीवोग्रसग्राममस्तारानिमित्तस्तारकामयो  
नामाभूत् । १६ । ततश्च समस्तशस्त्राण्यसुरेषु रुद्रपुरोगमा देवा देवेषु चाशे-  
पदानवा मुमुचुः । १७ । एव देवासुराहवसक्षोभक्षुब्धहृदयमशेषमेव जग-  
द्ब्रह्माण शरणं जगाम । १८ । ततश्च भगवानब्जयोनिरप्सुशनस शङ्क-  
रममुरान्देवाश्च निवार्य बृहस्पतये तारामदापयत् । १९ । ता चान्तःप्रस-  
वामवलोक्य बृहस्पतिरप्याह । २० । नय मम क्षेत्रे भवत्यान्यस्य सुतो  
धार्यस्तमुत्सृजैनमलमनमतिवाट्ठ्येनेति । २१ ।

शुक ने जिधर का पक्ष लिया, उधर से हा जम्भ और कुम्भादि सभी  
दैत्य-दानवों ने भी सहायता का प्रयत्न किया । ॥१४॥ इधर सब देवताओं की

सेना के सहित इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता की ॥१५॥ इस प्रकार तारा की प्राप्ति के लिए तारकामय घोर सग्राम उपस्थित हो गया ॥१६॥ तब रुद्रादि देवता दानवों पर घोर दानव देवताओं पर विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से प्रहार करने लगे ॥१७॥ इस प्रकार देवासुर-सग्राम से सत्रस्त हुए सम्पूर्ण विश्व ने भगवान् श्री ब्रह्माज्ञा की शरण ली ॥१८॥ तब उन कमलयोनि भगवान् ने शुक्र, शक्र आदि दानवों और दैत्यों को दान्त किया और युद्ध रुकवा कर बृहस्पतिजी को तारा दिला दी ॥१९॥ उसके गर्भाधान हुआ देखकर बृहस्पति ने उनसे कहा ॥२०॥ मेरे क्षेत्र में दूसरे के पुत्र को धारण करना अनुचित है, इस प्रकार की धृष्टता ठीक नहीं है, इसे निकाल कर फेंक दे ॥२१॥

सा च तेनैवमुक्तातिपतिव्रता भर्तृवचनानन्तर तमिपीकास्तम्बे गर्भमुत्सर्ज ॥२२॥ स चोत्सृष्टमात्र एवातितेजसा देवाना तेजास्याचिक्षेप ॥२३॥ बृहस्पतिमिन्दु च तस्य कुमारस्यातिचारुतया साभिलापी दृष्ट्वा देवास्समुत्पन्नसन्देहास्तारा पप्रच्छु ॥२४॥ सत्य कथयास्माकमिति सुभगे सोमस्याथ वा बृहस्पतेरयं पुन इति ॥२५॥ एव तैरुक्ता सा तारा ह्रिया किञ्चिन्नोवाच ॥२६॥ बहुशोऽप्यभिहिता यदासौ देवेभ्यो नाचक्षे ततस्स कुमारस्ता शप्तुमुद्यत प्राह ॥२७॥ दुष्टेऽम्ब कस्मान्मम तात नाख्यासि ॥२८॥ अद्यैव ते व्यलीकलज्जावत्यास्तथा शास्तिमहं करोमि ॥२९॥ यथा च नैवमद्याप्यतिमन्थरवचना भविष्यसीति ॥३०॥

बृहस्पतिजी का यह कथन सुनकर उसने उनकी आज्ञा के अनुसार उस गर्भ को सीकी की भाँड़ी में फेंक दिया ॥२२॥ उस फेंके हुए गर्भ ने अपने तेज से सब देवताओं का तेज फीका कर दिया ॥२३॥ तब उस बालक को अत्यन्त सुदूर और तेजस्वी देख कर बृहस्पति और चंद्रमा दोनों ही उसे ग्रहण करने के अभिलाषी हुए । यह देखकर देवताओं का सन्देह हुआ और उन्होंने तारा म पूछा कि हे सुभगे ! यह पुत्र बृहस्पति का है या चन्द्रमा का, यह बात हमें यथार्थ रूप से बता ? ॥२४-२५॥ उनके प्रश्न का उसने लज्जा के कारण कुछ उत्तर न दिया और बारम्बार पुछने पर भी उसने देवताओं को उत्तर न देकर मौन धारण कर लिया । तब वह बालक ही क्रोध पूर्वक शाप देने को उद्यत

होता हुआ कहने लगा कि अरी दुष्टा माता ! तू मेरे पिता का नाम क्यों नहीं बताती है ? तू व्यर्थ ही ऐसी सज्जावती क्यों बन रही है ? यदि नहीं बतायेगी तो मैं तुझे इस प्रकार अत्यन्त धीरे-धीरे बोलना मुला दूँगा ॥३६-३०॥

अथ भगवान् पितामहः तं कुमारं सन्निवार्य स्वयमपृच्छत्तां ताराम् ॥३१॥ कथय वत्से कस्यायमात्मजः सोमस्य वा बृहस्पतेर्वा इत्युक्ता लज्जमानाह सोमस्येति ॥३२॥ ततः प्रस्फुरदुच्छ्वसितामलकपोलकान्ति-भगवानुडुपतिः कुमारमालिङ्ग्य साधु साधु वत्स प्राज्ञोऽसीति ब्रुध इति तस्य च नाम चक्रे ॥३२॥ तदाख्यातमेवैतत् स च यथेतायामात्मजं पुरुरवसमुत्पादयागांस ॥३४॥ पुरुरवास्त्वतिदानशीलोऽतियज्वाति-तेजस्वी । य सत्यवादिनमतिरूपवन्तं मनस्विनं मित्रावरुणशापान्मानुषे लोके मया वस्तव्यमिति कृतमतिर्य्यंशी ददर्श ॥३५॥ दृष्टमात्रे च तस्मिन्न-पहाय मानमक्षेपमपास्य स्वर्गसुखाभिलाषं तन्मनस्वा भूत्वा तमेवोपतस्थे ॥३६॥ सोऽपि च तामतिशयितसकललोकस्त्रीकान्तिसौकुमार्यलावण्यगति-त्रिलासहासादिगुणामवलोक्य तदायत्तचित्तवृत्तिर्वभूव ॥३७॥ उभयमपि तन्मनस्कमनन्यदृष्टि परित्यक्तसमस्तान्यप्रयोजनमभूत् ॥३८॥

तब पितामह श्री ब्रह्माजी ने उस बालक को निराश्रय करके स्वयं ही तारा से पूछा कि हे वत्से ! तू क्या रस से बनादे कि यह बृहस्पति का पुत्र है या चन्द्रमा का ? इस प्रकार उसने लजाते हुए कह दिया कि 'चन्द्रमा का है' ॥३१-३२॥ यह सुनते ही चन्द्रमा ने उस बालक को अपने हृदय से लगा लिया और उससे कहा कि 'वाह, पुत्र ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान हो' यह कह कर उसका नाम बुध रख दिया । इस समय उनके स्वच्छ रूपों की कान्ति अत्यन्त तेज-मुक्त हो रही थी ॥३३॥ उनी बुध ने इला से पुरुरवा को उत्तम क्रिया था, जिनका वणन पहिन किया जा चुका है ॥३४॥ पुरुरवा अत्यन्त दानी, याज्ञिक और तेजस्वी हुआ । उर्वशी को मित्रावरुण का जो शाप था, उसका विचार करते हुए कि 'मुझे उस शाप के कारण मृत्युलोक में निवास करना होगा' राजा पुरुरवा पर उनकी दृष्टि पड़ी और वह अत्यन्त सत्यभाषी, रूपवन्त और मेधावी राजा पुरुरवा के पास, अपनी मान-मर्यादा और स्वर्ग-सुख की कामना को त्याग

कर तन्मयता पूर्वक आकर उपस्थित हुई ॥३५-३६॥ राजा पुरुरवा ने भी उसे सब स्त्रियो मे विशिष्ट लक्षण वाली, सुकुमार, कान्तिमयी सौंदर्य, चाल-ढाल, मुसकान आदि मे श्रेष्ठ देखा तो वह उसमे आसक्त हो गया ॥३७॥ इस प्रकार वे दोनों ही परस्पर तन्मय और अनन्य चित्त वाले होकर अन्य सभी कार्यों को छोड़ बैठे ॥३८॥

राजा तु प्रागल्भ्यात्तामाह ॥३९॥ सुभ्रुत्वामहमभिकामोऽस्मि प्रसीदानुरागमुद्वहेत्युक्ता लज्जावखण्डितमुर्वशी तं प्राह ॥४०॥ भवत्वेवं यदि मे समयपरिपालन भवान् करोतीत्याख्याते पुनरपि तामाह ॥४१॥ आख्याहि मे समयमिति ॥४२॥ अथ पृष्टा पुनरप्यब्रवीत् ॥४३॥ शयनसमीपे ममोरणकद्वयं पुत्रभूतम् नापनेयम् ॥४४॥ भवाश्च भया न नमो द्रष्टव्यः ॥४५॥ घृतमात्र च ममाहार इति ॥४६॥ एवमेवेति भूपतिरप्याह ॥४७॥

उस समय राजा ने सकोच-रहित भाव से कहा—हे श्रेष्ठ भ्रू वाली ! मैं तुम्हे चाहता हूँ, तुम मुझ पर प्रमत्त होकर अपना प्रेम प्रदान करो । राजा की बात सुन कर उर्वशी भी लज्जावश खण्डित स्वर मे कहने लगी ॥३९-४०॥ यदि आप मेरी प्रतिज्ञा का परिपालन करा सकें तो, मैं अवश्य ही ऐसा करने को प्रस्तुत हूँ । यह सुनकर राजा बोला कि—तुम अपनी उस प्रतिज्ञा को मेरे प्रति कहो ॥४१-४२॥ उसके इस प्रकार पूछने पर उर्वशी ने कहा—मेरे यह दो मेघ शिशु सदा मेरे पास रहेंगे । आप इन्हे मेरी शय्या से कभी न हटाये गे ? मैं आपको कभी भी नग्न न देख सकूंगी तथा घृष्ट ही मेरा भोजन होगा । इस पर राजा ने कहा कि 'यही होगा' ॥४३-४७॥

तया सह च चावनपतिरलकायां चैत्ररथादिवनेष्वमलपद्मखण्डेषु मानसादिसरस्वतिरमणीयेषु रममाणः पष्टिवर्षसहस्राण्प्रनुदिनप्रवर्द्धमानप्रमोदोऽनयत् ॥४८॥ उर्वशी च तदुपभोगात्प्रतिदिनप्रवर्द्धमानानुरागा अमरलोकवासोऽपि न स्पृहा चकार ॥४९॥ विना चोर्वश्या सुरलोकोऽप्सरसां सिद्धगन्धर्वाणा च नातिरमणीयोऽभवत् ॥५०॥ ततश्चोर्वशी-पुरुरवसोस्समयविद्विश्वावसुर्गन्धर्वसमवेतो निशि शयनाभ्याशादेव-मुरणकं जहार ॥५१॥ तस्याकाशे नीयमानस्योर्वशी शब्दमशृणोत् ॥५२॥

एवमुवाच च ममानाथाया पुन केनापह्नियते व शरणमुपयामीति । १५३। तदाकर्ण्य राजा मा नग्न देवी वीक्ष्यतीति न ययौ । १५४। अथान्यमप्यु-  
ग्राणकमादाय गन्धर्वा ययु । १५५। तस्याप्यपह्नियमाणस्याकर्ण्य शब्द-  
भाकाशे पुनरप्यनाथास्म्यहमभर्तृका कापुरुषाश्रयेत्यात्तराविणी  
वभूव । १५६।

फिर राजा पुरुरवा दिनो दिन वृद्धि को प्राप्त होते हुए मुख के साथ कभी  
अलकापुरी के चैत्ररथ आदि बनो में और कभी श्रेष्ठ कमलसहो वाले अत्यन्त  
रमणीय मानसादि सरोवरों में उसके साथ विहार करते रहे । इस प्रकार  
उन्होंने साठ हजार वर्ष व्यतीत कर दिए । ॥४८॥ तपभोग सुख और आसक्ति के  
अत्यन्त बढ जाने में उवशी भी अब स्वेयं म रहने की इच्छा से विमुख हो गई  
॥४९॥ तब स्वर्गलोक में अप्सरारों, सिद्धों और गन्धर्वों को उवशी के अभाव  
में उसनी रमणीयता प्रतीत नहीं होती थी । ॥५०॥ इसलिए उवशी और पुरुरवा  
के मध्य हुई प्रतिज्ञा को जानने वाले विद्वज्जनों ने एक रात्रि में गन्धर्वों के साथ  
पुरुरवा के क्षपनागार में जाकर उसके एक मेयका धपहरण किया और जब वह  
भाकाश मार्ग से लेजाया जा रहा था, तब उवशी ने उसका शब्द सुना और वह  
बोली कि मुझ अनाथा के पुत्र का अपहरण करके कौन लिए जा रहा है ? अब  
मैं जिसकी शरण में जाऊँ ? ॥५१-५२॥ परंतु उवशी की पुकार सुनकर भी  
राजा इस भय में नहीं उठा कि वह मुझे वस्त्रविहीन स्थिति में देख लेगी  
॥५४॥ इसी अवसर में गन्धर्वों ने दूसरे मेयका भी हरण कर लिया और वे  
उसे लेकर चल । य । ॥५५॥ उसका लजाय जाते का शब्द भी उवशी ने सुन  
लिया और वह चीखार कर उठी कि अरे, मैं अनाथा और स्वामी विहीन नारी  
एवं वापुरुष के वश में पड गई हूँ । इस प्रकार बहती हुई उवशी आत स्वर  
में रोने लगी ॥५६॥

राजाप्यमर्षवशादगन्धर्वाणामेतदिति सङ्गमादाय दुष्ट दुष्ट हतोऽ-  
सीति व्याहरन्नन्यथावत् । ७। तावच्च गन्धर्वोऽप्यतीवोज्ज्वला विद्यु-  
ज्जनिता । १८। तत्प्रभया चोर्वशी राजानमपगताम्बर दृष्ट्वापचृत्तसमया  
तत्क्षणादेवापमान्ता । १९। परित्यज्य तावप्युरणरी गन्धर्वास्मुरलोक-

मुपगताः । ६०। राजापि च तौ मेघावादायातिहृष्टमनाः स्वशयनमायातो  
 नोर्वशी ददर्श । ६१। तां चापश्यन् व्यपगताम्बर एवोन्मत्तरूपो बभ्राम  
 । ६२। कुक्षेत्रे चाम्भोजसरस्यन्याभिश्चतसृभिरप्सरोभिस्समवेतामुर्वशीं  
 ददर्श । ६३। ततश्चोन्मत्तरूपो जाये हे तिष्ठ मनसि घोरे तिष्ठ वचसि  
 कपटिके तिष्ठेत्येवमनेकप्रकारं सूक्तमवोचत् । ६४। आह चोर्वशी । ६५।  
 महाराजालमनेनाविवेकचेष्टितेन । ६६। अन्तर्वर्त्यहमव्दान्ते भवतात्रा-  
 गन्तव्य कुमारस्ते भविष्यति एका च निशामह त्वया सह वत्स्यामी-  
 त्युक्तः प्रहृष्टस्त्वपुर जगाम । ६७।

उस समय राजा ने सोचा कि अभी अंधेरा है और तब क्रोधपूर्वक तल-  
 वार हाथ में लेकर अंदरे दुष्ट तू नष्ट हो गया' कहते हुए शीघ्रतापूर्वक दौड़ पड़ा  
 ॥५७॥ तभी गन्धर्वों ने अत्यन्त प्रकाश वाली विद्युत् प्रकट कर दी और उसके  
 प्रकाश में उर्वशी ने राजा को वस्त्र-विहीन देख लिया । इस प्रकार प्रतिज्ञा भंग  
 हो जाने के कारण उर्वशी वहाँ से तत्काल चली गई ॥५८-५९॥ तब गन्धर्वों  
 ने भी उन मेघों को वही छोड़ दिया और स्वर्गलोक को चले गये ॥६०॥ जब  
 राजा उन मेघों को लेकर अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ अपने शयनगृह में आया तब  
 वहाँ उसने उर्वशी को न पाया ॥६१॥ उसको न देखकर वह उन्मत्त-सा हो गया  
 और उस वस्त्र-विहीन अवस्था में ही सर्वत्र विचरने लगा ॥६२॥ इस प्रकार  
 विचरण करते हुए उसने कुक्षेत्र के पद्म-सरोवर में उर्वशी को अन्य चार अप्स-  
 राओं के सहित देखा ॥६३॥ वह उसे देखते ही बोला—हे जाये ! हे निष्फुर  
 हृदय वाली ! हे कपटिके ! घोड़ी देर तो ठहर, किंचित् सम्भाषण तो कर  
 ॥६४॥ उसके ऐसे अनेक वचनों को सुनकर उर्वशी ने कहा—हे महाराज ! इस  
 प्रकार की अविवेक-युक्त चेष्टा न करो । मैं इस समय गर्भवती हूँ, इसलिए एक  
 वर्ष के पदचात् आप यही आर्य उस समय आपके एक पुत्र होगा और मैं भी एक  
 रात्रि आपके साथ व्यतीत करूँगी । उर्वशी की बात सुनकर पुरुरवा प्रसन्न हुआ  
 और वह अपने नगर में लौट आया ॥६५-६७॥

तासां चाप्सरसामुर्वशी कथयामास । ६८। अयं स पुरुषोत्कृष्टो  
 येनाहमेतावन्त कालमनुरागाकृष्टमानसा सहोपितेति । ६९। एवमुक्तास्ता-

श्राप्सरस ऊचुः ॥७०॥ साधु साध्वस्य रूपमप्यनेन सहास्माकमपि सर्व-  
कालमास्या भवेदिति ॥७१॥ शब्दे च पूर्णो स राजा तत्राजगाम ॥७२॥  
कुमार चायुषमस्मै चोर्वशी ददौ ॥७३॥ दत्त्वा चैका निष्ठा तेन राजा  
सहोपित्वा पञ्च पुत्रोत्पत्तये गर्भमवाप ॥७४॥ उवाचैनं राजानमस्मत्प्रीत्या  
महाराजाय सर्वं एव गन्धर्वा वरदास्सवृत्ता व्रियता च वर इति ॥७५॥  
आह च राजा ॥७६॥ विजितसकलारातिरविहतेन्द्रियसामर्थ्यो धन्धु-  
मानमितबलकोशोऽस्मि, नान्यदस्माकमुर्वशीसालोक्यात्प्राप्तव्यमस्ति  
तदहमनया सहोर्वश्या कालं नेतुमभिलषामीत्युक्ते गन्धर्वा राज्ञोऽग्नि-  
स्थाली ददुः ॥७७॥ ऊचुश्चैनमग्निमाम्नायानुसारी भूत्वा त्रिधा कृत्वोर्वशी-  
सलोकतामनोरघमुद्दिश्य सम्यग्यजेथा. ततोऽवश्यमभिलषितमवाप्स्य-  
सीत्युक्तस्तामग्निस्थालीमादाय जगाम ॥७८॥

इसके पश्चात् उर्वशी ने अपने साथ की अप्सराओं से कहा कि—यही  
वह पुरुष श्रेष्ठ महाराज है, जिनके साथ प्रेमात्मक चित्त से रहने हुये मैंने पृथिवी  
पर निवास किया था ॥६८-६९॥ यह सुनकर वे अप्सराएँ कहने लगी—बाह,  
बाह, कैसे सुन्दर हैं, इनका रूप परार्थ में ही चित्ताकर्षण है, इनके साथ तो  
हम भी कभी रह सकें ॥७०-७१॥ एक वर्ष की समाप्ति पर राजा पुरुरवा पुनः  
वहाँ पहुँचे ॥७२॥ तब उर्वशी ने उन्हें 'धायु' नामक एक शिशु प्रदान किया  
॥७३॥ फिर उसने उनके साथ एक रात्रि रह कर पाँच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए  
गर्भ धारण किया ॥७४॥ इसके पश्चात् बोली कि हमारी पारस्परिक प्रीति के  
कारण सभी गन्धर्व आप महाराज को वर देने की इच्छा करते हैं, इसलिए आप  
अपना इच्छित वर मागिए ॥७५॥ तब राजा ने कहा—मैंने अपने सभी वैरि-  
को पर विजय प्राप्त की है, मेरी इन्द्रियाँ भी सामर्थ्य से हीन नहीं हुई हैं, मेरे पास  
धन्धु-बाधव, अतल्य सेना और बौश की भी कमी नहीं है, इसलिए इस समय  
उर्वशी के सङ्ग में अतिरिक्त और कुछ भी मैं नहीं चाहता तथा इसी के साथ  
अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। राजा की बात सुन कर गन्धर्वों ने उन्हें  
एक अग्निस्थाली प्रदान करते हुए कहा—वैदिक विधि से इस अग्नि के गार्हपत्य,  
आहुवनीय और दक्षिणाग्नि रूप में तीन भाग करके उर्वशी मग के मनोरथ के

साय इसमे यजन करने पर तुम्हे अवश्य ही अपने अभीष्ट की प्राप्ति होगी ।  
गन्धर्वों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस अग्निस्थाली को ग्रहण करके राजा  
गुरुरवा वहाँ से चल दिया ॥७६-७८॥

अन्तरद्व्यामचिन्तयत् अहो मेऽस्तीव मूढता किमहमकरवम् ॥७९॥  
वह्निस्थाली मवेपानीता नोर्वशीति ॥८०॥ अथनामद्व्यामेवाग्निस्थाली  
तत्याज स्वपुर च जगाम ॥८१॥ व्यतीतेऽर्द्धरात्रे विनिद्रश्चाचिन्तयत्  
॥८२॥ ममोर्वशीसालोक्यप्राप्त्यर्थमग्निस्थाली गन्धर्वदंता सा च मयाद्व्या  
परित्यक्ता ॥८३॥ तदहं तत्र तदाहरणाय यास्यामीत्युत्थाय तत्राप्युपगतो  
नाग्निस्थालीमपश्यत् ॥८४॥ शमीगर्भ चाश्वत्थमग्निस्थालीस्थाने दृष्ट्वा-  
चिन्तयत् ॥८५॥ भयात्राग्निस्थाली निक्षिप्ता सा चाश्वत्थशमीगर्भोऽभूत्  
॥८६॥ तदेनमेवाहमग्निरूपमादाय स्वपुरमभिगम्यारणि कृत्वा तदुत्प-  
न्नान्नेरुपास्ति करिष्यामीति ॥८७॥

फिर वन में जाते हुए राजा ने सोचा—भरे, मैं भी कितना मूर्ख हूँ, जो  
इस अग्निस्थाली को ही लेकर चला आया और उर्वशी को साथ नहीं लाया  
॥७९-८०॥ यह सोच कर उसने उस अग्निस्थाली को वन में ही छोड़ दिया  
और अपने नगर को लौट आया ॥८१॥ अर्द्धरात्रि के समय जब राजा की निद्रा  
भग हुई, तब उसने पुन विचार किया—उर्वशी का सग प्राप्त होने के निमित्त  
ही उन गन्धर्वों ने मुझे वह अग्निस्थाली प्रदान की थी, परन्तु मैं उसे वन में ही  
छोड़ आया ॥८२-८३॥ इसलिये मुझे उसे लाने के लिये वहाँ जाना उचित है ।  
यह सोचकर वह तुरन्त उठकर उस वन में गया, परन्तु वह स्थाली उसे कहीं  
भी, दिखाई न पड़ी ॥८४॥ उस अग्निस्थाली के स्थान पर एक शमीगर्भ पीतल  
का वृक्ष उसने देखा और विचार करने लगा कि मैंने वह अग्निस्थाली इसी स्थान  
पर फेंकी थी, वही अग्नि स्थाली शमीगर्भ पीतल हो गई जान पड़ती है ॥८६॥  
इसलिए अब इस अग्नि रूप पीतल को ही अपने नगर में ले चलना चाहिए,  
जिससे इसकी शरणि बनाकर उससे उत्पन्न हुए अग्नि की उपासना की जा  
सके ॥८७॥



एवमेव स्वपुरमभिगम्यारणि चकार ॥८८॥ तत्प्रमाणं चाङ्गलैः  
कुर्वन् गायत्रीमपठत् ॥८९॥ पठतश्चाक्षरसंख्यान्येवाङ्गुलान्यरण्यभवत्  
॥९०॥ तत्राग्निं निर्मथ्याग्नित्रयमाम्नायानुसारी भूत्वा जुहाव ॥९१॥  
उवंशीसालोक्य फलमभिसहितवान् ॥९२॥ तेनैव चाग्निविधिना बहु-  
विधान् यज्ञानिष्ट्वा गन्धर्वलोकानवाप्योवंश्या सहाविगोगमवाप ॥९३॥  
एकोऽग्निरादावभवद् एकेन त्वन मन्वन्तरे त्रेधा प्रवर्तिताः ॥९४॥

यह सोचकर राजा उस पीपल वृक्ष को लेकर अपने नगर में आया और  
उसने उसकी धरणि बनायी ॥८८॥ फिर उन्होंने उस काष्ठ के एक-एक अंगुल के  
टुकड़े करके गायत्री-मन्त्र का पाठ किया ॥८९॥ गायत्री का पाठ करने से वे  
सब गायत्री मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतनी धरणियाँ हो गईं ॥९०॥ उनके  
मन्थन द्वारा तीनों प्रकार के अग्नियों को प्रकट कर उनसे वेद विधि से ब्राह्म-  
निया दी और उवंशी का सग प्राप्ति रूप फल का मनोरथ किया ॥९१-९२॥  
फिर उसी अग्नि से अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए राजा पुरुरवा  
ने गन्धर्व लोक में जाकर उवंशी को प्राप्त किया और कभी उसका उससे वियोग  
नहीं हुआ ॥९३॥ प्राचीन काल में एक ही अग्नि या और इस मन्वन्तर में उसी  
एक अग्नि से तीन प्रकार के अग्नि प्रवर्तित हुये ॥९४॥



## सातवाँ अध्याय

तस्याप्यायुधीर्मानमावसुविश्वावसुः श्रुतायुश्शतायुरयुतायुरिति-  
सज्ञा. पठ् पुत्रा अभवन् ॥१॥ तथामावसोर्भीमनामा पुत्रोऽभवत् ॥२॥  
भीमस्य काञ्चन काञ्चनात्सुहोत्र. तस्यापि जह्लुः ॥३॥ योजसी यज्ञघाट-  
मखिल गङ्गाम्भसा प्लावितमवरोक्य क्रोधसरक्तगोचनो भगवन्त यज्ञ-  
पुरुषमात्मनि परमेण समाधिना समारोप्याखिलामेव गङ्गामपिवत्  
॥४॥ अर्थेन देवर्षयः प्रसादयामासुः ॥५॥ दुहितृत्वे चास्य गङ्गामनयन् ॥६॥

जह्लोश्च सुमन्तुर्नाम पुनोऽभवत् ॥७॥ तस्याप्यजकस्ततो बला-  
काश्चस्तस्मात्कुशस्तस्यापि कुशाम्बकुशनाभाधूर्तरजसो वसुश्चेति चत्वारः  
पुत्रा बभूवुः ॥८॥ तेषां कुशाम्बः शक्रतुल्यो मे पुत्रो भवेदिति तपश्चकार  
॥९॥ त चोग्रतपसमवलोक्य मा भवत्वन्योऽस्मत्तुल्यवीर्य इत्यात्मनैवा-  
स्येन्द्रः पुत्रत्वमगच्छत् ॥१०॥ स गाधिर्नाम पुत्रः कीशिकोऽभवत् ॥११॥

श्री पराशरजी ने कहा—उस राजा पुरूरवा के छः पुत्र हुए जिनका  
नाम आयु, धीमान, अमावसु, धुतायु, शतायु और अयुतायु हुआ ॥१॥ अमावसु  
का पुत्र भीम हुआ । भीम का काचन, काचन का सुहोत्र और सुहोत्र का पुत्र  
जह्लू हुआ, जिसकी सम्पूर्ण यज्ञशाला गंगाजल से भ्राष्ट्रावित हो गई थी, तब  
उसने क्रोध से लाल नेत्र करके भगवान् यज्ञ पुष्प को समाधि के द्वारा अपने में  
स्थापित कर लिया और फिर सम्पूर्ण गङ्गाजल का पान कर लिया ॥२-४॥  
तब देवर्षियो ने इन्हे प्रसन्न करके गंगाजी को इनका पुत्रीत्व भाव प्राप्त कराया  
॥५-६॥ उसी राजा जह्लू का पुत्र सुमत हुआ ॥७॥ सुमत का भजक, भजक  
का बलाकाश्व, बलाकाश्व का कुश और कुश के चार पुत्र हुए कुशाम्ब, कुशनाभ,  
अधूर्तरजा और वसु ॥८॥ उनमें से कुशाम्ब ने इन्द्र के समान पुत्र-प्राप्ति की  
कामना से तप किया ॥९॥ उसकी उग्र तपस्या को देखकर बल में अपने समान  
होने की आशावा से इन्द्र स्वयं ही कुशाम्ब के यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ  
॥१०॥ उस पुत्र का नाम 'गाधि' हुआ जो बाद में 'कीशिक' कहलाया ॥११॥

गाधिश्च सत्यवती कन्यामजनयत् ॥१२॥ तां च भार्गव ऋचीको  
वद्रे ॥१३॥ गाधिरप्यतिरोपणायतिवृद्धाय ब्राह्मणाय दातुमनिच्छन्ने-  
कतश्चयामकर्णानामिन्दुवर्चसामनिलरहसामश्वाना सहस्रं कन्याशुल्क-  
मयाचत ॥१४॥ तेनाप्यृषिणा वरुणसकाशादुपलभ्याश्वतीर्थोत्पन्न  
तादृशमश्वसहस्रं दत्तम् ॥१५॥

ततस्तामृचीकः कन्यामुपयेमे ॥१६॥ ऋचीकश्च तस्याश्चरुमपत्यार्थं  
चकार ॥१७॥ तत्प्रसादितश्च तन्मात्रे क्षत्रवरपुत्रोत्पत्तये चरुमपर साध-  
यामास ॥१८॥ एष चरुर्भवत्या अयमपरश्चरुस्त्वन्मात्रा सम्यगुपयोज्य  
इत्युक्त्वा वनं जगाम ॥१९॥

गाधि के सत्यवती नाम की कन्या हुई जो भृगुपुत्र ऋचीक को व्याही गई ॥१२-१३॥ गाधि ने अत्यन्त क्रोधी तथा वृद्ध ब्राह्मण को कन्या न देने के विचार से ऋचीक से कन्या के बदले में चन्द्रमा जैसे तेजस्वी और पवन के समान वेग वाले एक हजार श्यामकर्ण अश्वों की माग की ॥१४॥ इस प्रकार ऋचीक ने अश्वतीर्थ से उत्पन्न वैसे ही गुण वाले एक हजार अश्व वरुण से लेकर गाधि को दे दिये ॥१५॥ फिर उस कन्या से ऋचीक ऋषि का विवाह हुआ ॥१६॥ कालान्तर में सन्तान की कामना करते हुए ऋचीक ने सत्यवती के लिये चरु सिद्ध किया ॥१७॥ और उस सत्यवती द्वारा प्रसन्न निये जाने पर महर्षि ऋचीक ने एक क्षत्रिय श्रेष्ठ पुत्र की उत्पत्ति के निमित्त एक चरु उसकी माता के लिये सिद्ध किया ॥१८॥ फिर 'यह चरु तुम्हारे लिये और यह दूसरा चरु तुम्हारी माता के लिये है' यह निर्देश करते हुये महर्षि वन को चले गये ॥१९॥

उपयोगकाले च तां माता सत्यवतीमाह ॥२०॥ पुत्रि सर्व एवात्म-  
पुत्रमतिगुणमभिलषति नात्मजायाभ्रातृगुणेष्वतीवाहतो भयतीति ॥२१॥  
अतोऽहंसि ममात्मीयं चरुं दातु मदीयं चरुमात्मनोपयोक्तुम् ॥२२॥ मत्पु-  
त्रेण हि सकलभूमण्डलपरिपालनं कार्यं कियद्वा ब्राह्मणस्य बलवीर्यस-  
म्पदेत्युक्ता सा स्वचरुं मात्रे दत्तवती ॥२३॥

चरुओं के उपयोग के समय सत्यवती की माता ने उससे कहा कि—हे घेटी ! अपने लिये सभी सब से अधिक गुण वाले पुत्र की इच्छा करते हैं, अपनी भार्या के भ्राता के अधिक गुणवान् होने में किसी की विशेष कामना नहीं होती ॥२०-२१॥ इसलिये तू अपना चरु मुझे देकर मेरा चरु तू ले ले, क्योंकि मेरे जो पुत्र होगा, उसे सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करनी पड़ेगी और तेरे पुत्र ब्राह्मण कुमार को बल वीर्य और सम्पत्ति का करना ही क्या है ? माता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सत्यवती ने अपना चरु उसे दे दिया ॥२२-२३॥

अथ वनादागत्य सत्यवतीमृषिरपश्यत् ॥२४॥ आह चैनमतिपापे  
किमिदमकार्यं भवत्या कृतम् अतिरीद्रं ते वपुर्लक्ष्यते ॥२५॥ नूनं त्वया  
त्वन्मातृसात्कृतश्चरुर्यमुक्तो न युक्तमेतत् ॥२६॥ मया हि तत्र चरो सक-  
लैश्वर्यवीर्यशौर्यबलसम्पदारोपिता त्वदीयचरावप्यखिलशान्तिज्ञानतिति-

क्षादिब्राह्मणगुणसम्पत् ॥२७॥ तच्च विपरीत कुर्वत्यास्तवातिरोद्रास्त्रघा-  
रणपालननिष्ठ क्षत्रियाचार पुत्रो भविष्यति तस्याश्रोपश महचित्रा-  
ह्मणाचार इत्याकर्ण्यैव सा तस्य पादौ जग्राह ॥२८॥ प्रणिपत्य चैनमाह  
॥२९॥ भगवन्मयैतदज्ञानादनुष्ठित प्रसाद मे कुरु मैवविध पुत्रो भवतु  
काममेवविध पीत्रो भवत्वित्युक्ते मुनिरप्याह ॥३०॥ एवमस्त्विति ॥३१॥

महर्षि ने वन से लौटकर जब अपनी पत्नी को देखा, तब उममे बोले —  
धरी दुर्मेति पापिनी ! तू यह क्या भ्रमार्थ कर बैठी है, जिसके कारण तेरा  
शरीर अत्यन्त भयङ्कर लगने लगा है ॥२४-२५॥ तूने निश्चय ही अपनी माता  
के लिये बने हुये चरु का उपयोग कर लिया है जो तेरे लिए उचित नहीं था  
॥२६॥ मैंने उसमे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के साथ पराक्रम, शौर्य, बल आदि को स्था-  
पित किया था और तेरे चरु मे शान्ति, ज्ञान, तितिक्षादि सभी ब्राह्मणोचित  
गुणों का आरोपण किया था ॥२७॥ परन्तु उन चरुओं के विपरीत उपयोग से  
तेरे अत्यन्त भयङ्कर दृष्टाओं का धारण करने वाला क्षत्रियोचित आचरण  
युक्त पुत्र उत्पन्न होगा और तेरी माता के ब्राह्मणोचित आचरण वाला शान्ति  
प्रिय पुत्र की उत्पत्ति होगी । यह सुनकर सत्यवती ने महर्षि के चरण पकड़  
लिये और प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा ॥२८-२९॥ हे भगवन् ! मुझमे  
अज्ञानवश ही ऐसा हो गया है, इसलिये प्रसन्न हूजिये । मेरा पुत्र इस प्रकार  
का न हो, चाहे पीत्र वैसा हो जाय इस पर ऋषि ने 'एवमस्तु' कहा ॥३० ३१॥

अनन्तर च सा जमदग्निमजीजनत् ॥३२॥ तन्माता च विश्वामित्र  
जनयामास ॥३३॥ सत्यवत्यपि कौशिकी नाम नद्यभवत् ॥३४॥

जमदग्निरिक्ष्वाकुवशोद्भवस्य रेणोस्तनया रेणुकामुपयेमे ॥३५॥  
तस्या चाश्रोपसन्नहन्तार परशुरामसज्ञ भगवतस्सकललोकगुरोर्नारायण-  
स्याश जमदग्निरजीजनत् ॥३६॥ विश्वामित्रपुनस्तु भार्गव एव शुनश्शेपो  
देवदेत्त ततश्च देवरातनामाभवत् ॥३७॥ ततश्चान्ये मधुच्छन्दोधनञ्जय-  
कृतदेवाप्रवक्छप्रहारीतवाख्या विश्वामित्रपुत्रा बभूवुः ॥३८॥ तेषां च  
वह्नि कौशिकगोत्राणि ऋष्यन्यन्तरेषु विवाहान्यभवन् ॥३९॥

फिर सत्यवती के उदर से जमदग्नि ने श्रीर दसवी माता से विश्वामित्र ने जन्म लिया । फिर सत्यवती वीक्षिणी नाम की नदी होकर प्रवाहित हो गई ॥३२-३४॥ इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए रेणुका से जमदग्नि का विवाह हुआ ॥३५॥ जमदग्नि ने उसमें सम्पूर्ण क्षत्रियों का विनाश करने वाले भगवान् परशुराम को उत्पन्न किया, जो लोक गुरु नारायण के अश भूत थे ॥३६॥ देवगण ने भृगुवशी धुनः दोष विद्वामित्रजी को पुत्र रूप में प्रदान किया, इसलिये बाद में उत्तमा नाम देवराज पड़ गया । उसके पश्चात् भी मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, प्रष्टक, वच्छप, पथा हारीतक आदि अन्य अनेक पुत्र विश्वामित्र जी के हुए । ॥३७-३८॥ उन पुत्रों से अन्यान्य ऋषियशों में विवाहे हो जाने योग्य अनेक वीक्षिणी गोत्रीय उत्पन्न हुए ॥३९॥



## आठवाँ अध्याय

पुत्ररवसो ज्येष्ठ पुत्रो यस्त्वायुर्नामा स राहोर्दुहितरमुच्यते ॥१॥  
तस्या च पञ्च पुत्रानुत्पादयामास ॥२॥ नहुषक्षानवृद्धरम्भजिह्वान्मरुत-  
नेना पञ्चम पुत्रोऽभूत् ॥३॥ क्षत्रवृद्धात्सुहोयः पुत्रोऽभवत् ॥४॥ कान्व-  
रागृत्ममदाग्रयन्स्य पुत्रा बभूवुः ॥५॥ गृत्ममदस्य शौनकरश्चानुवन्द्य-  
तंगिताभूत् ॥६॥

नामस्य नामेय काशिराज. तस्माद्वाष्ट्रः राष्ट्रस्य दीर्घमनाः  
पुत्रोऽभवत् ॥७॥ धन्यगारिस्तु दीर्घनपसः पुत्रोऽभवत् ॥८॥ न हि मन्दि-  
तायं रण्णगान्गम्भूतिप्रोपज्ञानविद् भगवता नारायणेन अनेन-  
गम्भूती तन्मी करो दत्त ॥९॥ काशिराजगोत्रेज्वनीयं नन्दनं मन्दना-  
पुत्रे गन्धर्वसि यज्ञभागभुम्भविष्यतीति ॥१०॥

रजि और अग्नेना नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२-३॥ क्षत्रवृद्ध का पुन सुहोत्र हुआ और सुहोत्र के तीन पुत्र हुए, जिनके नाम काश्य, काश और गृत्समद थे । गृत्समद का पुत्र शोनक चारों वरुणों का प्रवर्तक हुआ ॥४-६॥ काश्य का पुत्र काशी नरेश काशेय हुआ । उसका पुन राष्ट्र और राष्ट्र का दीर्घतया तथा दीर्घतया का पुत्र धन्वन्तरि हुआ ॥७-८॥ यह धन्वन्तरि जरादि विकारों से रहित देह और इन्द्रिय वाला तथा सभी जन्मों में सर्व सास्त्र ज्ञाता हुआ था । भगवान् नारायण ने उसे पूर्व जन्म में यह वर प्रदान किया था कि तुम काशिराज के वश में उत्पन्न होकर आयुर्वेद के आठ भाग करोगे और यज्ञ-भाग के भोक्ता बनोगे ॥९-१०॥

तस्य च धन्वन्तरेः पुत्रः केतुमान् केतुमतो भीमरथस्तस्यापि दिवोदासस्तस्यापि प्रतर्दनः ॥११॥ स च मद्रश्रेष्ठ्यवशविनाशनादशेषशत्रु-वोऽग्नेन जिता इति शत्रुजिदभवत् ॥१२॥ तेन च प्रीतिमतात्मपुत्रो वत्स वत्सेत्यभिहितो वत्सोऽभवत् ॥१३॥ सत्यपरतया ऋतुध्वजसशामवाप ॥१४॥ ततश्च कुवलयनामानमश्वं लेभे ततः कुवलयाश्व इत्यस्या पृथिव्या प्रथितः ॥१५॥ तस्य च वत्सस्य पुत्रोऽलर्कनामाभवद् यस्यायमद्यापि श्लोको गीयते ॥१६॥

धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् हुआ । केतुमान् का भीमरथ और भीमर का दिवोदास हुआ । दिवोदास के पुत्र का नाम प्रतर्दन रखा गया ॥११॥ प्रतर्दन ने मद्रश्रेष्ठ्य वश का विध्वंस करके सब वैरियों को जीत लिया ॥ इनलिए वह शत्रुजित् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१२॥ अपने इस पुत्र को दिवोदास स्नेह वश 'वत्स ! वत्स' कह कर पुकारा था, इसलिये यह वत्स भी कहलाया ॥१३॥ अत्यन्त सत्य परायण होने कारण — इसे ऋतुध्वज भी कहने लगे ॥१४॥ फिर इसे कुवलय नामक अपूर्व अश्व की प्राप्ति हुई, इसलिये ॥ कुवलाश्व के नाम से विख्यात हुआ ॥१५॥ इस वत्स नामक राजा का पुत्र अलर्क हुआ, जिसके विषय में यह श्लोक अब तक कीतन किया जाता है ॥१६॥

पश्चिर्वरुणसहस्राणि पश्चिर्वरुणानि च । अलर्कदिपरे नान्य-  
बुभुजे मेदिनी युवा ॥७॥

तस्याप्यलकंस्य सन्नतिनामाभवदात्मज ॥१८॥ सन्नते सुनीय-  
स्तस्यापि सुकेतुस्तस्माच्च धर्मकेतुर्यज्ञे ॥१९॥ ततश्च सत्यकेतुस्तस्माद्विभु-  
स्तत्तनयस्सुविभुस्ततश्च सुकुमारस्तस्यापि धृष्टकेतुस्ततश्च वीतिहोत्र-  
स्तस्माद्भागो भार्गस्य भार्गभूमिस्ततश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिरित्येते काश्यभूभृत  
कथिता ॥२०॥ रजेस्तु सन्तति श्रूयताम् ॥२१॥

पूर्वकाल में अलक के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति ने छियासठ  
हजार वर्ष तक युष्ठावस्था में स्थित रह कर पृथिवी को नहीं भोगा ॥१७॥  
अलक का पुत्र सन्तति हुआ । सन्ति वा सुनीय और सुनीय का सुकेतु हुआ ।  
सुकेतु का धर्मकेतु धर्मकेतु का सत्यकेतु और सत्यकेतु का पुत्र विभु हुआ । विभु से  
सुविभू की उत्पत्ति हुई । सुविभु से सुकुमार और सुकुमार से धृष्टकेतु हुआ । धृष्ट-  
केतु का पुत्र वीतिहोत्र, वीतिहोत्र का भार्ग और भार्ग का पुत्र भार्गभूमि हुआ,  
जितने बार वरुणों की प्रवृत्ति किया । इस प्रकार यह काश्यपशीय राजा भी का  
वृत्तान्त कहा गया, अब रत्नि की सन्तान का वर्णन श्रवण करो ॥१८ २१॥



## नवाँ अध्याय

रजेस्तु पञ्च पुत्रशतान्यतुलवलपराक्रमसाराण्यासन् ॥१॥  
देवासुरसग्रामारम्भे च परस्पर वधेऽसौ देवाश्चासुराश्च ब्रह्मरामुपेत्य  
पप्रच्छु ॥२॥ भगवन्स्माकमत्र विरोधे कतर पक्षो जेता भविष्यतीति  
॥३॥ अथाह भगवान् ॥४॥ येषामयं रजिरात्तायुधो योत्स्यति तत्पक्षो  
जेतेति ॥५॥

अथ दैत्यैरुपेत्य रजिरात्मसाहाय्यदानायाम्प्रथित प्राह ॥६॥  
योत्स्येऽहं भगतामयं यद्यहममरजयाद्भवतामिन्द्रो भयिष्यामीत्यावर्ण्य-  
तत्तोरभिहितम् ॥७॥ न वयमन्यथा वदिष्यामोऽन्यथा वरिष्यामोऽस्मा-  
त्तमिन्द्र प्रह्लादस्तदर्थमेवायमुद्यम इत्युक्त्वा गतेष्वसुरेषु देवैरप्य-  
साववनिपतिरेवमेवोक्तस्तेनापि च तथैवोक्ते देवैरिन्द्रस्त्व भविष्यतीति  
समन्वीप्सितम् ॥८॥

श्री पराशर जी ने कहा—रजि के अत्यन्त बली और पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ एक बार देवागुर-मन्त्राम का आरम्भ होने पर परस्पर में मारने की इच्छा करते हुए दैवताओं और दैत्यों ने ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे प्रश्न किया—हे भगवन् ! हमारे पारस्परिक बलह में किस पक्ष की विजय होगी ? ॥१२-३॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि राजा रजि शस्त्र धारण पूर्वक जिसके पक्ष में युद्ध करेगा वही पक्ष जीतेगा ॥४-५॥

यह सुन कर दैत्यगण ने राजा रजि के पास जाकर उनसे सहायता माँगी, इस पर उन्होंने कहा कि यदि देवताओं पर विजय प्राप्त करके मैं दैत्यों का इन्द्र हो सकता हूँ तो अवश्य ही आपके पक्ष में युद्ध करने को तैयार हूँ । ॥६-७॥ यह सुन कर दैत्य गण ने उनसे कहा—हे राजन् ! हम जो वह देते हैं, उससे विपरीत आचरण कभी नहीं करते । हमारे इन्द्र ब्रह्माद हैं और उन्हीं के लिये हम इस संग्राम में तत्पर हुए हैं । इतना कह कर दैत्य गण वहाँ से चले गये । तब देवताओं ने वहाँ आकर उनसे वैसे ही प्रार्थना की, जिसे सुनकर उन्होंने जो कुछ दैत्यों से कहा था, वही सब देवताओं से कह दिया । तब देवताओं ने उनकी बात स्वीकार करते हुए कहा—अच्छी बात है, आप ही हमारे इन्द्र होंगे ॥८॥

रजिनापि देवसैन्यसहायेनानेकैर्महास्त्रैस्तदशेषमहासुरबलं निपूदितम् । ६। अथ जितारिपक्षश्च देवेन्द्रो रजिचरणयुगलमात्मनः शिरसा निपीड्याह । १०। भयत्राणादन्नदानाद्भुवानस्मत्पिताशेषलोका-नामुत्तमोत्तमो भवान् यस्याहं पुत्रस्त्रिलोकेन्द्रः । ११। स चापि राजा प्रहस्याह । १२। एवमस्त्वेवमस्त्वनतिक्रमणीया हि वैरिपक्षादप्यनेक-विधचाटुवाक्यगर्भा प्रणतिरित्युक्त्वा स्वपुरं जगाम । १३।

शतक्रतुर्गपीन्द्रत्व चकार । १४। स्वयति तु रजौ नारदपिचोदिता रजिपुत्राश्शतक्रतुमात्मपितृपुत्र समाचाराद्राज्यं याचितवन्तः । १५। अग्रदानेन च विजित्येन्द्रमतिबलिनः स्वयमिन्द्रत्व चक्रुः । १६।

इस प्रकार राजा रजि ने देवताओं की सहायता की और युद्ध भूमि में उपस्थित होकर अपने महान् अस्त्रों से दैत्यों की सम्पूर्ण सेना का सहार कर



डाला ॥६॥ जब क्षत्रु-पक्ष पर विजय प्राप्त हो गई, तब देवराज इन्द्र ने महाराज रजि के दोनो चरणों को अपने शिर पर धारण करके कहा ॥१०॥ हे राजन् ! भय से बचाने और अज्ञान करने के कारण आप हमारे पिता के समान हैं क्योंकि आप तीनों लोकों में सर्वोत्कृष्ट हैं, इसलिए मैं तीनों लोकों का इन्द्र आपका पुत्र ही हूँ ॥११॥ इस पर राजा ने हँसते हुए कहा—ऐसा ही हो । क्योंकि शत्रु-पक्ष का भी अनेक प्रकार की चातुकारिता पूर्ण प्रार्थनाओं को मान लेना ही उचित समझा जाता है । यह कह कर राजा रजि अपने नगर को चले गये ॥१२-१३॥ इस प्रकार रातक्रतु इन्द्र ही इन्द्र पद पर बना रहा । फिर जब राजा रजि की मृत्यु हो गई, तब देवर्षि नारद जी की प्रेरणा से उसके पुत्रों ने अपने पिता के पुनर्भाव को प्राप्त हुए इन्द्र से स्वर्ग के राज्य की माँग की और जब इन्द्र ने उन्हें राज्य न दिया, तब उन रजि पुत्रों ने इन्द्र पर आक्रमण करके उसे जीत लिया और स्वयं ही इन्द्र पद पर अभिषिक्त होकर स्वर्ग का राज्य भोगने लगे ॥१४-१६॥

ततश्च बहुतिथे वाले ह्यतीते बृहस्पतिमेवान्ते दृष्ट्वा अपहृतत्रं-लो वयस्यभाग शनक्रतुरुवाच । १७। बदरीकनमानमप्यहंसि ममाप्यायनाय पुरोडासासण्ड दातुमित्युक्तो बृहस्पतिरवाच । १८। यद्येव त्वयाह पूर्वमेव चोदितस्स्या तन्मया त्यदर्थ किमवर्त्तव्यमित्यल्पेरेवाहोभिस्त्वा निज पद प्रापयिष्यामीत्यभिधाय तेषामनुदिनमाभिचारिक बुद्धिमोहाय शक्रस्य तेजोऽभिवृद्धये जुहाव । १९। ते चापि तेन बुद्धिमोहेनाभिभूयमाना ब्रह्माद्विपो धर्मत्यागिनी वेदवादपराङ्मुखा बभूवुः । २०। ततस्तानपेत-धर्माचारानिन्द्रो जघान । २१। पुरोहिताप्यायिततेजाश्च शक्रो दिवमा-श्रमत् । २२।

एतदिन्द्रस्य स्वपदच्यवनादारोहण श्रुत्वा पुरुष स्वपदभ्रंश दोरात्म्यं च नाप्नोति । २३।

फिर जब बहुत गाल बगतीत हो गया, तब एक दिन अपने पुत्र बृहस्पति जी की एकाग्र में बैठ हुए देव रात्रि-चोरीय के यज्ञ-भा से वगित हुए

इन्द्र ने उनके प्रति कहा—क्या मेरी तृप्ति के लिये मुझे आप बदरीफल के बराबर भी पुरोडाश का अंश दे सकते हैं ? यह सुन कर वृहस्पतिजी बोले ॥१७-१८॥ यदि तुम यह चाहते थे तो तुमने मुझे पहिले ही क्यों नहीं बताया ? तुम्हारे लिये मुझे अकर्त्तव्य क्या है ? अब मैं कुछ ही समय में तुम्हें तुम्हारे पद पर बिठा दूँगा । यह कह कर वृहस्पतिजी ने रजि के पुत्रों की बुद्धि को भ्रमित करने के लिये अभिचार कर्म और इन्द्र के तेज को बढाने के लिये भजन करना आरम्भ किया ॥१९॥ बुद्धि को मोहित कर देने वाले उस अभिचार कर्म के प्रभाव वश रजि-पुत्रों ने याज्ञाणों से द्वेष, धर्म का परित्याग और वैदिक कर्मों से विमुखता आरम्भ की ॥२०॥ इसके पश्चात् धर्माचरण से हीन हुए उन रजि पुत्रों का इन्द्र ने वध कर दिया ॥२१॥ देव पुरोहित वृहस्पति जी के द्वारा उसकी तेजोबुद्धि की जाने पर ही इन्द्र इस प्रचार स्वर्ग पर अधिकार करने में समर्थ हुआ ॥२२॥ अपने इन्द्र पर से पतित हुए इन्द्र के उस पुनः आरूढ होने वाले इस प्रसंग को जो पुरुष श्रवण करता है, वह अपने पद से कभी नहीं गिरता और न उसमें कभी दीरात्म्य का ही प्रवेश होता है ॥२३॥

रम्भस्त्वनपत्योऽभवत् ॥२४॥ क्षत्रवृद्धसुतः प्रतिक्रान्त्रोऽभवत् ॥२५॥ तत्पुत्रः सञ्जयस्तस्यापि जयस्तस्यापि विजयस्तस्माच्च जज्ञे कृतः ॥२६॥ तस्य व हर्षधनो हर्षधनसुतस्सहदेवस्तस्माददीनस्तस्य जयत्सेनस्ततश्च सस्कृतिस्तत्पुत्रः क्षनधर्मा इत्येते क्षत्रवृद्धस्य वंश्याः ॥२७॥ ततो नहुषवश प्रवक्ष्यामि ॥२८॥

आयु-पुत्र रम्भ के कोई सन्तान नहीं थी ॥२४॥ क्षत्रवृद्ध का जो पुत्र हुआ, उसका नाम प्रतिक्रान्त्र था । प्रतिक्रान्त्र का पुत्र सञ्जय, सञ्जय का जय, जय का विजय और विजय का पुत्र कृत हुआ । कृत का हर्षधन, हर्षधन का सहदेव, सहदेव का अदीन और उसका पुत्र जयत्सेन हुआ । जयत्सेन के पुत्र का नाम सम्भृति और सम्भृति का पुत्र क्षनधर्मा हुआ । ये सभी क्षत्रवृद्ध के वंशज हुए । अब मैं नहुषवश के विषय में कहूँगा ॥२५-२८॥



## दसवाँ अध्याय

यतिययातिसंयात्यायातिवियातिकृतिसंज्ञा नहुपस्य पट् पुत्रा महावलपराक्रमा वभूवुः । १। यतिस्तु राज्यं नच्छत । २। ययातिस्तु भूभृदभवत् । ३। उशनसश्च दुहितरं देवयानी वार्षपर्वणीं च शर्मिष्ठा मुपयेमे । ४। अत्रानुवंशश्लोको भवति । ५।

यदु च दुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।

द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । ६।

श्री पराशर जी ने कहा—नहुप के छः हुए, उन महान् बल विक्रम-शालियों का नाम यति, ययाति, सयाति, आयाति, वियाति और कृति था ॥१॥ यति को राज्यपद की कामना नहीं थी, इसलिये ययाति ही राज्यपद कर अभिषिक्त हुआ ॥२-३॥ ययाति शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा का पाणिग्रहण किया ॥४॥ उनका वंश-विषयक यह श्लोक प्रचलित है—देवयानी के उदर से यदु और दुर्वसु तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु, और पूरु उत्पन्न हुए ॥५-६॥

काव्यशापाच्चाकालेनैव ययातिर्जरामवाप । ७। प्रसन्नशुक्रवचनाच्च स्वजरा सङ्क्षामयितुं ज्येष्ठ पुत्र यदुमुवाच । ८। वत्स त्वन्मातामहशापादियमकालेनैव जरा ममोपस्थिता तामहं तस्यैवानुग्रहाद्भवत्सञ्चारयामि । ९। एकं वर्षसहस्रमतृप्तोऽस्मि विषयेषु त्वद्वयसा विषयानहं भोक्तुमिच्छामि । १०। नात्र भवता प्रत्याख्यानं कर्तव्यमित्युक्तं यदुर्नच्छतां जरामादातुम् । ११। त च पिता शशाप त्वत्प्रसूतिं राज्याहं भविष्यतीति । १२।

शुक्राचार्य जी के शाप के कारण ययाति को असमय में ही वृद्धापा आगया ॥७॥ कालान्तर में जब शुक्राचार्य जी प्रसन्न हो गये तब उनके कहने से ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से उस वृद्धावस्था को दूर करने के लिये कहा ॥८॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारे नामाजी के शाप से असमय में ही वृद्ध हो गया हूँ, अब उनकी ही कृपा मुझे प्राप्त हुई है, जिसके कारण वह वृद्धावस्था मैं अब तुम्हें देना चाहता हूँ ॥९॥ विषयों के भोग में

धभी मेरी कृति नहीं हो पाई है, इसलिए मैं तुम्हारी युवावस्था का उद्योग एक क्षण तक करना चाहता हूँ ॥१०॥ तुम्हें इस विषय में कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं है । धनो पिता की ऐसी आज्ञा सुन कर भी मनु ने धनो पिता की कृपावस्था बहुत करने की इच्छा नहीं की ॥११॥ यह देख कर पिता ने उसे ज्ञान दिया कि तेरी मन्त्रि राज्याधिकार से वंचित होगी ॥१२॥

अनन्तर च तुरन्तुं द्रुह्यमानु च पृथिवीपतिर्जराप्रहृणायं  
स्वयोरनप्रदानाय चाम्यथंयामास ॥१३॥ तैरप्येवंकेन प्रत्याग्यातस्ताञ्छ-  
नाय ॥१४॥ अथ क्षमिद्वाननयमशेषानीयाम पूरं तथंवाह ॥१५॥ स  
चातिप्रशममति मयदुमान पितरं प्रणम्य महाप्रमादोज्यगम्मातमि-  
त्युदारमभिधाय जग जग्राह ॥१६॥ स्वर्गीय च यौरन स्वपिो ददौ ॥१७॥

गोर्धनं पौरव यौरनमागाद्य पर्माविरोधेन यथासाम यथाकाशो-  
पगन्न मयोंगाह मिश्राध्वजार ॥१८॥ सम्यक् च प्रजापावनमनरोन्  
॥१९॥ विशाखा देव्यान्ता च महोद्योग भुक्त्वा तामानामन्त्र  
प्राप्त्यगामाग्यदुश्चिन्त उन्नतगो यभूय ॥२०॥ अनुदिता गोपभोगत.  
तामानतिरम्यामने ॥२१॥ तास्तैवमगायत ॥२२॥

अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करते हुए अपनी कामनाओं को समाप्त करने की बात सोचते सोचते अनमने से रहने लगे ॥२०॥ निरन्तर अपने इच्छित विषयों के भोगते रहने से उन कामनाओं में ही उनकी प्रीति बढ़ती गई तब उन्होंने इस प्रकार कहा ॥२१-२२॥

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।  
हविषा वृष्णावर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते ॥२३॥  
यत्पृथिव्या ग्रीहियव हिरण्य पशव स्त्रिय ।  
एकस्यापि न पर्याप्त तस्मात्तृष्णा परित्यजेत् ॥२४॥  
यदा न कुरुते भाव सर्वभूतेषु पापकम् ।  
समदृष्टेस्तदा पु स सर्वास्सुखमया दिश ॥२५॥  
या दूस्त्यजा दुमतिभिर्या न जीर्यति जीर्यत ।  
ता तृष्णा सन्त्यजेत्प्राज्ञस्सुमेनेवाभिपूर्यते ॥२६॥  
जीर्यन्ति जीर्यत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत ।  
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यत ॥२७॥  
पूर्णं वर्षसहस्र मे विषयासक्तचेतस ।  
तथाप्यनुदिन तृष्णा मम तेषूपजायते ॥२८॥  
तस्मादेतामह त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।  
निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यामि मृगैस्सह ॥२९॥

भोगों के भोगते रहने से उनकी तृष्णा व भी शान्त नहीं होती, किन्तु आज्याहुति से प्रवृद्ध होने का अग्नि के समान निरन्तर बढ़ती जाती है ॥२३॥ भूमण्डल पर जिनने भी धा य, जी, स्वर्ण पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्य के लिये भी तृप्त नहीं कर सकते, इसलिये इस तृष्णा का सर्वथा त्याग करना चाहिए ॥२४॥ जब कोई पुरुष तृप्ति भी प्राणी के प्रति पापमयी दृष्टि नहीं रखता तब उस समदर्शी के लिए दिशायें आनन्ददायिनी हो जाती हैं ॥२५॥ जो तृष्णा छोटी बुद्धि वालों के लिये अत्यन्त बठिनाई पूर्वक रोगी जा सकती है और जो वृद्धावस्था में भी तिथिनता को प्राप्त नहीं होती, उसी

तृष्णा को त्याग कर बुद्धिमान पुरुष पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है ॥२६॥  
जीर्णविस्था के प्राप्त होने पर बाल और दाँत जो जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु  
उनके जीर्ण होने पर भी घन और जीवन की भाँसा जीर्ण नहीं हो पाती  
॥२७॥ इन विषयों में आसक्त रहते हुए मेरे एक हजार वर्ष व्यतीत होगये,  
फिर भी उनके प्रति नित्य ही इच्छा रहती है। इसलिये, अब मैं इसको  
त्याग कर अपने चित्त को ब्रह्म में लगाऊँगा और निर्वन्द तथा निर्मम होकर  
मृगों के साथ विचरण करूँगा ॥२८-२९॥

पूरोऽम्सकाशादादाय जरां दत्त्वा च यौवनम् ।  
राज्येऽभिपिच्य पूरुं च प्रययौ तपसे वनम् ॥३०॥  
दिशि दक्षिणपूर्वस्या तुर्वसुं च समादिशत् ।  
प्रतीच्यां च तथा द्रुह्य दक्षिणायां ततो यदुम् ॥३१॥  
उदीच्यां च तथैवानुं कृत्वा मण्डलिनो नृपान् ।  
सर्वपृथ्वीपतिं पूरुं सोऽभिपिच्य वनं ययौ ॥३२॥

श्री पराशरजी ने कहा—इसके अनन्तर राजा ययाति ने पूरु से अपनी  
वृद्धावस्था वापिस लेकर उसकी युवावस्था उसे लौटा दी और उसका राज्या-  
भिषेक कर स्वयं वन को चले गये ॥३०॥ उन्होंने दक्षिण-पूर्व में तुर्वसु,  
पश्चिम में द्रुह्य, दक्षिण में यदु और उत्तर में अनु को माण्डलिक राज्य  
दिया और पूरु को ममक्ष पृथिवी के राज्यवाद पर अभिषिक्त कर स्वयं वन के  
निर्गमन दिये ॥३१-३२॥



## ग्यारहवः अध्यायः

अतः पश्य ययातोः प्रथमपुत्रस्य यशोर्वशमहं वययामि ॥१॥  
ययातोपनोत निवामो मनुष्यमिदं गन्धर्व्यक्षराक्षसगुह्यरिपुङ्गवाधरक्ष-  
मविह्वलदं यदानासादिश्वश्वस्यश्विमाद्देवपिभिर्मुमुक्षुभिर्धर्माभंगाममो-

क्षार्थिभिश्च तत्तत्फललाभाय सदाभिष्टुतोऽपरिच्छेद्यमाहात्म्यांशेन  
भगवाननादिनिधनो विष्णुरवततार ॥२॥ अत्र श्लोक ॥३॥ यदोर्वशं नरः  
श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म  
निराकृति ॥४॥

सहस्रजित्कोष्ठनलनहुपसंज्ञाश्रित्वारो यदुपुत्रा बभूवुः ॥५॥  
सहस्रजित्पुत्रशतजित् ॥६॥ तस्य हैहयहेहयवेणुहयास्त्रयः पुत्रा बभूवुः  
॥७॥ हैहयपुत्रो धर्मस्तस्यापि धर्मनेत्रस्ततः कुन्तिः कुन्तेः सहजित् ॥८॥  
तत्तनयो महिष्मान् योऽसौ माहिष्मती पुरी निवासयामास ॥९॥

श्री पराशर जी ने कहा—अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश  
तुमसे कहता हूँ ॥१॥ जिस वंश में मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक,  
किपुत्र्य, अप्सर, उरग, विहग, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र, वसु, मरिचीद्वय,  
मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षुजन और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के अभिलाषीजनो द्वारा  
राधा स्तुत होने वाले सकल विश्व के आश्रय, आदि अन्त से रहित भगवान्  
विष्णु ने अवतार धारण किया था ॥२॥ इस विषय में यह श्लोक कहा  
जाता है ॥३॥ जिस वंश में श्रीकृष्ण नामक निराकार परब्रह्म अवतीर्ण हुये  
थे, उस यदुवंश की सुनने से सभी पापी से छुटकारा मिलता है ॥४॥ यदु के  
चार पुत्र हुए, सहस्रजित, कोष्ठ, नल और नहुप उनके नाम थे । सहस्रजित  
का पुत्र शतजित् और शतजित् के हैहय, हेहय और वेणुहय नामक तीन पुत्र  
हुए ॥५-७॥ हैहय का पुत्र धर्म हुआ, धर्म का धर्मनेत्र, धर्मनेत्र का कुन्ति,  
कुन्ति का सहजित् और सहजित् का पुत्र महिष्मा हुआ, जिसने माहिष्मतीपुरी  
को दसाया था ॥८-९॥

तस्माद्भद्रश्रेष्ठस्ततो दुर्दमस्तस्माद्धनको धनकस्य कृतवीर्यकृता-  
ग्निकृतधर्मकृतोजसश्रित्वार. पुत्रा बभूवुः ॥१०॥ कृतवीर्यादर्जुनस्सप्त-  
द्वीपाधिपतिर्बाहुसहस्रो जज्ञे ॥११॥ योऽसौ भगवदशमत्रिकुलप्रभूत दत्ता-  
त्रेयाख्यमाराध्य बाहुसहस्रमधर्मसेवानिवारण स्वधर्मसेवित्वं रणे  
पृथिवीजयं धर्मतश्चानुपालनभरातिभ्योऽपराजयमसिलजगत्प्ररयात-  
पुरुषाच्च मृत्युमित्येवान्धरानभिलपितवांस्तेभे च ॥१२॥ तेनेयमशेषद्वीप-

वती पृथिवी सम्यक्परिपालिता ॥१३॥ दशयज्ञसहस्राण्यसावयजत् ॥१४॥  
तस्य च श्लोकोऽद्यापि गीयते ॥१५॥

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।

यज्ञैर्दानैस्तपोमिवा प्रश्रयेण श्रुतेन च ॥१६॥

अनष्टव्यता च तस्य राज्येऽभवत् ॥१७॥ एव च पञ्चाशीतिवर्ष-  
सहस्राण्यव्याहृतारोग्यश्रीवलपराक्रमो राज्यमकरोत् ॥१८॥

महिष्मात् का पुत्र भद्रश्रेय, भद्रश्रेय का दुर्दम, दुर्दम का धनक  
और धनक के कृतवीर्य, कृतवीर्य, कुनधर्म और कुतोजा नाम चार पुत्र उत्पन्न  
हुए ॥१०॥ कृतवीर्य का पुत्र सातो द्वीपों का अधिपति सहस्रबाहु अर्जुन हुआ  
॥११॥ उसने अत्रिफलोत्पन्न भगवान् के अंशरूप श्री दत्तात्रेयजी की आराधना  
कर हजार भुजायें, अघर्माचरण की शान्ति, अपने धर्म का सेवन, सन्नाम  
द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय, धर्मानुसार प्रजापालन, शत्रुओं से अजेयता  
और अखिल जगत् प्रसिद्ध पुरुष के हाथ से मरण आदि अनेक वर प्राप्त किये  
थे ॥१२॥ उस अर्जुन ने इस सात द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करते  
हुए दस हजार यज्ञ किये थे ॥१३-१४॥ उसके विषय में यह श्लोक अब तक  
गाया जाता है ॥१५॥ यज्ञ, दान, तपस्या, विनम्रता और विद्या में कोई  
भी राजा कार्तवीर्य के समान नहीं हो सकता ॥१६॥ उसके राज्य काल में  
कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं हुआ ॥१७॥ उसने बल, पराक्रम, आरोग्य और  
सम्पत्ति की भले प्रकार सुरक्षा—अथवा पूर्वंक पिचासी हजार वर्ष तक इस  
पृथिवी पर राज्य किया था ॥१८॥

माहिष्मत्या दिग्विजयाभ्यागतो नर्मदाजलावगाहनक्रीडाति-  
पानमदापुलेनायत्नेनैव तेनाशेषदेवदैत्यगन्धर्वैश्च जयोद्भूतमदावलेपोऽपि  
रावणः पशुरिव बद्ध्वा स्वनगरकान्ते स्थापितः ॥१९॥ यश्च पञ्चाशीति-  
वर्षसहस्रोपलक्षणवालावसाने भगवन्नारायणाशेन परशुरामेणोत्पहतः  
॥२०॥ तस्य च पुत्रशतप्रधानाः पञ्च पुत्रा बभूवुः शूरशूरसेनवृषसेन-  
मधुजयध्वजमज्ञाः ॥२१॥



जयध्वजात्तालजङ्घः पुनोऽभवत् ॥२२॥ तालजङ्घस्य तालजङ्घाख्यं पुत्रशतमासीत् ॥२३॥ एषा ज्येष्ठो वीतिहोत्रस्तथान्यो भरतः ॥२४॥ भरताद्वृषः ॥२५॥ वृषस्य पुनो मधुरभवत् ॥२६॥ तस्यापि वृष्णिप्रमुखं पुत्रशतमासीत् ॥२७॥ यतो वृष्णिसञ्जामेतद्रोनमवाप ॥२८॥ मधुसञ्जाहेतुश्च मधुरभवत् ॥२९॥ यादवाश्च यदुनामोपलक्षणादिति ॥३०॥

एक दिन की बात है कि वह अत्यन्त मद्य-पान के कारण व्याकुल होकर नर्मदा के जल में क्रीड़ा कर रहा था, तभी सब देवता, दैत्य, गर्ध्व और राजाओं पर विजय प्राप्त करने के मद से उत्पन्न हुए दिग्विजय के अभिलाषी रावण ने उसकी राजधानी माहिष्मतीपुरी पर आक्रमण कर दिया, तब सहस्राजुंन ने उसे अनायास ही पशु के समान बाँधकर अपनी पुरी के एक जन-हीन स्थान में डाल दिया ॥१९॥ पिचासी हजार वर्ष राज्य करने के उपरान्त भगवान् नारायण के अष्टावतार श्री परशुराम जी ने उसे मार दिया ॥२०॥ इसके सौ पुत्र थे, जिनमें शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु और जयध्वज प्रमुख हुए ॥२१॥ जयध्वज का पुत्र तालजघ था, उसके सौ पुत्रों में सबसे बड़ा वीतिहोत्र और दूसरा भरत हुआ ॥२२-२४॥ भरत का पुत्र वृष हुआ, वृष का पुत्र मधु और मधु के सौ पुत्र हुए, जिनमें वृष्णि सबसे बड़ा था । उसी के नाम पर यह वंश 'वृष्णि' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२५-२८॥ मधु के कारण यह मधु सत्तक हुआ और मधु के कारण इस वंश के पुरुष 'यादव' बहने लगे ॥२९-३०॥



## वारहवाँ अध्याय

कोष्टोस्तु यदुपुनस्यात्मजो ध्वजिनीवान् ॥१॥ ततश्च स्वातिस्ततोऽशङ्क रुशङ्कोश्चित्ररथः ॥२॥ तत्तनयश्शशिविन्दुश्चतुर्दशमहारत्ने-  
रूपकवर्त्मभवत् ॥३॥ तस्य च शतसहस्र पत्नीनामभवत् ॥४॥ दशलक्ष-  
संख्याश्च पुत्राः ॥५॥ तेषां च पृथुथवाः पृथुकर्मा पृथुकीर्तिः पृथुयशाः

नाहं प्रसूता पुत्रेण नान्या पत्न्यभवत्ताव ।

स्तुपासम्बन्धता ह्येषा कतमेन सुतेन ते । २६।

ऐसा विचार राजा ज्यामघ ने उस राज्यकन्या को अपने रथ पर चढ़ाया और अपने नगर को चला दिये ॥ २३॥ विजय प्राप्त करके लौटे हुए, राजा के दर्शनाय अपने सब पुरजनों, मेवको कुटुम्बियों और मन्त्रियों के सहित रानी शैव्या स्वयं राजद्वार पर उपस्थित थी ॥ २४॥ उसने जैसे ही राजा के सामाग्न में उस राज्यकन्या को बैठी हुई देखा, वैसे ही अत्यंत क्रोध के कारण काँपते हुए अधरो से बहा ॥ २५॥ हे चपलचित्त वाले महाराज ! आपने अपने रथ में किसे बिठा रखा है ? ॥ २६॥ यह सुन कर राजा को कोई उत्तर न सूझा और उसने भय पूर्वक कहा—यह मेरी पुत्र-वधू है ॥ २७॥ इस पर शैव्या ने कहा—मेरे ता कभी कोई पुत्र ही नहीं हुआ और आपकी कोई अन्य पत्नी भी नहीं है, फिर यह आपकी पुत्र बहू किस प्रकार से हुई ? ॥ २८-२९॥

इत्यात्मेर्ष्याकोपकलुपितवचनमुपित्तविवेको भयाद्दुरुक्तपरिहा-  
रार्थमिदमवनीपतिराह । ३०। यस्ते जनिष्यत आत्मजस्तस्यैयमनागत-  
स्यैव भार्या निरूपितेत्याकर्ण्योद्भूतमृदुहासा तथेत्याह । ३१। प्रविवेश च  
राज्ञा सहाधिष्ठानम् । ३२।

अनन्तर चातिशुद्धलग्नहोराशवावयवोक्तकृतपुत्रजन्मलाभगुणा-  
द्वयसः परिणाममुपगतापि शैव्या स्वर्त्परेवाहोभिर्गर्भमवाप । ३३।  
कालेन च कुमारमजोजनत् । ३४। तस्य च विदर्भ इति पिता नाम चक्रे  
। ३५। स च ता स्तुपापुपयेमे । ३६। तस्या चासौ कथकेशिकसञ्जी  
पुत्रावजनयत् । ३७।

श्री पराशरजी ने कहा—रानी शैव्या के इन ईर्ष्या और क्रोध मिथित वचनों को सुनकर विवेकहीनता और भय के कारण कहे हुए अपन असम्बद्ध वचनों से उत्पन्न हुए सदेह को मिटाने के विचार से राजा ने कहा—मैंने तुम्हारे होने वाले पुत्र के लिए अभी से यह पत्नी निश्चित कर दी है । यह सुन कर रानी ने मुसकाते हुए मृदु शब्दों में कहा—ऐसा ही हो । इसने पश्चात् राजा के साथ नगर में प्रविष्ट हुई ॥ ३१-३२॥ इसके

पश्चात् पुत्र प्राप्ति के भूलो वाली उस अत्यन्त शुद्ध लग्न में, होराशक अवयव के समय जो पुत्र-विषयक सम्भाषण हुआ था, उसके प्रभाव से, गर्भधारण योग्य अवस्था के निकल जाने पर भी शैव्या गर्भवती हो गई और समय प्राप्त होने पर उसके उदर में पुत्र का जन्म हुआ ॥३३-३४॥ पिता ने उसका नाम-करण करते हुए 'विदर्भ' रखा ही ॥३५॥ फिर उसी के साथ उस राजन्या का विवाह हुआ ॥३६॥ विदर्भ ने उससे क्रय और कैशिक नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये ॥३७॥

पुनश्च तृतीय रोमपादसज्ज पुनर्मजीजनद्यो नारदादवाप्तज्ञानवान-  
भवत् ॥३८॥ रोमपादाद्वभ्रर्यभ्रोर्धृतिर्धृते. कैशिक. कैशिकस्या प चेदिः  
पुत्रोऽभवद् यस्य सन्तती चैद्या भूपाला. ॥३९॥

कथस्य स्नुपापुत्रस्य कुन्तिरभवत् ॥४०॥ कुन्तेर्धृष्टिर्धृष्टेनिधृति-  
निधृतेर्दशाहंस्ततश्च व्योमा तस्यापि जीमूस्ततश्च विकृतिस्ततश्च भीम-  
रय तस्मान्नवरयस्तस्यापि दशरयस्ततश्च शक्रुनिः तत्तनयं करम्भिः  
करम्भेर्देवरातोऽभवत् ॥४१॥ तस्माद्देवक्षयस्तस्यापि मधुर्मधो कुमारवशः  
कुमारवशादनुरनो पुरुमित्र. पृथिवीपतिरभवत् ॥४२॥ ततश्चाशुस्तस्मा-  
च्चसत्वत. ॥४३॥ सत्वतादेते सात्वता ॥४४॥ इत्येता ज्यामघस्य सन्तति  
सम्यक्प्रवृत्तासमन्वित श्रुत्वा पुमान् मैत्रेय स्वपार्पं प्रमुच्यते ॥४५॥

सात्वत वंश का प्रारम्भ हुआ ॥४४॥ हे मंत्रेयजी ! ज्यामद्य की सतति के इस वर्णन को जो श्रद्धा सहित सुनता है, वह अपने सभी पापों से छूट जाता है ॥४५॥



## तेरहवाँ अध्याय

भजनभजमानदिव्यान्धकदेवावृधमहाभोजवृष्णिः सज्ञास्त्वतस्य पुत्रा बभूवुः । १॥ भजमानस्य निमिकृकणवृष्णायस्तथान्ये द्वौ मात्राः । शतजित्सहस्रजिद्युतजित्सज्ञास्त्रयः । २॥ देवावृधस्यापि बभ्रुः पुत्रोऽभवत् । ३॥ तयोश्चायं श्लोको गीयते । ४॥

यथैव शृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ।

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवर्देवावृधस्समः । ५॥

पुरुषा यद् च पटिश्च यद् सहस्राणि चाष्ट च ।

तेऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि । ६॥

महाभोजस्त्वतिधर्मात्मा तस्यान्वये भोजा भृत्तिकावरपुरनिवासिनो मात्तिकावरा बभूवुः । ७॥ वृष्णे सुमित्रो युधाजिन्व पुत्रावभूताम् । ८॥ ततश्चानमिनस्तथानमिनाश्चिघ्नः । ९॥ निघ्नस्य प्रसेनसत्राजितौ । १०॥ तस्य च सत्राजितो भगवानादित्यः सखाभवत् । ११॥

श्रीपराशरजी ने कहा—सत्वत के पुत्रों के नाम भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज और वृष्णि ये ॥१॥ भजमान के छ पुत्र हुए—निमि, कृकण और वृष्णि तथा इनके विमाता-पुत्र शतजित् सहस्रजित और अयुतजित ये ॥२॥ देवावृध के पुत्र का नाम बभ्रु था । ३॥ इन दोनों के विषयमें यह श्लोक गाया जाता है—जैसा दूर से सुना वैसे ही समीप से देखा, यम्भू मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा देवावृध देवताओं के सदृश है । बभ्रु और देवावृध के मार्ग से छ हजार चौहत्तर मनुष्यों को अमृतत्व की प्राप्ति हुई थी ॥४-६॥ महाभोज अत्यन्त धर्मात्मा पुरुष था, उसकी सन्तान भोजवशी मात्तिकावर राजाओं के रूप में

प्रसिद्ध हुई ॥७॥ घृष्णि के दो पुत्र-सुमित्र और युत्राजित् नाम से हुये । उनमें से सुमित्र का पुत्र अनमित्र, अनमित्र का निघ्न और निघ्न से प्रसेन और सत्राजित् दो पुत्र हुए ॥८-१०॥ भगवान् आदित्य उसी सत्राजित् के मित्र हो गये थे ॥११॥

एकदा त्वम्भोनिधितोरसंश्रयः सूर्य सत्राजित्तुष्टाव तन्मनस्कतया च भास्वानभिद्रूयमानोऽग्रतस्तस्थौ ॥१२॥ ततस्त्वस्पष्टमूर्तिधरं चैनमा-  
लोक्य सत्राजित्सूर्यमाह ॥१३॥ यथैव ग्योमिन् वह्निपिण्डोपम त्वामहम-  
पश्य तथैवाद्याप्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चित् प्रसादीकृत विशेषमुप-  
लक्षयामीत्येवमुक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुख्य स्यमन्तकां नाम  
महामणिवरमवतार्यैकान्ते न्यस्तम् ॥१४॥

। ततस्तमाताग्नोज्ज्वलं ह्रस्ववपुषमीपदापिङ्गलनयनमादित्यम-  
ब्राक्षीत् ॥१५॥ कृतप्रणिपातस्तवादिकं च सत्राजितमाह भगवानादित्य-  
स्सहस्रदीधितिर्वर्गमस्मत्तोऽभिमतं वृणीष्वेति ॥१६॥ स च तदेव मणि-  
रत्नमवाचत ॥१७॥ स चापि तस्मै तदृत्वा दीधितिपतिर्वियति  
स्वधिष्ण्यमारोह ॥१८॥

एक दिन समुद्र के किनारे पर बैठे हुए सत्राजित् ने भगवान् आदित्य की स्तुति की तब उसके तन्मयतापूर्वक आराधन को देखकर भगवान् सूर्य उसके सम्मुख प्रकट हो गए ॥१२॥ उस समय उन्हें अस्पष्ट स्वरूप में देखकर सत्राजित् ने उनसे कहा ॥१३॥ जिस अग्नि पिण्ड के रूप में मैंने आपको आकाश में देखा था, वैसे ही रूप में यहाँ प्रत्यक्ष पधारने पर देख रहा हूँ । इस रूप में आपकी रूची कोई विशेषता मुझे दिखाई नहीं दे रही है । सत्राजित् की बात सुन कर सूर्य ने स्यमन्तक नाम की श्रेष्ठ महामणि को अपने कंठ से उतार कर पृथक् रख दिया ॥१४॥ तब सत्राजित् ने उनके स्वरूप को देखा कि वह कुछ ताम्रशर्ण, अत्यन्त उज्ज्वल और छोटा था तथा उनके नेत्र कुछ पीले रंग के थे ॥१५॥ इसके पश्चात् सत्राजित् ने उन्हें प्रणाम, स्तुति आदि से प्रसन्न किया तब भगवान् आदित्य ने उसमें अपना घनीष्ट वर माँगने को कहा ॥१६॥ इस पर सत्राजित्

ने उस स्यमन्तक मणि की ही याचना की ॥१७॥ भगवान् भास्कर उसे वह मणि प्रदान कर अपने स्थान को अन्तरिक्ष-भाग से चले गये ॥१८॥

सत्राजिदप्यमलमणिरत्नसनायकण्ठतया सूर्य इव तेजोभिरशेष-  
दिगन्तराण्युद्भासयन् द्वारका विवेश ॥१९॥ द्वारकावासी जनस्तु  
तमायान्तमवेक्ष्य भगवन्तमादिपुरुष पुरुषोत्तममवनिभारावतरणायासेन  
मानुषरूपधारिणं प्रणिपत्याह ॥२०॥ भगवन् भवन्त द्रष्टुं नूनमयमादित्य  
आयातीत्युक्तो भगवानुवाच ॥२१॥ भगवाध्यायमादित्यः सत्राजिदयमा-  
दित्यदत्तस्यमन्तकारय महामणिरत्न विभ्रदत्रोपयाति ॥२२॥ तदेन  
विश्रब्धाः पश्यतेत्युक्तास्ते तथैव ददृशुः ॥२३॥

स च त स्यमन्तकमणिमात्मनिवेशने चक्रे ॥२४॥ प्रतिदिन  
तन्मणिरत्नमष्टौ कनकभारान्भवति ॥२५॥ तत्प्रभावाच्च सकलस्यैव  
राष्ट्रस्योपसर्गानावृष्टिव्यालाग्निचोर्दुर्भिक्षादिभयं न भवति ॥२६॥  
अच्युतोऽपि तद्विष्य रत्नमुग्रसेनस्य भूपतेर्योग्यमेतदिति लिप्ता चक्रे  
॥२७॥ गौनभेदभयाच्छक्तोऽपि न जहार ॥२८॥

इसके पश्चात् उस स्वच्छ मणि रत्न धारण से सुशोभित बैठ वाले  
सत्राजित् ने सभी दिशाओं को सूर्यके समान प्रकाशित करते हुए द्वारकापुरी में प्रवेश  
किया ॥१९॥ उस समय द्वारकावासी पुरुषों ने उसे आता देखकर भू-भार हर-  
णार्थ अश रूप से पृथिवी पर उत्पन्न हुये मनुष्य रूपी आदि पुरुष भगवान् श्री  
कृष्ण से कहा ॥२०॥ हे भगवन् ! भगवान् सूर्य आपके दर्शको के लिए आ रहे  
प्रतीत होते हैं । उनके द्वारा ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने उनसे कहा ॥२१॥  
यह भगवान् भास्कर नहीं, सत्राजित् है । भगवान् भास्कर से प्राप्त हुई स्यमन्तक  
नाम की महामणि को धारण करके वह यहाँ आ रहा है ॥२२॥ अब तुम सब  
उस ठीक प्रकार से देखो । भगवान् के वचन सुनकर सब द्वारकावासी उसे यथाय  
रूप में देखने लगे ॥२३॥ उस स्यमन्तक मणि को सत्राजित् ने आने घर में ले  
जाकर रख दी ॥२४॥ नित्य प्रति वह मणि आठ भार स्वर्ण प्रदान करती थी  
॥२५॥ उमने प्रभाव से सम्पूर्ण राष्ट्र रोग, अनावृष्टि, सर्प विष, अग्नि, चोरी,  
दुर्भिक्ष आदि भयों से सर्वथा बचा रहना था ॥२६॥ भगवान् अच्युत की यह

इच्छा थी कि वह दिव्य रत्न महाराज अश्वसेन के योग्य है ॥२७॥ परन्तु, जाति में विद्रोह फैलने के डर से उन्होंने समर्थ होते हुए भी उसे उससे नहीं लिया ॥२८॥

सत्राजिदप्यच्युतो मामेतद्यात्रयिप्यतीत्यवगम्य रत्नलोभाद्भ्रात्रे प्रसेनाय तद्रत्नमदात् ॥२९॥ तच्च शुचिना द्विगमाणमशेषमेव सुवर्णस्रवादिकं गुणजातमुत्पादयति अन्यथा धारयन्तमेव हन्तीत्यजानन्नसावपि प्रसेनस्तेन कण्ठसक्तेन स्यमन्त केनाश्वमारुह्याटव्यां मृगयामगच्छत् ॥३०॥ तत्र च सिंहाद्वधमवाप ॥३१॥ साश्वं च तं निहत्य सिंहोऽप्यमलमणिरत्नमास्याग्रेणादाय गन्तुमभ्युद्यतः ऋक्षाधिपतिना जाम्बवता दृष्टो घातितश्च ॥३२॥ जाम्बवानप्यमरामणिरत्नमादाय स्वखिले प्रविवेश ॥३३॥ सुकुमारसंज्ञाय बालकाय च क्रीडनकम करोत् ॥३४॥

सत्राजित् को ज्ञात हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि को उससे ले लेना चाहते हैं तो उसने सोम के वश में पड़ कर वह रत्न अपने भाई प्रसेन को दे दिया ॥२९॥ परन्तु प्रसेन को यह मालूम नहीं था कि उस मणि के पवित्रता पूर्वक धारण से तो यह स्वर्ण-दान आदि गुण वाली होती है और अपवित्रता से धारण करने पर घातक हो जाती है । इसलिए वह उसे कंठ में धारण कर, अश्व पर बैठ कर मृगया करने के लिए वन को चला गया ॥३०॥ वहाँ वह एक सिंह के द्वारा मार डाला गया ॥३१॥ उसे धोड़े के सहित मार कर सिंह ने उस निर्मल मणि को अपने मुँह में रखा और जनने की उखन हुआ, तभी ऋक्ष-राज जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला ॥३२॥ और उस निर्मल मणिरत्न को ग्रहण करके जाम्बवान् पानी गुफा में पहुँचा ॥३३॥ वहाँ जाकर अपने अपने सुकुमार नामक शिशु के लिए खिलौने के रूप में दे दिया ॥३४॥

अनागच्छति तस्मिन्प्रसेने कृष्णो मणिरत्नमभिलषितवान्स च प्राप्तवान्नूनमेतदस्य कर्मेत्यखिलएव यदुलोकः परस्परं फर्णाफिष्यंवायद्यत् ॥३५॥ विदितलोकापवादवृत्तान्तश्च भगवान् सर्वयदुरान्यपरिवारपरिवृतः प्रसेनाश्वपदवीमनुससार ॥३६॥ ददर्श चाश्वसमवेतं प्रसेनं सिंहेन

विनिहतम् ।३७। अखिलजनमध्ये सिंहपददर्शनकृतपरिशुद्धिः सिंहपदमनुससार ।३८। ऋक्षपतिनिहतं च सिंहमप्यल्पे भूमिभागे दृष्ट्वा ततश्च तद्रत्नगौरवाद्दृक्षस्यापि पदान्यनुययी ।३९। गिरितटे च सकलमेव तद्यदुसैन्यमवस्थाप्य तत्पदानुसारी ऋक्षविलं प्रविवेश ।४०।

जब प्रसेन वन से लौट कर न आया, तब यादवगण परस्पर में चर्चा करने लगे कि — उस मणि को कृष्ण हविषाना चाहते थे, इसलिए इन्हीं ने ले लिया होगा । यह कामें अवश्य ही कृष्ण ने किया है ।।३१।। जब इस लोकापवाद को श्री कृष्ण ने सुना तो वह सम्पूर्ण यादव सेना सहित प्रसेन के घोड़े के पद-चिह्नो पर चल दिए और वन में पहुँच कर देखा कि प्रसेन को उसके अश्व सहित सिंह ने मार डाला है ।।३६-३७।। इस प्रकार सिंह के चरण चिह्न दिखाई देने पर भी भगने अगर उसे आरोप को दूर करने के लिए वे उस चिह्नों का अनुसरण करते हुए सब के सहित भागे बड़े और कुछ दूर जाने पर ही उन्हें ऋक्षराज द्वारा मारा गया वह सिंह भी मित गया । फिर उस महामणि की महिमा के कारण उन्होंने ऋक्षराज के पद चिह्नों का भी अनुसरण किया ।।३८-३९।। उस समय उन्होंने सब यादव-सेना पर्वत के किनारे छोड़ दी और जाम्बवद् के पद-चिह्नों के सहारे चलते हुये उनकी गुफा में प्रविष्ट हो गये ।।४०।।

अन्तः प्रविष्टश्च धात्र्या. सुकुमारकमुल्लालयन्त्या वाणी शुश्राव ।४१।

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।

सुकुमारक मा रोदोस्तव ह्येप स्यमन्तकः ।४२।

इत्याकर्ण्योपलब्धस्यमन्तकोऽन्तः प्रविष्टः कुमारकोडनकीकृतं च धात्र्या हस्ते तेजोभिर्जाज्वल्य मान स्यमन्तकं ददर्श ।४३। त च स्यमन्तकाभिलषितचक्षुषमूर्खपुरुषमागत समवेक्ष्य धात्री आहि वाहीति व्याजहार ।४४।

तदार्तरवश्चरणानन्तरं चामपंपूर्णहृदयः स जाम्बवानाजगाम ।४५। तपोश्च परस्परमुद्धतामर्पयोषु दमेकविंशतिदिनान्यभ्रवत् ।४६। ते च यदुसैनिकास्तत्र समाष्टदिनानि तस्मिन्प्रान्ति मुदीक्षमाणास्तस्युः ।४७।



अनिष्क्रमणे च मधुरिपुरसाववश्यमत्र विलेप्यन्तं नाशमवाप्तो  
भविष्यत्यन्यथा तस्य जीवतः कथमेतावन्ति दिनानि शत्रुजये व्याक्षेपो  
भविष्यतीति कृताध्यवसाया द्वारकामागम्य हतः कृष्ण इति कथया-  
मासुः ॥४८॥ तद्वान्ववाञ्च तत्कालोचितमखिलमुत्तरक्रियाकलापं  
चक्रुः ॥४९॥

गुफा में पहुँचकर उन्होंने सुकुमार को बहलाती हुई धाय के वचन सुने—  
सिंह ने प्रेतों को मारा और श्रद्धाराज ने सिंह को मार दिया । हे सुकुमार !  
अब यह स्वयन्तक मणि तेरी ही है, तू रुदन न कर ॥४१-४२॥ इस दाणी के  
सुनने से श्री कृष्ण को यह पता लग गया कि स्वयन्तक मणि यही है तो उन्होंने  
भीतर जाकर देखा कि धाय के साथ पर रखी हुई सुकुमार की सिलावना रुविणी  
स्वयन्तक मणि अपने त्रेज से आजवत्यमान हो रही है ॥४३॥ तब स्वयन्तक  
मणि की ओर कामना-भरी दृष्टि को देखने हुये एक भूर्ख पुरुष को वहाँ धाया  
हुमा देखकर 'आहि-आहि' कहती हुई धाय चीरकार करने लगी ॥४४॥ उसकी  
भार्य-मुकार को सुनकर कोधित हुआ जाम्बवान् वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ फिर  
दोनों में परस्पर अत्यन्त रोष की वृद्धि हुई और इन्हींस दिनों तक घोर संग्राम  
होता रहा ॥४६॥ श्री कृष्ण की प्रतीक्षा करती हुई यादव-सेना को जब सात-  
आठ दिन व्यतीत हो गये और लौट कर नहीं आये तब उन्होंने सोचा कि 'कृष्ण  
अवश्य ही इस गुफा में मृत्यु को प्राप्त हो गये, अथवा शत्रु को जीतने में उन्हें  
इतने दिन कदापि गहरी लग सकने थे ।' ऐसा विचार स्थिर कर वे सब द्वारवा  
लौटे और वहाँ श्रीकृष्ण के मारे जाने की बात बहूँ दी ॥४७-४८॥ यह सुन कर  
उनके शत्रुओं ने उनकी सम्पूर्ण घरणोत्तर क्रिया सम्पन्न कर दी ॥४९॥

ततश्चास्य युद्धचमानस्यातिश्रद्धादत्तविशिष्टोपपात्रमुक्तान्नतोया-  
दिना श्रीकृष्णस्य वलप्राण पुष्टिरभूत् ॥५०॥ इतरस्यानुदिनमतिगुरुपूरप  
भेद्यमानस्य अतिनिष्ठुरप्रहारपातपीडितासिलावयवस्य निराहारतया  
वलहानिरभूत् ॥५१॥ निजितश्च भगवता जाम्बवान्प्रणिपत्य व्याजहार  
॥५२॥ मुरामुरगन्धर्वगंधराक्षसादिभिरप्यतिलेभंवाञ्च जेतुं शक्यः  
किमुतावनिगोचरैरल्पवीर्यनरैरनरावयवभूतैश्च तियं ग्योन्यनुमृतिभिः कि

पुनरस्मद्विधैरवश्यं भवतास्मत्स्वामिना रामेतेव नारायणस्य  
सकलजगत्परायणस्याशेन भगवता भवितव्यमित्युक्तस्तस्मै  
भगवानखिलावनिभाराचतरणार्थं भवतरणमाचचक्षे ॥५३॥ प्रीत्यभिव्य-  
ञ्जितकर तलस्पर्शनेन चैनमपगतपुद्गमेद चकार ॥५४॥

इम प्रकार अत्यन्त श्रद्धा सहित प्रदान किए हुये विविध पात्रों में अन्न  
और जल इनादि की प्राप्ति में श्री कृष्ण के दैहिक बल और प्राण पुष्ट हो गये  
॥५०॥ तथा अत्यन्त महान् पुष्प के घोर प्रहारा क आघात से मर्दित और  
पोड़ित देह वाले जाम्बवान् के निराहार रहने से उमका बन नितान्त क्षीण हो  
गया ॥५१॥ अन्तमें जाम्बवान् की हार हुई और तब उसने भगवान् मधुपूदन की  
प्रणाम करके कहा—हे भगवन् ! देवता, अमुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसादि में से  
कोई भी आपको नहीं जीत सकता तो भूतल पर रहने वाले अल्प पराक्रमी  
मनुष्य अथवा हमारे जैसे तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुये जीवों का तो कहना ही  
क्या है ? मुझे विश्वास हो गया कि याव हमारे स्वामी भगवान् श्री राम के  
समान सकल विश्व के पालक भगवान् नारायण के ही अश रूप हैं जब  
जाम्बवान् ने विनम्रता पूर्वक ऐसा कहा तब भगवान् श्रीकृष्ण ने भू-भार हरण  
करने के निमित्त अपने भवतीर्ण होने का सब वृत्तान्त उससे कहा और प्रीति  
सहित उसके देह को अपने हाम के स्पर्श से अम-रहित और स्वस्थ कर  
दिया ॥५२-५४॥

स च प्रणिपत्य पुनरप्येनं प्रसाद्य जाम्बवती नाम कन्यां  
गृहागतायार्ध्यभूता आह्वयामास ॥५५॥ स्यमन्तकमणिरत्नमपि प्रणिपत्य  
तस्मै प्रददौ ॥५६॥ अच्युतोऽप्यतिप्रणतात्तस्मादग्राह्यमपि तन्मणिरत्न-  
मात्मसंशोधनाय जग्राह ॥५७॥ सह जाम्बवत्या स द्वारकामाजगाम ॥५८॥  
भगवदागमनोदभूतहर्षोत्कर्षस्य द्वारकावासिजनस्य कृष्णावलोक-  
नात्तत्क्षणमेवातिपरिणतवयसोऽपि नवयौवनमिवाभवत् ॥५९॥  
दिष्ट्यादिष्ट्येति सकलयादवाः स्त्रियश्च सभाजयामासुः ॥६०॥  
भगवानपि यथानुभूतमशेषं यादवसमाजे यथा वदाचचक्षे ॥६१॥ स्यमन्तकं

च सत्राजिते दत्त्वा मिथ्याभिशस्तिपरिशुद्धिमवाप ।६२। जाम्बवती चान्तःपुरे निवेशयामास ।६३।

तदनन्तर ने जाम्बवान् उन्हें पुनः प्रणाम द्वारा प्रसन्न किया और अपने घर पर आये हुए भगवान् रूप अतिथि को अपनी जाम्बवती नाम की कन्या अर्घ्य रूप से प्रदान की तथा प्रणाम पूर्वक स्वयन्तक मणि भी उन्हें भेंट कर दी ।।५५-५६।। उस अत्यन्त विनीत से ग्रहण करने योग्य न होने पर भी भगवान् ने अपने ऊपर लगे आरोप की मिट्टि के लिए उस मणि को ले लिया और जाम्बवती को साथ लिए हुए द्वारका पहुँचे ।।५७-५८।। उनके आगमन की बात सुनते ही द्वारकावासियों में हृष की अत्यन्त वृद्धि हुई और वृद्धावस्था के निवृत्त पहुँचे हुये पुरुष भी मानो उनके दर्शन करके नवयुवक बन गये ।।५९। उस समय सभी यादवों और उनकी स्त्रियों ने 'ग्रहोभाग्य' कह-रहकर उनका अभिवादन किया ।।६०।। जो घटना जिस प्रकार हुई, उसका सम्पूर्ण विवरण श्रीकृष्ण ने यादवों को सुनाया और सत्राजिद् को स्वयन्तक मणि लीटा कर मिथ्यापवाद से मुक्ति प्राप्त की। तदनन्तर जाम्बवती को अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट किया ।।६१-६३।।

सत्राजिदपि मयास्याभूतमलिनमारोपित मिति जातसन्त्रासा-  
त्स्वसुता सत्यभामा भगवते भार्यायै ददौ ।६४। ता चाक्रूरकृतवर्मशत-  
धन्यप्रमुखा यादवा प्राग्वरयाम्बभूवु ।६५। ततस्तत्प्रदानादवज्ञातमेवा-  
त्मान मन्यमाना सत्राजिति वैरानुबन्ध चक्रुः ।६६।

अक्रूरकृतवर्मप्रमुखाश्च शतधन्वानमूचुः ।६७। अयमतीव दुरात्मा  
सत्राजिद् योऽस्माभिर्भवता च प्रार्थितोऽप्यात्मजामस्मान् भवन्त चावि-  
गण्य्य कृष्णाय दत्तवान् ।६८। तदलमनेन जीवता घातयित्वैनं तन्महा-  
रत्नं स्वमन्तकास्य त्वया किं न गृह्यते वयमभ्युपपत्स्यामो यद्यच्युतस्त-  
द्योपरि वैरानुबन्धं करिष्यतीत्येवमुक्तस्तथेत्यसावप्याह ।६९।

जतुगृहदग्धाना पाण्डुतनयाना विदितपरमार्योर्जपि भगवान्  
दुर्योधनप्रयत्नशैथिल्यवरणार्थं कुल्यकरणाय वारणावत गतः ।७०।

कृतोद्यमौ च तावुभावुपलभ्य शतधन्वा कृतवर्माणमुपैत्य  
 पाष्णिपूरणकर्मनिमित्तमचोदयत् ॥८१॥ आह चैन कृतवर्मा ॥८२॥ नाह  
 बलदेववासुदेवाभ्या सह विरोधायालमित्युक्तश्चाक्रूरमचोदयत् ॥८३॥  
 असावप्याह ॥८४॥ न हि कश्चिद्भगवता पादप्रहारपरिकम्पितजगत्त्रयेण  
 सुररिपुवनितावैधव्यकारिणा प्रवलरिपुचक्राप्रतिहतचक्रेण चक्रिणा  
 भदमुदितनयनावलोकिताखिलनिशातनेनातिगुर्वरिवारणापकर्षणावि  
 कृतमहिमोरुसीरेण सीरिणा च सह सकलजगद्वन्द्यानाममरवराणामपि  
 योद्धुं समर्थं किमुताहम् ॥८५॥ तदन्यश्शरणमभिलष्यतामित्युक्तश्शत-  
 धनुराह ॥८६॥ यद्यस्मत्परित्राणासमर्थं भवानात्मानमधिगच्छति  
 तदयमस्मत्तस्तावन्मणि सगृह्य रक्ष्यतामिति ॥८७॥ एवमुक्त  
 सोऽप्याह ॥८८॥ यद्यन्त्यायामप्यवस्थाया न कस्मैचिद्भवान् कथयिष्यति  
 तदहमेतं ग्रहीष्यामीति ॥८९॥ तथेत्युक्ते चाक्रूरस्तन्मणिरत्न  
 जग्राह ॥९०॥

जब शतधन्वा ने कृष्ण बलदेव को अपने मारने के प्रयत्न में उद्यत हुये  
 जाना तब यह सहायता के लिये कृतवर्मा के पास गया ॥८१॥ इस पर कृत-  
 वर्मा ने कहा कि 'कृष्ण बलदेव से विरोध करने की समार्य्य मुझ में नहीं है' ।  
 उसके ऐसा कहने पर शतधन्वा अक्रूर के पास गया और उसने उससे सहायता  
 माँगी । इस पर अक्रूर ने कहा ॥८२-८४॥ जिनके पाद-प्रहार से ही तीनो लोक  
 काँप उठते हैं और उसी से देवताओं के शत्रु अशुरो की स्त्रियाँ वैधव्य को प्राप्त  
 होती हैं तथा जिनका चक्र महाबली शत्रुओं की सेना में भी अप्रतिहा रहता है  
 उन चक्रधारी श्रीकृष्ण से और जो अपने मदोन्मत्त नेत्रों की चितवन से  
 शत्रुओं का दमन करने में समर्थ तथा भयङ्कर शत्रु समूह रूरी हाथियों को  
 वशमें करने के लिए अश्वएड महिमा वाले प्रचण्ड हल को धारण किए रहते हैं  
 उन हलधर बलदेव से अखिल विश्व में वन्दनीय देवताओं में से कोई भी सम-  
 नहीं हो सकता तो मैं ही क्या कर सकता हूँ ? ॥८५॥ इसलिए तुम्हें किसी अ-  
 व्यक्तिकी शरण लेनी चाहिये । अक्रूर की बात सुन कर शतधन्वा बोले  
 ॥८६॥ अच्छा यदि आप मेरी रक्षा करने में असमर्थ पाते हैं, तो लीजिए, इ

मणि की ही रक्षा करिये ॥८७॥ इस पर भक्रूर बोला—मैं इस मणि को सभी ग्रहण कर सकता हूँ, जब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मरणकाल उपस्थित होने पर भी तुम इसके मेरे पास होने के विषय में किसी से न कहोगे ॥८८॥ यह सुन कर शतधन्वा ने कहा 'ऐसा ही होगा' और अब भक्रूर ने उस मणिरत्न को उससे लेकर अग्न पास सुरक्षित रखा ॥८९॥

शतधनुरप्यतुलवेगा शतयोजनवाहिनी बडवामारुह्याधक्रान्तः ॥९१॥ शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाश्वचतुष्टयमुत्तरधस्थितौ बलदेववासु-  
देवौ तमनुप्रयातौ ॥९२॥ सा च बडवा शतयोजनप्रमाणमार्गमतीता पुनरपि बाह्यमाना मिथिलावनोद्देशे प्राणानुत्ससर्ज ॥९३॥ शतधनुरपि ता परित्यज्य पदातिरेवाद्रवत् ॥९४॥ कृष्णोऽपि बलभद्रमाह ॥९५॥ तावदन स्यन्दने भवता स्थेयमहमेनमधमाचार पदातिरेव पदातिमनुगम्य यावद्घातयामि अत्र हि भूभागे दृष्टदोपास्सभया अतो नैतेऽश्वा भवतेम भूमिभागमुल्लङ्घनीया ॥९६॥ तथेत्युक्त्वा बलदेवो रथ एव तस्यौ ॥९७॥

इसके पश्चात् शतधन्वा एक अत्यन्त वेगवती और निरन्तर सौ योजन तक चलने में सामर्थ्य वाली एक घोड़ी पर चढ़कर भाग निकला ॥९१॥ तब शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक चार घोड़ों से समुक्त रथ पर आरोह होकर कृष्ण-बलदेव ने उसका पीछा किया ॥९२॥ सौ योजन मार्ग के पूरा हो जाने पर भी जब शतधन्वा जिसे आगे ले जा रहा था, उस घोड़ी ने मिथिला के वन प्रदेश में अपने प्राण त्याग दिये ॥९३॥ तब उस घोड़ी को वहीं पड़ी छोड़ कर शतधन्वा पैदल ही भागने लगा ॥९४॥ यह देखकर श्रीकृष्ण ने बलदेव जी से कहा ॥९५॥ अभी आप रथ में ही बैठे रहे, इस पैदल भागते हुए भयमाचारी वो मैं भी पैदल जाकर मार दूँगा ॥९६॥ इस पर बलदेव 'धच्छा' कहकर रथ में ही बैठे रहे ॥९७॥

कृष्णोऽपि द्विक्रोशमान भूमिभागमनुसृत्य दूरस्थितस्यैव चक्रं क्षिप्त्वा शतधनुषशिरश्चिच्छेद ॥९८॥ तच्छरीराम्बरादिषु च बहुप्रवारमन्विच्छन्नपि स्यमन्तवर्माणे नावाप यदा तदोपगम्य

वलभद्रमाह ॥६६॥ वृषवास्माभि शतधनुर्घातितो न प्राप्तमखिलजगत्सारभूत तन्महारत्न स्यमन्तकारयमित्यावर्ष्योद्भूतकोपो वलदेवो वासुदेवमाह ॥१००॥ धिक्त्वा यस्त्वमेवमर्थलिप्सुरेतच्च ते भ्रातृत्वान्मया क्षान्त तदय पन्थास्स्वेच्छया गम्यता न मे द्वारवया न त्वया न चाशेषबन्धुभि काय्यमलमलमेभिर्ममाग्रतोऽलीवन्नपथंरित्याक्षिप्य तत्कथा वयश्चित्प्रसाद्यमानोऽपि न तस्यौ ॥१०१॥ स विदेहपुरी प्रविवेश ॥१०२॥

श्रीकृष्ण ने दो बोंस तक पैदल चलते हुए उसका पीछा किया और दूर से अपना चक्र चलाने पर शतधनुष का मस्तक बाट डाला ॥६८॥ परन्तु उसके शरीर के वस्त्रादि में बहुत कुछ सोजने पर भी उन्हें स्पमन्तक मणि न मिली, सब उन्होंने वलदेवजी के पास पहुँच कर कहा ॥६९॥ शतधनुष का वध व्यर्थ ही हुआ, क्योंकि विश्व की सारभूता स्पमन्तक मणि उसने पास नहीं मिली। यह सुनकर वलदेवजी अत्यन्त क्रोधित हुए और श्रीकृष्ण की बात को भेद पूर्ण समझकर उन्होंने कहा ॥१००॥ तुमको धिक्कार है, तुम अत्यन्त ही धन-लोलुप हो, मैं तुम्हें भाई होने के कारण ही क्षमा कर रहा हूँ। तुम अपने मार्ग पर स्वेच्छापूर्वक जा सकते हो क्योंकि मुझे अब द्वारका से, तुमसे अथवा अन्य सब बंधु-बंधुओं से कोई प्रयोजन नहीं है। मैं इन निरर्थक सोम घोड़ों को भी नहीं मानता। इस प्रकार कहते हुये वलदेवजी अनेक प्रकार से समझाने और विश्वास दिलाने पर भी वहाँ न रुक कर विन्हेनगरको चल पड़े ॥१०१-१०२॥

जनकराजश्चाध्यपूर्वकमेन गृहं प्रवेशयामास ॥१०३॥ स तत्रैव च तस्यौ ॥१०४॥ वासुदेवोऽपि द्वारकामाजगाम ॥१०५॥ यावच्च जनकराजगृहे वलभद्रोऽवतस्थे तावद्द्वारराष्ट्रो दुर्योधनस्तत्सकाशाद्रदाशिक्षामशिक्षयत् ॥१०६॥ वर्षनयान्ते च बभ्रूग्रसेनप्रभृतिभिर्यादवैर्न तद्रत्नकृष्णोनापहतमिति कृतावगतिभिर्विदेहनगरी गत्वा वलदेवस्सम्प्रात्याय्य द्वारकामानीत ॥१०७॥

उनके विदेह नगर पहुँचने पर राजा जनक ने अर्घ्यादि के द्वारा उनका स्वागत किया और फिर उन्हें अपने घर में ठहराया ॥१०३-१०४॥ इधर श्री

कृष्ण द्वारका में लौट आये ॥१०५॥ राजा जनक के यहा बलदेवजी ने जितने दिन निवास किया, उतने दिनो तक धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने उनसे गदायुद्ध की शिक्षा ग्रहण की ॥१०६॥ फिर स्वमन्त्रक मणि श्रीकृष्ण के पास नहीं है, यह जानने वाले यश्रू और उग्रसेन आदि यादवों ने विदेहनगर जाकर बलदेवजी को शपथ पूर्वक विश्वास दिलाया, तब वह तीन वर्ष व्यतीत होने पर द्वारका में लौटे ॥१०७॥

अक्रूरोऽत्युत्तममणिःसमुद्भूतसुवर्णेन भगवद्विधानपरोऽनवरत्न यशानियाज ॥१०८॥ सयनगतौ हि क्षत्रियवैश्यौ निष्पन्नब्रह्महा भवतीत्येवम्प्रकार दीक्षावच प्रविष्ट एव तस्यौ ॥१०९॥ द्विपट्टिर्वर्षाण्येव तन्मणिप्रभावात्तपोसगुणदुर्गिक्षमारिवाभरणादिक नाभूत् ॥११०॥ अथाक्रूरपक्षीयैर्भोजैश्चतुष्पदे सात्वतस्य प्रपौत्रे व्यापादिते भोजैस्सहाक्रूरो द्वारकामपहायापक्रान्त ॥१११॥ तदपक्रान्तिदिनादारभ्य तपोसगुणदुर्गिक्षव्यालानावृष्टिमारिकाद्युपद्रवा बभूवुः ॥११२॥

भगवान् के ध्यान में निरन्तर लग रहते हुए अक्रूरजी उस मणि रत्न द्वारा प्राप्त होने वाले सुवर्ण से यज्ञानुष्ठानादि काम करने लगे ॥१०८॥ यज्ञ में दीक्षित क्षत्रियो और वैश्यो का वध करने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है, इस कारण अक्रूर ही यज्ञ दीक्षा रूपी उस वधचक्र को सदा ही पहिने रहते थे ॥१०९॥ उस मणि के प्रभाव से ही द्वारकापुरी में बासठ वर्ष रोग, दुर्भिक्ष, महामारी, अथवा मृत्यु आदि का प्रकोप नहीं हुआ ॥११०॥ फिर अक्रूर-पक्ष के भोज-वशियो के द्वारा सात्वत के प्रपौत्र क्षत्रुघ्न का वध कर देने पर अन्य भोजवशियो के साथ अक्रूर न भी द्वारका का परित्याग कर दिया ॥१११॥ अक्रूर के वहा से आते ही द्वारका में रोग, दुर्भिक्ष, सर्प प्रणावृष्टि और महामारी आदि उपद्रव होने लग गये ॥११२॥

अथ यादवबलभद्रोऽग्रसेनसमवेतो मन्त्रमन्त्रयद्भगवानुरगारि-  
चेतन ॥११३॥ निमिदमेवदेव प्रचुरोपद्रवागमनयेतद्वानोज्यतामित्युक्ते-  
ऽन्धरनामा यदुवृद्ध प्राह ॥११४॥ अस्याक्रूरस्यपिता श्वफल्नो यत्र  
यथाभूत्तत्र तत्र दुर्भिक्षमारिणानावृष्टिपादिक नाभूत् ॥११५॥ नाशिराजस्य

विषये त्वनावृष्ट्या च श्वपल्को नीत ततश्च तत्क्षणादेवो ववर्ष ॥११६॥  
 काशिराजपत्न्याश्च गर्भे कन्यारत्न पूर्वमासीत् ॥११७॥ सा च कन्या  
 पूर्णोऽपि प्रसूतिकाले नैव निश्चक्राम ॥११८॥ एव च तस्य गर्भस्य  
 द्वादशवर्षाणि निष्क्रामतो ययुः ॥११९॥ काशिराजश्च तामात्मजां  
 गर्भस्थामाह ॥१२०॥ पुत्रि वस्मान्न जायसे निष्क्रम्यतामास्य ते द्रष्टुमि-  
 च्छामि एता च मातर किमिति चिर क्लेशयसीत्युक्ता गर्भस्थैव  
 व्याजहार ॥१२१॥ तात यद्येकैका गा दिने दिने ब्राह्मणाय प्रयच्छसि  
 तदाहमन्यैस्त्रिभिर्वर्षैरस्माद्गर्भात्तावदवश्य निष्क्रमिष्यामीत्येतद्वचनमाकर्ण्य  
 राजा दिने दिने ब्राह्मणाय गा प्रादात् ॥१२२॥ सापि तावता कालेन  
 जाता ॥१२३॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने बलदेवजी और उपसेन आदि प्रमुख यदुवशियों के  
 साथ भ्रमणा की और कहने लगे ॥११३॥ एक साथ ही इतने उपद्रव आकर  
 उपस्थित हो गये, इसके कारण पर विचार करना चाहिए। उनकी यह बात  
 सुनकर अन्धक नाम एक वृद्ध यादव ने कहा ॥११४॥ अक्रूर के पिता इवफल्क  
 जब-जब जहा-जहा रहे, तब-तब वहा-वहा दुःख, महामारी, अनावृष्टि आदि  
 कोई भी उपद्रव कभी नहीं हुआ ॥११५॥ एक बार जब काशिराज के राज्य  
 में वर्षा नहीं हुई, तब इवफल्क को वहा ले जाते ही वर्षा आरम्भ हो  
 गई ॥११६॥

उस समय काशिराज की भार्या गर्भवती थी और कन्या उसमें स्थित  
 थी ॥११७॥ वह कन्या बालक उत्पन्न होने में जितना समय लगना चाहिये,  
 उतने समय में उत्पन्न न हुई ॥११८॥ इस प्रकार उसे गर्भ में रहते-रहते बारह  
 वर्ष व्यतीत हो गये ॥११९॥ तब काशिराज अपनी उस गर्भस्थ कन्या से बोले  
 ॥१२०॥ हे सुते ! तू गर्भ से बाहर क्यों नहीं आती ? तू उत्पन्न हो, मैं तेरे  
 मुख को देखने की इच्छा कर रहा हूँ ॥१२१॥ अपनी माता को इतने समय से  
 तू ऐसा गृष्ट क्यों दे रही है ? राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस कन्या  
 ने गर्भ में से ही कहा—हे पिताजी ! यदि आप नित्य प्रति एक गौ किसी  
 ब्राह्मण को प्रदान करें तो तीन वर्ष व्यतीत होने पर मैं अवश्य ही उत्पन्न हो



जाऊंगी । यह सुन कर राजा ने नित्यप्रति एक गाय ब्राह्मण को देना प्रारम्भ किया ॥१२२॥ इस प्रकार तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह कन्या उत्पन्न हुई ॥१२३॥

ततस्तस्या पिता गान्दिनीति नाम चकार ॥१२४॥ ता च गान्दिनी कन्या श्वफल्कायोपकारिणे गृहमागतायाध्यभूता प्रादात् ॥१२५॥ तस्यामयमक्रूर श्वफल्काञ्जने ॥१२६॥ तस्यैवङ्गुणमिथुनादुत्पत्ति ॥१२७॥ तत्त्वयमस्मिन्नपक्रान्तेऽत्र दुर्भिक्षमारिकाद्युपद्रवा न भविष्यन्ति ॥१२८॥ तदयमनानीयतामलमतिगुणवत्यपराधान्वेषणेनेति यदुवृद्धस्यान्ध-कस्यैतद्वचनमाकर्ण्य केशवोग्रसेनवलभद्रपुरोगमैर्यदुभि कृतापराधतिति-क्षुमिरभय दत्त्वा श्वफल्कपुत्र स्वपुरमानीत ॥१२९॥ तत्र चागतमान एव तस्य स्यमन्तकमणे प्रभावादनावृष्टिमारिकादुभिक्षव्यालाद्युपद्रवो-पशमा बभूवुः ॥१३०॥

उस कन्या का नाम पिता ने गान्दिनी रखा और उसे अपना उपकार करने वाले श्वफल्क को, जब वह काशिराज के यहां गये थे, तब अर्घ्य रूप में प्रदान किया ॥१२४-१२५॥ श्वफल्क ने उसी के गर्भ से इन अक्रूरजी को उत्पन्न किया था ॥१२६॥ इन अक्रूरजी का जन्म जब ऐसे गुणी पिता से हुआ है, तो उनसे इस नगर का त्याग कर देने से यहां दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रव भला क्यों नहीं होंगे ? ॥१२७-१२८॥ इसलिए उन अक्रूरजी को यहां लिवा-लाना चाहिये, जो मनुष्य अत्यधिक गुणवाला हो उससे यदि कुछ अपराध ही भी जाय तो उसका अधिक या वेपथु उचित नहीं है । यद्यो वृद्ध यादव अपक की बात सुनकर श्रीकृष्ण उन्नेदव, उपमन आदि ने श्वफल्क पुत्र अक्रूर जी के अपराध को क्षमा कर दिया और उन्हें अभय प्रदान पूर्वक द्वारका में ले आये ॥१२९॥ जैसा ही वह नगर में आये, वैसे ही स्यमन्तक मणि के प्रभाव से अनावृष्टि, महामारी, दुर्भिक्ष, सपभय आदि सभी उपद्रवों की जाति हो गई ॥१३०॥

तृणश्रिन्तयामास ॥१३१॥ स्वल्पमेतत्तारण्य यदय गान्दिन्या श्वफल्केनाक्रूरो जनित ॥१३२॥ सुमहाश्रायमनावृष्टिदुर्भिक्षमारिकाद्यु-पद्रवप्रतिषेधकारी प्रभाव ॥१३३॥ तन्नूनमस्य सज्जाने स महामणि

स्यमन्तकारयस्तिष्ठति ॥१३४॥ तस्य ह्येवविधाः प्रभावाः न्यूनते ॥१३५॥ अयमपि च यज्ञादनन्तरमन्यत्कृत्वन्तर तस्यानन्तर मन्यद्यज्ञान्तर चाजस्रमविच्छिन्न यजतीति ॥१३६॥ अल्पोपादान चास्यासशयमत्रासौ मणिवरस्तिष्ठतीति कृताध्यवसायोऽन्यत्प्रयोजनमुद्दिश्य सकलयादवसमाजमात्मगृह एवाचीकरत् ॥१३७॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण सोचने लगे कि स्वफल्क के द्वारा गान्दिनी के गर्भ से अक्रूर का उत्पन्न होना एक साधारण बात है ॥१३१-१३२॥ परन्तु, उसका अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदि उपद्रवों को रोकने वाला प्रभाव अत्यन्त महिमा युक्त है ॥१३३॥ इनके पास अवश्य ही स्यमन्तक महामणि होनी चाहिये ॥१३४॥ क्योंकि उस मणि का ही ऐसा प्रभाव सुना गया है ॥१३५॥ इस अक्रूर को एक यज्ञ के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा यज्ञ करते ही देखा जाता है । इसके अनुष्ठानों का क्रम कभी टूटता नहीं ॥१३६॥ इसके पास यज्ञ के लिए साधनों की भी न्यूनता है, इसलिए इसके पास स्यमन्तक मणि होने में सदेह नहीं रहता । ऐसा स्थिर कर उन्होंने अपने घर में सभी पादवों को किसी विशेष प्रयोजन के लिये एकत्रित किया ॥१३७॥

तत्र चोपविष्टेऽप्यखिलेषु यदुपु पूर्वं प्रयोजनमुपन्यस्य पर्यवसिते च तस्मिन् प्रसङ्गान्तरपरिहासकयामक्रूरेण कृत्वा जनार्दनस्तमक्रूरमाह ॥१३८॥ दानपते जानीम एव वय यथा शतधन्वना तदिदमखिलज-जगत्सारभूत स्यमन्तक रत्न भवत समर्पित तदक्षेपराष्ट्रोपकारकं भवत्सकाशे तिष्ठति तिष्ठतु सर्व एव वय तत्प्रभावफलभुज कि त्वेष बलभद्रोऽस्मानाशङ्कितवास्तदस्मत्प्रीतये दर्शयस्वेत्वेत्यभिधाय जोष स्थिते भगवति वामुदेवे सरत्नसोऽचिन्तयत् ॥१३९॥ किमनानुष्ठेय-मन्यथा चेद्वयौम्यह तत्त्वेवताम्बरतिरोधानमन्विष्यन्तो रत्नमेते द्रष्टव्यन्ति अतिविरोधो न क्षेम इति सञ्चिन्त्य तमखिलजगत्कारणभूत नारायणमाहाक्रूर ॥१४०॥ भगवन्ममैतत्स्यमन्तवरत्न शतधनुषा समर्पितमपगते च तस्मिन्नद्य श्व. परश्वो वा भगवान् याचिष्यतीति हृतमतिरतिवृच्छेणैतावन्त कालमधारयम् ॥१४१॥ तस्य च धारण-

क्लेशेनाहमशेषोपभोगेष्वसङ्गिमानसो न वेद्यि स्वसुखकलामपि । १४२।  
 एतावन्मात्रमप्यशेषराष्ट्रोपकारि धारयितुं न शक्नोति भवान्मन्यत  
 इत्यात्मना न चोदितवान् । १४३। तदिदं स्वमन्तकरत्नं  
 गृह्यतामिच्छया यस्याभिमतं तस्य समर्थताम् । १४४।

जब सब यदुबंसी बहा आकर बैठ गए तो पहिले उम्हें आना प्रयोजन  
 बनाया और उसका उपसहार हो गया तब उम्होंने प्रसङ्ग बदलकर अक्रूर के  
 साथ परिहास-सूत्रक कहा ॥१३८॥ हे दानपते ! शतगन्वा ने जिस प्रकार वह  
 स्वमन्तक मणि तुम्हें दी थी, वह सब विषय हमें ज्ञात है । वह सम्पूर्ण राष्ट्र  
 का उपहार करती हुई यदि तुम्हारे पास रहनी है तो उससे हमें कोई हानि नहीं  
 है, क्योंकि उसके प्रभाव से प्राप्त होने वाले फल को तो हम सभी भोगते हैं ।  
 परन्तु, इन बनरामजी का मुझ पर संदेह रहा है, इसलिए यदि आप उसे एक  
 बार दिलवा दें तो हमें अत्यन्त प्रपन्नता होगी । जब भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कह  
 कर मौन हो गये तब मणि के साथ होने के कारण अक्रूरजी विचार करने  
 लगे ॥१३९॥ अब मैं क्या करूँ ? यदि कुछ बहाना बनाता हूँ तो वह मेरे पक्षों  
 में टटोल कर ही मणि को देल लेगे । फिर यदि इनसे विरोध हो गया तो किसी  
 प्रकार भी कुशल नहीं है । इस प्रकार स्थिर कर अक्रूरजी ने सम्पूर्ण सत्तार के  
 कारण रज भगवान् श्री कृष्ण से कहा ॥१४०॥ हे भगवन् ! वह मणि शतगन्वा  
 ने मुझे दे दी थी और उमरी मृत्यु होने पर अत्यन्त साधनो पूर्वक मैंने इसे  
 रखा है, क्योंकि मैं सोचता था कि आप इसे प्राञ्जल में मुझमें माँग ही लेंगे  
 ॥१४१॥ उमरी सुरक्षा के क्लेश से मैं किसी प्रकार के भोग में भी घटना मन  
 न लगा सने के कारण किंचिन् भी सुखी नहीं रहा हूँ ॥ परन्तु आपसे मैंने स्वयं  
 इसलिये नहीं कहा कि वही आप यह न सोचने लगे कि यह सम्पूर्ण राष्ट्र का  
 उपहार करने वाले इनके स्वतन्त्र भार को भी सहन नहीं कर सके ॥१४२॥  
 भारी यह स्वमन्तक मणि यह है, इसे आप ग्रहण कीजिए और आप जिसे  
 पारें उसे दीजिए ॥१४४॥

ततः स्वोदरवस्त्रनिगोपितमतिलघुनयनमुद्रागतं प्राटोदृत-  
 वान् । १४५। ततश्च निष्क्राम्य स्वमन्तकमणिं तस्मिन्नुत्तुनगमाजे

मुमोच ॥१४६॥ मुक्तमात्रं च मुक्तमात्रे च तस्मिन्नतिकान्त्या  
तदखिलमास्थानमुचोतितम् ॥१४७॥ अथाहाक्रूरः स एष मणिः  
शतधन्वनास्माकं समर्पितो यस्याय स एनं गृह्णातु इति ॥१४८॥

तमालोक्य सर्वयादवानां साधुसाध्विति विस्मितमनसा  
वाचोऽश्रूयन्त ॥१४९॥ तमालोक्यातीव बलभद्रो ममायमच्युतेनैव  
मामान्यस्समन्वीप्सित इति कृतस्पृहोऽभूत् ॥१५०॥ ममैवायं पितृघन-  
मित्यतीव च सत्यभामापि स्पृहयाच्चकार ॥१५१॥ बलसत्यावलोकना-  
त्कृष्णोऽप्यात्मानं गोचक्रान्तरावस्थितमिव मेने ॥१५२॥ सकलयादवस-  
मक्षं चाक्रूरमाह ॥१५३॥

यह कह कर भक्रूरजी ने अपने कटिबसन में छिपी हुई एक छोटी सी  
स्वर्ण-पिटारी में रखी हुई उस इयमग्नक मणि को निकाल कर यदुवशियो के  
समाज में रख दिया ॥१४५-१४६॥ पिटारी से निकलते ही उस मणि की काति  
से वह सम्पूर्ण स्थान अत्यन्त प्रकाशमान हो उठा ॥१४७॥ फिर भक्रूरजी बोले  
कि यह मणि मुझे शतधन्वा से प्राप्त हुई थी, जिसकी यह हो, वह इसे ग्रहण  
करले ॥१४८॥ मणि को देखते ही सब यादवगण विस्मय पूर्वक 'साधु' 'साधु'  
शब्द कहने लगे ॥१४९॥ उसे देखकर इस पर कृष्ण के समान ही मेरा भी  
अधिकार है, यह सोचते हुए बलदेवजी अधिक स्पृहागन् हुए ॥१५०॥ सत्य-  
भामा ने भी उसे अपनी पंतुल सम्पत्ति मानकर अपनी अधिक उत्कठा प्रकट की  
॥१५१॥ बलदेव और सत्यभामा की अभिलाषा को देखकर श्रीकृष्ण ने अपने  
को रथ के बैल और पहिये के मध्य पड़े हुये जन्तु के समान सकटग्रस्त पाया  
॥१५२॥ तब उन्होंने सब यादवों की उपस्थिति में भक्रूरजी से कहा ॥१५३॥

एतद्धि भणिरत्नमात्मसंशोभनाय एतेषां यदूना मया दर्शितम्  
एतच्च मम बलभद्रस्य च सामान्यं पितृघनं चैतत्सत्यभामाय  
नान्यस्यैतत् ॥१५४॥ एतच्च सर्वकालं शुचिना ब्रह्मचर्यादिगुणवता  
ध्रियमाणमशेषराष्ट्रस्योपकारकमशुचिना ध्रियमाणमाधारमेव हेन्ति  
॥१५५॥ अतोऽहमस्य षोडशस्त्रीसहस्रपरिग्रहादसमर्थो धारणे  
कथमेतत्सत्यभामां स्वीकरोति ॥१५६॥ आर्यबलभद्रेणापि

मदिरापानाद्यशेषोपभोगयरित्याग कार्यं. ॥१५७॥ तदलं यदुलोकोऽयं  
 बलभद्र अहं च त्वा दानपते प्रार्थयाम ॥१५८॥ तद्भवानेव धारयितुं  
 समर्थः ॥१५९॥ त्वद्घृतं चास्य राष्ट्रस्योपकारकं तद्भवानशेषराष्ट्रनिमित्त-  
 मे तत्पूर्ववद्धारयत्वन्त्यन्नं चत्तव्यमित्युक्तो दानपतिस्तथेत्याह जग्राह च  
 तन्महारत्नम् ॥१६०॥ ततः प्रभृत्यक्रूरः प्रकटेनैव तेनातिजाज्वल्यमाने-  
 नात्मकण्ठावसक्तेनावित्य इवाशुमाली चचार ॥१६१॥

इत्येतद्भगवतो मिथ्याभिषक्तिक्षालनं यं स्मरति न तस्य  
 कदाचिदल्पापि मिथ्याभिषक्तिर्भवति अव्याहृताखिलेन्द्रियश्चाखिल-  
 पापमोक्षमवाप्नोति ॥१६२॥

इस मणि को अपने ऊपर लगे आरोप को दूर करने के विचार से ही  
 मैंने सबके सामने निबलवाया है । इस पर मेरा और बलदेवजी का तो समान  
 अधिकार है ही, साथ ही सत्यभामा का यह पितृयन है, इनके प्रतिष्ठा किसी  
 अन्य का अधिकार इस पर नहीं है ॥१५४॥ सदा पवित्र और ब्रह्मचर्यादि धारण  
 पूर्वक रहने से यह मणि सम्पूर्ण राष्ट्र का हित करने वाली होती है, परन्तु अप-  
 वित्र अवस्था धारण करने पर यह अपने आश्रयवाता के लिए घातक सिद्ध होती  
 है ॥१५५॥ मेरे मोलह हजार रानिया होने के कारण इसे धारण करने में मैं  
 तो असमर्थ हूँ ही साथ ही सत्यभामा भी इसमें समर्थ नहीं है ॥१५६॥ यदि  
 आयं बलरामजी इन्ने अपने पास रखते हैं तो उन्हें अपने मदिरापान आदि सभी  
 भोगों को छाड़ना पड़ेगा ॥१५७॥ इसलिये हे दानपते ! यह बलरामजी, यह  
 सभी मादबगण, यह सत्यभामा और मैं—सभी यह मानते हैं कि इस मणि के  
 धारण करने की सामर्थ्य आप में है ॥१५८॥ यदि आप इसे धारण करेंगे तो  
 यह सम्पूर्ण राष्ट्र का हित-साधन करने वाली होगी, इसलिये सम्पूर्ण राष्ट्र के  
 कल्याणाय आप ही इसे पहिने के समान धारण करने रहिए, अब इस विषय  
 में आप कुछ अन्यथा वचन न बहे। श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर दानपति क्रूरने  
 उस महामणि को ग्रहण कर लिया । उस समय से क्रूरने उस घट्यन प्रकार-  
 शतुज रूपी मणि को अपने गठ में धारण कर भगवान् आदित्य के समान  
 रश्मियों से युक्त दूर सबके सामने विचरण करने लगे ॥१६०-१६१॥ भगवान्

श्रीकृष्ण के मिथ्या-कलक को शुद्ध करने वाले इस प्रसंग को जो मनुष्य स्मरण करेगा, उसे कभी किंचित् भी मिथ्या-कलक नहीं लगेगा, उसकी सब इन्द्रियाँ सशक्त रहेगी तथा वह सभी पापों से छूट जायगा ॥१६७॥



## चौदहवाँ अध्याय

अनमित्राय पुनः शिनिर्नामाभवत् ॥१॥ तस्यापि सत्यकः  
सत्यकात्सात्यकियुं युधानापरनामा ॥२॥ तस्मादपि सञ्जय तत्पुत्रश्च  
कुणि कुण्युं गन्धर ॥३॥ इत्येते शैनेया ॥४॥

अनमित्रस्यान्वये पृश्नस्तस्मात् श्वफल्क तत्प्रभावः कथित एव  
॥५॥ श्वफल्कस्यान्या कनीयाश्चित्रको नाम भ्राता ॥६॥ श्वफल्कादकूरो  
गान्दिन्यामभवत् ॥७॥ तथोपमद्रुमृदामृदविश्वारिमेजयगिरिक्षत्रोपक्षत्र-  
शतघ्नारिमर्दनधर्मदृष्टधर्मगन्धमोजवाहप्रतिवाहाख्या पुत्रा ॥८॥  
सुताराख्या कन्या च ॥९॥ देववानुपदेवश्चाकूपुत्रो ॥१०॥ पृथुविपृथुप्रमु-  
खाश्चित्रकस्य पुत्रा बहवो बभूवुः ॥११॥

श्री पराशरजी ने कहा—अनमित्र का पुत्र शिनि हुआ, शिनि का पुत्र  
सत्यक और सत्यक का पुत्र सात्यकि हुआ, इसको युयुधान भी कहते थे ॥१-२॥  
सात्यकि का पुत्र सञ्जय, सञ्जय का कुणि और कुणि का पुत्र युगन्धर हुआ ।  
यह सभी शैनेय नाम से प्रसिद्ध थे ॥३-४॥

अनमित्र के वंश में ही पृश्नि उत्पन्न हुआ । पृश्नि का ही पुत्र श्वफल्क  
हुआ, जिसके विषय में पहिले कह चुके हैं । श्वफल्क का एक छोटा भाई चित्रक  
था ॥५-६॥ गान्दिनी के गर्भ से श्वफल्क ने अकूर को जन्म दिया ॥७॥ फिर  
उपमृदु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन,  
धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम की

एक कन्या हुई ॥८-१॥ अरुर के देवदान् और उपदेव नामक दो पुत्र हुए ॥१०॥  
चिमय के पृथु, विमृषु आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुये थे ॥११॥

कुकुरभजमानशुचिकम्बलवह्निपाख्यास्तथान्धकस्य चत्वारः  
पुत्राः ॥१२॥ कुकुराद्वृष्टः तस्मात् कपोतरोमा ततश्च विलोमा  
तस्मादपि तुम्बुरुसलाऽभनदनुसजश्च ॥१३॥ अनोरानकदुन्दुभिः ततश्चा-  
भिजिद् अभिजितः पुनर्वसुः ॥१४॥ तस्याप्याहुर्ग आहुतो च कन्या ॥१५॥  
आहुकस्य देवकोमसेनो द्वौ पुत्रौ ॥१६॥ देवानुपदेवः सहदेवो देवरक्षितो  
च देवकस्य चत्वारः पुत्राः ॥१७॥ तेषां वृकदेवोपदेवा देवरक्षिता  
श्रीदेवा शान्तिदेवा सहदेवा देवकी च सप्त भगिन्यः ॥१८॥ ताश्च सर्वा  
वसुदेव उभयेमे ॥१९॥ उग्रसेनस्यापि कंसन्यग्रोधसुनामानकाह्वशंकुसभू-  
मिराष्ट्रपालमुद्धतुष्टिसुतुष्टिमत्सजाः पुत्रा बभूवुः ॥२०॥ कंसाकंसवतीसुत-  
नुराष्ट्रपा लिकाह्वाश्चोग्रसेनस्य तनूजाः कन्याः ॥२१॥

अन्धक के चार पुत्र थे —कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और वह्नि ॥१२॥  
कुकुर का पुत्र धृष्ट हुमा, धृष्ट का पुत्र कपोतरोमा, कपोतरोमा का विलोमा और  
विलोमा का पुत्र भनु हुमा, जो तुम्बर का नित्र था ॥१३॥ भनु का पुत्र भानक-  
दुन्दुभि, उनका पुत्र अभिजित्, उनका पुत्र पुनर्वसु और ततका पुत्र आहुत तथा  
पुत्री का नाम आहुती हुआ ॥१४-१५॥ आहुत के दो पुत्र हुये देवक और उग्र-  
सेन ॥१६॥ देवक के चार पुत्र हुये, जिनके नाम देवक, उदेव, गहोय और  
देवरक्षित थे ॥१७॥ इन चारों पुत्रों की सात बहिनें हुई, जिनके नाम वृकदेवा,  
उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी हुये ॥१८॥ इन  
सबका विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था ॥१९॥ उग्रसेन के नौ पुत्र कंस,  
न्यग्रोध, सुनाम, भानकाह्, दातु, मुन्नुमि, राष्ट्रपान, मुद्धतुष्टि और मुष्टिमान्  
हुये और कसा, कंसवती, सुरतु एवं राष्ट्रानिका नाम की पुत्रियाँ  
हुई ॥२०-२१॥

स्यापि शूरः ॥२५॥ शूरस्यापि मारिषा नाम पत्न्यभवत् ॥२६॥ तस्या चासौ दशपुत्रानजनमद्वसुदेवपूर्वान् ॥२७॥ वसुदेवस्यातमात्र स्यैव तद्गृहे भगवदशावतारमव्याहतदृष्ट्या पश्यद्भिर्देवैर्दिव्यानकदुन्दुभयो वादिता ॥२८॥ ततश्चासावानकदुन्दुभिसज्जामवाप ॥२९॥ तस्य च देव-भागदेवश्रवोऽष्टकककुब्जकवत्सघारकसृञ्जयश्यामशमिकगण्डूपसजा नव भ्रातरोऽभवन् ॥३०॥ पृथा श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवा राजाधिदेवी च वसुदेवादीना पञ्च भगिन्योऽभवत् ॥३१॥

भजमान का पुत्र विदूरथ हुआ । विदूरथ का पुत्र शूर, शूर का शमी, शमी का प्रतिशत्र, प्रतिशत्र का स्वयंभोज और स्वयंभोज का पुत्र हृदिक हुआ ॥२२-२३॥ हृदिक के कृष्णवर्मा, शतयन्त्रा, देवाहं तथा देवगर्भ आदि अनेक पुत्र हुए ॥२४॥ देवगर्भ का पुत्र शूरमेन हुआ ॥२५॥ शूरमेन की पत्नी मारिषा हुई, उसके गर्भ से वसुदेवादि दस पुत्रों ने जन्म लिया ॥२६-२७॥ वसुदेव के उत्पन्न होते ही देवताओं ने यह जानकर कि इनके पुत्र रूप से भगवान् श्रीहरि का अशावतार होगा, आनक और दुन्दुभि और आदि बाँधों को बजाया ॥२८॥ इसीलिये इन वसुदेवजी को आनक और दुन्दुभि भी कहा गया ॥२९॥ इनके नौ भाई थे, जिनके नाम देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुब्ज, वत्सघारक, सृञ्जय, श्याम, शमिक और गण्डूप थे ॥३०॥ तथा इन सब की पाँच बहिनें थी, जिनके पृथा, श्रुतादेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम थे ॥३१॥

शूरस्य कुन्तिर्नाम सखाभवत् ॥३२॥ तस्मै चापुत्राय पृथामारमजा विधिना शूरो दत्तवान् ॥३३॥ ता च पाण्डुरूपाह ॥३४॥ तस्या च धर्मानिलेन्द्रपुं धिष्ठिरभीमसेनार्जुनाख्याख्य पुत्रास्समुत्पादिताः ॥३५॥ पूर्वमेवानूढायाञ्च भगवता भास्वता कानोत कर्णो नाम पुत्रोजन्यत ॥३६॥ तस्माश्च सपत्नी माद्री नामाभूत् ॥३७॥ तस्या च नासत्यदस्ताभ्या नवुलसहदेवी पाण्डोः पुत्रौ जनितौ ॥३८॥

शूरसेन वा कुन्ति नामक एक मित्र हुआ ॥३२॥ उसके सन्तान-हीन होने के कारण शूरसेन ने अपनी पृथा नाम की कन्या उन्हें दत्तक-विधि से प्रदान कर दी ॥३३॥ उसी पृथा का विवाह राजा पाण्डु के साथ हुआ ॥३४॥ धर्म, वायु



और इन्द्र के द्वारा उसके युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥३५॥ इसी पृथा की कन्यावस्था में, विवाह से पहिले सूर्य के द्वारा कर्ण नामक पुत्र पहिले ही उत्पन्न हो चुका था ॥३६॥ माद्री नाम की इसकी एक सौत थी ॥३७॥ उसके गर्भ से अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल और सहदेव की उत्पत्ति हुई । यह सभी पाण्डु पुत्र कहलाये ॥३८॥

श्रुतदेवा तु वृद्धधर्मा नाम कारूप उपयेमे ॥३९॥ तस्या च दन्तवक्रो नाम महासुरो जज्ञे ॥४०॥ श्रुतकीर्तिमपि कैकयराज उपयेमे ॥४१॥ तस्या च सन्तर्दनादय कैकेया पञ्च पुत्रा बभूवुः ॥४२॥ राजाधि-देव्यामावन्त्यौ विन्दानुविन्दौ जज्ञाते ॥४३॥ श्रुतश्रवसमपि चेदिराजो दमघोपनामोपयेमे ॥४४॥ तस्या च शिशुपालमुत्पादयामास ॥४५॥ स वा पूर्वमण्डुदारविक्रमो दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुरभवत् ॥४६॥ यश्च भगवता सकललोकगुरुणा नरसिंहेन घातित ॥४७॥ पुनरपि अक्षयवीर्य-शौर्यसम्पत्पराक्रमगुणस्समाक्रान्तसकलत्रैलोक्येश्वरप्रभावो दशाननो नामाभूत् ॥४८॥

शूरसेन की दूसरी पुत्री श्रुतदेवा कारूप नरेश वृद्धधर्मा को विवाही गई ॥३९॥ उससे दन्तक नामक एक महादैत्य की उत्पत्ति हुई ॥४०॥ श्रुतकीर्ति का विवाह कैकयराज के साथ हुआ ॥४१॥ उससे कैकयराज ने सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुये ॥४२॥ अवन्तिनरेश को व्याही गई राजाधिदेवी से विद और अनुविन्द की उत्पत्ति हुई ॥४३॥ चेदिराज दमघोप के श्रुतश्रवा का विवाह हुआ, जिससे शिशुपाल उत्पन्न हुआ ॥४४॥ यही शिशुपाल अपने पूर्व जन्म में हिरण्यकशिपु नामक दैत्यराज था, जिसका वध लोकगुरु नृसिंह भगवान ने किया था ॥४६॥ फिर यही अक्षयवीर्य, शौर्य, वैभव और पराक्रम आदि से युक्त और त्रैलोक्यपति इन्द्र के प्रभाव को फीका करने वाला दशशिर का रावण हुआ ॥४८॥

वहकालोपभुक्तभगवत्सवाशावाप्तशरीरपातोद्भवपुण्यफलो भगवता राघवरूपिणा सोऽपि निधनमुपपादित ॥४९॥ पुनश्चेदिराजस्य दमघोपस्यात्मेजद्विशिशुपालनामाभवत् ॥५०॥ शिशुपालत्वेऽपि भगवतो

भूभारावतारणायावतीर्णाशस्य पुण्डरीकनयनास्यस्योपरि द्वेपानूवन्ध-  
मतितराञ्चकार ॥५१॥ भगवता च स निघनमुपनीतस्तत्रैव परमात्मभूते  
मनस एकाग्रतया सायुज्यमवाप ॥५२॥ भगवान् यदि प्रसन्नो यथाभिल-  
षितं ददाति तथा अप्रसन्नोऽपि निघ्नन् दिव्यमनुमम स्थानं  
प्रयच्छति ॥५३॥

स्वयं भगवान् के द्वारा मारे जाये जाने के पुण्य रूरी फल से बहुत  
काल तक घनेक भोगों को भोग कर अन्त में भगवान् राम के हाथ से ही मारा  
गया ॥५१॥ फिर यह चेदिराज दमघोष के यहाँ शिशुपाल नाम से उत्पन्न हुआ  
॥५०॥ इस जन्म में भी वह पृथिवी का भार हरण करने के लिये प्रवृत्त हुये  
भगवान् पुण्डरीकाक्ष के प्रति वैर-भाव रखने लगा ॥५१॥ अन्त में उन परमात्मा  
के ही हाथ से मारा जाने के कारण और उन्हीं में तन्मय चित्त होने के कारण  
उसे सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति हुई ॥५२॥ प्रसन्न हुये भगवान् जिस प्रकार अभीष्ट  
फल प्रदान करते हैं, उसी प्रकार अप्रसन्न होकर वध करते हुये भी वे अपने  
दिग्भ्यलोक को प्राप्त कराते हैं ॥५३॥



## पंद्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुत्वे च रावणत्वे च विष्णुना ।

अवाप निहतो भोगानप्राप्यानमरैरपि ॥१॥

न लय तत्र तेनैव निहतः स कथं पुनः ।

सम्प्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरो ॥२॥

एतदिच्छाम्यह श्रोतुं सर्वधमभृतां वर ।

कौतूहलपरेणैतत्पृष्टो मे वक्तुमर्हसि ॥३॥

दैत्येश्वरस्य वधायाखिललोकोत्पत्तिस्थितिविनाशकारिणा

पूर्वं तनुग्रहणं कुर्वता नृसिंहरूपमाविष्कृतम् ॥४॥ तत्र च हिरण्यकशि-

पोविष्णुरयमित्येतन्न मनस्यभूत् ॥५॥ निरतिशयपुण्यसमुद्भूतमेतत्सत्त्व-  
जातमिति ॥६॥ रजउद्रेकप्रेरितैकाग्रमतिस्तद्भावनायोगात्ततोऽवाप्तवध-  
हेतुकी निरतिशयामेवाखिलत्रैलोक्याधिक्यधारिणी दशाननत्वे  
भोगसम्पदमवाप ॥७॥ न तु स तस्मिन्ननादिनिधने परब्रह्मभूते  
भगवत्यनालम्बिनि कृके मनसस्तल्लयमवाप ॥८॥

श्रीमन्नैयजी ने कहा—हे भगवन् । पहिले हिरण्यकशिपु और फिर  
रावण होने पर यह भगवान् विष्णु द्वारा मारा जाकर देवताओं को भी दुर्लभ  
भोगों को तो प्राप्त हुआ, परन्तु उनमें लीन नहीं हो सका । परन्तु इस जन्म में  
शिशुपाल होकर उन्हीं भगवान् के द्वारा मारा जाकर वह सायुज्य मोक्ष को  
किस प्रकार प्राप्त हुआ ॥१-२॥ हे सभी धर्मज्ञों ये श्रेष्ठ मुने । इस विषय में मुझे  
जिज्ञासा हुई है और अत्यन्त कुतूहल के बशीभूत होकर ही मैंने इस विषय में  
आपसे पूछा है, कृपया मुझे बतलाइये ॥३॥ श्रीपराशरजी ने कहा—पूर्व जन्म में  
इसके हिरण्यकशिपु नामक ब्रह्म क्षीर का महार करने के लिये, सब लोकों की  
उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने वाले भगवान् नृसिंह रूप से प्रकट हुये थे  
॥४॥ उस समय हिरण्यकशिपु के चित्त में उनके भगवान् विष्णु होने का भाव  
उत्पन्न नहीं हुआ था । ५॥ उसने केवल यही समझा कि यह कोई निरतिशय  
पुण्यो से उत्पन्न जीव है ॥६॥ रजोगुण के उद्रेक की प्रेरणा वाली उसकी मति  
दृढ़ होने से उसके हृदय में ईश्वरीय-भाव का योग नहीं था, इसलिये केवल भग-  
वान् के हाथ से मारे जाने के पुण्य से ही उसने रावण होकर सब से अधिक  
भोगों को प्राप्त किया ॥७॥ और उन आद्यन्तरहित भगवान् में सन्मय चित्त न  
होने के कारण वह उनमें लीन नहीं हो सका ॥८॥

एव दशाननत्वेऽप्यनङ्गपराधीनतया जानकीसमासक्तचेतसा  
भगवता दाशरथिरूपधारिणा हृतस्य तद्रूपदर्शनमेवासीत् नायमच्युत  
इत्यासक्तिविषयतोऽन्तःकरणे मानुषबुद्धिरेव केवलमस्याभूत् ॥९॥

पुनरप्यच्युतविनिपातमानफलमखिलभूमण्डलदलाध्यचेदिराज-  
कुले जन्म अग्राहृतं श्रयं शिशुपालत्वेऽप्यवाप ॥१०॥ तत्र त्वखिलानामेव  
स भगवन्नाम्ना त्वङ्कारकारणमभवत् ॥११॥ ततश्च तत्कालकृताना

तेषामशेषाणामेवाच्युतनाम्नामनवरतमनेकजन्मसु वर्धितविद्वेषानुबन्धि-  
चित्तो विनिन्दनसन्तर्जनादिपूच्चारणमकरोत् ॥१२॥ तच्चरु पमुत्फुल्लप-  
द्मदलामलाक्षमत्युज्ज्वलपीतवस्त्रधार्यमलकिरीटकेयूरहारकटकादिशोभि-  
तमुदारचतुर्बाहुशङ्खचक्रगदाधरमतिप्रसूढवैरानुभावाददनभोजनस्नानास-  
नशयनादिष्वशेषावस्थान्तरेषु नान्यत्रोपययावस्य चेतसः ॥१३॥

इसी प्रकार जब वह रायण हुआ, तब जानकीजी के प्रति उसके चित्त  
में क्रामासक्ति थी और जब वह राम रूप धारी भगवान् के हाथ से मारा गया,  
तब केवल उनके रूप को ही देख सका था और उनमें अच्युत-भाव वा अभाव  
सथा केवल मनुष्य-भाव ही रहा था ॥१६॥ परन्तु, भगवान् के हाथ से मारा  
जाने के कारण ही उसने पृथिवी पर प्रशसित चेदिराज के दश में शिशुपाल  
रूप से उत्पन्न होकर अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त किया ॥१०॥ इस जन्म में उसने  
भगवान् के प्रत्येक नाम में तुच्छ भाव ही रखा और क्योंकि उसका हृदय अनेक  
जन्मों में उनके प्रति द्वेषयुक्त था, इसलिये वह उनके तिरस्कार पूर्वक उनकी  
निन्दा करता हुआ निरन्तर उनका नामोच्चारण करता रहता था ॥११-१२॥  
विकसित कमल दल के समान स्वच्छ नेत्र वाले, शुभ्र पीताम्बर, निर्मल किरीट,  
केयूर, हार तथा कटकादि धारण किये, चार दीर्घबाहु वाले, शङ्ख-चक्र-गदा-  
पद्मधारी भगवान् का वह दिव्य स्वरूप घूमते, स्नान करते, भोजन करते, बैठते  
और सोते—आदि सभी अवस्थाओं में उसके चित्त से कभी भी अलग नहीं  
होता था ॥१३॥

ततस्तमेवाक्रोशेपूच्चारयस्तमेव हृदयेन धारयन्नात्मवधाय  
यावद्भगवद्वस्तचक्रांशुमालोज्ज्वलमक्षयतेजस्वरूपं ब्रह्मभूतमपगतद्वे-  
षादिदोष भगवन्तमद्राक्षीत् ॥१४॥ तावच्च भगवच्चक्रेणाशु  
व्यापादितस्तत्स्मरणदग्धाखिलाघसन्धयो भगवतान्तमुपनीतस्तस्मिन्नेव  
लयमुपययौ ॥१५॥ एतत्तवाखिलमयाभिहितम् ॥१६॥ अयं हि भगवान्  
कीर्तितश्च पूष्मृतश्च द्वेषानुबन्धेनापि अखिलसुरासुरादिदुर्लभं फलं  
प्रयच्छति किमुत सम्यग्भक्तिमतामिति ॥१७॥

जब वह उन्हें गाली देता, तब उन्हीं के नाम का उच्चारण भीर हृदय में उन्हीं का ध्यान करता हुआ सहार हेतु हाथ में चक्र धारण किये, पक्षय तेजस्वी, द्वेपादि दोषों से रहति उन ब्रह्मभूत भगवान् का दर्शन कर रहा था ॥१४॥ ऐसी ही अवस्था में वह भगवान् के चक्र से मारा गया । भगवान् के स्मरण से उसके सभी पाप समूह भस्म हो गये थे । इस प्रकार जैसे ही उसकी मृत्यु हुई वैसे ही यह भगवान् में लीन हो गया ॥१५॥ यह सम्पूर्ण रहस्य मैंने तुम्हें यथार्थ रूप से बता दिया है ॥१६॥ वे भगवान् तो ऐसे दयालु हैं कि द्वेष का नाश रखकर कीर्तन और स्मरण करने पर भी सभी दैत्यों और देवताओं को दुर्लभ फल प्रदान करते हैं, फिर भले प्रकार भक्तिमय पुरुषों का तो कहना ही क्या है ? ॥१७॥

वसुदेवस्य त्वानकदुन्दुभे. पौरवीरोहिणीमदिराभद्रादेवकीप्रमुखा  
बल्लभः पत्न्योऽभवन् ॥१८॥ बलभद्रशठसारणदुर्मदादीन्पुत्रात्रोहिण्यामान-  
कदुन्दुभिस्तपादयामास ॥१९॥ बलदेवोऽपि रेवत्या विशठोल्मुकी  
पुत्रावजनयत् ॥२०॥ सार्ष्टिमार्ष्टिशिशुसत्यधृतिप्रमुखा सारणात्मजाः ॥२१॥  
भद्राश्वभद्रबाहुदुर्मभूताद्या रोहिया. कुलजाः ॥२२॥ नन्दोपनन्दकृत-  
काद्या मदिरायास्तनयाः ॥२३॥ भद्रायाश्चोपनिधिगदाद्याः ॥२४॥ वैशाल्या  
च कौशिकमेकमेवाजनयत् ॥२५॥

आनकदुन्दुभेर्देवक्यामपि कीर्तिमत्सुपेणोदायुभद्रसेनशृजुदासभद्र-  
देवाख्याः पट् पुत्रा जज्ञिरे ॥२६॥ ताश्च सर्वानेव कसो धातितवान् ॥२७॥

आनक दु दुभि नाम वाले वसुदेवजी की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा, देवकी नाम की अनेक पत्नियाँ थी ॥१८॥ उनमें रोहिणी से बलभद्र, शठ, सारण, दुर्मद आदि अनेक पुत्र हुये ॥१९॥ बलभद्रजी की पत्नी रेवती विशठ उल्मुक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ॥२०॥ सारण के पुत्र सार्ष्टि, मार्ष्टि, शिशु, सत्य, धृति आदि हुए ॥२१॥ रोहिणी के भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्मद और भूतादि के नाम से और भी सन्तानें हुई थी ॥२२॥ मदिरा के पुत्र नन्द, उपनन्द और कृतक आदि हुये तथा भद्रा ने उपनिधि और गदा आदि अनेक पुत्रों को जन्म दिया ॥२३-२४॥ वैशाली के गर्भ से एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम

कौशिक या ॥२५॥ देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए कीर्तिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव नामक छ पुत्रों को कंस ने मार डाला ॥२६-२७॥

अनन्तर च सप्तम गर्भमर्द्धरात्रे भगवत्प्रहिता योगनिद्रा रोहिण्या जठरमाकृष्य नीतवती ॥२८॥ कर्पणाच्चासावपि सङ्कर्पणा-ख्यामगमत् ॥२९॥ ततश्च सकलजगन्महातरुमूलभूतो भूतभविष्यदादिस-कलसुरासुरमुनिजनमनसामप्यगोचरोऽब्जभवप्रमुखैरनलमुखै प्रणम्याव-निभारहरणाय प्रसादितो भगवाननादिमध्यनिधनो देवकीगर्भमवततार वासुदेव ॥३०॥ तत्प्रसादविवर्द्धमानोरुमहिमा च योगनिद्रा नन्दगोप-त्या यशोदाया गर्भमधिष्ठितवती ॥३१॥ सुप्रसन्नादित्यचन्द्रादिग्रहम-व्यालादिभ्य स्वस्थमानसमखिलमेवैतज्जगदपास्ताधर्ममभवत्तस्मिन् पुण्डरीकनयने जायमाने ॥३२॥ जातेन च तेनाखिलमेवैतस्सन्मार्गवर्त्ति जगदक्रियत ॥३३॥

फिर भगवान् द्वारा प्रेरित योगमाया ने अर्द्ध रात्रि के समय देवकी के सातवें गर्भ को खींच कर रोहिणी की कोख में स्थापित कर दिया ॥२८॥ इस गर्भ का आकर्षण होने के कारण ही सकर्पण नाम पडा ॥२९॥ फिर इस तारा वृक्ष के मूल, भूत भविष्यत वनमान के सभी देवताओं दंत्यों और मुनियों की वृद्धि के लिये अग्न्य, ब्रह्मा और अग्नि आदि देवताओं द्वारा पृथिवी का भार हरण करने के लिए प्रसन्न किए हुए तथा जिनका आदि, अन्त, मध्य कुछ भी नहीं है ऐसे भगवान् विष्णु ने देवकी के गर्भ से वसुदेव रूप में अवतार धारण किया और उन्हीं के प्रभाव से महिषी महिमामयी योगनिद्रा नन्द पत्नी यशोदा के गर्भ में अवस्थित हुई ॥३०-३१॥ जब वे पञ्चमकर भगवान् प्रकट हुये, तब यह सम्पूर्ण विश्व प्रनन हुये आदित्य और चन्द्रमा आदि ग्रहों से परिपूर्ण, सर्पादि के भय से रहित, धधगादि शेषों से शून्य तथा स्वस्थ हृदय हो गया ॥३२॥ उन्होंने अक्षतीर्ण होकर इस सम्पूर्ण विश्व की सम्मति पर चलो की प्रेरणा दी ॥३३॥

भगवतोऽप्यत्र मत्स्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्यवोत्तरक्षताधिरानि भार्याणामभवन् ॥३४॥ तासां च रुक्मिणीसत्यभामाजाम्ययतीचारु-

हासिनीप्रमुखा ह्यष्टौ पत्न्य प्रधाना बभूवुः ।३५। तासु चाष्टावयुतानि  
लक्ष च पुत्राणां भगवानखिलमूर्तिरनादिमानजनयत् ।३६। तेषां च  
प्रद्युम्नचारुदेवसाम्बादय त्रयोदश प्रधाना ।३७। प्रद्युम्नोऽपि  
रुक्मिणस्तनया रुक्मवती नामोपयेमे ।३८। तस्यामनिरुद्धो जज्ञे ।३९।  
अनिरुद्धोऽपि रुक्मिण एव पौत्री सुभद्रा नामोपयेमे ।४०। तस्यामस्य  
वज्रो जज्ञे ।४१। वज्रस्त प्रतिबाहुस्तस्यापि सुचारु ।४२।  
एवमनेकशतसहस्रपुरुषसख्यस्य यदुकुलस्य पुनसख्या वर्षशतैरपि  
वक्तु न शक्यते ।४३। यतो हि श्लोकाविमावन्न चरिताथौ ॥४४॥

इस मृत्यु लोक में प्रकट हुए भगवान् वासुदेव की सोलह हजार एक सौ  
एक रानियाँ हुईं ॥३४॥ उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, चारुहासिनी  
आदि आठ रानियाँ प्रमुख थीं ॥३५॥ उन सब रानियों के उदर से भगवान् ने  
एक लाख अस्ती हजार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥३६॥ उनमें प्रद्युम्न, चारुदेव,  
साम्बा आदि तेरह पुत्र प्रमुख माने जाते थे ॥३७॥ प्रद्युम्न का विवाह रुक्मी-  
तनया रुक्मवती से हुआ था ॥३८॥ रुक्मवती से अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ ॥३९॥  
अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी की पौत्री सुभद्रा से हुआ ॥४०॥ उसमें वज्र नामक  
पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ वज्र का पुत्र प्रतिबाहु और उसका पुत्र सुचारु हुआ  
॥४२॥ इस प्रकार यह यदुवश सैंकड़ों हजार पुरुष सख्यक था, जिसकी गणना  
सौ वर्षों में भी पूरा नहीं हो सकती ॥४३॥ इस विषय में यह दो श्लोक कहे  
जाते हैं ॥४४॥

तिस्र षोडशसहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।

कुमाराणां गृहाचार्याश्चापयोगेषु ये रता ।४५।

सख्यान यादवानां क करिष्यति महात्ममाम् ।

यत्रायुतानामयुतलक्षणास्ते सदाहुः ।४७।

देवासुरे हता ये तु देतेयास्सुमहाबलाः ।

उत्पन्नास्ते मनुष्येषु जनोपद्रवकारिणः ।४७।

तेषामुत्सादनार्थं भुवि देवा यदो कुले ।

अयतोणा कुलशत यत्रैवाभ्यधिक द्विजः ।४८।

विष्णुस्तेषा प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थित ।

निदेशस्थायिनस्तस्य ववृधुस्सर्वयादवा ॥५६॥

इति प्रसूतिं वृष्णीना यश्शृणोति नर सदा ।

स सर्वे पातकमुक्तो विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥५७॥

यादव कुमारों को धनुर्विद्या सिखाने वाले गृद्धाचार्य तीन करोड़ प्रह्लासी साख थे, तो फिर उन यादवों की गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है, जिन लाखों करोड़ों के सहित उपलब्ध सदा स्थित रहने थे ॥५५-५६॥ देवासुर युद्ध में जिन महाबली दैत्यों का हनन हुआ था, वे मत्स्यचक्र में उत्पन्न होकर सभी उपद्रवकारी राजागण हुये ॥५७॥ उनका सहार करने के लिये देवताओं ने एक सौ एक बरस वाले मधुकुल में जन्म धारण किया ॥५८॥ उनका स्वामित्व श्रीर व्यवस्था के अधिकार पर भगवान् विष्णु ही अधिष्ठित हुये और उन्हीं की आज्ञा में चलते हुए वे समस्त यादवगण सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त हुये ॥५९॥ इस प्रकार से वृष्णिवंश की उत्पत्ति के वृत्तान्त को जो मनुष्य सदैव श्रवण करता है, यह अवश्य ही सब पापों से छूट जाता है, और उस विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥५०॥



## सोलहवाँ अध्याय

इत्येष समासतस्ते यदोर्वंशं कथित ॥१॥ अथ दुर्वंसोर्वंशमवधारय ॥२॥ दुर्वंसोर्वंहिरात्मजं वह्नेर्भागो भार्गाद्भानुस्ततश्च त्रयीसानुस्तस्माच्च करन्दमस्तस्यापि मरुत ॥३॥ सोऽनपत्योऽभवत् ॥४॥ ततश्च पौरव दुष्यन्त पुत्रमकल्पयत् ॥५॥ एव ययातिसापात्तद्वंशं पौरवमेव वंशं समाश्रितवान् ॥६॥

श्री पराशरजी ने कहा— इस प्रकार संक्षिप्त रूप से मैंने तुम्हें यदुवंश का वृत्तान्त सुनाया ॥१॥ अब दुर्वंसु के वंश का श्रवण करो ॥२॥ दुर्वंसु का



पुत्र वह्नि हुआ, उसका पुत्र भार्ग और भार्ग का भानु हुआ । भानु का पुत्र त्रयीमान्, उसका पुत्र करन्दम और करन्दम का पुत्र मरुत हुआ ॥३॥ मरुत के कोई सतान नहीं थी, इसलिये उसने पुष्ट्वंशोत्पन्न दुष्यन्त को पुत्र रूप से रखा ॥४-५॥ इस प्रकार ययाति के शाप के फल रूप में दुर्गन्ध के वश, पुष्ट्वश के रूप में चला ॥६॥



## सत्रहवाँ अध्याय

द्रुह्योस्तु तनयो बभ्रुः । १। बभ्रोस्सेतुः । २। सेतुपुत्र आरब्धनामा । ३। आरब्धस्यात्मजो गान्धारो गान्धारस्य धर्मो धर्माद् घृतः घृताद् दुर्दमस्ततः प्रचेताः । ४। प्रचेतरा पुत्रश्शतधर्मो बहुलानां स्लेच्छानामुदी-  
च्यानामाधिपत्यमकरोत् । ५।

श्री पराशरजी ने कहा—द्रुह्य का पुत्र बभ्रु हुआ और बभ्रु का पुत्र सेतु था । १-२॥ सेतु का आरब्ध, आरब्ध का गान्धार, गान्धार का धर्म, धर्म का घृत, घृत का दुर्दम और उसका पुत्र प्रचेता हुआ ॥३-४॥ प्रचेता का पुत्र शत-धर्म हुआ, जो कि बाद में होने वाले स्लेच्छो का अधिपति हो गया ॥५॥



## अठारहवाँ अध्याय

ययातिश्चतुर्थपुत्रस्यानोस्सभानलचक्षुः परमेपुसंज्ञास्त्रयः पुत्रा  
वभूवुः । १। सभानलपुत्रः कालानलः । २। कालानलात्सृञ्जयः । ३। सृञ्जयात्  
पुरञ्जयः । ४। पुरञ्जयाञ्जनमेजयः । ५। तस्मान्महाशालः । ६। तस्माच्च  
हामनाः । ७। तस्मादुशीनरतिति क्षूद्रो पुत्रावुत्पन्नौ । ८।

श्री पराशरजी ने कहा—ययाति का जो चौथा पुत्र अनु था, उसके तीन पुत्र हुये—सभानल, चक्षु और परमेयु । सभानल का पुत्र कालानल हुआ । १-२॥ कालानल का पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का पुरजय पुरजय का जनमेजय, जनमेजय का महाशाल, महाशाल का महामना और महामना के दो पुत्र हुये—उशीनर और तितिधु । ३-८॥

उशीनरस्यापि शिविनृगनरकृमिवर्मस्याः पञ्च पुत्रा बभूवुः । १॥  
 पृषदर्मसुवीरकेकयमद्रकाश्चत्वारश्शिविपुत्राः । १०॥ तितक्षोरपि रशद्रयः  
 पुत्रोऽभूत् । ११॥ तस्यापि हेमो हेमस्यापि सुतपाः सुतपसश्च  
 बलिः । १२॥ यस्य क्षेत्रे दीर्घतमसाङ्गवङ्गकलिङ्गसृष्ट्यपौण्ड्राख्यं बालेयं  
 क्षत्रमजन्यत । १३॥ तन्नामसन्ततिसंज्ञाश्च पञ्चविपया बभूवुः । १४॥  
 अङ्गादनपानस्ततो दिविरथस्तस्माद्धर्मरथः । १५॥ ततश्चित्ररथो रोमपा-  
 दसंज्ञ । १६॥ यस्य दशरथो मित्रं जज्ञे । १७॥ यस्याजपुत्रो दशरथश्शान्तां  
 नाम कन्यामनपत्स्य दुहितृत्वे युयोज । १८॥

उशीनर के पाँच पुत्र हुये, जिनके नाम शिवि, नृग, नर, कृमि और वर्म थे ॥१॥ शिवि के पृषदर्म, सुवीर, केकय और मद्रक नामक चार पुत्र हुये ॥१०॥ तितिधु का पुत्र रशद्रय हुआ, उसका हेम नामक पुत्र हुआ । हेम का सुतपा और सुतपा का पुत्र बलि हुआ ॥११-१२॥ इस बलि की रानी के उदर में दीर्घतमा नामक मुनि ने गर्भ स्थापित कर अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सृष्ट्य और पौण्ड्र नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥१३॥ इनके नामों पर पाँच देशों का वंश ही नाम पड़ा ॥१४॥ अग का पुत्र अनपान हुआ, अनपान का दिविरथ और दिविरथ का पुत्र धर्मरथ हुआ ॥१५॥ धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ हुआ, जिसको रोमपाद भी कहा गया ॥१६॥ इस रोमपाद के मित्र अज-पुत्र दशरथ हुये, जिन्होंने रोमपाद के निःसंतान होने के कारण उसे अपनी कन्या शान्ता गोद दे दी थी ॥१७-१८॥

रोमपादान्चतुरङ्गस्तस्मात्पृथुलाक्षः । १९॥ ततश्चम्पो यश्चम्पां  
 निवेशयामास । २०॥ चम्पस्य हर्यङ्गोनामात्मजोऽभूत् । २१॥ हर्यङ्गाद्भद्ररथो  
 भद्ररथाद्बृहद्रथो बृहद्रथाद्बृहत्कर्मा बृहत्कर्मणश्च बृहद्भानुस्तस्माच्च

वृहन्मना वृहन्मनसो जयद्रथ ॥२२॥ जयद्रथो ब्रह्मक्षत्रान्तरालसम्भूत्या  
पत्न्या विजय नाम पुत्रमजीजनत् ॥२३॥ विजयश्च धृति पुनमवाप ॥२४॥  
तस्यापि धृतव्रत पुनोऽभूत् ॥२५॥ धृतव्रतात्सत्यवर्मा ॥२६॥ सत्यकर्मण-  
स्त्वतिरथ ॥२७॥ यो गङ्गाङ्गतो मञ्जूपागत पृथापविद्ध कर्ण पुनमवाप  
॥२८॥ कर्णाद्वृषसेन इत्येतदन्ता अङ्गवश्या ॥२९॥ अतश्च पुरुवश  
श्रोतुमर्हसि ॥३०॥

किर रोमपाद वा पुत्र चतुरग और उसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ ॥१६॥  
पृथुलाक्ष वा पुत्र चम्प हुआ, जिसने चम्पापुरी को बसाया ॥२०॥ चम्प का पुत्र  
हर्यग हुआ । हर्यग का भद्ररथ, भद्ररथ वा बृहद्रथ, बृहद्रथ का बृहत्कर्मा, बृह-  
त्कर्मा का बृहद्भानु, बृहद्भानु का वृहन्मना और वृहन्मना का पुत्र जयद्रथ हुआ  
॥२१-२२॥ जयद्रथ की उत्पत्ति ब्राह्मण और क्षत्रिय के ससर्ग से हुई ॥२३॥  
विजय का पुत्र धृति था, उसका पुत्र धृतव्रत हुआ ॥२४-२५॥ धृतव्रत का पुत्र  
सत्यकर्मा और सत्यकर्मा का पुत्र अतिरथ हुआ, जिसने पृथा द्वारा प्रवाहित किये  
कर्ण को गंगा स्नान के समय पुत्र रूप में प्राप्त किया था । इस कर्ण का पुत्र  
वृषसेन हुआ । अगवश का धर्मेन बड़ा पूर्ण हो गया । अब पुरुवश का धर्मेन  
करता हूँ, उसे सुनो ॥२६-३०॥



## उन्नीसवाँ अध्याय

पुरोजैनमेजयस्तस्यापि प्रचिन्वान् प्रचिन्वत प्रवीर प्रवीरान्म-  
नस्युर्मनस्योश्चाभयदस्तस्यापि सुद्युस्तुद्योर्बहुगतस्तस्यापि सयातिस्त-  
यातिरहयातिस्ततो रोद्राश्च ॥१॥

ऋतेपुक्षेपुस्थण्डिलेपुकृतेपुजलेपुधर्मपुधृतेपुस्थलेपुसन्नतेपुवनेपु-  
नामानो रोद्राश्चस्य दश पुत्रा बभूवुः ॥२॥ ऋतेपोरन्तिनार पुनोऽभूत्  
॥३॥ सुमतिमप्रतिरथ ध्रुव चाप्यन्तिनार पुत्रानवाप ॥४॥ अप्रतिरथस्य

कण्व. पुनोऽभूत् ॥१॥ तस्यापि मेधातिथि ॥६॥ यत् काण्वायना द्विजा  
वभूवु ॥७॥ अप्रतिरथस्यापर पुनोऽभूदेलीन ॥८॥ ऐलीनस्य  
दुष्यन्ताद्याश्रत्वार पुत्रा वभूवु ॥९॥ दुष्यन्ताच्चक्रवर्ती भरतोऽभूत् ॥१०॥  
यन्नामहेतुर्देवैश्श्लोको गीयते ॥११॥

माता भस्त्रा पितु. पुत्रो येन जात स एव स ।

भरस्व पुत्र दुष्यन्त मावमस्थाश्शकुन्तलाम् ॥१२॥

रेतोधा पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।

त्व चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥१३॥

श्री पराशरजी ने कहा—पुरु का पुत्र जनमेजय हुआ । जनमेजय का  
पुत्र प्रचिवाद् और उसका पुत्र प्रवीर हुआ । प्रवीर का मनस्यु, मनस्यु का  
अभयद, अभयद का सुद्यु और सुद्यु का बहुगन हुआ । बहुगन से सयाति की  
उत्पत्ति हुई तथा सयाति से अह्यानि और अह्याति से रौद्राश्व का जन्म हुआ  
॥११॥ रौद्राश्व के दस पुत्र हुये—ऋतेयु, क्रमेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जनेयु,  
धर्मेयु, धृतेयु, स्थनेयु, सजनेयु और वनेयु उनके नाम थे ॥१२॥ ऋतेयु के पुत्र का  
नाम अन्तिनार और अन्तिनार के सुमति अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्र  
हुये ॥१३॥ इनमे से अप्रतिरथ के पुत्र का नाम कएव था, जिससे मेधानिधि  
उत्पन्न हुआ । इसी की संतान काएवायन नामक ब्राह्मण हुये ॥१४-७॥ अप्रतिरथ  
का द्वितीय पुत्र ऐलीन हुआ, जिसके दुष्यन्तादि चार पुत्र उत्पन्न हुये ॥८-९॥  
दुष्यन्त का पुत्र भरत हुआ, यह चक्रवर्ती राजा था, जिसके विषय मे देवताओं  
ने गाया था ॥१०-११॥ माना के चर्म धौहनी के सगान होने के कारण पुत्र  
पर पिता का ही अधिकार होता है । पुत्र जिसके द्वारा जन्म पाता है उसी  
पिता का रूप होता है । ह दुष्यन्त ! शकुन्तला का तिरस्कार न कर इस पुत्र का  
पालन करो । क्योंकि अग्ने दीर्घ से उत्पन्न हुआ पुत्र ही अग्ने पिता का यमा-  
लय से निकालता है । शकुन्तला का यह कथन सत्य है कि इस पुत्र का आधान  
तुम्ही ने किया है ॥१२-१३॥

भरतस्य पत्नीनये नव पुत्रा वभूवु ॥१४॥ नैते ममानुरुष्या  
इत्यभिहितास्तन्मातर परित्यागभयात्तत्पुत्राञ्छब्धु ॥१५॥ ततोऽस्य

वितथे पुत्रजन्मनि पुत्रायिनो मरुत्सोमयाजिनो दीर्घतमसः  
पाण्ण्यपास्ताद्वृहस्पतिवोर्यादुतथ्यपत्न्यां भमतायां समुत्पन्नो  
भरद्वाजाख्यः पुत्रो मरुद्भिर्दत्तः ।१६। तस्यापि नामनिर्वच-  
नश्लोकः पठ्यते ।१७।

मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं वृहस्पते ।

यातो यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ।१८।

भरत की तीन भाषाएँ थी, उन्होंने नौ पुत्र उत्पन्न किये ॥१४॥ भरत ने जब उन्हें अपने अनुरूप न बताया तो उनकी माताओं ने अपने परित्याग किये जाने की आशंका से, उन पुत्रों की हत्या कर दी ॥१५॥ इस प्रकार पुत्रोत्पत्ति के उपाय होने पर पुत्रहीन भरत ने मरुत्सोम नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया । उस यज्ञ की समाप्ति पर मरुद्गण ने भरत को भरद्वाज नामक एक दिग्धु प्रदान किया । यह बालक वृहस्पतिजी के वीर्य में उत्पन्न-पत्नी भमता के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।१६। उसके नामकरणके विषय में एक श्लोक प्रचलित है ।१७। हे मूढे ! यह पुत्र द्वाज अर्थात् हम दोनों में उत्पन्न हुआ है, इसलिए तू इसका भरण कर । इसके उत्तर में भमता ने कहा था हे वृहस्पते ! यह पुत्र द्वाज है, इसका भरण तुम करो । इस प्रकार विवाह करते हुए माता-पिताओं के जाने पर भरण और द्वाज शब्दों से उसका नाम भरद्वाज हुआ ॥१८॥

भरद्वाजस्त वितथे पुत्रजन्मनि मरुद्भिर्दत्तः ततो वितथसंज्ञाम-  
वाप ।१९। वितथस्यापि मनुष्यः पुत्रोऽभवत् ।२०। वृहत्क्षत्रमहावीर्यनरगर्गा  
अभवन्मनुषुपुत्राः ।२१। नरस्यसङ्कृतिस्सङ्कृतेषु रूपातिरितिदेवौ ।२२।  
गर्गाच्छिनिः ततश्च गार्गाश्शैल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो बभूवुः ।२३।  
महावीर्यान्चिदुरुक्षप्रो नाम पुत्रोऽभवत् ।२४। तस्य अय्यारुणिः पुष्क-  
रिण्यो कपिश्च पुत्रत्रयमभूत् ।२५। तच्च पुत्रत्रितयमपि पश्चाद्विप्रतामुप-  
जगाम ।२६। वृहत्क्षत्रस्य सुहोत्रः ।२७। सुहोत्राद्वस्ती य इव हस्तिनापुर-  
मावासयामास ।२८।

पुत्रोत्पत्ति के वितथ (निष्कन) होने पर मरुद्गण ने भरत को भरद्वाज प्रदान किया था, इसलिये उसे वितथ भी कहा गया ॥१९॥ वितथ के

पुत्र का नाम मन्धु था, जिसके बृहत्क्षत्र, महावीर्य नर और गर्गादि अनेक पुत्र हुये ॥२०-२१॥ नर का पुत्र सकृति हुआ, सकृति के दो पुत्र गुरुप्रीति और रन्ति-  
देव हुये ॥२२॥ गमं से शिनि हुआ, उससे गार्ग्य और शैव नामक प्रसिद्ध क्षत्रो-  
पेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥२३॥ महावीर्य के पुत्र का नाम दुक्षय हुआ ॥२४॥ दुक्षय के अग्न्याहुति पुष्करिण्य और कपि नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥२५॥ कालान्तर में यह तीनों पुत्र ब्राह्मण हो गये ॥२६॥ बृहत्क्षत्र का पुत्र सुहोत्र हुआ । सुहोत्र के पुत्र हस्ती ने ही हस्तिनापुर नाम का नगर बसाया ॥२७-८॥

अजमीढद्विजमीढबृहमीढाश्रयो हस्तिनस्तनया ॥२९॥ अजमीढाकण्व  
॥३०॥ कण्वान्मेधातिथि ॥३१॥ यत काण्वायना द्विजा ॥३२॥ अजमीढ-  
स्यान्य पुनो बृहदिपु ॥३३॥ बृहदिपुर्बृहदनुर्बृहदनुपश्च बृहत्कर्मा  
ततश्च जयद्रथ स्तस्मादपि विश्वजित् ॥३४॥ ततश्च सेनजित् ॥३५॥  
रुचिराश्वकाश्यदृढहनुवत्सहनुसशासेनजित् पुनः ॥३६॥ रुचिराश्वपुन  
पृथुसेन पृथुसेनात्पार ॥३७॥ पाराशील ॥३८॥ तस्यैकशत पुत्राणाम्  
॥३९॥ तेषां प्रधान काम्पित्याधिपतिस्समर ॥४०॥ समरस्यापि पारसुपा-  
रसदश्वाश्रय पुत्रा ॥४१॥ सुपारात्पृथु पृथोऽसुकृतिस्ततो विभ्राज ॥४२॥  
तस्माच्चाणुह ॥४३॥ यश्शुकदुहितर कीर्ति नामोपयेमे ॥४४॥ अणुहादन्न-  
ह्यदत्त ॥४५॥ ततश्च विष्वक्सेनस्तस्मादुदक्सेन ॥४६॥ भल्लाभस्तस्य  
चात्मज ॥४७॥

हस्ती के अजमीढ, द्विजमीढ और बृहमीढ नामक तीन पुत्र हुए । अजमीढ का  
पुत्र कण्व और कण्व का पुत्र मेधातिथि हुआ, जिसके कारणामन ब्राह्मणों की  
उत्पत्ति हुई ॥२९-३२॥ अजमीढ का द्वितीय पुत्र बृहदिपु हुआ ॥३३॥ उनका  
पुत्र बृहदनु हुआ, बृहदनु का बृहत्कर्मा तथा बृहत्कर्मा का जयद्रथ था । जयद्रथ  
से विश्वजित् और विश्वजित् सेनजित् हुआ । सेनजित् के चार पुत्र हुए जिनके  
नाम रुचिराश्व, काश्य, दृढहनु और वत्सहनु थे ॥३४-३६॥ रुचिराश्व का पृथु-  
सेन, पृथुसेन का पार और पार का पुत्र नील हुआ । इसी नील के सो पुत्र हुये  
थे जिनमें से एक काम्पित्याधिपति समर प्रमुख था ॥३७-४०॥ समर के तीन

पुत्र थे—पार, मुपार और सदश्व ॥४१॥ सुपार का पुत्र पृथु, पृथु का मुकृति, मुकृति का विभ्राज और विभ्राज का अणुह नामक जो पुत्र हुआ, उसने शुक्र-पुत्री कीर्ति का पाणिग्रहण किया था ॥४२-४४॥ अणुह का पुत्र वह्मरत्त हुआ, जिससे विष्वक्सेन, विष्वक्मेन से उदक्मेन हुआ । उदक्मेन का पुत्र भलनाभ हुआ ॥४५-४७॥

द्विजमीढस्य तु यवीनरसंज्ञः पुत्रः । ४८। तस्यापि धृतिमांस्तस्माच्च सत्यधृतिस्ततश्च दृढनेमिस्तस्माच्च सुपाश्वंस्ततस्सुमतिस्ततश्च सन्नतिमान् । ४९। सन्नतिमतः कृतः पुत्रोऽभूत् । ५०। यं हिरण्यनाभो योगमध्यापयामास । ५१। यश्चतुर्विंशतिं प्राच्यसामगानां संहिताश्चकार । ५२। कृताञ्चोग्रायुधः । ५३। येन प्राचुर्येण नीपक्षयः कृतः । ५४। उग्रायुधः क्षेम्यः क्षेम्यात्सुधीरस्तस्माद्रिपुञ्जयस्तस्माच्च बहुरथ इत्येते पौरवाः । ५५।

श्रजमीढस्य नलिनी नाम परनी तस्यां नीलसंज्ञः पुत्रोऽभवत् ॥५६॥  
तस्मादपि शान्तिः शान्तेस्सुशान्तिस्सुशान्तेः पुरज्जयस्तस्माच्च ऋक्षः  
॥५७॥ ततश्च ह्यैश्वर्यः ॥५८॥ तस्मान्मुद्रलसृज्जयवृहदिपुयवीनरकाम्पित्य-  
संज्ञाः पञ्चानामेव तेषां विषयाणां रक्षणायालमेते मत्पुत्रा इति  
पित्राभिहिताः पाञ्चालाः ॥५९॥

द्विजमीढ का पुत्र यशोतर हुआ ॥४८॥ उसका पुत्र धृतिमान्, धृतिमान् का सत्यवृत्ति, सत्यवृत्ति का दृढनेमि, दृढनेमि का मुपाश्व, मुपाश्व का सुमति, सुमति का सन्नतिमान् और मन्निमान् का पुत्र कृन् हुआ । हिरण्यनाभ ने इस कृन् को योग विद्या सिखाई और फिर इमने प्राच्य सामग्य श्रुतियों की चौबीस संहिताओं की रचना की ॥४९-५२॥ कृन् का पुत्र उषायुध हुआ, जिसने मनेको नीपवशीय क्षत्रियों का सहार किया था ॥५३-५४॥ उषायुध का पुत्र क्षेम्य हुआ, क्षेम्य का सुगीर, सुगीर का रिपुञ्जय और रिपुञ्जय का बहुरथ हुआ । यह सब राजाएँ पुरवशीय हुए ॥५५॥ अश्वमीढ की ननिनी नाम की पत्नी से नील नामक एक पुत्र हुआ ॥५६॥ नील का पुत्र शान्ति, शान्ति का सुशान्ति, सुशान्ति का परञ्जय, परञ्जय का ऋक्ष और ऋक्ष का पुत्र हर्यश्व हुआ ॥५७-५८॥ हर्यश्व

के पाँच पुत्र हुए उनके नाम मुद्गल, सृञ्जय बृहदिषु, यवीवर और काम्पित्य थे । पिता ने अपने उन पुत्रों को अपने आवीन पाँचों देशों की रक्षा में समर्थ बताया, इसलिए वे 'पाञ्चाल' कहे जाने लगे ॥५६॥

मुद्गलाच्च मोद्वल्या. क्षतोपेता द्विजातयो बभूवुः । ६०। मुद्गलाद्-  
बृहदश्वः । ६१। बृहदश्वदिवोदासोऽहल्या च मिथुनमभूत् । ६२। शरद्वत-  
श्चाहल्याया शतानन्दोऽभवत् । ६३। शतानन्दात्सत्यधृतिर्धनुर्वेदान्तगो जज्ञे  
। ६४। सत्यधृतेर्वराप्सरसमुर्वशी दृष्ट्वा रेतस्कन्नन्शरस्तम्बे पपात । ६५।  
तच्च द्विधागतमपत्यद्वय कुमार. कन्या चाभवत् । ६६। तौ च मृगयामुप-  
यातश्शान्तनुर्दृष्ट्वा कृपया जग्राह । ६७। ततः कुमार. कृपः कन्या च्चाश्व-  
त्थाम्नो जननी कृपी द्रोणाचार्यस्य पत्न्यभवत् । ६८।

मुद्गल से मोद्वल नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥६०॥ मुद्गल का बृहदश्व नामक जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उससे देवोदास नामक एक पुत्र और अहिल्या नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई ॥६१-६२॥ उमी अहिल्या के गर्भ से गौतम द्वारा शतानन्द उत्पन्न हुआ ॥६३॥ उस शतानन्द का पुत्र धनुर्वेद का पारदर्शी सत्यधृति नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ एक बार सत्यधृति ने अश्वरा श्वेत उर्वशी को देखा तो उसके प्रति कामासक्त होने से उनका वीर्य स्खलित होकर सरकण्डे पर जा गिरा ॥६५॥ उसके वहाँ दो भागों में विभक्त होने पर पुत्र-पुत्री रूप दो सतानें उत्पन्न हो गई ॥६६॥ राजा शान्तनु जब मृगया के लिए वन में गये थे, तब उन्हें अनायावस्था में देखकर कृपा-पूर्वक अपने घर ले गये, इससे पुत्र का नाम 'कृ' और कन्या का नाम 'कृपी' रखा गया, वही बाद में अश्वत्थामा को जन्म देने वाली द्रोणाचार्य की भार्या हुई ॥६७-६८॥

दिवोदासस्य पुत्रो मित्रायु । ६९। मित्रायोश्च्यवनो नाम राजा  
। ७०। च्यवनात्सुदास सुदासात्सौदास. सौदासात्सहदेवस्तस्यापि सोमकः  
। ७१। सोमकाज्जन्तु पुनश्चतुर्ज्येष्ठोऽभवत् । ७२। तेषां यवीयान् पृथक्.  
पृथक्तादद्रुपदस्तस्माच्च वृष्टधुम्नस्ततो घृष्टकेतु । ७३।  
अजमीढस्यान्य ऋक्षनामा पुत्रोऽभवत् । ७४। तस्य सवरणः । ७५। सवर-  
णात्कुरु । ७६। य इदं धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं चकार । ७७। सुवतुर्जह्म परीक्षित-



मुखाः कुरोः पुत्रा वभूवुः ॥७८॥ सुधनुषः पुत्रस्सुहोत्रस्तस्माच्च्यवनश्च्य-  
वनात् कृतकः ॥७९॥ ततश्चोपरिचरो वसुः ॥८०॥ बृहद्रथप्रत्यग्रकुशाम्बु-  
केलामात्स्यप्रमुखा वसो. पुत्रास्सप्तजायन्त ॥८१॥ बृहद्रथात्कुशाग्रः  
कुशाग्रादवृषभो वृषभात् पुष्पवान् तस्मात्सत्यहितस्तस्मात्सुधन्वा तस्य  
च जतुः ॥८२॥ बृहद्रथान्चान्यदशकलद्वयजन्मा जरया संहितो जरासन्ध-  
नामा ॥८३॥ तस्मात्सहदेवस्सहदेवात्सोमपस्ततश्च श्रुतिथवाः ॥८४॥  
इत्येते मया मागधा भूपाला कथिताः ॥८५॥

दिवोदास का पुत्र मित्रायु था, जिसका पुत्र राजा च्यवन हुआ ॥६९-  
७०॥ च्यवन का पुत्र सुदाम, सुदाम का सौदास, सौदास का सहदेव, और सह-  
देव का सोमक हुआ । इस सोमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुये, जिनमे ज्येष्ठ पुत्र का  
नाम जम्तु और सबसे छोटे पुत्र का नाम पृपत था । पृपत का पुत्र द्रुपद हुआ ।  
द्रुपद का घृष्टद्युम्न और घृष्टद्युम्न का पुत्र घृष्टकेतु हुआ ॥७१-७३॥ आठमीक  
के ऋक्ष नामक तीसरे पुत्र का सवरण नामक तनय हुआ । सवरण का पुत्र  
क्रुश हुआ, जिसने धर्मक्षेत्र, क्रुशक्षेत्र स्थापित किया ॥७४-७७॥ क्रुश के सुधनु,  
जह्न और परीक्षित आदि अनेक पुत्र हुये ॥७८॥ सुधनु का पुत्र सुहोत्र हुआ ।  
सुहोत्र का च्यवन, उमका कृतक और उसका पुत्र उपरिचर वसु हुआ ॥७९-८०॥  
वसु के बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाम्बु, कुचेस, मात्स्य आदि सात पुत्र हुये ॥८१॥ इनमे  
से बृहद्रथ का कुशाग्र हुआ । कुशाग्र का वृषभ, वृषभ का पुष्पवान्, पुष्पवान्  
का सत्यहित, सत्यहित का सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र जतु हुआ ॥८२॥ उसी  
बृहद्रथ के एक पुत्र और हुआ था जो दो खण्डों में था तथा जरा द्वारा जोड़ देने  
पर वह जरासन्ध के नाम में प्रतिष्ठ हुआ ॥८३॥ उस जरासन्ध का पुत्र सहदेव  
हुआ, सहदेव का सोमप और सोमप का पुत्र श्रुतिथवा हुआ ॥८४॥ इस प्रकार  
मागध भूपालो का यह वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया है ॥८५॥



## वीसवाँ अध्याय

परीक्षितो जनमेजयश्चतुर्सेनोऽग्रसेनभीमसेनाश्चत्वारःपुत्राः ।१।  
जह्नुस्तु सुरयो नामात्मजो बभूव ।२। तस्यापि विदूरथः ।३। तस्मात्सार्व-  
भौमस्सार्वभौमाज्जयत्सेनस्तस्मादाराधितस्ततश्चायुतायुरयुतायोरक्रो-  
धनः ।४। तस्माद्देवातिथिः ।५। ततश्च ऋक्षोऽन्योऽभवत् ।६। ऋक्षाद्धी-  
मसेनस्ततश्च दिलीपः ।७। दिलीपात् प्रतीपः ।८।

तस्यापि देवापिशान्तनुबाह्लीकसज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।९।  
देवापिर्वाल एवारण्यं विवेश ।१०। शान्तनुस्तु महीपालोऽभूत् ।११।  
अयं च तस्य श्लोकः पृथिव्यां गीयते ।१२।

य यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ।

शान्तिं चाप्नोति येनाग्रथां कर्मणा तेन शान्तनुः ।१३।

श्री पराशरजी ने कहा—परीक्षित के चार पुत्र हुए, जिनके नाम जन-  
मेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन थे ॥१॥ जह्नु के सुरथ नाम का एक ही  
पुत्र था ॥२॥ सुरथ का पुत्र विदूरथ हुआ । विदूरथ का पुत्र सार्वभौम, सार्व-  
भौम का जयत्सेन, जयत्सेन का आराधित, आराधित का अयुतायु और अयुतायु  
का पुत्र अक्रोधन हुआ ॥३-४॥ अक्रोधन का पुत्र देवातिथि और देवातिथि का  
पुत्र द्वितीय ऋक्ष था ॥५-६॥ ऋक्ष का पुत्र भीमसेन, भीमसेन का दिलीप और  
दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ ॥७-८॥ प्रतीप के तीन पुत्र देवापि, शान्तनु और  
बाह्लीक हुए ॥९॥ इनमें से देवापि के बाल्यकाल में बनबासी हो जाने के कारण  
शान्तनु राजा हुआ ॥१०-११॥ उसके विषय में पृथिवी पर यह श्लोक गाया  
जाता है—यह जिस जिसको छू लेते वही-वही वृद्ध पुरुष भी युवावस्था को प्राप्त  
हो जाते थे और अन्य सभी प्राणी उनके स्पर्श को पाकर महाम् शान्ति को  
प्राप्त होते थे, इसीलिए वे 'शान्तनु' नाम से विख्यात हुये थे ॥१२-१३॥

तस्य च शान्तनो राष्ट्रे द्वादशवर्षाणि देवो न वर्षं ॥१४॥  
ततश्चाशेषराष्ट्रविनाशमवेक्ष्यासौ राजा ब्राह्मणानपृच्छत् कस्मादस्माकं  
राष्ट्रे देवो न वर्षति को ममापराध इति ॥१५॥ ततश्च तमूचुर्ब्राह्मणाः  
॥१६॥ अग्रजस्य ते हीयमवनिस्त्वया सम्भुज्यते अतः परिवृत्तात्वमित्यु-  
क्तस्स राजा पुनस्तानपृच्छत् ॥१७॥ किं मयात्र विधेयमिति ॥१८॥

ततस्ते पुनरप्यूचुः ॥१९॥ यावद्देवापि न पतनादिभिर्दोषैरभिभूयते  
तावदेतत्तास्यार्हं राज्यम् ॥२०॥ तदलमेतेन तु तस्मै दीयतामित्युक्ते तस्य  
मन्त्रिप्रवरेणाश्वमारिणा तथारण्ये तपस्विनो वेदवादविरो-  
धवत्तारः प्रयुक्ताः ॥२१॥ तैरस्याप्यतिश्रुजुमतेर्महीपतिपुत्रस्य बुद्धिर्वेद-  
वादविरोधमार्गानुसारिण्यक्रियत ॥२२॥

शान्तनु के शासन काल में एक समय बारह साल पर्यन्त बरसात नहीं  
हुई ॥१४॥ तब अपने समस्त राज्य को समाप्त होता देखकर नृप शान्तनु ने  
विशेष से पूछा, "मेरे देश में वर्षा का अभाव क्यों है ? इसमें मेरी क्या त्रुटि  
है ? ॥१५॥ ब्राह्मण बोले— "जिस राज्य को आप भोग रहे हैं, वह आपके  
प्येष्ट भ्राता, वा है, इसलिए आप तो केवल सरलक माय हैं ।" यह सुन  
कर शान्तनु ने पुनः पूछा— "इस परिस्थिति में अब मुझे क्या करना अभीष्ट है ?  
॥१६-१७॥ ब्राह्मणों ने उत्तर दिया— "आपके ज्येष्ठ भ्राता देवापि किसी प्रकार  
पतित या घनाचारी होकर राज्य से पदच्युत होने योग्य न हो, सब तक  
इस राज्य के अधिकारी यही हैं ॥१८-२०॥ इसलिये आप इस राज्य को अपने  
भाई को ही भोग दें, आपका इसने कोई सम्बन्ध नहीं । ब्राह्मणों के ऐम वचन  
सुनकर महाराज शान्तनु के मन्त्री अश्वमारी ने वेदवाद के विरोधी तपस्वियों  
को मन में भोज दिया ॥२१॥ जिन्होंने यन से पट्टेचकर महान् सरल हृदय राज-  
कुमार देवापि को बुद्धि से भी वेदवाद के विरुद्ध आकृष्ट किया ॥२२॥

राजा च शान्त मुद्विजवचनोत्पन्नपरिदेवनशोकस्तान् ब्राह्मणान-  
ग्रतः कृत्वाग्रजस्य प्रदानायारण्यं जगाम ॥२३॥ तदाश्रममुपगताश्च  
तमवनतमवनीपतिपुत्रं देवापिमुपतस्थुः ॥२४॥ ते ब्राह्मणा वेदवावानु-  
बन्धीनि वचांसि राज्यमग्रजेन कर्तव्यमित्ययं वन्ति  
तमूचुः ॥२५॥ असावपि देवापिर्वेदवाद विरोधयुक्तिदूषितमनेकप्रकारं

तानाह ॥२६॥ ततस्ते ब्राह्मणाश्शान्तनुमूत्रुः ॥२७॥ आगच्छ हे राजन्नलमश्रातिनिर्वन्धेन प्रशान्त एवासावनादृष्टिदोषः पतितोऽयमनादिकालमहितवेदवचनद्रूपणोच्चारणात् ॥२८॥ पतिते चाग्रजे नैव ते परिवेत्तृत्वं भवतीत्युक्तश्शान्तनुस्त्वपुरमागम्य राज्यमकरोत् ॥२९॥ वेदवादविरोधवचननोच्चारणद्रूपिते च तस्मिन्देवापो तिष्ठस्यपि ज्येष्ठभ्रातर्यखिलसस्यनिष्पन्नाये ववर्ष भगवान्पर्जन्यः ॥३०॥

दूसरी ओर ब्राह्मणों के वचन सुनकर दुःखित एवं शोकाकुल राजा शान्तनु ब्राह्मणों को मङ्ग लेकर अपने ज्येष्ठ भ्राता को राज्य सौंपने वन को गये ॥२३॥ वे सभी सरलमति विनीत व्यवहारी राजकुमार देवापि के आश्रम पर पहुँचे । जहाँ ब्राह्मण उन्हें समझाते रहे और “ज्येष्ठ भ्राता को ही राज्य करना चाहिये ।” आदि वेशी के अनुसार नीति एवं उपदेशपूर्ण वचन कहने लगे ॥२४-२५॥ लेकिन देवापि ने वेदनीति के विरुद्ध उनमें अनेक प्रकार से दूषित वचन कहे ॥२६॥ जिन्हें सुनकर शान्तनु से उन ब्राह्मणों ने कहा—हे नृप ! खलिये, अब अधिक आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है । आदि काल से आराध्य वेद वाक्यों के विरुद्ध दूषित वचन कहने से देवापि पतित हो गये हैं । अब आप चले अनावृष्टि का दोष समाप्त होकर आपके राज्य में वर्षा प्रारम्भ हो गई है ॥२७॥ चूँकि बड़ा भाई इस प्रकार पतित हो चुके हैं, इस कारण अब आप सरक्षक या परिवेत्ता मात्र नहीं हैं । फिर शान्तनु अपने राज्य को लौट आये और शासन करने लगे ॥२८॥ वेदवाद के विरोध में दूषित वचनों के प्रयोग करने के कारण देवापि पतित हो गये और इस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता के रहते हुये भी छोटे भाई के शासन में छायाघ्न उत्पादन हेतु बादल बरसने लगे ॥३०॥

वाह्लीकात्सोमदत्तः पुत्रोऽभूत् ॥३१॥ सोमदत्तस्यापि भूरिभूरिश्रवः शल्यसंज्ञास्त्रयः पुत्रा वभूवुः ॥३२॥ शान्तनोरप्यभरनद्यां जाह्नव्यामुदारकीर्तिरशेषशास्त्रार्थविद्भीष्मः पुत्रोऽभूत् ॥३३॥ सत्यवत्यां च चित्राङ्गदविचित्रवीर्यौ द्वौ पुत्रावुत्पादयामास शान्तनुः ॥३४॥ चित्राङ्गदस्तु वाल एव चित्राङ्गदेनैव गन्धर्वैणाहवे निहतः ॥३५॥ विचित्रवीर्योऽपि काशिराजतनये अम्बिकाम्बालिके उपयेमे ॥३६॥ तदुपभोगाति-

खेदाच्च यश्मरणा गृहीत- स पञ्चत्वमगमत् ॥३७॥ सत्यवतीनियोगाच्च मत्पुत्र- कृष्णद्वैपायनो मातुर्वचनमनतिक्रमण त्रमिति कृत्वा विचित्र- वीर्यक्षेत्रेधृतराष्ट्रपाण्डू तत्प्रहितभुजिष्याया विदुर चोत्पादयामास ॥३८॥

बाह्याक का पुत्र सोमदत्त था और सोमदत्त के भूरि, भूरिश्वा एव शरप तीन पुत्र हुये ॥३१-३२॥ शान्तनु वः एक पुत्र भीष्म, जो कि अत्यन्त कीर्तिशाली एव समस्त शास्त्रों का विद्वान् था और गंगाजी से उत्पन्न हुआ था ॥३३॥ शान्तनु के दो अन्य पुत्र चित्रांगद एव विचित्रवीर्य सत्यवती से उत्पन्न हुये ॥३४॥ शान्तनु के पुत्र चित्रांगद को बाल्यकाल में ही चित्रांगद नामक एक गन्धर्व ने मार डाला था ॥३५॥ विचित्रवीर्य ने काशी नरेश की अम्बिका व अम्बालिका नामक कन्याओं में विवाह किया ॥३६॥ किन्तु पत्नियों अत्यधिक समर्ग में लम्नसीन रहने के कारण विचित्रवीर्य यक्ष्मा से पीडित होकर अकाल ही मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥३७॥ पाराशर जी बोले—इसके पश्चात् मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने सत्यवती एव अपनी माता के निर्देशानुसार विचित्र- वीर्य की पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्रों को जन्म दिया एव उनकी दासी से विदुर नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥३८॥

धृतराष्ट्रोऽपि गान्धारीं दुर्योधनदुःशासनप्रधान पुत्रशतमुत्पाद- यामास ॥३९॥ पाण्डोरप्यरण्ये मृगयायामृगिणापोपहतप्रजाजननसाम- र्थ्यस्य धर्मवायुशर्कर्युं धिष्ठिरभीमसेनार्जुना कुन्त्या नकुल सहदेवौ चाश्विन्या माद्रथा पञ्चपुत्रास्समुत्पादिता ॥४०॥ तेषां च द्रौपद्या पञ्चैव पुत्रा बभूवुः ॥४१॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविन्द्य- भीमसेनाच्छ्रुतसेन- श्रुतकीर्तिरर्जुनाच्छ्रुतानीकौ नकुलाच्छ्रुतकर्मा सहदेवात् ॥४२॥

अन्ये च पाण्डवानामात्मजास्तद्यथा ॥४३॥ यौधेयी युधिष्ठिराद्देवकं पुत्रमवाप ॥४४॥ हिडिम्बा घटोत्कच भीमसेनात्पुत्र लेभे ॥४५॥ काशी च भीमसेनादेव सर्वग सुतमवाप ॥४६॥ सहदेवाच्च विजया सुहोत्रं पुत्रमवाप ॥४७॥ रेणुमत्या च नकुलोऽपि निरमित्रमजीजनत् ॥४८॥

धृतराष्ट्र द्वारा गान्धारी से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९॥ वन में शिकार करते हुये एक बार एक श्वपि के साथ वे वारण

पाण्डु सतानोत्पत्ति के अयोग्य हो गये थे, तब उनकी पत्नी कुन्तीसे धर्म, वायु व इन्द्र द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम व अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए एवं उनको दूसरी पत्नी माद्री से दोनो अश्विनी कुमारों द्वारा नकुल व सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये और इस तरह पाण्डु के पांच पुत्र उत्पन्न हुये ॥४०॥ द्रौपदी से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव द्वारा पांच पुत्र उत्पन्न हुये ॥४१॥ युधिष्ठिर द्वारा प्रनिविन्व्य, भीमसेन द्वारा श्रुतसेन, अर्जुन द्वारा श्रुतकीर्ति, नकुल द्वारा श्रुतानीक एवं सहदेव द्वारा श्रुतकर्मा ने जन्म लिया ॥४२॥ उपरोक्त ऋषी के अनिरक्त भी पाण्डु-पुत्र पांडवों के अर्घ्य अनेक पुत्रों ने जन्म लिया ॥४३॥ युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी के गर्भ से देवक नामक पुत्र, हिडिम्बा से भीमसेन द्वारा घटोत्कच व काशी से सवर्ग नामक पुत्र, रेणुमती से नकुल द्वारा निरामित्र उत्पन्न हुआ ॥४४-४८॥

अर्जुनस्याप्युत्पन्ना नागकन्यायामिरावानामपुत्रोऽभवत् ॥४६॥  
मणिपुरपतिपुत्र्या पुत्रिकाधर्मेण बभ्रुवाहन नाम पुत्रमर्जुनोऽजनयत् ॥४७॥  
सुमद्राया चार्भकत्वेऽपि योऽस्तावतिबलपराक्रमस्समस्तारातिरथ-  
जेता सोऽभिमन्युरजायत ॥४८॥ अभिमन्योरुत्तराया परिक्षीणेषु  
कुरुक्षेत्रस्थामप्रयुक्तब्रह्मास्त्रेण गर्भं एव भस्मीकृतो भगवतस्सबलसुरा-  
सुरवन्दितचरणयुगलस्यात्मेच्छया कारणमानुषरूपधारिणोऽनुभावा-  
त्पुनर्जीवितमवाप्य परीक्षिञ्जते ॥४९॥ योऽयं साम्प्रतमेतद्भूमण्डलमख-  
ण्डितायतिधर्मेण पालयतीति ॥५०॥

अर्जुन द्वारा उसकी उस पत्नी नागकन्या उलूपी से इरावा उत्पन्न हुआ ॥४६॥ मणिपुरनरय की पुत्री से अर्जुन द्वारा पुत्रिका धर्म के अनुसर बभ्रु-  
वाहन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४७॥ अर्जुन द्वारा ही सुमद्रा से अभिम-  
न्यु का जन्म हुआ जो कि महापराक्रमी और धीरवान् था ॥४८॥ इसके पश्चात्  
अश्वत्थ मा के ब्रह्मास्त्र प्रहार से जो परीक्षित गर्भ में ही भस्मीभूत हो गये एवं  
कुत्कुन के छींछ हो गया तब अपनी इच्छा में ही मायारूपी मानव देह धारण  
करने वाले सम्पूर्ण गुरु-भसुरों द्वारा चरण वन्दित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के  
प्रभाव से परीक्षित पुनः जीवित हुआ और उस काल उसने उत्तरा के गर्भ से

अभिमन्यु द्वारा जन्म प्राप्त किया, जो कि इस प्रकार अब धर्मानुराग सहित समस्त भूमण्डल पर राज्य कर रहा है, जिससे कि भविष्य में भी उसका वैभव वैसा ही बना रहे ॥५२-५३॥

ॐ नमः शिवाय ॥

## इक्कीसवाँ अध्याय

अतः परं भविष्यानहं भूपालान्कीर्तयिष्यामि ।१। योज्यं साम्प्रतमवनीपतिः परीक्षितस्यापि जनमेजयश्रुतसेनोत्तमसेनभीमसेनाश्व-  
त्वारः पुत्रा भविष्यन्ति ।२। जनमेजयस्यापि शतानीको भविष्यति ।३। योऽसौ याज्ञवल्क्याद्वेदमधीत्य कृपादस्त्राण्यवाप्य विषमविषयविर-  
क्तचित्तवृत्तिश्च शौनकोपदेशदात्मज्ञानप्रवीणः परं निर्वाणमवाप्स्यति ।४। शतानीकादश्वमेधदत्तो भविता ।५। तस्मादप्यधिसीमकृष्णः ।६। अधिसीमकृष्णाग्निचक्रनुः ।७। यो गङ्गायापहृते हस्तिनापुरे कीशाम्ब्यां निवस्यति ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—अब मैं आपसे भविष्य में होने वाले राजाओं के विषय में वर्णन करूँगा ॥१॥ इस काल राज्य करने वाले महाराज परीक्षित के चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उत्तमसेन, भीमसेन होंगे ॥२॥ जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र हुआ, जिसने याज्ञवल्क मुनि से वेद-शिक्षा प्राप्त कर और कृप से दशशास्त्र विद्या प्राप्त करके महर्षि शौनक द्वारा आर्य ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेगा ॥३-४॥ शतानीक का अश्वमेधदत्त नामक पुत्र होगा ॥५। अश्व-मेधदत्त का पुत्र अधिसीम कृष्ण और अधिसीमकृष्ण का पुत्र निचक्रनु होगा, निचक्रनु गंगाजी द्वारा हस्तिनापुर बहा ले जाने पर कीशाम्बी में निवास करेगा ॥६-८॥

तस्याप्युष्णः पुत्रो भविता ।९। उष्णाद्विचित्ररथः ।१०। ततोऽप्युचिरथः ।११। तस्मादवृष्णिमांस्ततस्सुपेणस्तस्यापि सुनीयत्सुनीया-

नृपचक्षुस्तस्मादपि सुखावलस्तस्य च पारिप्लवस्ततश्च सुनयस्तस्यापि  
मेधावी । १२। मेधाविनो रिपुञ्जयस्ततो मृदुस्तस्माच्च तिग्मस्तस्मादबृह-  
द्रथो बृहद्रथाद्वसुदानः । १३। ततोऽपरश्शतानीकः । १४। तस्माच्चोदयन  
उदयनादहीनरस्ततश्च दण्डपाणिस्ततो निरमित्रः । १५। तस्माच्च  
क्षेमकः । १६। अत्राय श्लोकः । १७।

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो राजर्षिसत्कृतः ।

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थानं प्राप्स्यते कलौ । १८।

निचक्षु का पुत्र उष्ण, उष्ण का विचित्ररथ, विचित्ररथ से शुविरथ,  
शुविरथ से वृष्णिमान्, वृष्णिमान् से सुवेष, सुवेष से सुनीय, सुनीय से नृप, नृप  
से चक्षु, चक्षु से सुखावल, सुखावल से पारिप्लव, पारिप्लव से सुनय, सुनय से  
मेधावी, मेधावी से रिपुञ्जय, रिपुञ्जय से मृदु, मृदु से तिग्म तिग्म से बृहद्रथ,  
बृहद्रथ से वसुदान, वसुदान से द्वितीय शतानीक, शतानीक से उदयन, उदयन  
से अहीनर, अहीनर से दण्डपाणि, दण्डपाणि से निरमित्र एवं निरमित्र का  
पुत्रक्षेमक होगा । इस बारे में एक प्रतिष्ठित श्लोक है—॥१६-१७॥ वह वंश, जो कि  
ब्राह्मण और क्षत्रियो की उत्पत्ति का कारण तथा विभिन्न राजर्षियों से जिसकी  
सभा शोभायमान् रही है, वलियुग में राजा क्षेमक की उत्पत्ति के समय वह वंश  
नष्ट हो जायगा ॥१८॥



## वाईसवाँ अध्याय

अतश्चेदवाकवो भविष्या. पार्थिवाः कथ्यन्ते । १। बृहद्वलस्य पुत्रो  
बृहत्क्षणः । २। तस्मादुष्णस्तस्माच्च वत्सव्यूहस्ततश्च प्रतिव्योमस्तस्मा-  
दपि दिवाकरः । ३। तस्मात्सहदेवः सहदेवाद्बृहदश्वस्तत्सूनुर्भानुरथ-  
स्तस्य च प्रतीताश्वस्तस्यापि सुप्रतीकस्ततश्च मरुदेवस्ततः सुनक्षत्र-  
स्तस्मात्किन्नरः । ४। किन्नरादन्तरिक्षस्तस्मात्सुपर्णस्ततश्चामित्रजित्



१५। ततश्च बृहद्राजस्तस्यापि धर्मी धर्मिणः कृतञ्जयः । १६। कृतञ्जयाद्रण-  
ञ्जयः । १७। रणञ्जयात्सञ्जयस्तस्माच्छाक्यशाक्यच्छुद्धोदनस्तस्माद्राहुल-  
स्ततः प्रसेनजित् । १८। ततश्च शुद्रकस्ततश्च कुण्डकस्तस्मादपि सुरथः  
१९। तत्पुत्रश्च सुमित्रः । १०। इत्येते चेक्ष्वाकवो बृहद्बलान्वयाः । ११।

अत्रानुवशश्लोकः । १२।

इक्ष्वाकूणामय वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ।

यतस्त प्राप्य राजानं सस्या प्राप्स्यति वै कलौ । १३।

पराशरजी ने कहा—हे भूपते ! मैं अब भविष्य मे आने वाले इक्ष्वाकु  
वंशज राजाओं के दिपय मे कहता हूँ ॥१॥ बृहद्वल का पुत्र बृहत्क्षण, बृहत्क्षण  
का उरुक्षय, उरुक्षय का वरसव्यूह, वरसव्यूह का प्रतिघ्नोम, प्रतिघ्नोम का दिवा-  
कर, दिवाकर का सहदेव, सहदेव का बृहदध्व, बृहदध्व का भानुरथ, भानुरथ  
का प्रतीताश्व, प्रतीताश्व का सुप्रतीक, सुप्रतीक का महदेव, महदेव का सुनक्षत्र,  
सुनक्षत्र का किन्नर, किन्नर का अतरिक्ष, अतरिक्ष का सुपर्ण, सुपर्ण का अमि-  
त्रजित्, अमित्रजित् का बृहद्राज, बृहद्राज का धर्मी, धर्मी का कृतञ्जय, कृतञ्जय  
का रणञ्जय, रणञ्जय का सञ्जय, सञ्जय का शाक्य, शाक्य का शुद्धोदन,  
शुद्धोदन का राहुल, राहुल का प्रसेनजित्, प्रसेनजित् का शुद्रक, शुद्रक का कुण्डक,  
कुण्डक का सुरथ, एवं सुरथ का सुमित्र नामक पुत्र होगा । इक्ष्वाकु वंश मे  
यह सभी नूर बृहद्वल की सतानें होंगे ॥२-११॥ इक्ष्वाकु वंश के लिये एक श्लोक  
प्रसिद्ध है—“इक्ष्वाकु वंश का राज्य कलिपुग मे सुमित्र तर रहेगा, सुमित्र के  
जन्म के पश्चात् यह वंश समाप्त हो जायगा ॥१२-१३॥



## तेईसवाँ अध्याय

मागधानां बाह्द्वयानां भाविनामनुक्रमं कथयिष्यामि । १। अत्र

हि वंशे महाबलपराक्रमा जरासन्धप्रधाना बभूवुः । २।

जरासन्धस्य पुत्रः सहदेवः ।३। सहदेवात्सोमापि स्तस्य  
 श्रुतश्रवास्तस्याप्ययुतायुस्ततश्च निरमित्रस्तत्तनयस्सुनेत्रस्तस्मादपि  
 बृहत्कर्मा ।४। ततश्च सेनजित्ततश्च श्रुतयज्ञस्ततो विप्रस्तस्य च  
 पुत्रश्शुचिनामा भविष्यति ।५। तस्यापि क्षेम्यस्ततश्च सुव्रतस्सुव्रताद्धर्म-  
 स्ततस्सुश्रवाः ।६। ततो दृढसेनः ।७। तस्मात्सुबलः ।८। सुबलात्सुनीतो  
 भविता ।९। ततस्सत्यजित् ।१०। तस्माद्विश्वजित् ।११। तस्यापि  
 रिपुञ्जयः ।१२। इत्येते बाह्द्वया भूपतयो वर्षसहस्रमेकं भविष्यन्ति ।१३।

पराशर जी ने कहा—हे भूपते ! अब मैं आपसे मगधवश के प्रवर्तक  
 बृहद्रथ की भावी सन्तानों के विषय में कहता हूँ ॥१॥ इस वंश के महापराक्रमी  
 भीर तेजस्वी राजाओं में जरासन्ध बर्गरह राजागण प्रधान थे ॥२॥ जरासन्ध  
 का पुत्रसहदेव, सहदेव का सोमापि, सोमापि का श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा का अयुतायु,  
 अयुतायु का निरमित्र, निरमित्र का सुनेत्र, सुनेत्र का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का  
 सेनजित्, सेनजित् का श्रुतयज्ञ, श्रुतयज्ञ का विप्र, विप्र का शुचि नाम का  
 पुत्र होगा ॥४-५॥ फिर शुचि का क्षेम्य, क्षेम्य का सुव्रत, सुव्रत का धर्म, धर्म  
 का सुश्रवा, सुश्रवा का दृढसेन, दृढसेन का सुबल, सुबल का सुनीत, सुनीत का  
 सत्यजित् सत्यजित् का विश्वजित् एवं विश्वजित् का पुत्र रिपुञ्जय होगा  
 ॥६-१२॥ यह बृहद्रथ वंशीय राजा मगध में एक हजार वर्ष तक राज्य  
 करेंगे ॥१३॥



## चौबीसवाँ अध्याय

योऽयं रिपुञ्जयो नाम बाह्द्वयोऽन्त्यस्तस्यामात्यो मुनिको नाम  
 भविष्यति ।१। स चैनं स्वामित्रं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतनामानमभिप्रेक्ष्यति  
 ।२। तस्यापि वलाकनामा पुत्रो भविता ।३। ततश्च विशाखयूपः ।४।

तत्पुत्रो जनकः ।१५। तस्य च नन्दिवर्द्धनः ।१६। ततो नन्दी ।७।  
इत्येतेऽष्टत्रिंशदुत्तरमब्दशतं पञ्च प्रद्योताः पृथिवी भोक्ष्यति ।८।

ततश्च शिशुनाभः ।९। तत्पुत्रः काकवर्णो भविता ।१०। तस्य च  
पुत्रः क्षेमधर्मा ।११। तस्यापि क्षतौजाः ।१२। तत्पुत्रो विधिसारः  
।१३। ततश्चाजातशत्रुः ।१४। तस्मादर्भकः ।१५। तस्माच्चोदयनः ।१६।  
तस्मादपि नन्दिवर्द्धनः ।१७। ततो महानन्दी ।१८। इत्येते शिशुनाभा  
भूपालास्त्रीणि वंशतानि द्विपट्यधिकानि भविष्यन्ति ।१९।

श्री पराशरजी ने कहा — बृहद्रथ के वंश का अन्तिम राजा रिपुञ्जय  
होगा, जिसके मन्त्री का नाम चुनिक होगा ॥१॥ वह अपने स्वामी की हत्या  
करके अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनावेगा ॥२॥ प्रद्योत का पुत्र बलाक और  
बलाक का पुत्र विशाक्षयूष होगा ॥३-४॥ विशाक्षयूष का पुत्र जनक, जनक का  
नन्दिवर्द्धन और उसका पुत्र नन्दी होगा ॥५-७॥ प्रद्योत वंश के यह पाँच राजा  
एक ही छड़तालीस वर्ष तक पृथिवी का राज भोगेंगे ॥८॥ नन्दी का पुत्र शिशु-  
नाभ, शिशुनाभ का काकवर्ण और उसका पुत्र क्षेमधर्मा होगा ॥९-११॥ क्षेम-  
धर्मा का पुत्र क्षतौजा, उसका पुत्र विधिसार, उसका अजातशत्रु और  
उनका अर्भक होगा ॥१२-१५॥ अर्भक का पुत्र उदयन, उदयन का नन्दिवर्द्धन  
तथा नन्दिवर्द्धन का महानन्दी होगा ॥१६-१८॥ यह सब राजा शिशुनाभ वंश,  
के रहे जायेंगे और तीन सौ बासठ वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥१९॥

महानन्दिनस्ततश्शूद्रागर्भोऽर्ध्ववोऽतिलुब्धोऽतिबलो महापद्मनामा  
नन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविष्यति ।२०। ततः  
प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति ।२१। स चैकच्छत्रामनुल्लङ्घितशासनो  
महापद्मः पृथिवी भोक्ष्यते ।२२। तस्याप्यष्टौ सुतास्तुमाल्याद्या भवितारः  
।२३। तस्य महापद्मस्यानु पृथिवी भोक्ष्यन्ति ।२४। महापद्मपुत्राश्चैक  
वंशतमवनीपतयो भविष्यन्ति ।२५। ततश्च नव चैताग्रन्दात्रु कौटिल्यो  
ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति ।२६। तेषामभावे मौर्याः पृथिवी भोक्ष्यन्ति ।२७।  
कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति ।२८।

तस्यापि पुत्रो विन्दुसारो भविष्यति ।२९। तस्याप्यशोकवर्द्धन-

स्ततस्सुयशास्ततश्च दशरथस्ततश्च संयुतस्ततश्शालिशूकस्तस्मात्सोमशर्मा  
तस्यापि सोमशर्मणश्शतघन्वा ॥३०॥ तस्यापि बृहद्रथनामा भविता  
॥३१॥ एवमेते मौर्या दश भूपतयो भविष्यन्ति श्रद्धशतं सप्तत्रिंशदु-  
त्तरम् ॥३२॥

महानन्दी का पुत्र महापद्म द्यूता के गर्भ से उत्पन्न होकर परशुरामजी  
के समान सब क्षत्रियों का शत्रु करने वाला होगा ॥२०॥ उस समय से उसके  
जैसे द्यूत राजा पृथिवी पर राज्य करेंगे । वह महापद्म इस सम्पूर्ण पृथिवी को  
बिना किसी प्रकार की बाधा के एक क्षत्र भोगेगा ॥२१-२२॥ उनके सुमाली  
आदि आठ पुत्र उत्पन्न होंगे ओ उसकी मृत्यु होने पर शासन करेंगे ॥२३-२४॥  
महापद्म और उनके पुत्रों का शासन-काल सौ वर्ष होगा । फिर एक कौटिल्य  
नामक ब्राह्मण इन लोगों का धन कर देगा । उनके पश्चात् मौर्य नामक राजा-  
गण राज्य करेंगे ॥२५-२७॥ वही कौटिल्य ब्राह्मण चन्द्रगुप्त को राज्य पर अभि-  
षिक्त करेगा ॥२८॥ चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार होगा । बिन्दुसार का अशोक-  
वर्द्धन और अशोकवर्द्धन का सुयशा, सुयशा का दशरथ, दशरथ का संयुक्त,  
संयुक्त का शालिशूक, शालिशूक का सोमशर्मा और सोमशर्मा का पुत्र शतघन्वा  
होगा ॥२९-३०॥ शतघन्वा का पुत्र बृहद्रथ होगा । इन प्रकार मौर्यवंश के यह  
दस राजा एक सौ तिहत्तर वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥३१-३२॥

तेपामन्ते पृथिवी दश शुङ्गा भोक्ष्यन्ति ॥३३॥ पुष्यमित्रस्सेना  
पतिस्स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति तस्यात्मजोऽग्निमित्रः ॥३४॥  
तस्मात्सुज्येष्ठस्ततो वसुमित्रस्तस्मादप्युदङ्कस्ततः पुलिन्दकस्ततो  
घोषवसुस्तस्मादपि वज्रमित्रस्ततो भागवतः ॥३५॥ तस्माद्देवभूतिः ॥३६॥  
इत्येते शुङ्गा द्वादशोत्तरं वर्षशत पृथिवी भोक्ष्यन्ति ॥३७॥

ततः कण्वानेपा भूर्गस्थिति ॥३८॥ देवभूति तु शुङ्गराजानं व्यसनिनं  
तस्यैवामात्यः, काण्वो वसुदेवनामा तं निहत्य स्वयमवनी भोक्ष्यति ॥३९॥  
तस्य पुत्रो भूमित्रस्तस्यापि नारायणः ॥४०॥ नारायणात्मजस्सुशर्मा  
॥४१॥ एते काण्वायनाश्चत्वारः पञ्चचत्वारिंशद्वर्षाणि भूपतयो  
भविष्यन्ति ॥४२॥

उनका अन्त होने पर पृथिवी पर दस शुङ्गवशीय राजा राज्य करेंगे ।  
पुष्पमित्र नामक सेनापति अपने स्वामी की हत्या करने राज्य-शासन करेगा ।  
उसके पुत्र का नाम अभिमित्र होगा । अभिमित्र का पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठ का पुत्र  
वसुमित्र, वसुमित्र का उदक, उदक का पुलिन्दक पुलिन्दकका घोषवसु, घोषवसु  
का वज्रमित्र, वज्रमित्र का भागवत और भागवत का देवभूति होगा । यह सभी  
शुङ्ग राजागण पृथिवी पर एक सौ बारह वर्ष राज्य करेंगे ॥३३-३७॥ शुङ्ग-  
वश के पश्चात् कएव नरेशो का राज्य होगा । शुगवश के व्यसनो मे आसक्त  
राजा देवभूति का कएववशीय वसुदेव नामक मन्त्री, उसकी हत्या करके स्वयं  
राज्य करेगा ॥३८-३९॥ वसुदेव का पुत्र भूमिन, भूमिन का नारायण और  
नारायण का पुत्र सुशर्मा होगा । कएव वश के यह चारो राजा पैंतालीस वर्ष  
पृथिवी पर राज्य करेंगे । ४०-४२॥

सुशर्माण तु काश्व तद्भृत्यो बलिपुच्छकनामा हत्वान्धजातीयो  
वसुधा भोक्ष्यति ॥४३॥ ततश्च कृष्णनामा तद्भ्राता पृथिवीपतिर्भवि-  
ष्यति ॥४४॥ तस्यापि पुन शान्तवर्णिस्तस्यापि पूर्योत्सङ्गस्तत्पुत्राक्षा-  
तवर्णिस्तस्माच्च लम्बोदरस्तस्माच्च पिनकस्ततो मेघस्वातिस्तत  
पटुमान् ॥४५॥ ततश्चारिष्टकर्मा ततो हालाहल ॥४६॥ हालाहलात्पललक-  
स्तत पुलिन्दसेनस्तत सुन्दरस्ततश्चातवर्णिस्ततश्शिवस्वातिस्ततश्च  
गोमतिपुत्रस्तत्पुत्रोऽलिमान् ॥४७॥ तस्यापि शान्तवर्णिस्तत शिवश्रित-  
स्ततश्च शिवस्कन्धस्तस्मादपि यज्ञश्रीस्ततो द्वियज्ञस्तस्माच्चन्द्रश्रीः ॥४८॥  
तस्मात्पुलोमाचि ॥४९॥ एवमेते त्रिशङ्गत्वार्यन्दशतानि पद् पञ्चाशद-  
धिवानि पृथिवी भोक्ष्यन्ति आन्ध्रभृत्या ॥५०॥ सप्ताभोरप्रभृतयो दश  
गदंभिलाश्च भूभुजो भविष्यन्ति ॥५१॥ ततप्योडश शका भूपतयो  
भवितार ॥५२॥ ततश्चाष्टौ यवनाश्चतुर्दश तुरङ्गारा मुण्डाश्च त्रयोदश  
एकादश मीना एते च पृथिवीपतय पृथिवी दशवर्षशतानि नवत्यधि-  
वानि भोक्ष्यन्ति ॥५३॥ ततश्च एकादश भूपतयोऽब्दशतानि त्रीणि  
पृथिवी भोक्ष्यन्ति ॥५४॥

कएववश व राजा सुशर्मा को उज्जरा बलिपुच्छक नामक आन्ध्रजातीय

भृत्य हत्वा करके स्वयं पृथिवी का राज्य भोगेगा ॥४३॥ उसके पश्चात् उसका कृष्ण नामक भाई पृथिवी का शासक होगा ॥४४॥ कृष्ण का पुत्र दान्तर्कणि होगा । उसका पुत्र पूर्णोत्सग, पूर्णोत्सग का पुत्र घातर्कणि, घातर्कणि का लम्बोदर, लम्बोदर का विलक, विलक का मेघ स्वाति मेघस्वाति का पटुमान्, पटुमान् का पुत्र अष्टिर्कर्म और उसका पुत्र हागहन होगा ॥४५-४६॥ हालाहल का पुत्र पल्लक, उसका पुलिन्दसेन, उसका पुत्र सुन्दर, सुन्दर का शातर्कणि, शातर्कणि का शिवस्वाति, उसका पुत्र गोमति पुत्र और गोमति का पुत्र अग्निमान् होगा ॥४७॥ अलिमान् का पुत्र दान्तर्कणि, दान्तर्कणि का शिवश्रित, शिवश्रित का शिवस्कंध, शिवस्कंध का यज्ञधी यज्ञधी का द्वियज्ञ, द्वियज्ञ का पुत्र चन्द्रधी और चन्द्रधी का पुत्र पुनोमाचि होगा ॥४८-४९॥ इस प्रकार तीस आन्ध्रभृत्य राजा होंगे जो चार सौ छप्पन वर्ष पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥५०॥ उनके पश्चात् सात आभीर तथा गर्दभिल भू-भोगी नरेश होंगे । तदनन्तर सोलह शक राजा राज्य करेंगे । फिर घाठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुएड और शारह मौन राजा होंगे । यह सब एक हजार नब्बे वर्ष पृथिवी का राज्य भोगेंगे ॥५१-५३॥ इनमें से मौन राजाओं का राज्य-काल तीन सौ वर्ष तक रहेगा ॥५४॥

तेषूत्सन्नेषु कङ्किला यवना भूपतयो भविष्यन्त्यमूर्द्धाभिषिक्ताः ॥५५॥ तेषामपत्यं विन्ध्यशक्तिस्ततः पुरञ्जयस्तस्माद्रामचन्द्रस्तस्माद्धर्मवर्मा ततो वङ्गस्ततोऽभूभून्दनस्ततस्सुनन्दी तद्भ्राता नन्दियशाशुक्रः प्रवीर एते वर्षशतं पट्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ॥५६॥ ततस्तत्पुत्रास्त्रयोदशैतेबाह्लिकाश्च त्रयः ॥५७॥ ततः पुष्पमित्राः पटुमित्रास्त्रयोदशैकलाश्च सप्तान्ध्राः ॥५८॥ ततश्च कोशलायां तु नव चैव भूपतयो भविष्यन्ति ॥५९॥ नैपघास्तु त एव ॥६०॥

मगधायां तु विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति ॥६१॥ कैवर्त्तश्चटुपुलिन्दब्राह्मणान् राज्ञे स्थापयिष्यति ॥६२॥ उत्साद्याखिलक्षत्रजातिं नव नागाः पचावत्यां नाम पुर्यामिनुगङ्गाप्रयागं गयायाश्च मागधा पुनश्च भोक्ष्यन्ति ॥६३॥ कोशलान्धपुण्ड्रताम्रलिससमुद्रतटपुरी च देवरक्षितो रक्षिता ॥६४॥ कलिङ्गमाहिपमहेन्द्रभौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति

१६५। नैपथनैमिपककाराकोशकाञ्चनपदान्मणिधान्यकवंशा भोक्ष्यन्ति  
 १६६। त्रैराज्यमुपिकजनपदान्कनकाह्वयो भोक्ष्यति १६७। सोराष्ट्रावन्ति-  
 दूद्राभीरात्रमंदामरुभूविपयांश्च व्रात्यद्विजाभीरशूद्राद्या भोक्ष्यन्ति १६८।  
 सिन्धुतटदाविकोर्वीचन्द्रभागाकाश्मीरविपयांश्च व्रात्यम्लेच्छशूद्रादयो  
 भोक्ष्यन्ति १६९।

इनका अन्त होने पर कंकिल नामक यवन अभिषेकहीन राजा होंगे  
 ॥५५॥ उनकी सन्तान में विन्ध्यशक्ति राजा होगा । उसका पुत्र पुरञ्जय, पुर-  
 ञ्जय का रामचन्द्र, रामचन्द्र का धर्मवर्मा, धर्मवर्मा का नव, नव का मन्द और  
 मन्द का सुमन्दी होगा । सुमन्दी के तीन भाई होंगे—नन्दिशहा, धुक और प्रवीर।  
 इन नव का राज्य-काल एक भी छः वर्ष रहेगा ॥५६॥ तरयश्वात् इन्ही के यश  
 के तेरह राजा और होंगे फिर तीन ब्राह्मण राजा होंगे । तदनन्तर पुष्पमित्र  
 और पटुमित्र आदि तेरह राजागण होंगे, फिर सात भान्ध राजा होंगे ॥५७-  
 ५८॥ फिर बौधाय देश में सात राजा होंगे जो निपथ देश का भी राज्य करेंगे  
 ॥५९-६०॥ विदग्धस्फटिक नामक मगध देश का राजा अन्य यणों का प्रवर्धक  
 होगा ॥६१॥ यह कैवल्य, बटु पुनिन्द और ब्राह्मणों को राज्य देगा ॥६२॥ सब  
 क्षत्रियों को नष्ट कर पद्मावतीपुरी में नाग और गणा के समीपवर्ती प्रदेश प्रदाग  
 और गणा में मागध तथा गुप्त राजागण राज्य करेंगे ॥६३॥ बोनल, घाम्भ,  
 पुण्ड्र, तात्रित्त और समुद्र-किशारे पर स्थित पुरी का रक्षक देशरक्षि नामक  
 एक राजा होगा ॥६४॥ बलिग, माह्वि, महेंद्र और भीमादि देशों का राज्य  
 गृह नामक राजा करेंगे । ६५॥ नैपथ, नैमिष और कामासनर आदि जनपदों  
 का राज्य मणिप्रायस-वंश के राजा करेंगे ॥६६॥ त्रैराज्य और मुपिक देशों  
 पर वनक नामक राजागण राज्य करेंगे ॥६७॥ नीचण्ड, चरवि, दूद्र, घामीर,  
 और नर्मदा नदी के मधीन को मरुभूमि पर शाय, द्विज, घामीर और दूद्रादि  
 का राज्य होगा ॥६८॥ समुद्र के किनारे के क्षेत्र दक्षिणोर्वि, चन्द्रभागा और  
 घामीर आदि पर शाय, म्लेच्छ और दूद्रादि राजाओं का राज्य सामन  
 होगा ॥६९॥

एते च तुल्यकालास्सर्वे पृथिव्यां भूभुजो भविष्यन्ति ।७०।  
 अल्पप्रसादा बृहत्कोपास्सर्वकालमनृताधर्मरुचयः स्त्रीवालगोवधकर्तारः  
 परस्वादानरुचयोऽल्पसारास्तमितप्राया उदितास्तमितप्राया अल्पायुषो  
 महेच्छा ह्यल्पधर्मा लुब्धाश्च भविष्यन्ति ।७१। तैश्च विमिश्रा  
 जनपदास्तच्छीलानुवर्तिनो राजाश्रयशुष्मिणो म्लेच्छाश्चायैश्च  
 विपर्ययेण वर्त्तमानाः प्रजा क्षपयिष्यन्ति ।७२।

ततश्चानुदिनमल्पाल्पहासव्यवच्छेदाद्धर्मार्थयोजंगतस्सङ्क्षयो  
 भविष्यति ।७३। ततश्चार्थ एवाभिजनहेतुः ।७४। बलमेवाशेषधर्महेतुः  
 ।७५। अभिरुचिरेव दाम्पत्यसम्बन्धहेतुः ।७६। स्त्रीत्वमेवोपभोगहेतुः  
 ।७७। अनृतमेव व्यवहारजयहेतुः ।७८। उन्नताम्बुतैव पृथिवीहेतुः ।७९।  
 ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः ।८०। रत्नधातुतैव श्लाघ्यताहेतुः ।८१। लिङ्गधा-  
 रणमेवाश्रमहेतुः ।८२। अन्याय एव वृत्तिहेतुः ।८३। दौर्बल्यमेवावृत्तिहेतुः  
 ।८४। अभयप्रगल्भोच्चारणमेव पाण्डित्यहेतुः ।८५। अनाढ्यतैव  
 साधुत्वहेतुः ।८६। स्नानमेव प्रसाधनहेतुः ।८७। दानमेव धर्महेतुः ।८८।  
 स्वीकरणमेव विवाहहेतुः ।८९। सद्गुणधार्थ्येव पात्रम् ।९०। दूरायतनोद-  
 कमेव तीर्थहेतुः ।९१। कपटवेषधारणमेव महत्त्वहेतुः ।९२। इत्येवमनेक-  
 दोषोत्तरे तु भूमरले सर्ववर्णेष्वेव यो यो बलवान्स स भूपतिर्भ-  
 विष्यति ।९३।

यह सभी राजा एक ही काल में पृथिवी पर होंगे ॥७०॥ यह अल्प  
 प्रसन्नता वाले, अधिक क्रोध वाले, धर्म और असराभाषण में रुचि वाले, स्त्री,  
 बालक और गौधों का वध करने वाले, पर-धन-हारी, न्यून शक्ति वाले, समयुक्त,  
 विकसिक होते ही पतन को प्राप्त होने वाले, अल्पायु, अल्प पुण्य, बड़ी अभि-  
 लाषा वाले और महान् लोभी होंगे ॥७१॥ यह सब देशों को परस्पर में एक  
 कर देने वाले होंगे । इन राजाधर्मों के आश्रय में रहने वाले बलवान् म्लेच्छ और  
 अन्याय व्यक्ति, उनके स्वभाव के अनुसार आचरण करते हुये सम्पूर्ण प्रजा का  
 ही नष्ट कर डालेंगे ॥७२॥ इससे दिनो दिन धर्म और धर्म की धीरे-धीरे करके  
 हानि होती जायगी और जब यह क्षीण हो जायेंगे तो सम्पूर्ण विश्व ही नष्ट हो



प्रायगा ॥७३॥ उस समय घन ही कुलीनता का सूचक होगा, बल ही सब घनों का चिह्न होगा, परस्पर की चाहना ही दाम्पत्य-सम्बन्ध को करने वाली होगी, स्त्रीत्व ही भोग साधन होगा ॥७४-७७॥ भूऽ ही व्यवहार में जीत कराने वाला होगा, जलवायु की श्रेष्ठता ही पृथिवी की श्रेष्ठता का लक्षण होगा, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्व का कारण होगा, रत्नादि धारण की इच्छा का हेतु होगा, बाह्य-विह्वल ही ब्राह्मणों के सूचक होंगे, अन्याय ही वृत्ति का साधन होगा, दुर्बलता ही जीविता से दचिन्न रहेगी, निर्भयता और घृष्टता पूर्वक भाषण ही पाण्डित्य होगा, निर्धनता ही साधुत्व का कारण समझा जायगा । स्नान साधन का हेतु, दान धर्म का हेतु और स्वीकृति ही विवाह का हेतु होगा ॥७८-८१॥ सज्जग कर रहना ही सुपात्रता का द्योतक होगा, दूर देश का जल ही तीर्थ-जल होगा, छद्मवेश ही गौरव होगा । इस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल में नाना प्रकार के दीपों के फैलने से सब वर्णों में जो-जो बची होगे, वही-वही राजा राज्य को हथिया लेंगे ॥८०-८३॥

एवं चातिलुब्धकराजासहाश्रैलानामन्तरद्रोणीः प्रजास्तंश्च।  
व्यन्ति ॥८४॥ माधुशाकमूलफलपत्रपुष्पाद्याहाराश्च भविष्यन्ति ॥८५॥  
तत्त्वत्कलपर्णचौरप्रावरणाश्चातिवहुप्रजाश्शीतवातातपवर्षसहाश्च भवि-  
ष्यन्ति ॥८६॥ न च कश्चित्त्रयोविंशतिवर्षाणि जीविष्यति अनवरतं  
चात्र कलिमुगे क्षयमायात्यसिल एवैष जनः ॥८७॥ श्रौते स्मार्त्ते च धर्मं  
विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरगुरोरा-  
दिमध्यान्तरहितस्य यहामयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्यांशदशम्ब-  
लग्रामप्रधानब्राह्मणस्य विष्णुयशसो गृहेऽष्टगुणद्विसमन्वित कल्किस्त्री  
जगत्प्रवावतीयं सकलम्लेच्छदस्युदुष्टाचरणचेतसामशेषाणामपरिच्छि-  
न्नशक्तिमाहात्म्यः क्षय करिष्यति म्यधर्मेषु चाग्निलमेव संस्थापयिष्यति  
॥८८॥ अनन्तरं चारोपकलेखसाने निशावगाने विबुद्धानामिव तेषामेव  
जनपदानाममलस्फटिकविशुद्धा मतयो भविष्यन्ति ॥८९॥ तेषां च  
बीजभूतानामशेषमनुप्याणा परिणतानामपि तत्कालकृतापत्यप्रसूतिर्भ-

विध्यति । १००। तानि च तदपत्यानि कृतयुगानुसारीण्येव भवि-  
ष्यन्ति । १०१।

इस प्रकार अत्यन्त लोभी राजाओं के कर-भार से दबी हुई प्रजा, उससे  
बचने के लिए पर्वतों की गुफाओं में जाकर रहने लगेगी और मधु, शक, भूल,  
कन, पत्ते और पुष्पादि का भक्षण करती हुई जीवन का समय व्यतीत करेगी ।  
शृङ्गों के पत्तों और वल्गु वस्त्रों को पहिने-ओढ़ेगी । उनकी अधिक सन्तानें होगी  
और सभी को शीत, वायु, धूर, वर्षा आदि के कष्ट सहन करने होंगे ॥६४ ६५॥  
तेईस वर्ष से अधिक आयु किसी की भी न होगी । इस प्रकार कलियुग में सभी  
मनुष्य क्षीणता को प्राप्त होते रहेगे ॥६७॥ जब शीत और स्पर्श धर्म की  
अत्यन्त हानि हो जायगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा सभी सम्बल  
प्राप्त के रहने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णुयुगा के यहाँ सम्पूर्ण विश्व के कारण, चराचर  
के गुरु, आदि-मध्य-अन्त से हीन, ब्रह्ममय एवं आत्मरूप भगवान् अपने अन्त से  
अष्टगुण युक्त कलिक रूप से अवतार धारण करेंगे । वही अपनी असीम शक्ति  
और महिमा से सम्पन्न होकर सब स्लेच्छों, दंष्ट्रुओं, दुष्टहृदयों और दुराचारियों  
को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म में स्थापित करेंगे ॥६८॥ फिर सब  
कलियुग का नितान्त क्षय हो जायगा, तब रात्रि के अवसान होने पर जगने  
वालों के समान सब प्राणियों की बुद्धि स्फटिक भण्ड के समान स्वच्छ हो  
जायगी ॥६९॥ वे सब बीजभूत मनुष्य अधिक आयु वाले होकर भी सन्तानो-  
त्पादन में सनय होंगे ॥१००॥ उनकी सन्तानें भी सत्ययुग के समान ही धर्माव-  
रण में प्रवृत्त होने वाली होगी ॥१०१॥

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यो बृहस्पतिः ।

एकराशौ समेष्ट्यन्ति तदा भवति वै कृतम् । १०२।

अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।

एते वशेषु भूपालाः कथिता मुनिसत्तम । १०३।

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिपेचनम् ।

एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेय पञ्चशतो- ग्म् । १०४।

सप्तर्षीणां तु यी पूर्वा दृश्येतेह्युदितौ दिवि ।  
 तयोस्तु मध्ये नक्षत्र दृश्यते यत्सम निशि । १०५।  
 तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशत नृणाम् ।  
 ते तु पारीक्षिते काले मघास्वासन्दिजोत्तम । १०६।  
 तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः । १०७।  
 यदैव भगवाम्बिष्णोरशो यातो दिव द्विज ।  
 वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैवात्रागतः कलिः । १०८।  
 यावत्स पादपद्याभ्या पस्पर्शमा वसुन्धराम् ।  
 तावत्पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत्कलिः । १०९।  
 गते सनातनस्याशे विष्णोस्तत्र भुवो दिवम् ।  
 तस्याज सानुजो राज्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । ११०।  
 विपरीतानि दृष्ट्वा च निमित्तानि हि पाण्डवः ।  
 याते कृष्णो चकाराथ सोऽभिषेक परीक्षितः । १११।  
 प्रयाम्यन्ति तदा चैते पूर्वापादा महर्षयः ।  
 तदा नन्दात्प्रभृत्येष गतिवृद्धिं गमिष्यति । ११२।  
 यस्मिन् कृष्णो दिव यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।  
 प्रतिपन्न कलियुग तस्य सत्या निबोध मे । ११३।

इस विषय में ऐसा कहते हैं कि जब चन्द्र सूर्य और बृहस्पति पुष्यनक्षत्र में स्थित होकर एक साथ ही एक राशि पर आवेंगे तभी सत्ययुग का प्रारम्भ हो जायगा ॥१०८॥ हे मुनिवर ! इस प्रकार यह सभी वशों के भूत, भविष्यत्, और वर्तमान कालीन सब राजाओं का वर्णन मैंने तुम से कर दिया है ॥१०९॥ परीक्षित के जन्म-काल से नन्द के अभिषेक पर्यंत का समय देव हजार वर्ष का समझो ॥१०४॥ सप्तर्षियों में से जो दो नक्षत्र आकाश में पहिले दीखते हैं, उनके मध्य में रात्रिकाल में जो नक्षत्र समवेश में स्थित रहते हैं, उनमें से प्रत्येक नक्षत्र पर एक-एक सौ वर्ष तक सप्तर्षियों का निवास रहता है । हे द्विजधरे ! परीक्षित-काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे, उसी समय बारह सौ वर्ष प्रमाण के कलियुग का प्रारम्भ हुआ था । १०५॥ जब भगवान् विष्णु के आज्ञावत्तार श्रीकृष्ण अपने धामको चले गये, सभी स पृथिवी पर कलियुग आ गया । १०६-१०८॥ जब

तक वह अपने चरण कमलों के पुण्य स्पर्श से इस पृथिवी को पवित्र किये रहे, तब तक पृथिवी का संग करने में कलियुग समर्थ नहीं हो सका ॥१०६॥ जब सनातन पुरुष भगवान् विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण देवलोक चले गये तब महाराज युधिष्ठिर ने भाइयों सहित अपने राज्य का त्याग कर दिया ॥११०॥ भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान होने पर जब पाण्डवों को विरुद्ध लक्षण दिखाई दिये, तब उन्होंने परोक्षित का राज्याभिषेक कर दिया ॥१११॥ जब पूर्वापाढ़ा मक्षत्र पर सप्तपिथों का गमन होगा, तब राजानन्द के शासन-काल में कलियुग की बल-वृद्धि होगी ॥११२॥ जब श्री कृष्ण अपने धाम को चले गये थे, तभी से कलियुग आ गया था, अब उस कलियुग की वर्ष गणना श्रवण करो ॥११३॥

श्रीणि लक्षाणि वर्षाणि द्विज मानुष्यसंख्यया ।

पष्टिश्चैव सहस्राणि भविष्यत्येव वै कलिः ॥११४॥

शतानि तानि दिव्यानां सप्त पञ्च च संख्यया ।

निश्शेषेण गते तस्मिन् भविष्यति पुनः कृतम् ॥११५॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्शूद्राश्च द्विजसत्तम ।

युगे युगे महात्मानः समतीतास्सहस्रशः ॥११६॥

बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले ।

पौरुषक्याद्वि साम्याच्च न मया परिकीर्तिता ॥११७॥

देवापिः पौरवो राजा मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।

महायोगबलीपेतौ कलापग्रामसंश्रितौ ॥११८॥

कृते युगे त्विहागम्य क्षत्रप्रवर्त्तको हि तौ ।

भविष्यतो मनोर्वंशबीजभूतौ व्यवस्थितौ ॥११९॥

एतेन क्रमयोगेन मनुपुत्रैर्वैसुन्धरा ।

कृतप्रेताद्वापराणि युगानि श्रीणि भुज्यते ॥१२०॥

कलौ ते बीजभूता वै केचित्तिष्ठन्ति वै मुने ।

यथैव देवापिमरु साम्प्रतं समघ्निष्ठितौ ॥१२१॥

मनुष्यों के वर्ष के अनुसार कलियुग की आयु तीन लाख साठ हजार वर्ष की होगी ॥११४॥ सदनन्दर बारह सौ दिव्य वर्षों के व्यतीत होने तक सत्ययु-

उपस्थित रहेगा ॥११५॥ हे विप्रश्चष्ट ! प्रत्येक युग में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णों के हजारों सत् महात्मा हो गये हैं ॥११६॥ उनके प्रति-संस्पर्क होने तथा कर्म में समानता होने के कारण, वंश-वर्णन में कही पुनरोक्ति न हो जाय, इस भय से उन सब के नाम यहाँ नहीं कहे हैं ॥११७॥ पुण्यवश के राजा देवाधि धीर इक्ष्वाकु वंश के राजा मरु—मरु दोनों ही महान् योगबल से युक्त हुये, कलापग्राम में निवास करते हैं ॥११८॥ जब सत्ययुग प्रारम्भ हो जायेगा, तब यह पुनः मर्त्यलोक में जन्म लेकर क्षत्रिय वंश के प्रवर्तक होंगे । यही भविष्य में होने वाले मनुवंश के बीज स्वरूप हैं ॥११९॥ सत्ययुग, वेदा धीर द्वापर में भी मनु पुत्र पृथिवी का इसी प्रकार उपभोग करते हैं ॥१२०॥ उन्हीं में से कोई-कोई कलियुग में होने वाली मनु-सन्तान के बीज रूप में देवाधि धीर मरु के समान ही स्थित रहते हैं ॥१२१॥

एष तूद्देशतो वंशस्तवोक्तो भूभुजा मया ।

निखिलो गदितुं शक्यो नैव वर्णशतैरपि ॥१२२॥

एते चान्ये च भूपाला यैरत्र क्षितिमण्डले ।

कृत ममत्व मोहान्धैर्नित्य हेयकलेवरैः ॥१२३॥

कथं ममेयमचला मत्पुत्रस्य कथं मही ।

मद्वशस्येति चिन्तार्त्ता जग्मुरन्तमिमं नृपाः ॥१२४॥

तेभ्यः पूर्वतराश्चान्ये तेभ्यस्तेभ्यस्तथा परे ।

भविष्याश्चैव यास्मन्ति तेपामन्ये च येऽप्यनु ॥१२५॥

विलोक्यात्मजयोद्योग यात्राव्यग्राक्षराधिपान् ।

पुष्पप्रहासैश्शरदि हसन्तीव वसुन्धरा ॥१२६॥

मैत्रेय पृथिवीगीताञ्छलोकाश्चात्र निबोध मे ।

यानाह धर्मध्वजिने जनकायासितो मुनिः ॥१२७॥ ।

इस प्रकार मैंने तुम से सब राजवंशों का संक्षेप में वर्णन कर दिया है, इनका पूर्ण वृत्तान्त तो सौ वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता ॥१२२॥ इस हेय कलेवर के मोह में अन्ये धीर इस पृथिवी में मग्नता करने वाले यह तथा अंग्य अनेक राजा गए हुए हैं ॥१२३॥ यह पृथिवी मेरी, मेरी पुत्र भगवा वंश के

अधिकार में स्थायी रूप से किस प्रकार रहेगी ? इस प्रकार की चिन्ता करते-करते ही यह सब राजा मरण को प्राप्त हो गये ॥१२४॥ ऐसी ही चिन्ता में निमग्न रह कर इन सब राजाओं के पूर्व-पुरखे और उनके भी पुरखे इस ससार से कूँज कर गये और इसी चिन्ता में मग्न रह कर भविष्य में होने वाले राजा-गण भी काल के गाल में समा जायेंगे ॥ यह वसुधरा भी अपने पर विजय प्राप्त करने के उद्योग में अधिक रूप से लगे हुए राजाओं को देख कर जैसे उन पर हँसती है ॥१२६॥ हे मैत्रेयजी ! अब तुम पृथिवी द्वारा कहे हुए कुछ श्लोकों को श्रवण करो । यह श्लोक पूर्वकाल में अश्वि भुनि ने वसुधरा रूप राजा जनक के प्रति कहे थे ॥१२७॥

कथमेव नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामपि ।

येन कैनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतमः ॥१२८॥

पूर्वमात्मजय कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मन्त्रिणः ।

ततो भृत्यांश्च पौरांश्च जिगीषन्ते तथा रिपून् ॥१२९॥

क्रमेणाग्नेन जेष्यामो वयं पृथ्वी ससागराम् ।

इत्यासक्तधियो मृत्युं न पश्यन्त्यविद्वरगम् ॥१३०॥

समुद्रावरणं याति भूमण्डलमथो वशम् ।

। कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥१३१॥

उत्सृज्य पुर्वजा याता यां नादाय गतः पिता ।

। तां मामतीवमूढत्वाज्जेतमिच्छन्ति पार्थिवाः ॥१३२॥

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विश्रहः ।

जायतेऽत्यन्तमोहेन ममत्वाद्दत्तचेतसाम् ॥१३३॥

पृथ्वी ममेयं सकला ममैषा मदन्वयस्यापि च शाश्वतीयम् ।

यो यो मृतो ह्यत्र वभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य ॥

पृथिवी का कहना है—महो, यह राजागण बुद्धिमान् होकर भी कैसे मोहित हो रहे हैं, जिसके कारण यह अपनी क्षणभंगुरता को भूलकर अपने स्थायी होने का विश्वास किये बैठे हैं ॥१२८॥ वहिले यह अपने विजय प्राप्त करने के लिए मन्त्रियों को वश में कर लेते हैं और इसके पश्चात् भृत्यों, पुर-

वासिगो और शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करना चाहते हैं ॥१२१॥ इसी प्रकार इस सम्पूर्ण पृथिवी को हम समुद्र तक अपने वश में कर लेंगे, ऐसी ही आसक्ति में भ्रमित हुए यह राजागण निन्दित भविष्य में ही प्राप्त होने वाली मृत्यु को नहीं देख पाते ॥१३०॥ यदि समुद्र के आवरण वाले इस सम्पूर्ण पृथिवी मडल पर विजय प्राप्त भी हो जाय, तो भी मन को जीतने के समान इसका फल नहीं हो सकता, क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति तो मन के जीतने पर ही संभव है ॥१३१॥ इनके पूर्वक और पिता भी जिसे साथ लिये बिना ही चले गये और जो यहाँ ही स्थिर रूप से रही आई, उस मुक्त पृथिवी को महामूर्ख बने हुये राजागण जीत लेना चाहते हैं ॥१३२॥ अत्यंत ममत्व वाले पिता पुत्र, भ्राता धादि में भी मोह के वशीभूत होकर मेरे ही कारण विग्रह उपस्थित होता है ॥१३३॥ यहाँ जितने भी राजा हुये हैं, वे सभी इस कुबुद्धि से मोतप्रोत रहे हैं कि यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी है और फिर यह सदैव मेरे वशधरो की रहेगी ॥१३४॥

दृष्ट्वा ममत्वाद्दत्तचित्तमेक विहाय मा मृत्युवश व्रजन्तम् ।  
 तस्यानु यस्तस्य कथं ममत्वं ह्यद्यास्पदं मत्प्रभवं करोति ॥१३५॥  
 पृथ्वीं ममैषान्शु परित्यज्जना वदन्ति ये दूतमुखैस्त्वशङ्कान् ।  
 नराधिपास्तेषु ममातिहासं पुनश्च मूढेषु दयाम्पुपैति ॥१३६॥  
 इत्येते धरणीगीताश्श्लोका मैत्रेय यंश्च्युता ।  
 ममत्वं विलयं याति तपत्यर्कं यथा हिमम् ॥१३७॥  
 इत्येष कथितं सम्यङ् भनोर्वंशो मया तव ।  
 यत्र स्थितिप्रवृत्तस्य विष्णोरक्षाशक्ता नृपा ॥१३८॥  
 शृणोति य इमं भवत्या मनोर्वंशमनुक्रमात् ।  
 तस्य पापमशेषं वै प्रणश्यत्यमलात्मन ॥१३९॥  
 घनधान्यद्धिमतुला प्राप्नोत्यव्याहतेन्द्रिय ।  
 श्रुत्वं वमसिलं वशं प्रशस्तं शशिसूर्ययो ॥१४०॥  
 इक्ष्वाकुजह्नुमान्धातृसगराविक्षिताग्रधून् ।  
 यमातिनहुपाद्याश्च ज्ञात्वा निष्ठामुपागतान् ॥१४१॥

महाबलान्महावीर्यनिनन्तघनसञ्चयान् ।

कृतान्कालेन बलिना कथाशेषान्नराधिपान् ॥१४२॥

श्रुत्वा न पुत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा ।

द्रव्यादौ वा कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ॥१४३॥

इस प्रकार भुक्त मे ममता करने वाले एक राजा को मुझे यही छोड़ कर मरता हुआ देख कर भी उसका वगज न जाने क्यों अपने चित्त मे मेरेप्रति इतनी ममता रखे रहता है ? ॥१३५॥ जो भूयान् आने शत्रु को दूत द्वारा यह सदेश देते हैं कि यह वन्मुधरा मेरी है, तुम इसे छोड़कर तुरन्त हट जाओ, उन मूर्खों की उस बात पर मुझे अत्यन्त हँसी तथा दया आने लगती है ॥१३६॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! पृथिवी द्वारा गाये हुये इन श्लोकों को सुनने वाले पुरुष की ममता सूर्य-ताप से पिघल जाने वाले बर्फ के समान नष्ट हो जायगी ॥१३७॥ इस प्रकार उस मनु-वश का मैंने तुम से बर्णन कर दिया, जिसमे उरग्न हुये राजागण भगवान् विष्णु के ही अंश थे ॥१३८॥ इस मनु-वश के क्रम पूर्वक श्रवण करने वाले मनुष्य के सभी पापों का पूर्ण क्षय होता है ॥१३९॥ इन्द्रियों को वश मे करके जो पुरुष इन सूर्य, चन्द्र वशी का पूर्ण वृत्तान्त सुनता है, उसे असीमित धन धान्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥१४०॥ अत्यन्त बली, महावीर्यवान्, अनन्त धनी और परम निष्ठा-सम्पन्न इक्ष्वाकु, जड्हु, मान्धाता, सगर, भरत, रघुकुल मे उत्पन्न राजागण, नहुष तथा यवानि आदि के जो चरित्र काल के कारण कथा मात्र ही शेष हैं उनको मुनकर बुद्धिमान पुरुष पुत्र, स्त्री, घर, खेत तथा धन आदि मे ममत्त्व न रखेगा ॥१४१-१४३॥

तप्तं तपो यैःपुरुषप्रवीरैरुद्धाहुभिर्वर्षणाननकान् ।

इष्टामुयज्ञैर्वलिनोऽतिवीर्याः कृता नु कालेन कथावशेषाः ॥१४४॥

पृथुस्समस्तान्विचचार लोका-

नव्याहतो यो विजितारिचक्रः ।

स कालवातामिहतः प्रणष्टः

क्षिप्तं यथा शाल्मलितूलमग्नी ॥१४५॥



यः कीर्तवीर्यो बुभुजे समस्ता-  
न्द्रीपान्समाक्रम्य हतारिचक्रः ।

कथाप्रसंगेष्वभिधीयमान-  
स्स एव सङ्कल्पविकल्पहेतुः ॥१४६॥

दशाननाविक्षितराधवाणामेश्वर्यमुद्भासितदिङ्मुखानाम् ।  
भस्मापि शिष्टं न कथं क्षणेन भ्रूमङ्गपातेन धिगन्तकस्य ॥१४७॥  
कथाशरीरत्वमवाप यद्वै मान्धातूनामा भुवि चक्रवर्ती ।  
श्रुवापि तत्को हि करोति साधुर्ममत्वमात्मगपि मन्दचेताः ॥१४८॥  
भगीरथाद्यास्सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणौ च ।  
युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं न मिथ्या क नु ते न विप्रः ॥१४९॥  
ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः प्रोक्ता गथा विप्रवरोद्गवीर्याः ।  
एते तथान्ये च तथामिधेयाः सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वं ॥१५०॥  
एतद्विदित्वा न नरेण कार्यं ममत्वमात्मन्यपि परिहतेन ।  
तिष्ठन्तु तावत्तनयात्मजाद्याः क्षेत्रादेवो ये च शरीरिणोऽन्ये ॥१५१॥

ऊर्ध्वबाहु होकर जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने बहुत वर्षों तक घोर तप और  
अनेकों यज्ञ किये थे, उन अत्यन्त बली और वीर्यशाली राजाओं की कथा मात्र  
ही काल के प्रभाव से शेष बची है ॥१४४॥ जो राजा पृथु अपने शत्रुओं पर  
विजय प्राप्त कर स्वच्छन्द वृत्ति में सभी लोकों में विचरण करता था, वही  
अग्नि में गिर कर अहम हुई हुई के समान ही विनीत हो गया ॥१४५॥ जिस  
कातवीर्य ने अपने सब वैरियों को मारकर सब द्वीपों को जीता और उनका  
भोग किया था, वही आज ऐसा प्रतीत होता है कि कभी हुआ था या नहीं ?  
॥१४६॥ सभी दिशाओं को प्रकाशमान करने वाले रावण, भरत तथा रघुव-  
रियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ हो हुआ, क्योंकि काल के कटाक्ष मात्र से यह ऐसा  
मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं बची ॥१४७॥ जो मान्धाता सम्पूर्ण  
पृथिवी का चक्रवर्ती राजा था, उसकी भी कथा ही रह गई है । इस सब को सुनकर

महाबलान्महावीर्यनिनन्तधनसञ्चयान् ।

कृतान्कालेन बलिना कथाशेषान्नराधिपान् ॥१४२॥

श्रुत्वा न पुत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा ।

द्रव्यादौ वा कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ॥१४३॥

इस प्रकार मुझ में ममता करने वाले एक राजा को मुझे यही छोड़ कर मरता हुआ देख कर भी उसका वश न जाने क्यों अपने चित्त में मेरे प्रति इतनी ममता रखे रहता है ? ॥१३५॥ जो भूगान माने शत्रु को दूत द्वारा यह संदेश देते हैं कि यह वन्धुधरा मेरी है, तुम इसे छोड़कर तुरन्त हट जाओ, उन मूर्खों की उन बात पर मुझे अत्यन्त हँसी तथा दया माने लगती है ॥१३६॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मंत्रेयजी ! पृथिवी द्वारा गाये हुये इन श्लोकों को सुनने वाले पुरुष की ममता सूर्य-ताप से पिघल जाने वाले वर्फ के समान नष्ट हो जायगी ॥१३७॥ इस प्रकार उस मनु-वश का मैंने तुम से वर्णन कर दिया, जिसमें उदात्त हुये राजागण भगवान् विष्णु के ही अंश थे ॥१३८॥ इस मनु-वश के क्रम पूर्वक श्रवण करने वाले मनुष्य के सभी पापों का पूर्ण क्षय होता है ॥१३९॥ इन्द्रियो को वश में करके जो पुरुष इन सूर्य, चन्द्र वशों का पूर्ण वृत्तान्त सुनता है, उसे असीमित धन धान्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥१४०॥ अत्यन्त बली, महावीर्यावान्, अनन्त धनी और परम निष्ठा-सम्पन्न इक्ष्वाकु, जम्बू, मा-धाना, सगर, महत्, रघुकुल में उदात्त राजागण, नहुष तथा ययाति आदि के जो चरित्र काल के कारण क्या मात्र हो शेष हैं उनको मृनकर बुद्धिमान पुरुष पुत्र, स्त्री, घर, खेत तथा धन आदि में ममत्व न रखेगा ॥१४१-१४३॥

तप्त तपो यैः पुरुषप्रवीरैरुद्धाहुर्भिवर्षणाननकान् ।

इष्टासुयज्ञैर्बलिनोऽतिवीर्याः कृता नु कालेन कथावशेषाः ॥१४४॥

पृथुस्समस्तान्विचचार लोका-

नव्याहतो यो विजितारिचक्रः ।

स कालवातामिहतः प्रणष्टः ।

क्षिप्त यथा शाल्मलि तूलमग्नौ ॥१४५॥

यः कीर्तवीर्योब्रुमुजे समस्ता-

न्दोपान्समाक्रम्य हतारिचक्रः ।

कथाप्रसंगेष्वभिधीयमान-

स्स एव सङ्कल्पविकल्पहेतुः ॥१४६॥

दशाननाविक्षितराधवाणामेश्वर्यमुद्भासितदिडमुखानाम् ।

भस्मापि शिष्टं न कथं क्षणेन भ्रूमङ्गपातेन धिगन्तकस्य ॥१४७॥

कथाशरीरत्वमवाप यद्वं मान्धातुनामा भुवि चक्रवर्ती ।

श्रुवापि तत्को हि करोति साधुर्ममत्वमात्मन्यपि मन्दचेताः ॥१४८॥

भगीरथाद्यास्सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणी च ।

युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं न मिथ्या क नु ते न विद्यः ॥१४९॥

ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः प्रोक्ता मया विप्रवरोप्रवीर्याः ।

एते तथान्ये च तथाभिधेयाः सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वं ॥१५०॥

एतद्विदित्वा न नरेण कार्यं ममत्वमात्मन्यपि परिहृतेन ।

तिष्ठन्तु तावत्तानयात्मजाद्याः क्षेत्रादेयो ये च शरीरिणोज्ज्वे ॥१५१॥

ऊर्ध्वबाहु होकर जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने बहुत बर्षों तक घोर तप और धनेकों यज्ञ किये थे, उन अत्यन्त बली और वीर्यशाली राजाओं की कथा मात्र ही काल के प्रभाव से शेष बची है ॥१४४॥ जो राजा पृथु अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर स्वच्छन्द गति में सभी लोकी में विचरण करता था, वही अग्नि में गिर कर भस्म हुई हुई के समान ही विलीन हो गया ॥१४५॥ जिस कर्तवीर्य ने अपने सब बैरियों को मारकर सब द्वीपों को जीता और उनका भोग किया था, वही आज ऐसा प्रतीत होता है कि कभी हुआ था या नहीं ? ॥१४६॥ सभी दिशाओं को प्रकाशमान करने वाले रावण, मरुत तथा रघुवंशियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ हो हुआ, क्योंकि काल के बटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं बची ॥१४७॥ जो मान्धाता सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा था, उसकी भी कथा ही रह गई है । इस सब को गुनकर

भी अपने देह के प्रति कौन मन्द बुद्धि वाला ममता करेगा ? ॥१४८॥ भगीरथ सगर कुकुत्थ, रावण, राम, लक्ष्मण, युधिष्ठिर आदि का होना नितान्त सत्य है, इसमें झूठ किंचित् भी नहीं है, परन्तु अब वे सब कहाँ हैं, इसे न ही जानते ॥१४९॥ हे विप्रश्रेष्ठ ! वर्तमान भयवा आगे होने वाले जिन अत्यन्त वीर्यवान् राजाओं के विषय में मैंने कहा है, तथा अन्य राजागण भी, पहिले कहे हुए राजाओं के समान कथा मात्र ही रहेंगे ॥१५०॥ इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को पुत्र, पुत्री, क्षेत्र तथा अथ प्राणी तो बना, अपने देह में भी ममता कभी नहीं करनी चाहिये ॥१५१॥



# श्रीविष्णुपुराण

## पञ्चम अंश

### पहला अध्याय

नृपाणां कथितस्सर्वो भवता नक्षविस्तरः ।  
वशानुचरितं चैव यथावदनुवर्णितम् ॥१॥  
अशावतारो ब्रह्मर्षे योज्य यदुकुलोद्भवः ।  
विष्णोस्त विस्तरेणाह श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२॥  
चकार यानि कर्माणि भगवान्पुरुषोत्तम ।  
अशाक्षेनावतीर्योर्ध्वा तत्र तानि भुने वद ॥३॥  
मैत्रेय श्रूयतामेतद्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।  
विष्णोरेरशाससम्भूतिचरितं जगतो हितम् ॥४॥  
देवकस्य सुता पूर्वं वसुदेवो महामुने ।  
उपयेमे महाभागा देवकी देवतोपमाम् ॥५॥  
कसस्तयोर्वररथं चोदयामास सारथि ।  
वसुदेवस्य देवक्या सयोगे भोजनन्दन ॥६॥  
अथान्तरिक्षे घागुच्चैः कसमाभाष्य सादरम् ।  
मेघगम्भीरनिर्घोषं समाभाष्येदमब्रवीत् ॥७॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा — हे ब्रह्मन् ! आपने सभी राजवंशों का विस्तार उनके चरित्रों को यथारूप कहा है ॥१॥ हे ब्रह्मर्षि ! भगवान् विष्णु का श्री भवतार यदुकुल से हुआ था, उसे ही अब मैं विस्तार सहित सुनना चाहता हूँ

॥२॥ हे मुने ! भगवान् पुरुषोत्तम ने अपने अंशाओं सहित अवतार धारण करके जो कुछ किया, वही सब आप मुझे सुनाइये ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! भगवान् विष्णु के जिस अंशांश रूप के विषय में तुमने पूछा है, उस संसार के हित में हुए अवतार का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ पूर्व काल की बात है—देवक की अत्यन्त भाग्यवती एवं देवी स्वरूपिणी युत्री देवकी का विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था ॥५॥ वसुदेव-देवकी का विवाह होने के पश्चात् उनके माङ्गलिक रथ को भोजनन्दन कंस ने स्वयं चलाया ॥६॥ उसी अवसर पर भेष के समान गम्भीर वाणी में कंस को उच्च स्वर से संबोधन करती हुई देवांगरा ने कहा ॥७॥

यामेतां वहसे मूढ सह भर्त्रा रये स्थिताम् ।  
 अस्यास्तवाष्टमो गर्भः प्राणानपहरिष्यति ॥८॥  
 इत्याकर्ण्यं समुत्पाट्य खड्गं कंसो महाबलः ।  
 देवकी हन्तुमारब्धो वसुदेवोऽब्रवीद्विदम् ॥९॥  
 न हन्यव्या महाभाग देवकी भवतानघ ।  
 समर्पयिष्ये सकलान्भर्तान्स्थोदरोद्भवान् ॥१०॥  
 तथेत्याह ततः कंसो वसुदेवं द्विजोत्तम ।  
 त घातयामास च तां देवकी सत्यगौरवात् ॥११॥  
 एतस्मिन्नेव काले तु भूरिभारावपीडिता ।  
 जगाम धरणी मेरो समार्जं त्रिदिवौकसाम् ॥१२॥  
 सन्नह्यकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी ।  
 कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥१३॥

अरे मूर्ख तू अपने पति के साथ बैठी हुई जिस देवकी को पहुँचाने जा रहा है, इसी का आठवाँ गर्भ तेरे प्राण का हरण करने वाला होगा ॥८॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह सुनते ही महाबली कंस ने तलवार खींच ली और जैसे ही देवकी को मारने के लिए उद्युत हुआ, वैसे ही वसुदेवजी ने उसे रोकते हुए कहा ॥९॥ हे महाभाग ! हे निष्पाप ! इस देवकी को मत मारिये, मैं इसके सभी गर्भों को, उत्पन्न होते ही आपकी समर्पित कर दूँगा ॥१०॥ पराशरजी ने

कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! यह सुन कर कत ने सत्य के गौरव से प्रभावित होकर यमुदेवजी की बात मान ली और देवकी को छोड़ दिया ॥११॥ इसी भवसर बोझ से अत्यन्त पीड़ित हुई पृथिवी सुमेरु पर्वत स्थित देवताओं की सभा में पहुँची ॥१२॥ वहाँ जाकर उसने ब्रह्माजी सहित सब देवताओं को प्रणाम किया और खेद तथा कष्टों भरे स्वर में उसने अपना सब कष्ट उन्हें कह सुनाया ॥१३॥

अग्निस्सुवर्णस्य गुरुर्गवा सूर्यं परो गुरु ।  
ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरु ॥१४॥  
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा पूर्वपामपि पूर्वज ।  
कलाकाक्षानिमेपात्मा कालश्चाव्यक्तभूतिमान् ॥१५॥  
तव शभूतस्सर्वेषां समूहो वस्सुरोत्तमा ।  
आदित्या मरुतस्साध्या रुद्रावस्वश्रिवह्नय ॥१६॥  
पितरो ये च लोकानां सृष्टारोऽत्रिपुरोगमाः ।  
एते तत्याग्रमेयस्य विष्णो रूपं महात्मन ॥१७॥  
यक्षराक्षसदैतेयपिशाचोरगदानया ।  
गन्धर्वाप्सरश्चैव रूपं विष्णोर्महात्मन ॥१८॥  
ग्रहर्क्षतारकाचित्रगगनाग्निजलानिला ।  
अहं च विषयाश्चैव सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥१९॥  
तथाप्यनेवरूपस्य तस्य रूपाण्यहं निशम ।  
वाय्ववायवकतां यान्ति बल्लोला इव सागरे ॥२०॥

पृथिवी ने कहा—जैसे स्वर्ग का गुरु अग्नि और रश्मि-समूह का परम गुरु सूर्य है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व के गुरु भगवान् श्री नारायण मेरे गुरु हैं ॥१४॥ यही प्रजापतियों के पति तथा पूर्वजों के पूर्वज ब्रह्मा हैं और वही कला, काष्ठा और निमेष रूप वाला अत्यन्त रूप काल है ॥१५॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! घाय सब भी उन्हीं के अंशरूप हैं । सूर्य, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, प्रसिद्धीद्वय, अग्नि, पितरगण और सौक सृष्टा अत्रि आदि प्रजापति—यह सब महात्मा उन्हीं भगवान् विष्णु के स्वरूप हैं ॥१६-१७॥ यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, उरग,

दानव, गंधर्व और अप्सरा भी उन्ही महात्मा विष्णु के स्वरूप हैं ॥१८॥ ग्रह, नक्षत्र और तारागण वाला यह अद्भुत आकाश, अग्नि, जल, पवन, मैं तथा सम्पूर्ण विषय युक्त यह विश्व भी विष्णुमय ही है ॥१९॥ फिर भी उन अनेक रूपात्मक भगवान् विष्णु के यह रूप अहर्निश समुद्र की तरंगों के समान परस्पर टकराते रहते हैं ॥२०॥

तत्साम्प्रतममी दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः ।

मर्त्यलोकं ससाक्रम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः । २१।

कालनेमिर्हन्तो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना ।

उग्रसेनसुतः कंसस्सम्भूतस्स महासुरः । २२।

अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा ।

सुन्दोऽसुरस्तथात्युग्रो बाणश्चापि बलेस्सुतः । २३।

तथान्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये ।

समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न संख्यातुमुत्सहे । २४।

अक्षीहिण्योऽथ बहुला दिव्यमूर्तिधरास्सुराः ।

महाबलानां ह्मनां दैत्येन्द्राणां ममोपरि । २५।

तद्भूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः ।

विभक्तमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः । २६।

क्रियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम् ।

यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविह्वला । २७।

इस समय मर्त्यलोक पर कालनेमि आदि दैत्यो ने अधिकार कर लिया है और वे दिन रात राजा को पीड़ित करते रहते हैं ॥२१॥ सर्व शक्तिशाली भगवान् विष्णु ने जिस कालनेमि का संहार किया था, वही इस समय उग्रसेन के पुत्र रूप में कंस नाम से पृथिवी पर उत्पन्न हुआ है ॥२२॥ अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिपुत्र बाणामुर तथा अन्याय्य महावीर्यशाली दुरात्मा दैत्य पृथिवी पर राज-गृहों में उत्पन्न हुए हैं, जिनकी शक्तियों करना भी संभव नहीं है ॥२३-२४॥ हे दिव्यधार देवगण ! इस समय महाबली और महंकारी दैत्य राजाओं की अनेक अणीहिणी सेनाएँ मुझे दबाये द्ये हैं ॥२५॥ हे अमरे-



स्वरो ! मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि उनके अत्यन्त बोझ को न सहने के कारण अब मैं अपने को धारण करने में भी समर्थ नहीं हो रही हूँ ॥२६॥ इसलिये हे महाभाग वालो ! मेरे बोझ को दूर करिये, जिससे मैं अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक रसातल में धँसने से बच सकूँ ॥२७॥

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशेश्वरैः ।

भुवो भारवतारार्थं ब्रह्मा प्राह प्रचोदितः ॥२८॥

यथाह वसुधा सर्वं सत्यमेव सत्यमेव दिवौकसः ।

अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकाः ॥२९॥

विभूतयश्च यास्तस्य तासामेव परस्परम् ।

आधिक्य न्यूनता बाध्यबाधकरत्वेन वर्तते ॥३०॥

तदागच्छत गच्छाम क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम् ।

तत्राराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥३१॥

सर्वंयैव जगत्सर्वं स सर्वात्मा जगन्मयः ।

सत्त्वाशेनावतीर्योष्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥३२॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः ।

समाहितमनाश्चैव तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥३३॥

द्वे विद्ये त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा ।

त एव भवतो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो ॥३४॥

द्वे ब्रह्मणी स्वणीयोऽतिस्थूलात्मन्सर्वं सर्वं वित् ।

शब्दब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यत् ॥३५॥

पृथिवी की बात सुनकर सब देवनाभो की प्रेरणा से उनके बोझ को दूर करने विषयक वचनों की ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा ॥२८॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताभो ! पृथिवी का गयन सत्य है, मैं, निवजी, आप सभी यथार्थ में तो नारायण के ही स्वरूप हैं ॥२९॥ उनकी विभूतियों की परस्परिक न्यूनता एवं अधिकता ही बाध्य-बाधक स्वरूप होती हैं ॥३०॥ इसलिये चलो, हम सब क्षीर सागर के किनारे चलकर भगवान् विष्णु का धारा-धन करें और उनकी यह सब वृत्तान्त सुनायें ॥३१॥ क्योंकि ये विद्वत्स्व सगर्वा-

त्मा विश्व के हितार्थ ही अपने सत्वांश से उद्भूत होकर धर्म की सदैव स्थापना करते हैं ॥३२॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कह कर ब्रह्माजी ने सब देवताओं को साथ लियाऔरबड़ा जाकर एकाग्र मन से गरुडध्वज भगवान् को प्रसन्न करने लगे ॥३३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो ! आप वाणी से परे हैं । परा और अपरा नाम की दोनों विद्या आप ही हैं, क्योंकि वे दोनों आपके ही मूर्ति और प्रमूर्ति रूप हैं ॥३४॥ हे अत्यन्त स्थूल एव सूक्ष्म ! हे सर्व ! हे सबके जानने वाले ! शब्द ब्रह्म और परब्रह्म आपका ही है ॥३५॥

ऋग्वेदस्त्वं यजुर्वेदस्सामवेदस्त्वथर्वणः ।

शिक्षाकल्पो निरुक्तं च च्छन्दो ज्योतिषमेव च ॥३६॥

इतिहासपुराणे च तथा व्याकरणं प्रभो ।

मीमांसा न्यायशास्त्रं च धर्मशास्त्राण्यधोक्षज ॥३७॥

आत्मात्मदेहगुणवद्विचाराचारि यद्वचः ।

तदप्याद्यपते नान्यदव्यात्मात्मस्वरूपवत् ॥३८॥

त्वमव्यक्तमनिर्देश्यमचिन्त्यानामवर्णवत् ।

अपाणिपादरूपं च शुद्धं नित्यं परात्परम् ॥३९॥

शृणोष्यकर्णः परिपश्यसि त्वमचक्षुरेको बहुरूपरूपः ।

अपादहस्तो जवनो ग्रहीता त्वं वेत्सि सर्वं न च सर्ववेद्यः ॥४०॥

अणोरणीयांसमसत्स्वरूपं त्वां पश्यतोऽज्ञाननिवृत्तिरग्रधा ।

धीरस्य धीरस्य विभर्ति नान्यद्वरेष्यरूपात्परतः परात्मन् ॥४१॥

त्वं विश्वनाभिर्भुवनस्य गोप्ता सर्वाणि भूतानि तवान्तराणि ।

यद्भूतमव्यं यदणोरणीयः पुमांस्त्वमेकः प्रकृतेः परस्तात् ॥४२॥

आप ही, ऋक्, यजु, साम और अथर्व रूप चारो वेद हैं और आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष शास्त्र भी हैं ॥३६॥ आप ही इतिहास पुराण और व्याकरण हैं तथा हे अधोक्षज ! मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र भी आप ही हैं ॥३७॥ हे आद्यपते ! जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल, सूक्ष्म, और उनका कारण अव्यक्त तथा उनके विचारः वाला वेदान्त भी आपसे अभिन्न ही है ॥३८॥ आप ही अव्यक्त, अनिर्देश्य, अचिन्त्य, नाम-वर्ण से हीन, अंग तथा

रूपादिसे रहित, शुद्ध सनातन और पर से भी पर हैं ॥३६॥ आप ही बिना श्रोत के सुनने वाले, बिना नेत्र देखने वाले, एक होकर भी अनेक दिखाई देने वाले, अघ-रहित होकर भी अत्यन्त वेग वाले और अवेद्य होकर भी सब के जानने वाले हैं ॥४२॥ हे परमात्मन् । जिस घोर पुरुष की मति आपके रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखनी उस आपके मणु से भी सूक्ष्म रूप का दर्शन करने वाले का अज्ञान निरान्त रूप से नष्ट हो जाता है ॥४१॥ आप ही विश्व की नाभि और तीनों लोकों के रक्षक हैं, सब प्राणियों की स्थिति भी आप में ही है तथा विगन और आगमी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जो कुछ भी है, वह सब आपकी प्रकृत्यासीत एक मात्र परमपुरुष हैं ॥४२॥

एकश्चतुर्धा भगवान्हुताशो वर्चोविभूतिं जगती वदासि ।  
 त्व विश्वतश्चभुरनन्तमूर्ते त्रैधा पद त्व निदधासि घातः ॥४३॥  
 यधाग्निरेको बहुधा समिध्यते विकारभेदैरविकाररूपः ।  
 तथा भवान्सर्वगतं रूपी रूपाण्यशेषाण्यनुपुष्यतीश ॥४४॥  
 एक त्वमग्रघ परम पद यत्पश्यन्ति त्वा सूरयो ज्ञानदृश्यम् ।  
 तप्तो नान्यत्किञ्चिदस्ति स्वरूप यद्वा भूत यच्च भव्य परात्मन्  
 व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्व समष्टिव्यष्टिरूपवान् ।  
 सर्वज्ञस्सर्ववित्सर्वशक्तिज्ञानबलद्धिमान् ॥४६॥  
 अन्यूनश्चाप्यवृद्धिश्च स्वाधीनो नादिमान्वशी ।  
 क्लृप्तन्त्राभयक्रोधकामादिभिरसंयुत ॥४७॥

आप ही चार प्रकार के अग्नि रूप से विश्व को तेज रूप विभूति प्रदान करते हैं । हे अनन्तमूर्ते । आपके चतुःस्र घोर विद्यमान हैं तथा आप ही त्रैलोक्य को तीन पग में नापते हैं ॥४३॥ हे ईश्वर । जैसे एक ही अग्नि विकार भेद से अनेक रूप वाला होता है वैसे एक मात्र आपसर्वगत रूप से सभी रूपों को धारण करते हैं । ४४॥ आप ही एक मात्र अष्ट परमपद हैं आप ही ज्ञान-दृष्टि के द्वारा दर्शनीय हैं, इसलिए जानी पुरुष आपकी ही देखा करते हैं । हे परात्मन् । भूत-अविव्यक्त स्वरूप जो कुछ भी है, वह आपसे भिन्न नहीं है ॥४५॥ आप ही व्यक्त रूप तथा आप ही अव्यक्त रूप हैं, समष्टि और व्यष्टि रूप भी आप ही हैं,

अवसर पर महर्षि नारद ने कंस के पास जाकर कहा कि देवकी के आठवें गर्भ के रूप में भगवान् विष्णु अवतीर्ण होंगे ॥६६॥ नारद जी की बात सुन कर कंस अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने वसुदेव तथा देवकी को कारागार में डाल दिया ॥६७॥

वसुदेवेन कसाय तेनैवोक्त यथा पुरा ।

तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान्निजः ॥६८॥

हिरण्यकशिपोः पुत्राण्यङ्गर्भा इति विश्रुताः ।

विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भानयोजयत् ॥६९॥

योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहित यया ।

अविद्यया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हरिः ॥७०॥

निद्रां गच्छ ममादेशात्पातालतलसथयान् ।

एकैकत्वेन पङ्गुर्भान्देवकीजठरं नय ॥७१॥

हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्योऽशस्ततो मम ।

अंशांशेनोदरे तस्यास्सप्तमः सम्भविष्यति ॥७२॥

गोकुले वसुदेवस्य भार्याया रोहिणी स्थिता ।

तस्यास्य सम्भूतिसमं देवि नेयस्त्वयोदरम् ॥७३॥

सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधतः ।

देवक्याः पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥७४॥

गर्भसङ्कर्षणात्सोऽथ सौके सङ्कर्षणेति वै ।

सज्ञाभवान्पश्यते धीरश्श्वेताद्रिशिखरोपमः ॥७५॥

हे प्रिय ! वसुदेव जी ने अपने पूर्व वचनों के अनुसार, अपने प्रत्येक पुत्र को कंस के लिये अर्पित कर दिया ॥६८॥ सुनते हैं कि देवकी के प्रथम छः गर्भ हिरण्यवर्तिमु के पुत्र थे, विष्णु भगवान् द्वारा प्रेरित योगनिद्रा उन्हें गर्भ में स्थापित करती रही थी ॥६९॥ जिस अग्निद्या स्वरूपिणी योगमाया से सम्पूर्ण विश्व मोहित है, वही भगवान् की माया है, उससे भगवान् विष्णु ने कहा ॥७०॥ श्री भगवान् बोले—हे निद्रा ! तू यही से जाकर पाताल में स्थित छः गर्भों को एक-एक करके देवकी के गर्भ में स्थापित कर ॥७१॥ जब कंस उन सब का

वध कर डालेगा, तब मेरा अश्व रूप शेष अपने अश्वशो के सहित देवकी का सातवाँ गर्भ होगा ॥७२॥ वसुदेव जी की एक दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल में निवास करती है, उस सातवें गर्भ को लेकर तू उसी की कोल में स्थापित कर देना, जिससे कि वह उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ प्रतीत हो ॥७३॥ उस गर्भ के विषय में सब लोग यही समझेंगे कि कारागृह में पड़ी हुई देवकी का सातवाँ गर्भ कस के भय से गिर गया ॥७४॥ जिसमें शुभ्र पर्वत शिखर के समान वीर पुरुष का गर्भ से आकर्षण होने के कारण 'सकर्षण' नाम पड़ेगा ॥७५॥

ततोऽहं सम्भविष्यामि देवकीजठरे शुभे ।

गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ॥७६॥

प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि ।

उत्पत्स्यामि नवम्या तु प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥७७॥

यशोदाशयने मा तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते ।

मच्छक्तिप्रेरितमतिवसुदेवो नयिष्यति ॥७८॥

कसश्च त्वामुपादाय देवि शैलशिलातले ।

प्रक्षेप्यत्यन्तरिक्षे च सस्थानं त्वमवाप्स्यसि ॥७९॥

ततस्त्वा शतदृक्छकं प्रणम्य मम गौरवात् ।

प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥८०॥

त्वचं शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ।

स्थानंरनेकं पृथिवीमशेषां मण्डयिष्यसि ॥८१॥

त्वं भूति सन्नतिः क्षान्ति कान्तिर्द्यौ पृथिवी धृति ।

लज्जा पुष्टिरुपाया तु काचिदन्या त्वमेव सा ॥८२॥

हे शुभे ! फिर मैं देवकी के उदर में आठवाँ गर्भ होऊँगा उस समय तू भी यशोदा के गर्भ में स्थित हो जाना ॥७६॥ वर्षा ऋतु के भादो मास की कृष्णाष्टमी को रात्रिकाल में मैं अवतीर्ण होऊँगा और तुझे नवमी के प्राप्त होने पर जन्म लेना है ॥७७॥ उस समय मेरी प्रेरणा से वसुदेव जी की मति ऐसी हो जायगी, जिससे वह मुझे यशोदा के शयनागार में पहुँचा कर तुझे देवकी के पास ले जायेंगे ॥७८॥ हे देवि ! फिर वस तुझे पत्थर की सिला पर दे मारेगा

और तू पछाडी जाते ही अन्तरिक्ष मे चली जायगी ॥७६॥ उस समय हजार  
नेत्र वाला इन्द्र मेरी महिमा से तुझे वहिन मानता हुआ प्रणाम करेगा ॥८०॥  
तू भी शुम्भ, निशुम्भादि हजारो दैत्यों का वध करता हुई अपने अनेक स्थान  
बनाकर पृथिवी को अलङ्कृत करेगी ॥८१॥ तू भूति, सन्नति, क्षान्ति, वान्ति,  
आकाश और पृथिवी है तथा तू ही धृति, सज्जा एव उपा है अथवा इनके  
अतिरिक्त भी जो कोई शक्ति है, वह सब कुछ तू ही है ॥८२॥

ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भाम्बिकेति च ।

भद्रेति भद्रकालीति क्षेमदा भाग्यदेति च ॥८३॥

प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानन्नमूर्त्तयः ।

तेषां हि प्रार्थितं सर्वं मत्प्रसादाद्भूविष्यति ॥८४॥

सुरामासोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता ।

नृणामशेषकामास्त्व प्रसन्ना सम्प्रदास्यसि ॥८५॥

ते सर्वे सर्वदा भद्रे मत्प्रसादादसशयम् ।

असन्दिग्धा भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम् ॥८६॥

प्रातः काल और अपराह्न काल मे जो मनुष्य तेरी स्तुति करते हुए  
विनम्रता से तुझे आर्ये ! दुर्गे ! वेदगर्भे ! अम्बिके ! भद्रे ! भद्रकाली ! कल्याण  
दायिनी, भाग्य प्रदायिनी ! आदि कह पुकारेंगे, उनकी सभी अभिलाषाएँ मेरी  
कृपा से पूर्ण हो जायँगी ॥८३-८४॥ भोज्य-भक्ष्य पदार्थों द्वारा पूजन किये जाने  
पर प्रसन्न हुई तू सब मनुष्यों की कामनाएँ मिट्ट करेगी ॥८५॥ तेरे द्वारा प्रदत्त  
ये सभी काम्य-फल मेरी कृपा से अवश्य ही मिट्ट होंगे । इमलिये, हे देवि ! तू  
मेरे द्वारा निर्दिष्ट स्थान को गमन कर ॥८६॥

### द्वितीया अध्याय

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन यं तथा ।

पङ्कगर्भगर्भविन्यास चम्रे चायस्य कर्पणम् ॥१॥

सप्तमे रोहिणी गर्भे प्राप्ते गर्भं ततो हरिः ।

लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश ह ॥२॥

योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव तथा दिने ।

सम्भूता जठरे तद्वद्योक्तं परमेष्ठिना ॥३॥

ततो ग्रहणस्सम्यक्प्रचचार दिवि द्विज ।

विष्णोरंशे भुवं याते ऋतवश्चावभुदशुभाः ॥४॥

न सेहे देवकी ब्रष्टुं कश्चिदप्यतितेजसा ।

जाज्वल्यमानां तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोभमाययुः ॥५॥

अदृष्टाः पुरुषैस्सत्रीभिर्देवकी देवतागणाः ।

विभ्राणां वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहर्निशम् ॥६॥

श्री पराशर जी ने कहा—हे मंत्रेयजी ! देवाधि देव भगवान् विष्णु के आदेशानुसार जगद्धात्री योगमाया ने देवकी के गर्भ में छः गर्भ स्थित किये और सातवें गर्भ को खींच लिया ॥१॥ इस प्रकार जब सातवाँ गर्भ खींच कर रोहिणी के उदर में स्थापित हो गया तब भगवान् तीनों लोकों की हित-कामना से देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए ॥२॥ भगवान् विष्णु के कथनानुसार ही योग माया ने भी उसी दिन यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया ॥३॥ हे द्विज ! जब भगवान् का वह अंश पृथिवी पर अवस्थित हुआ, तभी से आकाशस्थ ग्रहों की गति नियमित हो गई और ऋतुएँ भी मंगलमयी होकर सुशोभित होने लगी ॥४॥ उस समय देवकी इतनी तेजोमयी हो गई थी, उनकी ओर देख सकना भी कठिन था, उन्हें देख कर मनों में क्षोभ होता था ॥५॥ उस समय देवगण किसी स्त्री-पुरुष को दिखायी न दे सकें, इस प्रकार अप्रकट रह कर दिन-रात देवकी की स्तुति करने लगे ॥६॥

प्रकृतिस्त्वं परा सूक्ष्मा ब्रह्मगर्भाभवः पुनः ।

ततो वाणी जगद्धातुर्वेदगर्भासि शाभने ॥७॥

सृज्यस्वरूपगर्भासि सृष्टिभूता अनातने ।

बीजभूता तु सर्वस्य यज्ञभूताभवस्त्रयी ॥८॥

फलगर्भा त्वमेवेज्या वह्निगर्भा तथारणि ।  
 अदितिर्देवगर्भा त्व दैत्यगर्भा तथा दिति ॥९  
 ज्योत्स्ना वासरगर्भा त्व ज्ञानगर्भासि सन्नतिः ।  
 नयगर्भा परा नीतिर्लज्जा त्व प्रश्रयोद्वहा ॥१०  
 कामगर्भा तथेच्छा त्व तुष्टि सन्तोषगर्भिणी ।  
 मेधा च बोधगर्भासि धैर्यगर्भोद्वहा धृति ॥११

देवगण ने कहा—हे शोभने ! पहिले तू ग्रह प्रतिबिम्ब को धारण करने वाली मूल प्रकृति थी, विश्वसृष्टि की वेदगर्भा धारणी हुई ॥७॥ हे सनातने ! तू ही उत्पन्न होने योग्य पदार्थों की कारण रूपा और सृष्टि रूपा है, तू ही सब की बीजभूता, यज्ञमयी और वेदमयी है ॥८॥ तू ही फल की उत्पन्न करने वाली यज्ञ क्रिया तथा अग्नि की उत्पादिका अरणि है । तू ही देवमाता अदिति और दैत्य-जगती दिति है ॥९॥ तू ही दिन को प्रकट करने वाली ज्योत्स्ना, ज्ञान को उत्पन्न करने वाली गुरु-सुश्रूषा, न्यायगर्भों परमनीति और विनय की उत्पन्न करने वाली लज्जा है ॥१०॥ तू ही काम की उत्पन्न करने वाली इच्छा, सन्तोष की उत्पन्न करने वाली तुष्टि, बोध दायिनी मेधा और धैर्यगर्भा धृति है ॥११॥

ग्रहर्क्षतारकागर्भा द्यौरस्याखिलहेतुकी ।

एता विभूतयो देवि तथान्याश्च सहस्रश ॥१२

तथासहस्र जगद्धात्रि साम्प्रत जठरे तव ।

समुद्राद्रिनदीद्वीपपवनपत्तनभूषणा ॥१३

ग्रामखर्वटखेटाढ्या समस्ता पृथिवी शुभे ।

समस्तवह्नयोऽम्भासि सकलाश्च समीरणा ॥१४

ग्रहर्क्षतारकाचित्र विमानशतसकुलम् ।

अवकाशमशेषस्य यद्दाति नभ स्थलम् ॥१५

भूलोकश्च भुवर्लोकस्स्वर्लोकोऽय महर्जनः ।

तत्रैव ब्रह्मलोकश्च ब्रह्माण्डमखिल शुभे ॥१६

तदन्तरे स्थिता देवा दैत्यगन्धर्वचारणा ।

महोरगाम्बुजा यक्षा राक्षसा प्रेतगुह्यवा ॥१७



मनुष्याः पशवश्चान्ये ये च जीवा यशस्विनि ।

तैरन्तःस्थैरनन्तोऽसौ सर्वगः सर्वभावनः ॥१८

रूपकर्मस्वरूपाणि न परिच्छेदगोचरे ।

यस्याखिलप्रमाणानि स विष्णुर्गर्भगस्तव ॥१९

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा विद्या सुधा त्वं ज्योतिरम्बरे ।

त्वं सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥२०

प्रसीद देवि सर्वस्य जगत्तृणं शुभे कुरु ।

प्रीत्या तं धारयेद्वानं धृतं येनाखिल जगत् ॥२१

तू ही ब्रह्मा, नक्षत्रो, और तारों को धारण करने वाला आकाश है । यह तथा अन्यान्य हजारों विभूतियाँ तेरे जठर में स्थित हैं । समुद्र, पर्वत, नदी, द्वीप, वन और नगर, ग्राम, खंड, खेटादि से सुशोभित सम्पूर्ण पृथिवी, सभी अग्नियाँ, जल, सब पवन, ग्रह-नक्षत्र और तारों से चित्रित हुमा, सैकड़ों विमानों से परिपूर्ण और सब को अवकाश देने वाला आकाश, भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, मह, जन, तप और ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमें स्थित देवता, दैत्य, गंधर्व, चारण, नाग, यक्ष, राक्षस, प्रेत, गृह्यक, मनुष्य, पशु तथा अन्यान्य प्राणियों के कारण रूप जो सर्वत्र गमनशील और सर्व भावन श्री अनन्त भगवान् हैं तथा जिनके रूप, कर्म, स्वभाव और समस्त परिणाम परिच्छेद से परे हैं वही भगवान् विष्णु तेरे गर्भ में प्रतिष्ठित हैं ॥१२-१९॥ स्वाहा, स्वधा, विद्या, सुधा और आकाश में स्थित ज्योति तू ही है तथा तू सभी लोकों की रक्षा के लिये ही पृथिवी पर अवतीर्ण हुई है ॥२०॥ हे देवि ! तू प्रसन्न होकर सम्पूर्ण विश्व का भगल कर । जिस भगवान् ने इस सम्पूर्ण विश्व को धारण किया हुआ है, उसे तू भी प्रीति सहित धारण कर ॥२१॥



### तीमरा अध्याय

एवं संस्तुयमाना सा देवीर्देवमघाउग्रतः ।

गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगत्स्त्राणकारणम् ॥१

ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना ।  
 देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूत महात्मना ॥२॥  
 तञ्जन्मदिनमत्यर्थमाह्लाद्यमलदिङ्मुखम् ।  
 बभूव सर्वलोकस्य कौमुदी शशिनो यथा ॥३॥  
 भन्तस्सन्तोषमधिक प्रशम चण्डमारुता ।  
 प्रसाद निम्नगा याता जायमाने जनार्दने ॥४॥  
 सिन्धवो निजशब्देन वाद्य चक्रुर्मनोहरम् ।  
 जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणा ॥५॥  
 ससृजु पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगा ।  
 जज्वलुश्चाग्नयश्शान्ता जायमाने जनार्दने ॥६॥  
 मन्द जगज्जलदा पुष्पवृष्टिमुचो द्विज ।  
 अर्द्धरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने ॥७॥

श्री पराशर जी ने कहा—हे मैथेयजी । देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुत हुई देवकी ने जगत् की रक्षा के निमित्त भगवान् को अपन गर्भ में धारण किया ॥१॥ फिर सम्पूर्ण विश्व रूप कमल के विकासार्थ देवकी हृषीणी सन्ध्या में भगवान् प्रच्युत रूप भास्कर प्रवट हुए ॥२॥ भगवान् का वह जन्म-दिवस चन्द्रमा की चाँदनी के समान सम्पूर्ण विश्व को आनन्दित करने वाला हुआ तथा उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ अत्यंत स्वच्छ होगईं ॥३॥ भगवान् का जन्म होने पर साधुजनो को अत्यंत प्रसन्नता हुई, प्रवण्ड पवन शान्त हो गया और सभी दिशाँ निर्मल होगईं ॥४॥ समुद्र का शब्द भी मनोहर बाजो का घोष बन गया, १२४ गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥५॥ भगवान् के उत्पन्न होने पर आकाश में गमन करने वाले देवता पुष्प वृष्टि करने लगे और शान्त यज्ञाग्नि पुन प्रज्वलित हो उठी ॥६॥ उस आधी रात के समय प्रवट हुए जनार्दन पर पुष्प वृष्टि करते हुए मेघ मन्द घोष करने लगे ॥७॥

फुल्लेन्दीवरपत्राभ चतुर्वाहुमुदीक्ष्य तम् ।  
 श्रीवत्सवक्षस जात तुष्टावानवदुन्दुभि ॥८॥

अभिष्टूय च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिर्महामतिः ।  
 विज्ञापयामास तदा कंसाद्भूतो द्विजोत्तम ॥६॥  
 जातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरम् ।  
 दिव्यरूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहर ॥१०॥  
 अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम घातनम् ।  
 अवतीर्ण इति ज्ञात्वा त्वदस्मिन्मम मन्दिरे ॥११॥  
 योऽनन्तरूपोऽलिलविश्वरूपो ।  
 गर्भेऽपि लोकान्वपुषा विभर्ति ।  
 प्रसीदतामेव स देवदेवो ।  
 यो माययाविष्कृतबालरूपः ॥१२॥  
 उपसहर सर्वात्मन् प्रमेतच्चतुर्भुजम् ।  
 जानातु मावतार ते कंसोऽयं दितिजन्मज ॥१३॥  
 स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते ।  
 सफलं देवि सञ्जातं जातोऽहं यत्तवोदरात् ॥१४॥

विकसित कमल-दल जैसी कान्ति वाले, चार भुजाओं और हृदय में श्री वत्स चिह्न वाले भगवान् को उत्पन्न हुआ देखकर वसुदेवजी उनकी स्तुति करने लगे ॥६॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! महामति वसुदेवजी ने प्रसन्न करने वाली वाणी से स्तुति करते हुए कंस के भय के कारण इस प्रकार कहा ॥६॥ वसुदेवजी बोले—हे देवदेवेश ! यद्यपि आप उत्पन्न हुए हैं, फिर भी अपने इस शङ्ख-चक्र-गदा युक्त दिव्य स्वरूप को छुपा लीजिये ॥१०॥ हे प्रभो ! आपके भेरे घर में उत्पन्न होने की सूचना प्राप्त होते ही कंस भेरे विनाश में तत्पर होगा ॥११॥ देवकीजी ने कहा—जो अखिल विश्वेश्वर अनन्त रूप भेरे गर्भ में स्थित होकर भी सब लोकों के धारण करने वाले हैं और जिन्होंने अपनी ही माया से यह बाल रूप धारण किया है, वह देवदेवेश्वर भगवान् हम पर प्रसन्न हो ॥१२॥ हे सर्वात्मन् ! अपने इस चतुर्भुज रूप को छुपा लीजिये, जिससे दैत्यवंश कंस को आपके इस अवतार का ज्ञान न हो सके ॥१३॥ श्री भगवान् ने कहा—

हे देवि । पूर्व जन्म मे मुझ से पुत्र का मनोरथ करने के कारण ही मैं तेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ ॥१४॥

इत्युक्त्वा भगवास्तूर्णणी बभूव मुनिसत्तम ।  
 वसुदेवोर्जिष त रात्रावादाय प्रययौ वहि ॥१५॥  
 मोहिताश्चाभवस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया ।  
 मथुराद्वारपालाश्च ब्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥१६॥  
 वर्षता जलदाना च तोयमत्युल्बणा निशि ।  
 सवृत्यानुययौ शेष फणोरानकदुन्दुभिम् ॥१७॥  
 यमुना चातिगम्भीरा नानावर्त्तेशताकुलाम् ।  
 वसुदेवो वहन्विष्णु जानुमानवहा ययौ ॥१८॥  
 कसस्य करदानाय तत्रेवाभ्यागतास्तटे ।  
 नन्दादीन् गोपवृद्धाश्च यमुनाया ददर्श स ॥१९॥  
 तस्मिन्काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया ।  
 तामेव कन्या मंत्रेय प्रसूता मोहिते जने ॥२०॥  
 वसुदेवो हि विन्यस्य बालमादाय दारिकाम् ।  
 यशोदा शयनात्तूर्णमाजगामामितद्युति ॥२१॥  
 ददृशे च प्रवृद्धा सा यशोदा जातमात्मजम् ।  
 नीलोत्पलदलश्याम ततोऽत्यर्थं मुद ययौ ॥२२॥

श्री पराशरजी ने कहा—ह मुनिसत्तम । यह कहकर भगवान् चुप हो गये और उस रात्रिकाल मे ही वसुदेवजी उन्हें लेकर बाहर चल दिये ॥१५॥ जिस समय वसुदेवजी जा रहे थे उस समय बारागार-रक्षक और मथुरापुरी के द्वार-रक्षक योगनिद्रा के वशीभूत होकर चेतना-हीन होगये ॥१६॥ भगवान् शेष उस रात्रि काल मे वर्षों चरते हुए मेघों के जल को रोवने के लिये छपने फल को उनके ऊपर बरके पीछे-पीछे गये ॥१७॥ भगवान् को लेजाते हुए वसुदेवजी न विविध प्रकार की भँवगे से परिपूर्ण यमुन जी को जिस समय पार किया, उस समय उनके घुटनों तक ही जल रह गया ॥१८॥ उसी समय कम के लिय बर देने के निमित्त भाये हुए नन्दादि वृद्ध गोपों को भी उन्होंने यमुनाजी के किनारे

पर देया ॥१६॥ हे भेदेय जी ! उस बाल योगनिद्रा के प्रभाव से सभी मनुष्य मोहित होगये थे, जिससे मोहित हुई यशोदा ने भी कन्या उत्पन्न की ॥२०॥ तब अत्यन्त तेजस्वी वसुदेवजी ने अपने बालक को वहाँ शयन कराकर उस कन्या को उठाया और शयनागार से बाहर निकल आये ॥२१॥ जब यशोदा की नीद्र खुली तब उमने एक श्याम वर्ण वाले पुत्र को उत्पन्न हुआ देखा, जिससे उसे अत्यन्त प्रमग्नता हुई ॥२२॥

आदाय वसुदेवोऽपि दारिका निजमन्दिरे ।

देवकोशयने न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२३॥

ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणोस्सहस्रोत्थिताः ।

कंसायावेदयामासुर्देवकीप्रसवं द्विज ॥२४॥

कसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह बालिकाम् ।

मुखं मुञ्चेति देवक्या सन्नकण्ठया निवारितः ॥२५॥

चिक्षेप च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थिता ।

अवाप रूपं सुमहत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥२६॥

प्रजहाम तथैवोच्चैः कस च रुपिताग्रवीत् ।

किं मया क्षितया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति ॥२७॥

सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्यु पुरा च ते ।

तदेतत्सम्प्रधार्याशु क्रियता हितमात्मनः ॥२८॥

इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्त्रग्गन्धभूषणा ।

पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसा ॥२९॥

इधर कन्या को लेकर आये हुए वसुदेवजी ने उसे देवकी के शयनागार में शयन करा दिया और फिर पहिले के समान ही स्थित होगये ॥२३॥ फिर बालक रुदन सुनकर कारागार रक्षक सचेत होगये और उन्होंने सुरक्ष ही देवकी के सन्तान उत्पन्न होने की कन को सूचना दी ॥२४॥ यह सुनते ही कंस ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ जाकर उस कन्या को पकड़ लिया और देवकी के रोकने पर भी उसे शिला पर पछाड़ दिया । उसके ऐसा करते ही वह कन्या आकाश में जाकर शस्त्रास्त्र युक्त अष्ट भुज रूप से स्थित होगई ॥२५-२६॥ फिर उमने

भीषण अट्टहास करते हुए क्रोध पूर्वक कम से रहा—अरे वस ! मुझे पछाड़ने से तेरा क्या-क्या बना ? तुझे मारने वाला तो उत्पन्न हो चुका है ॥२७॥ तेरे पूर्व जन्म मे भी वही देवताओं के सर्वस्व भगवान् विष्णु तेरे लिये मृत्यु रूप थे, यह बात जानकर अब तू अपनी रक्षा का उपाय कर ॥२८॥ वह दिव्यमाला और मलयादि से विभूषिता तथा सिद्धो द्वारा स्तुत देवी यह कहकर, कस के देरते—देखते ही आकाश मार्ग मे अन्तर्धान होगई ॥२९॥

### चौथा अध्याय

कसस्तदोद्विग्नमना प्राह सर्वान्महासुरान् ।  
 प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुङ्गवान् ॥१॥  
 हे प्रलम्ब महाबाहो केशिन् धेनुक पूतने ।  
 अरिष्ठाद्यास्तथैवान्ये श्रूयता वचन मम ॥२॥  
 मा हन्तुममरैर्यत्न कृत किल दुरात्मभि ।  
 मदीर्यतापितान्वीरो न त्वेता-गणयाम्यहम् ॥३॥  
 किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण किं हरेणैकचारिणा ।  
 हरिणा वापि किं साध्य छिद्रेष्वसुरधातिना ॥४॥  
 किमादित्यं किं वसुभिरल्पवीर्यं किमग्निभि ।  
 किं वान्यैरमरै सर्वैर्मद्राहुवलनिर्जितैः ॥५॥  
 किं न दृष्टोऽमरपतिमया सयुगमेत्य स ।  
 पृष्ठेनैव बहन्बाणानपागच्छस वक्षसा ॥६॥  
 मद्राष्ट्रे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किं तदा ।  
 मद्वाणभिन्नैर्जलहैर्नापो मुक्ता ययेप्सिताः ॥७॥  
 किमुर्व्यामवनीपाला मद्बाहुवलभीरव ।  
 न सर्वे मघ्नन्ति याता जरासन्धमृते गुरुम् ॥८॥  
 अमरेषु ममावज्ञा जायते दैत्यपुङ्गवा ।  
 हास्य मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥९॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर खिन्न चित्त हुए वंस ने प्रलम्ब और केशी आदि अपने सभी अमुख असुरों को बुला कर उनसे कहा—॥१॥ हे प्रलम्ब ! हे केशिन् ! हे धेनुक ! हे पूतने ! हे अरिष्ट ! तथा अन्यान्य वीरों ! मेरी बात सुनो ॥२॥ यह चर्चा फैल रही है कि दुष्ट देवताओं ने मेरा सहार करने की कोई योजना बनाई है । मरन्तु मैं वीर पुरुष हूँ, इसलिये इन्हें कुछ भी नहीं समझता ॥३॥ अल्प वीर्य इन्द्र, एकाकी विवरण करने वाले रुद्र या छिद्र खोजकर असुरों को मारने वाले विष्णु उनके किस प्रयोजन को सिद्ध कर सकते हैं ? ॥४॥ मेरे भुजबल से पीड़ित हुए आदित्यों, अल्प वीर्य वसुओं, अग्नि्यों और सब देवताओं के सम्मिलित प्रयत्न से भी मेरा क्या बिगड़ सकता है ? ॥५॥ क्या तुम सबने यह नहीं देखा कि मुझ से युद्ध करता हुआ इन्द्र रणभूमि में पीठ दिखाकर और बाणों के आघात सह कर भाग गया था ॥६॥ इन्द्र ने जब मेरे राज्य में वर्षा करना रोक दिया था, सब क्या मेरे बाणों से बिंधे हुए बादलों ने वृष्टि नहीं की थी ? ॥७॥ मेरे बड़े पुरासन्ध के अतिरिक्त क्या अन्य सभी भूपाल गण मेरे भुजबल से डर कर मेरे सामने मस्तक नहीं झुकाते ? ॥८॥ हे दैत्य पुङ्गवों ! देवताओं के प्रति मेरे हृदय में तिरस्कार भर रहा है और उन्हें मेरी हिंसा का उपाय करते हुए देखकर तो मुझे हँसी आ रही है ॥९॥

तयापि खलु दुष्टाना तेषामप्यधिक मया ।

अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीय दुरात्मनाम् ॥१०॥

तद्ये यशस्विन केचित्पृथिव्या ये च याजका ।

कार्यो देवापकाराय तेषा सर्वात्मना वध ॥११॥

उत्पन्नश्चापि मे मृत्युर्भूतपूर्वम्स वै किल ।

इत्येतद्धारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥१२॥

तस्माद्बालेषु च परो यत्नः कार्यो महीतले ।

यथोद्भूत बल बाले स हन्तव्य प्रयत्नत ॥१३॥

इत्याज्ञाप्यासुरान्कस्य प्रविश्याद्यु गृहं ततः ।

धुमोच वसुदेव च देवनी च निरोधत ॥१४॥

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाधुना ।

कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥१५॥

तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते ।

अभंका युवयोर्दोषाच्चायुषो यद्वियोजितः ॥१६॥

इत्याश्वास्य विमुक्त्वा च कसस्तौ परिशङ्कितः ।

अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश ततः स्वकम् ॥१७॥

फिर भी हे दंत्य श्रेष्ठो ! उन दुष्ट दुरात्मा देवमण का अहित करने के लिये अब मुझे अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥१०॥ इसनिन्दे पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हो, उन्हें देवताओं के घनिष्ठ के निन्दित मान डालना चाहिये ॥११॥ देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यज्ञ भी कहा था कि मेरी पूर्व जन्म की मृत्यु उत्पन्न हो चुकी है ॥१२॥ इसनिन्दे पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालको पर विशेष दृष्टि रखने हुए, जो अहित व्यवहार बालक प्रतीत हो, उसका वध कर देना चाहिये ॥१३॥ कन ने अमृता की दम प्रकार की आज्ञा दी और कारागार में जाकर वसुदेव—देवकी की वध कर दिया ॥१४॥ उस समय कन ने कहा—आपने बान्हों को अब तक मेरे श्वशुर ही मारा, क्योंकि मेरा मारने वाला तो कोई अन्य बालक उत्पन्न हो चुका है ॥१५॥ परन्तु, उन बालको का ऐसा ही भविष्य था, यह मानकर आप दुःखी न हो । आपका प्रारब्ध दोष भी उन बालको की मृत्यु का कारण हुआ है ॥१६॥ श्री पराशर जी ने कहा—हे द्विजवर ! कन ने उन दोनों को दम प्रकार घेरे बंधाया और कारागार से छोड़ कर स्वयं गवाशुथ होने हुए अपने अन्तर्गृह में पढ़ा ॥१७॥



श्री पराशरजी ने कहा—फिर खिन्न चित्त हुए कंस ने प्रलम्ब और केशी आदि अपने सभी प्रमुख असुरों को बुला कर उनसे कहा—॥१॥ हे प्रलम्ब ! हे केशिन् ! हे धेनुक ! हे पूतने ! हे अरिष्ट ! तथा अन्यान्य वीरो ! मेरी बात सुनो ॥२॥ यह चर्चा फैल रही है कि दुष्ट देवताओं ने मेरा महार करने की कोई योजना बनाई है । परन्तु मैं बोर पुरुष हू, इसलिये इन्हें कुछ भी नहीं समझता ॥३॥ अल्प वीर्य इन्द्र, एकाकी विचरण करने वाले रुद्र या छिद्र खोजकर असुरों को मारने वाले विष्णु उनके किस प्रयोजन को सिद्ध कर सकते हैं ? ॥४॥ मेरे भुजबल से पीड़ित हुए आशित्यो, अल्प वीर्य वसुओं, अग्नियो और सब देवताओं के सम्पिलित प्रयत्न से भी मेरा क्या बिगड़ सकता है ? ॥५॥ क्या तुम सबने यह नहीं देखा कि मुझ से युद्ध करता हुआ इन्द्र रण-भूमि में पीठ दिखाकर और बाणों के आघात सह कर भाग गया था ॥६॥ इन्द्र ने जब मेरे राज्य में वर्षा करना रोक दिया था, तब क्या मेरे बाणों से बिधे हुए बादलों ने वृष्टि नहीं की थी ? ॥७॥ मेरे बड़े जरासन्ध के अतिरिक्त क्या अन्य सभी भूपाल गगन मेरे भुजबल से डर कर मेरे सामने मस्तक नहीं झुकाते ? ॥८॥ हे दैत्य पुङ्गवो ! देवताओं के प्रति मेरे हृदय में तिरस्कार भर रहा है और उन्हें मेरी हिंसा का उपाय करते हुए देखकर तो मुझे हैमी आ रही है ॥९॥

तथापि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया ।

अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥१०॥

तद्ये यशस्विनः केचित्पृथिव्यां ये च याजकाः ।

कार्यो देवापकाराय तेषां सर्वात्मना वधः ॥११॥

उत्पन्नश्चापि मे मृत्युर्भूतपूर्वस्स वै किल ।

इत्येतद्धारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥१२॥

तस्माद्बालेषु च परो यत्नः कार्यो महीतले ।

यत्रोद्विक्तं बलं बाले ऽ हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥१३॥

इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसः प्रविश्याशु गृहं ततः ।

मुमोच वसुदेवं च देवकी च निरोधतः ॥१४॥

युवयोर्धातिता गर्भा वृथैवैते मयाघुना ।

कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥१५॥

तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते ।

अर्भका युवयोर्दोषाच्चायुपो यद्वियोजितः ॥१६॥

इत्याश्वास्य विमुक्त्वा च कसस्तौ परिशुद्धितः ।

अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश ततः स्वकम् ॥१७॥

फिर भी हे दैत्य श्रेष्ठो ! उन दुष्ट दुरात्मा देवगण का ग्रहित करने के लिये अब मुझे अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥१०॥ इसलिये पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हो, उन्हें देवताओं के ग्रहित के निमित्त मार डालना चाहिये ॥११॥ देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि मेरी पूर्व जन्म की मृत्यु उत्पन्न हो चुकी है ॥१२॥ इसलिये पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालको पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक बलवान् बालक प्रतीत हो, उसका वध कर देना चाहिये ॥१३॥ कम ने असुरों को इस प्रकार की आज्ञा दी और कारागार में जाकर वसुदेव-देवकी को बन्धन-मुक्त कर दिया ॥१४॥ उस समय कस ने कहा—आपके बालको को अब तक मैंने व्यर्थ ही मारा, क्योंकि मेरा मारने वाला तो कोई अन्य बालक उत्पन्न हो चुका है ॥१५॥ परन्तु, उन बालको का ऐसा ही भविष्य था, यह मानकर आप दुःखी न हो । आपका प्रारब्ध दोष भी उन बालको की मृत्यु का कारण हुआ है ॥१६॥ श्री पराशर जी ने कहा—हे द्विजवर ! कस ने उन दोनों को इस प्रकार धर्म वंशायी और कारागार से छोड़ कर स्वयं शकाकुल होते हुए अपने अन्तर्गृह में पहुँचा ॥१७॥

## पाँचवाँ अध्याय

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकट गतः ।

प्रहृष्टं दृष्ट्वा नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥१॥

वसुदेवोऽपि त प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् ।

वाद्धं केऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽय तवाधुना । २

दत्तो हि वार्षिकस्सर्वो भवद्भिर्नृपते कर ।

यदयं मागतास्तस्मान्नात्र स्थेय महाघने ॥३॥

यदयं मागता कार्यं तन्निष्पन्न किमास्यते ।

भवद्भिर्गम्यता नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥

ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रभवो हि यः ।

स रक्षणीयो भवता यथाय तनयो निज ॥५॥

इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमा ।

शकटारोपितैर्भाण्डै कर दत्त्वा महाबला ॥६॥

वसता गोकुले तेषा पूतना बालघातिनी ।

सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ तस्मै स्तनं ददौ ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—कारागार से मुक्त होते ही वसुदेवजी ने नन्दजी

के पास जाकर उन्हें पुत्र-जन्म वाले समाचार से प्रसन्न होते हुए देखा ॥१॥

इस पर वसुदेवजी ने उससे कहा कि आपके वृद्धावस्था में पुत्र उत्पन्न हुआ, यह

अत्यन्त प्रसन्नता की बात हुई ॥२॥ आप लोग राजा का वार्षिक कर देने के

लिये यहाँ आये थे, वह देखे चुके हैं, इसलिये आप जैसे घनिक को अब यहाँ

अधिक ठहरना उचित नहीं है ॥३॥ जिस लिये आप यहाँ आये थे, जब वह

कार्य ही ही चुका तो सब यहाँ किसलिए रुके हुए है ? हे नन्दजी ! अब आप

अपने गाकुल की शीघ्र ही गमन कीजिये ॥४॥ वहाँ आप रोहिणी से उत्पन्न

हुए मेरे पुत्र की भी अपने इस बालक के समान ही रक्षा करते रहना ॥५॥

छत्रादी में भर कर लाये गये बर्तनों में से कर का घन चुका कर निश्चित हुए

नन्दादि महाबली गोप वसुदेवजी की बात सुनकर वहाँ से चले गये ॥६॥ उनके

गाकुल में निवास करते हुए भी बालकों का घात करने वाली पूतना ने रात्रि के

समय सोते हुए कृष्ण को गोद में उठाया और उन्हें अपना स्तन पान कराने

लगी ॥७॥

यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति ।  
तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ॥८॥  
कृष्णस्तु तत्स्तनं गाढं कराम्यामतिपीडितम् ।  
गृहीत्वा प्राणसहितं पपी क्रोधसमन्वितः ॥९॥  
सातिमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुवन्धना ।  
पपात पूतना भूमौ म्रियमाणातिभीषणा ॥१०॥  
तन्नादश्रुतिसन्त्रस्ताः प्रबुद्धास्ते ब्रजौकसः ।  
ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्ण तां च निपातिताम् ११  
आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि द्विजोत्तमा ।  
गोपुच्छभ्रामणेनाथ बालदोषमपाकरात् ॥१२॥  
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।  
कृष्णस्य प्रददौ रक्षा कुर्वन्चतदुदीरयन् ॥१३॥

वह पूतना रात्रि काल में जिस बालक के मुख में अपना स्तन देती थी, वह बालक उसी समय मर जाता था ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके स्तन को क्रोध पूर्वक अपने हाथों से दबाया और उसके प्राण सहित ही स्तन-पान में तत्पार हुए ॥९॥ इससे पूतना के सभी स्नायु-बन्धन शिथिल होगये और अत्यन्त भयङ्कर रूप वाली होकर घोर शब्द करती हुई धरासायिनी हुई ॥१०॥ उसके घोर चीत्कार को सुनकर भय के कारण व्याकुल हुए ब्रजवासी उठ पड़े और उन्होंने देखा कि मरी हुई पूतना की गोद में श्रीकृष्ण स्थित है ॥११॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! भय से त्रस्त हुई यशोदा ने तुरन्त ही कृष्ण को गोद में उठाया और उन पर गो की पूँछ से झाड़ा देकर ग्रह-दोष को शान्त किया ॥१२॥ नन्द ने भी विधि पूर्वक रक्षा-स्तोत्र पढ़ते हुए, बालक के मस्तक पर गोबर लगाया ॥१३॥

रक्षतु त्वामशेषाणा भूतानां प्रभवो हरिः ।  
यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवञ्जगत् ॥१४॥  
येन दष्टाग्रविधृता धारयत्यवनिर्जगत् ।  
वराहरूपदृग्देवस्स त्वां रक्षतु केशव ॥१५॥

नस्वाङ्कुरविनिभिन्नवैरिवक्षस्थलो विभु ।  
 नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वा जनार्दन ॥१६॥  
 वामनो रक्षतु सदा भवन्त य क्षणादभूत् ।  
 त्रिविक्रम क्रमाक्रान्तैर्लोक्य स्फुरदायुध ॥१७॥  
 शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशवः ।  
 गुह्य च च जठर विष्णुर्जङ्घ पादौ जनार्दन  
 मुख बाहू प्रवाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च ।  
 रक्षत्वव्याहृतैश्चर्यस्तव नारायणोऽव्यय ॥१८॥  
 शार्ङ्गचक्रगदापाणेशशङ्खनादहता-क्षयम् ।  
 गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डराक्षसा ये तवाहिता ॥१९॥  
 त्वा पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुमदन ।  
 हृषीकेशोऽम्बरै भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥२०॥  
 एव कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालक ।  
 शायितश्शकटस्याधो बालपर्याङ्गिकातले ॥२१॥  
 ते च गोपा महद् दृष्ट्वा पूतनाया-कलेवग्म् ।  
 मृताया परम त्रास विस्मय च तदा ययुः ॥२२॥

नन्दजी ने कहा—जिनके नाभि—कमल में यह सम्पूर्ण सत्तार प्रकट हुआ है वे सभी भूतों के कर्त्ता भगवान् हरि तेरी रक्षा करे ॥१४॥ जिनकी दाढ़ों के अगले भाग पर स्थित हुई पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व को धारण करती है, वे घराह रूपी श्री केशव भगवान् तेरी रक्षा करे ॥१५॥ जिन्होंने अपने नखाग्र से ही शत्रु का वक्ष स्थल चीर दिया था वे नृसिंह रूप घारी भगवान् जनार्दन तेरी सब ओर से रक्षा करे ॥१६॥ जिन्होंने क्षणमात्र में शस्त्रास्त्र युक्त त्रिविक्रम रूप धारण कर अपने तीन पगों में ही तीनों लोकों को नाच लिया था, वे श्री व मन भगवान् तेरी सदा रक्षा करे ॥१७॥ तरे शिर की रक्षा गोविन्द करें, कण्ठ की रक्षा केशव करे, गुह्य और जठर की विष्णु तथा जाघो और पाँवों की रक्षा जनार्दन करे ॥१८॥ तरे मुख, बाहू, प्रवाहू, मन तथा सब इन्द्रियों की रक्षा मधुमद ऐश्वर्यशाली एवं अव्यय भगवान् श्री नारायण करे ॥१९॥ तेरे अनिष्ट

कर्ता प्रेत, बूढमाण्ड, राक्षसादि जो हर्दे वे सब शान्द्धं चक्रपाणि भगवान् विष्णु वे शस्त्रनाद से नाश को प्राप्त हो ॥२०॥ दिशाग्रो म भगवान् बैकुण्ठ रक्षा करें, विदिशाग्रो मे मधुसूदन, आकाश मे हृषीकेश और पृथिवी मे महीधर श्री शेष भगवान् तेरी रक्षा करें ॥२१॥

श्री पराशरजी ने कहा—नन्दजी ने हम प्रकार बालक का स्वस्तिवाचन किया और फिर उसे एक छकड़े के नीचे स्थित खटोले पर क्षयन करा दिया ॥२२॥ मरण को प्राप्त हुई उस पूतना के विशाल शरीर को देख कर उन सब गोपो को अत्यन्त भय और आश्चर्य हुआ ॥२३॥

### छटा अध्याय

कदाचिच्छकटस्याधरायानो मधूसूदनः ।  
चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थं प्ररुदोद ह ॥१॥  
तस्य पादप्रहारेण शकट परिवर्तितम् ।  
विध्वस्तकुम्भभाण्ड तद्विपरीत पपात वै ॥२॥  
ततो हाहावृत सर्वो गोपगोपीजनो द्विज ।  
आजगामाथ ददृशे बालमुत्तानशायिनम् ॥३॥  
गोपा केनेति केनेद शकट परिवर्तितम् ।  
तत्रैव बालका प्रोचुर्बलिनानेन पातितम् ॥४॥  
रुदता दृष्टमस्माभि पादविक्षेपपातितम् ।  
शकट परिवृत्त वै नैतदन्यस्य चेष्टितम् ॥५॥  
ततः पुनरतीवासन्गोपा विस्मयचेतसः ।  
नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मित ॥६॥  
यशोदा दावटारूढभग्नभाण्डवपालिका ।  
शकट चार्चयामास दधिपुष्पफलाक्षतैः ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—एक समय छकड़े के नीचे शयन करते हुए बालक मधुसूदन ने स्तन-पान की इच्छा से रोते रोते ऊपर की ओर पैर मारा ॥१॥ उनके पैर के लगते ही छकड़ा उलटा होगया और उसमें रहे हुए घड़े आदि फूट गए तथा वह एक ओर की ओघा गिर पड़ा ॥२॥ हे द्विज । उससे सब ओर हाहाकार मच उठा, सभी गोप-गोपियों ने वहां भाकर बालक को सीधा शयन करते हुए देखा ॥३॥ तब गोपो ने पूछा कि इस छकड़े की किसने ओघा कर दिया ? इस पर वहां पहले से ही खेलते हुये बालको ने उत्तर दिया कि इसी बालक ने सात मार कर गिराया है ॥४॥ हमने स्वयं देखा है कि इस ने रोते-रोते ही छकड़े में सात मार दी, जिससे यह ओघा होकर गिर गया, ओर किसी ने भी यह कार्य नहीं किया है ॥५॥ यह सुन कर गोपो को बड़ा आश्चर्य हुआ और नन्द ने विस्मय पूर्वक श्रीकृष्ण को उठा लिया ॥६॥ फिर यशोदा ने उस छकड़े का तथा छकड़े में रहे हुए फूटे बतनों का दही, पुष्प फल और अक्षत से पूजन किया ॥७॥

गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदित ।

प्रच्छन्न एव गोपानां सस्कारानकरोत् तयो ॥८॥

येषु च राममित्याह कृष्ण चैव तथावरम् ।

गर्गो मतिमत्ता श्रेष्ठो नाम कुर्वन्महामति ॥९॥

स्वल्पेनैव तु कालेन रिङ्गिणी तो तदा व्रजे ।

धृष्टजानुकरो विप्र वभूवतुरुभावपि ॥१०॥

करीपमस्मदिग्धाङ्गी भ्रममाणावितस्तत ।

न निवारयितुं शोके यशोदा तो न रोहिणी ॥११॥

गोवाटमध्ये क्रीडन्तो वत्सवाट गतो पुन ।

तदहर्जातिगोवत्सपुच्छाकर्पणतत्परो ॥१२॥

तभी वासुदेवजी द्वारा प्रार्थना करने पर गर्गचार्यजी ने गोकुल में आ कर उन दोनों बालकों का नामकरण सस्कार किया ॥८॥ उन दोनों का नाम करण करते हुए गर्गचार्यजी ने बड़े बालक का नाम राम और छोटे बालक का कृष्ण रखा ॥९॥ कुछ दिनों में ही वे दोनों बालक गोघो के गोष्ठ में

घिसटते हुए घुटनो से चलने लगे ॥१०॥ जब वे गोबर और घूल में लथपथ होकर इधर-उधर घूमते थे, तब उन्हें यशोदा और रोहिणी भी नहीं रोक पाती ॥११॥ वे कभी गौमो के गोष्ठ में और कभी बछड़ों के बीच में चले जाते तथा नवजात बछड़ों को पूछे षकड़ कर स्वीचने लगते ॥१२॥

यदा यशोदा तौ बालवेकम्यानचराबुभौ ।

शशाक नो वारयितु क्रीडन्तावतिचञ्चली ॥१३॥

दाम्ना मध्ये ततो बद्ध्वा बन्ध तमुलूखले ।

कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह चेदममर्पिता ॥१४॥

यदि शक्तोपि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित ।

इत्युक्त्वाथ निज धम सा चकार कुटुम्बिनी ॥१५॥

व्यग्रायामथ तस्या स कर्पमाण उलूखलम् ।

यमलार्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षणा ॥१६॥

कर्पता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यग्यतमुलूखलम् ।

भस्नावुत्तुङ्गशाखाया तेन तौ यमलार्जुनौ ॥१७॥

तत षट्कटाशब्दसमाकर्णनतत्पर ।

आजगाम व्रजजनो ददर्श च महाद्रुमी ॥१८॥

नवोद्गताल्पदन्ताशुसितहास च बालकम् ।

तयोर्मध्यगत दाम्ना बद्ध गाढ तथोदरे ॥१९॥

ततश्च दामोदरता स ययौ दामबन्धनात् ॥२०॥

एक दिन की बात है—जब यशोदाजी उन एक साथ क्रीड़ा करने वाले बालकों को रोकने में असमर्थ रही तो उन्होंने निष्पाप कम वाले कृष्ण के कटि भाग को रस्सी से जकड़ कर उलूखल से बाँध दिया और क्रोध सहित बोली ॥१३-१४॥ भरे चञ्चल । अब तू इससे छूट सके तो छूट जा, यह कह कर यशोदाजी अपने अन्य कार्य में व्यस्त हो गई ॥१५॥ जब वह गृह कार्य में लग गई, तब पद्मलोचन श्रीकृष्ण उस उलूखल को स्वीचते हुए यमलार्जुन वृक्षों के मध्य में ले गये ॥१६॥ तथा उन दोनों वृक्षों के मध्य से तिरछे फँसे हुए उलूखल को स्वीचते हुए उन्होंने उच्च शाखाओं वाले यमलार्जुन वृक्ष को उखाड़



कर गिरा दिया ॥१६॥ तब उनके उखल कर गिरने के शब्द को सुनकर घबरे हुए ब्रजवासियों ने गिरे हुए उन दोनों विशाल वृक्षों को और उनके मध्य में कटि में रस्सी से बँधे हुये बालक कृष्ण को अपने छोटे-छोटे दाँतों से मृदु हास करते हुए देखा । दाम के उदर में बँधने के कारण तभी से उस बालक का नाम दामोदर होगया ॥१८-१९-२०॥

गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ।

मत्रयामासुरुद्विजाना महोत्पातातिभोरवः ॥२१॥

स्थानेनेहननं कार्यं ब्रजामोऽन्यन्महावनम् ।

उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः ॥२२॥

पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्ययः ।

विना चातादिदोषेण द्रुमयोः पतनं तथा ॥२३॥

वृन्दावनमितं स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ।

यावद्भूमिमहोत्पातदोषो नाभिभवेदक्षजम् ॥२४॥

इति कृत्वा मतिं सर्वे गमने ते ब्रजोक्तः ।

ऊनुस्वस्व कुलं क्षीघ्रं गमाता मा विलम्बतः ॥२५॥

ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोघर्नस्तथा ।

यूयशो यत्सपालाश्च कालयन्तो ब्रजोक्तः ॥२६॥

द्रव्यावयवनिर्द्घूर्तं क्षणमात्रेण तत्तथा ।

काकमाससमाकीर्णं ब्रजस्थानमभूद्द्विजः ॥२७॥

तब नन्दादि सब वृद्ध गोपों ने उन महान् उत्पातों से डर कर परस्पर में परामर्श किया ॥२१॥ अब इस स्थान से हमें कोई कार्य नहीं है, हम किसी अन्य महावन में चलें । क्यों कि यहाँ विनाश की कारण रूपा पूतना का भ्राना, शकट का भौंसा होना, आँधी आदि के न होने पर भी वृद्धादि का गिर जाना आदि करनेको उत्पात देखे गये हैं ॥२२-२३॥ इस लिये किसी भूमि सन्वन्धी महा उत्पात से इस वन के नष्ट होने से पहिले ही हम यहाँ से वृन्दावन के लिये प्रस्थान कर दें ॥२४॥ इस प्रकार चमने का विचार स्थिर कर के सभी ब्रजवासी अपने २ कुटुम्बियों को क्षीघ्र ही चलने और विलम्ब न करने की याद

कहने लगे ॥२५॥ फिर वे व्रजवासीगण समूहबद्ध होकर क्षणभर में ही गौघो  
और छक्को को साथ लेकर वहाँ से चल पड़े ॥२६॥ हे द्विज ! उनके जाने पर  
वहाँ अवशिष्ट पड़ी हुई वस्तुओं वाली वह व्रज भूमि क्षणभर में ही कीए और  
और मासादि पक्षियों से युक्त होगई ॥२७॥

वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ।

शुभेन मनसा ध्यातं गवा सिद्धिमभीप्सता ॥२८॥

ततस्तत्रातिरुद्धेऽपि धर्मकाले द्विजोत्तम ।

प्रावृट्काल इवोद्भूत नवशष्प समन्ततः ॥२९॥

स समायासितः सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः ।

शकटीवाटपर्यन्तश्चन्द्रार्द्धाकारसंस्थिति ॥३०॥

वत्सपाली च सवृत्ती रामदामोदरी ततः ।

एकस्थानस्थितौ गोष्ठे चैरतुर्वाललीलया ॥३१॥

वर्हिपन्नकृत्तापीडौ वन्यपुष्पावतसकौ ।

गोपवेणुकृतातोयपन्नवाद्यकृतस्वनी ॥३२॥

काकपक्षधरौ बालौ कुमारविव पावकी ।

हसन्तौ च रमन्तौ च चैरतु स्म महावनम् ॥३३॥

क्वचिद्वहन्तावन्योन्य क्रीडमानौ तथा परं ।

गोपपुत्रैस्सम वत्साश्चारयन्तौ विचैरतुः ॥३४॥

कालेन गच्छता तौ तु सप्रवर्षी महाव्रजे ।

सर्वस्य जगतः पाली वत्सपाली बभूवतुः ॥३५॥

फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने गौघो की प्रसन्नता के लिये अपने शुद्ध चित्त  
से वृन्दावन का ध्यान किया ॥२८॥ हे द्विजोत्तम ! उनके ऐसा करने से अत्यन्त  
हृष्टे गौष्म बाल में वर्षाबाल के समान ही नवीन घास बहा उत्पन्न होने लगी  
॥२९॥ तब चारों ओर से अर्द्धचन्द्राकार में छक्को की पक्ति लगाकर बसाया  
गया वह समस्त व्रजवासियों से सुखोन्मत्त हो गया ॥३०॥ इसके पश्चात् राम  
और कृष्ण भी वृद्धों के पालनवर्त्ता हो कर एक स्थान में स्थित हुए गोघो  
के गोष्ठ में बाल क्रीड़ा करने लगे ॥३१॥ फिर पर मोर पंख का मुटु और

कानो मे वन के पुष्पों के कुंडल धारण कर ग्वालोचित बशी आदि की ध्वनि करते और पत्तों के बाजे बजाते हुए, स्कंध के कुमारों के समान हास-परिहास करते हुए वे दोनों बालक उस महावन में क्रीडा करने लगे ॥३२-३३॥ वे दोनों कभी तो परस्पर ही एक दूसरे पर चढ़ जाते और कभी अन्य योप-बालकों के साथ खेलते और कभी बछड़ों को चराते हुए विचरण करते रहते थे ॥३४॥ इस प्रकार उस महाव्रज में निवास करते हुए उन्हें कुछ काख व्यातीत हो गया और वे सम्पूर्ण लोको के पालक वसुपाल रूप में सात वर्ष की आयु के हो गये ॥३५॥

प्रावृट्कालस्ततोऽतीवमेधौघस्यगिताम्बरः ।  
 बभूव वारिधाराभिरंक्य कुर्वन्दिशामिव ॥३६॥  
 प्ररुद्धनवशष्पाढघा शक्रगोपाचितामही ।  
 तथा मारकतीवासीत्पद्मरागविभूषिता ॥३७॥  
 कुरुस्मार्गवाहीनि मिम्नगाम्भासि सर्वतः ।  
 मनांसि दुर्विनीताना प्राप्य लक्ष्मी नवामिव ॥३८॥  
 न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निमलो मलिनैर्वनैः ।  
 सद्वादिवादो मूर्च्छाणां प्रगल्भाभिरिवोक्तिभिः ॥३९॥  
 निर्गुणेनापि चापेन शक्रस्य गगने पदम् ।  
 धवाप्पताविवेकस्य नृपस्येव परिग्रहे ॥४०॥  
 मेघपृष्ठे दलाकानां रराज विमला ततिः ।  
 पुर्वं ते वृत्तचैष्टेव कुलीनस्यातिशोभना ॥४१॥  
 न दयन्धाम्धरे स्पर्शं विद्युदत्यन्तचञ्चला ।  
 मन्त्रोव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता ॥४२॥  
 मार्गां बभूवुरस्पष्टास्तृणशप्पचयावृता ।  
 अर्थान्तरमनुप्राप्ताः प्रजटानामिवोक्तयः ॥४३॥

फिर मेघों से आकाश को ढकता हुआ और अत्यन्त जलधारी की वर्षा से दिशाओं को एक समान करता हुआ वर्षापात आ उपस्थित हुआ ॥३९॥ उस दूब के अधिव बड़ने और धीरे-धीरे से व्याप्त होने के कारण वज्र वस्तु

स्वरा पद्मराग से सुसज्जित तथा भरकतमयी-सी प्रतीत होने लगी ॥३७॥ जैसे नवीन ऐश्वर्य को प्राप्त हुए दुष्ट पुरुष उच्छङ्खल हो जाते हैं, वैसे ही नदियों का जन वृद्धि को प्राप्त होकर सर्वत्र प्रवाहित होने लगा ॥३८॥ जैसे मूर्खों के भ्रष्ट वचनों के सामने श्रेष्ठ वक्ता की वाणी भी फीकी हो जाती है, वैसे ही मलीन मेघों से स्वच्छ चन्द्रमा की कान्ति भी फीकी पड़ गई ॥३९॥ जैसे अवि-  
वेकी राजा की सगति को प्राप्त कर गुणहीन मनुष्य भी प्रतिष्ठित हो जाता है, वैसे ही आकाश में गुणहीन इन्द्र धनुष प्रतिष्ठित हो गया ॥४०॥ जैसे दुरा-  
चारियों के मध्य स्थित हुआ कुलीन पुरुष शोभा पाता है, वैसे ही अस्वच्छ मेघ  
मण्डल में स्थित हुए वगुलों की स्वच्छ पक्ति सुशोभित हुई ॥४१॥ जैसे श्रेष्ठ  
पुरुष किसी दुर्जन से हुई मित्रता स्थायी नहीं होती, वैसे ही प्रत्यन्त चञ्चला  
विद्युत् की स्थिरता स्पष्ट होने लगी ॥४२॥ जैसे महामूर्खों की उक्तियाँ स्पष्ट  
नहीं होती, वैसे ही तिनके घोर दूब से ढक कर मार्ग की स्पष्टता नष्ट हो  
गई ॥४३॥

उन्मत्तशिखिसारङ्गे तस्मिन्काले महावने ।  
कृष्णरामौ मुदा युक्ता गोपालेश्वेरतुस्तह ॥४४॥  
क्वचिद्गोभिस्सम रम्य गेयतानरतावुभौ ।  
चेरतु क्वचिदत्यर्थं शीतवृक्षतलाश्रितौ ॥४५॥  
क्वचित्कदम्बसक्चित्रौ मयूरस्तग्विराजितौ ।  
विलिप्तौ क्वचिदासाता विविधैर्गिरिधातुभि ॥४६॥  
परांशय्यासु ससुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरपिणौ ।  
क्वचिद्गर्जति जीमूते हाहाकाररवाकुलौ ॥४७॥  
गायतामन्यगोपाना प्रशसापरमौ क्वचित् ।  
मयूरकैकानुगतौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥४८॥  
इति नानाविधैर्भगैरुत्तमप्रीतिसयुतौ ।  
त्रोडन्तौ तौ वने तस्मिन्नेश्वेरतुस्तुष्टमानसौ ॥४९॥  
विकाले च सम गोभिर्गोपवृन्दसमन्वितौ ।  
विहृत्याथ यथायोगं त्रजमेत्य महाबलौ ॥५०॥

गोपैस्सभानैस्सहितौ क्रीडन्तावमराविव ।

एवं तावृषतुस्तत्र रामकृष्णौ महाद्युतौ ॥५१॥

ऐसे उस मोरो और चातको से सुशोभित हुए महावन में गोप-बालकों के साथ राम और कृष्ण घूमने लगे ॥४४॥ वे कभी गीत गाते, कभी ध्वनि निकालते, कभी वृक्ष के नीचे बैठते और कभी विचरण करते थे ॥४५॥ कभी कदम्ब के फूलों के हार धारण कर अद्भुत वेश बनाते और कभी मोरपत्नों की माला बना कर पहिनते और कभी विभिन्न प्रकार की पर्वतीय धातुओं से अपने देह को सजाते ॥४६॥ कभी नोद लेने की इच्छा से पत्ती पर लेट कर भपकी लेते और कभी मेघों का गर्जन सुन कर कोलाहल करने लगते ॥४७॥ कभी अग्न्य ग्वालों के गाने सुनकर उनकी प्रशंसा करते, कभी गोपों के समान वंशी बजाते और कभी मोरों की सी बोनी बोलते थे ॥४८॥ इस प्रकार परस्पर में अत्यत प्रीति रखते हुए वे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते और वन में घूमते थे ॥४९॥ सायंकाल होने पर वे अत्यत बलवान् बालक वन में विहार करके गौड़ों और गोप-बालकों के साथ व्रज में लौट आते ॥५०॥ इस प्रकार अपनी समान आयु के ग्वाल-बालों के साथ खेलते हुए वे महान् तेज वाले राम और कृष्ण वहाँ निवास करने लगे ॥५१॥

### सातवाँ अध्याय

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ ।

विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वलः ॥१॥

स जगामाय कालिन्दी लोलकल्लोलशालिनीम् ।

सीरसंलग्नफेनौर्ध्वसन्तोमिव सर्वतः ॥२॥

तस्याञ्चातिमहाभीमं विपाग्निश्रितवारिकम् ।

इदं कालियनागस्य ददर्शातिविभीषणम् ॥३॥

विपाग्निना प्रसरता दग्धतोरमहीरुहम् ।

याताहताम्बुविशेषस्पृशंदग्धविहङ्गमम् ॥४॥

तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम् ।

विलोभय चिन्तयागास भगवान्मधुसूदन ॥५॥

अस्मिन्वमति दुष्टात्मा कालियोऽसौ विपायुध ।

यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्टः पयोनिधिम् ॥६॥

तेनेय दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा ।

न नरैर्गोधनैश्चापि तृपार्तरूपभुज्यते ॥७॥

श्री पराक्षरजी ने कहा—एक दिन राम को छोड़ कर वृष्ण अकेले ही वृन्दावन में चले गये और वहाँ यन के पुष्पों की मालाओं को धारण कर गोपों के साथ घूमने लगे ॥१॥ इस प्रकार घूमते हुए वे चंचल तरंगों वाली कालिन्दी के किनारे जा निकले । उस समय तटों पर एकत्रित हुए फेन से ऐसा प्रतीत होता था जैसे यमुनाजी हँस रही हो ॥२॥ उसी यमुना में उठोने विपाग्नि से उत्तप्त कालियनाग के एक भयकर कुण्ड को देखा ॥३॥ उसकी विपाग्नि इतनी तीव्र थी कि उससे तट के वृक्ष जल गये थे तथा वायु के आघात से उछलती हुई जल-विन्दुओं के स्पर्श से पक्षी भी जल जाते थे ॥४॥ जैसे मृत्यु का दूसरा मुख हो, उस प्रकार का अत्यन्त भयकर कुण्ड देख कर भगवान् श्रीवृष्ण विचार करने लगे ॥५॥ इसमें दुरात्मा कालियनाग निवास करता है, इसका विना भी शत्रु के समान है । यह दुष्ट पातले भुक्षते हार कर समुद्र से चला आया है ॥६॥ इसने समुद्र में जाने वाली पूरी यमुना को ही दूषित कर रखा है । इसी के कारण यह यमुना जल पिपासु मनुष्यों और गौओं के असोचनीय है ॥७॥

तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया ।

निस्त्रासास्तु सुख येन चरेयुर्ब्रजवासिनः ॥८॥

एतदर्थं तु लोकेऽस्मिन्नवतार कृतो मया ।

यदेषामुत्पथस्थाना कार्याशान्तिर्दुरात्मनाम् ॥९॥

तदेत नातिदूरस्थ कदम्बमुखशास्त्रिनम् ।

अधिरूपा पतिव्यामिहृदेऽस्मिन्ननिलाश्विन ॥१०॥

इत्थं विचिन्त्य बध्वा च गाढं परिवरतत ।

निपपात हृदे तत्र नागराजस्य वेगतः ॥११॥

तेनातिपतता तत्र शोभितस्य महाहृदः ।

अत्यर्थं दूरजातास्तु समसिन्धुर्महोरुहान् ॥१२॥

तेऽहिदुष्टविपज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः ।

जज्वलुः पादपास्सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ॥१३॥

इस लिये इस नागराज का निग्रह करना मेरा कर्त्तव्य है । ऐसा होने पर ही ब्रजवामीगण भय-रहित और सुख से निवास कर सकेंगे ॥१२॥ ऐसे दुरात्माओं का दमन करना आवश्यक है और इसीलिए मैं इस लोक में अवतीर्ण हुआ हूँ ॥१३॥ इस लिये अब इस उच्च शाखावाले विशाल वृक्ष पर चढ़ कर मैं उस वायु का भक्षण करने वाले नागराज के कुण्ड में बूद पड़ूँगा ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कटि को कमा और सवेग उस कालिय कुंड में बूद गये ॥११॥ उनके बूदने के कारण क्षुब्ध हुए उस महान् कुंड ने दूर पर खड़े हुए वृक्षों को भी भिगो दिया ॥१२॥ नाग के भयानक शिथ की अग्नि से उष्ण हुए उस जल से भँग कर वे वृक्ष दग्ध होने लगे और उनसे निकलती हुई ज्वालाओं से सभी दिशाएँ भर उठीं ॥१३॥

आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागहृदे भुजम् ।

तच्छ्रन्दश्रवणाञ्चाशु नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४॥

आताम्रनयनः कोपाद्विपज्वालाकुलैर्मुखैः ।

वृत्तो महाविषैश्चान्यैरुगैरनिलाशनैः ॥१५॥

नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः ।

प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः ॥१६॥

ततः प्रवेष्टितस्सर्पैस्स कृष्णो भोगबन्धनैः ।

ददशुस्तेऽपि तं कृष्णं विपज्वालाकुलैर्मुखैः ॥१७॥

तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगैर्निपीडितम् ।

गोपा व्रजमुपागम्य चुकूशुः शोकलालसाः ॥१८॥

एष मोह गतः कृष्णो मग्नो वै कालियहृदे ।

भक्ष्यते नागराजेन तमागच्छत पश्यत ॥१९॥

तच्छ्रुत्वा तत्र ते गोपा वज्रपातोपम वच ।

गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाग्रमुखा हृदम् ॥२०॥

उस कालिय कुंड में पहुँच कर श्रीकृष्ण ने अपनी भूजाओं को ठोक कर शब्द किया, जिसे सुनकर वह नागराज तुरन्त ही उनके सामने आया । १४। क्रोध के कारण उसके नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और मुख से ज्वाला की लपटे निकल रही थी । उस समय वह अत्यन्त विशैले वायुभभी अन्य नागों से घिर रहा था ॥१५॥ तथा मनोहर हारों और हिलते हुए कुंडलों की कान्ति से सुशोभित हो रही सैकड़ों नाग परित्र्या भी उसके साथ थी ॥१६॥ उन नागों ने कुंडलाधार हो कर श्रीकृष्ण को अपनी देह में बाध कर विषाग्नि युक्त मुखों से दक्षित करना आरम्भ किया ॥१७॥ इसके अनन्तर जब गोपों ने श्रीकृष्ण को उस नाग कुंड में गिरे हुए और नागों के फणों से काटे जाते हुए देखा तो वह शोक से अत्यन्त व्याकुल हो कर रोते हुए व्रज में सौट आये ॥१८॥ उन गोपों ने कहा— भरे, चल कर देखो कालीदह में गिर कर कृष्ण अघैत पड़ा है और नागराज उसका भक्षण किये जा रहा है ॥१९॥ उनके इस अमङ्गल सूचक वचनों को वज्रपात के समान समझ कर सभी गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ उसी समय कालीदह की ओर शीघ्रता से दौड़ पड़ी ॥२०॥

हा हा वत्रासाविति जनो गोपीनामतिविह्वल ।

यशोदया सम भ्रान्तो द्रुतप्रस्खलित ययौ ॥२१॥

नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाङ्गुतविक्रम ।

त्वरित यमुना जग्मु कृष्णदर्शनलालसा ॥२२॥

ददृशुश्चापि ये तत्र सर्पराजवशङ्गतम् ।

निष्प्रयत्नीकृत कृष्ण सर्पभोगविवेदितम् ॥२३॥

नन्दगोपोऽपि निश्चेष्टो न्यस्य पुत्रमुखे दृशम् ।

यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तम ॥२४॥

गोप्यस्त्वन्या रुदन्त्यश्चददृशुः शोवकातरा ।

प्राचुश्च केशव प्रीत्या भगवत्पर्यगद्गदम् ॥२५॥



तेनातिपतता तत्र शोभितस्य महाहृदः ।

अत्यर्थं दूरजातास्तु समसिञ्चन्महीरुहान् ॥१२॥

तेऽहिदुष्टविपज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः ।

जज्वलुः पादपास्सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ॥१३॥

इस लिये इस नागराज का निग्रह करना मेरा कर्त्तव्य है । ऐसा होने पर ही ब्रजवासीगण भय-रहित और सुख से निवास कर सकेंगे ॥१२॥ ऐसे दुरात्माओं का दमन करना आवश्यक है और इसीलिए मैं इस लोक में अवतीर्ण हुआ हूँ ॥१३॥ इस लिये अब इस उच्च शाखावाले विशाल कदम्ब पर चढ़ कर मैं उस वायु वा मक्षण करने वाले नागराज के कुण्ड में बूढ़ पहुँगा ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कटि को कसा और सवेग उस कालिय कुंड में बूढ़ गये ॥११॥ उनके बूढ़ने के कारण क्षुब्ध हुए उस महान् कुंड ने दूर पर खड़े हुए वृक्षों को भी भिगो दिया ॥१२॥ नाग के भयानक विष की अग्नि से उष्ण हुए उस जल से भँग कर वे वृक्ष दग्ध होने लगे और उनसे निकलती हुई ज्वालाओं से सभी दिशाएँ भर उठीं ॥१३॥

आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागहृदे भुजम् ।

तच्छब्दश्रवणाच्चाशु नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४॥

आताम्रनयनः कोपाद्विपज्वालाकुलैर्मुखैः ।

वृतो महाविषंश्चान्यैरुर्गैरनिलाशनैः ॥१५॥

नागपत्न्यश्च क्षतशो हारिहारोपशोभिताः ।

प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः ॥१६॥

ततः प्रवेष्टितस्सर्पेः कृष्णो भोगवन्धनैः ।

ददशुस्तेऽपि तं कृष्णं विपज्वालाकुलैर्मुखैः ॥१७॥

तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगैर्निपीडितम् ।

गोपा ब्रजमुपागम्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१८॥

एष मोह गतः कृष्णो ममो वै कालियहृदे ।

भक्ष्यते नागराजेन तमागच्छत पश्यत ॥१९॥

तच्छ्रुत्वा तत्र ते गोपा वज्रपातोपमं वच ।

गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा हृदम् ॥२०॥

उस वालिय कुँड में पहुँच कर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओं को टोंक कर शब्द किया, जिसे सुनकर वह नागराज तुरन्त ही उनके सामने आया ॥१४॥ क्रोध के कारण उसके नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और मुख में आवाज़ की लपटें निकल रही थी । उस समय वह अत्यन्त विशैले वायुभरी अन्य नागों में घिर रहा था ॥१५॥ तथा मनोहर हारों और हिलते हुए कूटनों की वाजि से सुशोभित हो रही सैकड़ों नाग परिवर्णों भी उसके साथ थी ॥१६॥ उन नागों ने कुँडलाकार हो कर श्रीकृष्ण को अपनी देह में बाध कर विषाग्नि मृग मृगों से दंशित करना आरम्भ किया ॥१७॥ इसके अनन्तर जब गोपों ने श्रीकृष्ण को उस नाग कुँड में गिरे हुए और नागों के फणों में बाँटे जाते हुए देखा तो वह शोक से अत्यन्त व्याकुल हो कर रोते हुए व्रज में लौट आये ॥१८॥ उन गोपों ने कहा — अरे, चल कर देखो, बालीदह में गिर कर मृग्य अभंन पड़ा है और नागराज उसका भक्षण किये जा रहा है ॥१९॥ उनके दृग अभङ्ग्य सूचक वचनों को वज्रपात के समान समझ कर सभी गोपगण और यशोदा आदि गोपिणी उसी समय बालीदह की ओर शीघ्रता से दौड़ पड़ी ॥२०॥

हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वल ।

यशोदया सम भ्रान्तो द्रुतप्रस्फलित ययौ ॥२१॥

नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रम ।

त्वरित यमुना जग्मु कृष्णदशनलायमा ॥२२॥

बहसुश्चापि ये तत्र सर्पराजवशान्तम् ।

निष्प्रयत्नीकृत कृष्ण सर्पभोगविवेतिम् ॥२३॥

नन्दगोपोऽपि निश्चेष्टो न्यस्य पुत्रमुमे दृशम् ।

यशोदा च महाभागा वभूव मुनिप्रसूतम् ॥२४॥

गोप्यस्त्वन्या रदन्त्यश्चदहसुः शोकात्तनय ।

प्राचुश्च केशव प्रीत्या भयानकमदम् ॥२५॥

उस समय वे सभी गोपियाँ 'हाय, कृष्ण कहाँ है ?' कहती हुई व्याकुलता से रदन करती और गिरती पड़ती हुई वहाँ गईं ॥२१॥ सभी गोपों को साथ लिये हुए अद्भुत बल वाले बलरामजी भी श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से तुरन्त ही यमुना के किनारे जा पहुँचे ॥२२॥ वहाँ पहुँच कर उन्होंने श्रीकृष्ण को नागराज के वश में पड़े हुए तथा उसके लिपटने से निष्प्रयत्न हुए देखा ॥२३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय नन्द और यशोदा भी उनके मुख को एकटक देखते हुए अचेत हो गये ॥२४॥ अन्य गोपियों ने भी श्रीकृष्ण की ऐसी दशा देखी तो शोक से व्याकुल हो कर रदन करने लगी और भय-कम्पित धाणी में गद्गद कण्ठ में प्रीति पूर्वक बोली ॥२५॥

सर्वा यशोदया साद्धं विशामोऽथ महाहृदम् ।

सर्वराजस्य नो गन्तुमस्माभिर्युज्यते व्रजम् ॥२६॥

दिवस को विना सूर्य विना चन्द्रेण का निशा ।

विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रज ॥२७॥

विनाकृता न यास्याम कृष्णेनानेन गोकुलम् ।

अरम्य नातिसेव्य च चारिहीन यथा सर ॥२८॥

यत्र नेन्दीवरदलश्यामकान्तिरय हरि ।

तेनापि मातुर्वसेन रतिरस्तीति विस्मय ॥२९॥

उत्फुल्लपङ्कजदलस्पष्टकान्तिविलोचनम् ।

अपश्यन्त्यो हरि दीना कथं गोष्ठे भविष्यथ ॥३०॥

अत्यन्तमधुरालापहृताशेषमनोरथम् ।

न विना पुण्डरीकाक्ष यास्यामो नन्दगोकुलम् ॥३१॥

भोगेनावेष्टितस्यापि सर्वराजस्य पश्यत ।

स्मितशोभि मुख गोप्य कृणस्यास्मद्विलोकने ॥३२॥

गोपियों ने कहा—अब यशोदाजी के साथ हम सभी सर्वराज के इन कुंड में डूबेंगी, व्रज में कदापि नहीं जायेंगी ॥२६॥ सूर्य ही नहीं तो दिन कैसा ? चन्द्रमा नहीं तो रात ही क्या ? बैल नहीं तो गाय कैसी ? इसी प्रकार कृष्ण ही नहीं तो व्रज कैसा ? ॥२७॥ कृष्ण को साथ लिये बिना हम गोकुल के लिये

वभी नहीं जा सकती, क्यों कि कृष्णहीन गोकुल तो जलहीन सरोवर के समान ही निरर्थक है ॥२८॥ जहाँ नील कमल की-सी कान्ति वाले कृष्ण नहीं, उस मातृगेह से प्रीति होना भी विस्मय की बात होगी ॥२९॥ अरी गोपियो ! विस्मित कमल के समान आभा वाले जिनके नेत्र हैं, ऐसे श्री हरि के दर्शन बिना दीनता को प्राप्त हुईं तुम अपने गोष्ठ में कैसे रहोगी ? ॥३०॥ जिन्होंने अपने मधुर आलाप से हमारी सब कामनाओं को अपने ही वश में कर लिया है, उन पुटरीकाक्ष के बिना नन्दजी के गोकुल को हम बड़ापि नहीं जा सकती ॥३१॥ हे गोपियो ! संपराज के फण से ढक कर भी श्रीकृष्ण का मुख हमें देख-देख कर मुसकान युक्त हो गया है ॥३२॥

इति गोपीवचः श्रुत्वा रौहिण्यो महाबलः ।

गोपांश्च त्रासविधुरान्वितोवयं स्तिमितेक्षणात् ॥३३॥

नन्द च दीनमत्यर्थं न्यभर्तुर्दृष्ट सुतानने ।

मूच्छाकुला यशोदा च कृष्णमाहात्म्यसङ्गया ॥३४॥

किमिदं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया ।

व्यज्यतेऽत्यन्तमात्मानं किमनन्तं न वेत्ति यत् ॥३५॥

त्वमेव जगतो नाभिरराणामिव संश्रयः ।

कर्त्तापिहर्त्ता पाता च त्रैलोक्यं त्वं त्रयीमयः ॥३६॥

सेन्द्रं रुद्राग्निवसुभिरादित्यैर्मरुदश्विभिः ।

चिन्त्यसे त्वमचिन्त्यात्मन् समस्तैश्चैव योगिभिः ॥३७॥

जगत्यर्थं जगन्नाथ भारवतरणेच्छया ।

अवतीर्णोऽसि मर्त्येषु सर्वांश्चाहमग्रज ॥३८॥

मनुष्यलीलां भगवन् भजता भवता सुराः ।

विडम्बयन्तस्त्वल्लोलां सर्वं एव सहासते ॥३९॥

श्रीपराशरजी ने कहा—गोपियो का इस प्रकार कथन सुन कर रोहिणी पुत्र बलरामजी ने सन्तप्त नेत्र वाले गोपी, अपने पुत्र को एकटक देखते हुए नन्द और मूर्छा से आकुल हुई यशोदा को देखकर श्रीकृष्ण ने सकेत में कहा ॥३३-३४॥ हे देवदेवेश ! आप यह मनुष्य भाव किस लिये प्रकट कर रहे हो ? क्या

अपने को अनन्त नही जान पाते ? ॥३५॥ जैसे चक्र-नाभि ही प्ररो का आधार हाती है, वैसे ही आप इस ससार के आधार, कर्त्ता, अपहर्त्ता और रक्षा करने वाले हैं । आप ही त्रैलोक्य रूप तथा वेदत्रयात्मक हैं ॥३६॥ हे अचिन्त्यात्मन् । इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वसु, आदि य, मरुद्गण, अश्विद्वय तथा सभी योगीजन आपका ही ध्यान किया करते हैं ॥३७॥ हे जगन्नाथ । जगत् का कल्पाण करने और भू भार हरने की इच्छा स ही आप मृत्यु लोक में अवतीर्ण हुए हैं और आपका मैं अग्रज भी आपका अक्ष रूप ही हूँ ॥३८॥ हे भगवन् । जब आप मनूष्य रूप में लीला करते हैं, तब यह सभी देवता आपकी लीलाओं के अनुकरण में सदा आपके साथ रहते हैं ॥३९॥

अवतार्य भवान्पूर्वं गोकुले तु सुराङ्गना ।  
 क्रीडार्यमात्मन पश्चादवतीर्णोऽसि शाश्वत ॥४०॥  
 अनावतीर्णो कृष्ण गोपा एव हि बान्धवा ।  
 गोप्यश्च सीदतः कस्मादेतान्बन्धूनुपेक्षसे ॥४१॥  
 दशितो मानुषो भावो दशित बालचापलम् ।  
 तदय दम्यना कृष्ण दुष्टात्मा दशनायुध ॥४२॥  
 इति तस्मारित कृष्ण स्मितभिन्नोऽसम्पुट ।  
 आस्फोट्य मोचयामास स्वदेह भोगिबन्धनात् ॥४३॥  
 आनम्य चापि हस्ताभ्यामुभाम्या मध्यम शिर ।  
 आरुह्याभुग्नशिरस प्रणतौर्हविक्रम ॥४४॥  
 प्राणा पणोऽभवश्चास्य कृष्णस्याङ्घ्रिनिकुट्टनै ।  
 यत्रोन्नति च कुरुते ननामास्य ततश्शिर ॥४५॥  
 मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नाग कृष्णस्य रेचकै ।  
 द डपातनिपातेन ववाम रुधिर बहु ॥४६॥  
 त विभुग्नशिरोऽग्रीवमास्येम्यस्त्रुतशोणितम् ।  
 विलाप्य कृष्ण जम्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥४७॥

हे शाश्वत ब्रह्म । आपने क्रीडा करने के लिये पहले देवनारियो को गोकुल में प्रवृत्त किया और फिर स्वयं अवतीर्ण हुए हैं ॥४०॥ हे कृष्ण । यहा

पर उत्पन्न हुए हम दोनों के बाँधवगण तो यह गोप गोपियाँ ही हैं, फिर आप इन दुखियों की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? ॥४१॥ हे कृष्ण । यह मानुष-भाव और बाल-चपलता तो आपने बहुत दिखा दी, अब तो इस दाँत रूप शस्त्रधारी दुरात्मा नाग का दमन करिये ॥४२॥ श्री पराशरजी ने कहा—बलरामजी द्वारा इस प्रकार याद दिलाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सम्पुट को खोल कर मधुर मुसकान फैलाते हुए, अकस्मात् उछल कर अपने को सर्प के बग्नन से मुक्त किया ॥४३॥ फिर उन्होंने अपने दोनों हाथों से उसके मध्य फण को झुकाया और स्वयं उस पर चढ़ कर नृत्य करने लगे ॥४४॥ श्रीकृष्ण के पदाघात से उसके प्राण मुख पर आगये । वह अपने जिस फण को ऊँचा करता, उसी पर ठोकर मार कर नीचे फुका देते ॥४५॥ श्रीकृष्ण की भ्रान्ति, रेवक और वज्रपात के आघात से वह नाग भूछित हो गया और बहुत-सा रक्त बमन करने लगा ॥४६॥ इस पर उसके शिर और ग्रीवाम्रो को भग्न तथा मुँहो से रक्त गिरता देख कर नाग-पत्नियाँ बहणा पूर्ण बाणी में श्रीकृष्ण से बोली ॥४७॥

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वज्ञस्त्वमनुत्तम ।

पर ज्योतिरचिन्त्य यत्तदश परमेश्वर ॥४८॥

न समर्था सुरास्तोतु यमनन्यभव विभुम्

स्वरूपवर्णन तस्य कथं योषित्करिष्यति ॥४९॥

यस्याविलम्बोऽप्योमज्जलाग्निपवनात्मकम् ।

ब्रह्माडमल्पकाल्पाश स्तोध्यामस्तं कथं वयम् ॥५०॥

यतन्तो न विदुर्नित्यं यत्स्वरूपं हि योगिन ।

परमार्थमणोरल्प स्थूलात्स्थूलं नता स्म तम् ॥५१॥

न यस्य जन्मने घाता यस्य चान्ताय नान्तक ।

स्थितिकर्त्ता न चान्योऽस्ति यस्य तस्मै नमस्सदा ॥५२॥

कोपं स्वल्पोऽपि ते नास्ति स्थितिपालनमेव ते ।

वारुणं कालियस्यास्य दमने श्रूयता वचः ॥५३॥

स्त्रियोऽनुकम्प्यास्साधूना मूढा दीनाश्च जन्तव ।

यतरस्तनोऽय्य दीनस्य क्षम्यता क्षमता वर ॥५४॥

समस्तजगदाधारो भवानल्पवत् फणी ।

रत्नपादपीडितो जह्यान्मुहूर्त्तार्द्धेन जीवितम् ॥५५॥

नाग पत्निया ने कहा—हे देवदेवेश । अब हम आपको जान गई, आप सर्वश्रेष्ठ भक्त एवं अचिन्त्य परमज्योति के अक्षरूप परमेश्वर ही हैं ॥५४॥ जिन स्वयम्भू भगवान् की स्तुति करने का सामर्थ्य देवताओं में भी नहीं है, उन के रूप का वर्णन हम नारिया किस प्रकार कर सकती हैं ? ॥५६॥ पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और पवन रूप यह ब्रह्मांड जिनका अल्पतम अक्षरूप है, हम उनकी स्तुति किस प्रकार करें ॥५७॥ जिनके निम्न रूप को योगीश्वर पद्म पूजक भी नहीं जान सकते और जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल हैं, उन परमाद्य स्वरूप का हम नमस्कार करते हैं ॥५८॥ जिन्हें विनाश जन्म नहीं देता और काल जिनका अन्त नहीं कर सकता तथा जिनका स्थिति कर्त्ता भी कोई दूसरा नहीं है, उन प्रभु को हमारा नमस्कार है ॥५९॥ आपने इस कालियनाग का दमन क्रोध से नहीं, किन्तु ससार की स्थिति और पालन के लिये ही किया है, इसलिये हमारे वक्ता सुनिचे ॥६०॥ हे क्षमाशील श्रेष्ठ । सारधुजन को स्त्रियो, मूर्खों और दीन जंतुओं पर अनुकम्पा ही करनी चाहिये, इसलिये आप भी इस दीन के अपराध को क्षमा करिये ॥६१॥ आप सम्पूर्ण विश्व के आधार हैं और यह नाग अल्प वत् माला है । फिर यह आपके चरण प्रहार से पीडित होगया तो आपके मुहूर्त्त तब ही जीवित रह सकता है ॥६२॥

वव पन्नगोऽल्पवीर्योऽय वव भवान्भुवनाश्रय ।

प्रीतिद्वेषो समोत्पृष्टगोचरो भवतोऽय्यय ॥६३॥

तत बुद्धजगत्सवामिन्प्रसादमवसीदत ।

प्राणास्त्यजति नागोऽय्य भर्तृमिदं प्रदीयताम् ॥६४॥

भुवनेन जगन्नाथ महापुरुष पूर्वज ।

प्राणास्त्यजति नागोऽय्य भर्तृमिदं प्रयच्छ न ॥६५॥

वेदान्तवेद्य देवेश दुष्टदैत्यनिवर्हण ।

प्राणास्त्यजति नागोऽय भर्तृ भिक्षा प्रदीयताम् ॥५६

इत्युक्ते ताभिराश्वस्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नग ।

प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्य शनं शनं ॥६०

हे अव्यय । प्रीति अपने समान से और वर अपने से श्रेष्ठ से होती देखते है, तो कहाँ यह अल्पवीर्य वाला नाग और कहाँ आप सब लोको के आश्रय ? ॥५६॥ इसलिये हे जगन्नाथ ! इस दोन पर कृपा करिये । यह नाग अपने प्राणो का त्याग करने वाला है, इसलिये हमे हमारे भर्तार को भिक्षा रूप मे प्रदान करिये ॥५७॥ हे भुवनेश ! हे जगन्नाथ ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! इस नाग के प्राण जाना ही चाहते है, इसलिये आप हमे हमारे पति की भिक्षा दीजिये ॥५८॥ हे वेदान्त से जानने योग्य देवेश ! हे दुष्टो और दैत्यो के विनाशक ! अब यह नाग अपना प्राण त्याग करने वाला है, हमे पति की भिक्षा दीजिये ॥५९॥ श्री पराशर जी ने कहा—नागिनो द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर क्लान्त शरीर वाले नाग को भी कुछ धैर्य हुआ और वह मन्द स्वर मे कहने लगा—हे देव देवेश्वर ! प्रसन्न हो जाइये ॥६०॥

तवाष्टगुणमैश्वर्यं नाथ स्वाभाविक परम् ।

निरस्तातिशय यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६१

त्व परस्त्व परस्याद्य पर त्वत्त परात्मक ।

परस्मात्परमो यस्त्व तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६२

यस्माद्ब्रह्मा च रुदश्च चन्द्रेन्द्रमरुदश्विन ।

वसवश्च सहादित्यस्तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६३

एकावयवसूक्ष्माक्षो यस्यैतदखिल जगत् ।

कलनावयवस्याशस्तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६४

सदसद्र पिणो यस्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वरा ।

परमार्थं न जानन्ति तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६५

ब्रह्माद्यै रचितो यस्तु गन्धपुष्पानुलेपनं ।

नन्दनादिसमुद्भूतैस्तोऽप्यन्ते वा कथं मया ॥६६



यस्यावताररूपाणि देवराजस्सदार्चन्ति ।

न वेत्ति परम रूपं सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६७॥

वालि ने कहा—हे नाथ ! आपका अष्ट भुज विशिष्ट परम ऐश्वर्य स्वाभाविक एवं समता—रहित है, इसलिये मैं आपकी स्तुति किस प्रकार कर सकता हूँ ? ॥६१॥ आप पर तथा पर के भी आदि कारण हैं, और हे परात्मक ! पर की प्रवृत्ति भी आपके द्वारा ही हुई है । इसलिये आप पर से परे की स्तुति मैं किस प्रकार करूँ ? ॥६२॥ जिनसे ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुत, अश्विनी, वसु और आदित्यो की उत्पत्ति हुई है, उन आपकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥६३॥ यह विश्व जिनके काल्पनिक अवयव का एक सूक्ष्म अणु है, ऐसे आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ ? ॥६४॥ जिन सत्-असत् रूप के यथार्थ स्वरूप को ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जानने में समर्थ नहीं हैं, उन आपकी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकूँगा ? ॥६५॥ ब्रह्मा आदि देवता नन्दन कानन के पुष्पो, गन्ध और अनुलेपन आदि के द्वारा जिनका पूजन करते हैं, उन आपका पूजन मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥६६॥ जिनके अवतार रूपों का पूजन करते हुए देवराज इन्द्र भी वास्तविक रूप को नहीं जान पाते, उन आपका पूजन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ॥६७॥

विषयेभ्यस्समावृत्य सर्वाक्षिणि च योगिन ।

यमर्चयन्ति ध्यानेन सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६८॥

हृदि सङ्कल्प्य यद्रूप ध्यानेनार्चन्ति योगिन ।

भावपुष्पादिना नाथः सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६९॥

सोऽहं ते देवदेवेश नार्चनादौ स्तुतौ न च ।

सामर्थ्यवान् कृपामात्रमनोवृत्तिं प्रसीद मे ॥७०॥

सर्पजातिरियं क्रूरा यस्या जातोऽस्मि केशव ।

तत्स्वभावोऽयमत्रास्ति नापराधो ममाच्युत ॥७१॥

सृज्यते भवता सर्वं तथा सृष्टियते जगत् ।

जातिरूपस्वभावाश्च सृज्यन्ते सृजता त्वया ॥७२॥

यथाह भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वर ।

स्वभावेन च सयुक्तस्तथेद चेष्टित मया ॥७३॥

यद्यन्यथा प्रवर्तेश देवदेव ततो मयि ।

न्याय्यो दण्डनिपातो वे तवैव वचन यथा ॥७४॥

तथाप्यज्ञे जगत्स्वामिन्दण्ड पातितवान्मयि ।

स इलाध्योऽय परो दण्डस्त्वत्तो मे नान्यतो वरः ॥७५॥

हृत्वीर्यो हृत्विपो दमितोऽह त्वयाच्युत ।

जीवित दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम् ॥७६॥

अपनी इन्द्रियो को सम्पूर्ण विषयो से हटा कर योगीजन जिनका चित्तन और पूजन करते हैं, उन आपका पूजन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ? ॥६८॥ चित्त में जिनके रूप का सङ्कल्प करके योगीजन जिनका ध्यान करते हुए भाव-मय पुष्पादि से पूजन करते हैं, मैं उनका पूजन किस प्रकार कर सकता हूँ ॥६९॥ हे देव देवेश ! मैं आपके पूजन भगवा स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ, मैं तो आपकी कृपामात्र का अभिलाषी हूँ, इसलिये आप मुझ पर प्रसन्न हो ॥७०॥ हे केशव ! मैं जिस सर्प जाति में उत्पन्न हुआ हूँ, वह अत्यन्त क्रूर होती है, इस-लिये मेरा जातीय स्वभाव होने के कारण मेरा इसमें कोई अपराध मत मानिये ॥७१॥ इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि और प्रलय करने वाले आप ही हैं और आप ही सृष्टि-रचमा के समय सब जातियों के रूप और स्वभाव को भी स्वयं रचते हैं ॥७२॥ हे प्रभो ! आपने मुझे जिस जाति, रूप और स्वभाव से युक्त किया है, उसी के अनुरूप मेरी चेष्टा हुई है ॥७३॥ हे देव देव ! यदि मैंने उसके विपरीत कोई आचरण किया हा तो मैं अवश्य ही दण्ड व योग्य हो सकता हूँ ॥७४॥ फिर भी आपने मुझ अज्ञानी को जो दण्ड दिया है, वह भी मेरी भलाई के लिये ही हो सकता है । परन्तु हे जगदीश्वर ! किसी अन्य से प्राप्त वर भी मेरे लिये ठीक नहीं होता ॥७५॥ हे अच्युत ! आपने मेरे वीर्य और विष का भले प्रकार दमन कर दिया है, इसलिये अब तो आप मुझे प्राण-दान दीजिये और अब मुझे क्या करना है, यह निर्देश करिये ॥७६॥

नात्र स्थेय त्वया सर्पं कदाचिद्यमुनाजले ।  
 सपुत्रपरिवारस्त्व समुद्रसलिल व्रज ॥७७॥  
 मत्पदानि च ते सर्पं दृष्ट्वा मूर्द्धनि सागरे ।  
 गरुड पन्तगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥७८॥  
 इत्युक्त्वा सर्पराजं त मुमोच भगवान्हरिः ।  
 प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसा निधिम् ॥७९॥  
 पश्यता सर्वभूतानां सभृत्यसुतवान्धवः ।  
 समस्तभार्यासहितं परित्यज्य स्वकं हृदम् ॥८०॥  
 गते सर्पे परिध्वज्य भूता पुनरिवागतम् ।  
 गोपा मूर्द्धनि हादैनं सिपिबुनैश्चजैर्जलैः ॥८१॥  
 कृष्णमक्षिलष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः ।  
 तुण्डुदुमुदिता गोपा दृष्ट्वा शिवजला नदीम् ॥८२॥  
 गीयमानं स गोपीभिश्चरितैस्साधुचेष्टितं ।  
 सस्तूयमानो गोपैश्च कृष्णो ब्रजमुपागमत् ॥८३॥

श्री भगवान् ने कहा—हे नाग ! अब इस यमुना जल में तेरा निवास उचित नहीं है । इसलिये, तू अपने पुत्रादि कुटुम्ब के सहित समुद्र के लिये प्रस्थान कर ॥७७॥ तेरे शिर पर मेरे चरण-चिह्न बन गये हैं, उन्हें देखकर सर्पों का वैरी गरुड तुझे नहीं सतायेगा ॥७८॥ श्री पराशरजी ने कहा—सर्पराज के प्रति ऐसा कहकर भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया और वह भी उही प्रणाम करके सब जीवों के देखते ही अपने भृत्य, पुत्र, बाधक और सब स्त्रियों के सहित उस कुण्ड का त्याग कर समुद्र में रहने के लिये चल दिया ॥७९-८०॥ सर्प के वहाँ चले जाने पर मर कर जी उठने वाले मनुष्य के समान श्री कृष्ण को प्राप्त करके गोपों ने प्रीति पूर्वक उनका आलिंगन किया और अपने ग्रामियों से उनका मस्तक को भिगोने लगे ॥८१॥ यमुनाजी की स्वच्छ जल से युक्त देखकर कुछ अन्य गोपगण प्रसन्न चित्त होकर श्रीकृष्ण की आश्चर्य पूर्वक स्तुति करने लगे ॥८२॥ फिर अथन श्रद्धा चरित्रा के कारण

गोपिया की गीतमय प्रशंसा और गोपों द्वारा स्तुतियों की प्राप्त होते हुए श्रीकृष्ण व्रज में लौट आये ॥८३॥

## आठवाँ अध्याय

गा पालयन्ती च पुन सहितौ बलकेशवौ ।  
 भ्रममाणौ वने तस्मिन्नस्य तालवन गतौ ॥१॥  
 तत्तु तालवन दिव्य धेनुको नाम दानव ।  
 मृगमासकृताहार सदाध्यास्ते खराकृति ॥२॥  
 तत्तु तालवन पवनफलसम्पत्समन्वितम् ।  
 दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपा फलादानेऽब्रुवन्वच ॥३॥  
 हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्षयते ।  
 भूप्रदेशो यतस्तस्मात्पवनानीमानि सन्ति वै ॥४॥  
 फलानि पश्य तालानां गन्धामोदितदीशि वै ।  
 वयमेतान्यभीप्साम पात्यन्ता यदि रोचते ॥५॥

श्री पराशरजी ने कहा—एक दिन बलरामजी के सहित भगवान् वैष्णव गौएँ चराते हुए अश्वत्थ रमणीक तालवन में जा पहुँचे ॥१॥ उस दिव्य वन में गवभागार धेनुकासुर मृगमासका आहार करता हुआ निवास करता था ॥२॥ वह तालवन वने फलों से सम्पन्न था, जिन्हें तोड़ने की इच्छा करते हुए गोपों ने कहा ॥३॥ गोपगण बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! इस भू प्रदेश का रक्षक धेनुकासुर है इसीनिये यहाँ पहुँचे हुए फलों की भरमार है ॥४॥ यह तालवन अपनी गंध से सब दिशामें गन्धामोद उत्पन्न कर रहे हैं, हम भी इनके खाने की इच्छा कर रहे हैं, यदि तुम्हारी भी रुचि हो तो इनमें से कुछ फल गिरा लो ॥५॥

इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा सङ्क्षयं लो वच ।  
 एतत्त्वत्तं व्यमित्युक्त्वा पातयामास तानि वै ।  
 कृष्णश्च पातयामास भुवि तानि फलानि वै ॥६॥

फलानां पततां शब्दमाकर्ण्य सुदुरासद ।  
 आजगाम स दुष्टात्मा कोपाद् दंतेयगर्दभ ॥७  
 पद्म्यामुभाम्याम तदा पश्चिमाम्या चल बली ।  
 जघानोरसि ताम्या च स च तेनाभ्यगृह्यत ॥८  
 गृहीत्वा भ्रामयामास सोऽम्बरे गतजीवितम् ।  
 तस्मिन्नेव स चिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९  
 तत फलान्यनेकानि तालाग्नान्निपतन्खर ।  
 पृथिव्या पातयामास महावातो घनानिव ॥१०  
 अन्यानथ सजातीयानागतान्दैत्यगर्दभान् ।  
 कृष्णश्चिक्षेप तालाग्रं बलभद्रश्च लीलया ॥११  
 क्षणेनालङ्कृता पृथ्वी पवनैस्तालफलैस्तदा ।  
 दैत्यगर्दभदेहैश्च मंत्रेयं शुशुभेऽधिकम् ॥१२  
 ततो गावो निरावाघास्तस्मिस्तालवने द्विज ।  
 नवशप्पं सुखं चैरुयन्त भुक्तमभूत्पुरा ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—ग्वाल-बालो के ऐसे बचन सुनकर बलरामजी ने भी उनका अनुमोदन किया और कुछ फल गिराये फिर श्रीकृष्ण ने भी कुछ फल भाड़ दिये ॥६॥ फलों के गिरने का शब्द सुनकर वह बुद्धिपति, दुरात्मा गर्दभ रूपी असुर क्रोध करता हुआ वहाँ आगया ॥७॥ उस महाबली असुर ने अपने पीछे के दो पाँवों से बलरामजी के हृदय पर आघात किया तब उन्होंने उमके दोनों पाँव पकड़ लिये ॥८॥ फिर उसे आकाश में घुमाने लगे और जब वह निष्प्राण होगया तब उन्होंने अत्यन्त वेग पूर्वक उसे ताल वृक्ष पर ही पड़ाड़ दिया ॥९॥ उस गर्दभ के गिरने से ताल वृक्ष के फल इस प्रकार झड़ गये, जैसे प्रचण्ड पवन से मेघ झड़ने लगते हैं ॥१०॥ उसके अन्य सजातीय बाघव भी जब क्रोध पूर्वक वहाँ आये, तब उन्हें भी उठा उठा कर बलराम और कृष्ण ने ताल वृक्षों पर ही दे मारा ॥११॥ हे मंत्रेयजी ! इस प्रकार एक क्षण में ही ताल के पत्ते हुए फलों और गधे रूपी असुरों के शरीरों से अलंकृत हुई पृथिवी अत्यन्त शोभा पाने लगी ॥१२॥ हे द्विज ! उस समय से ही उम ताल वन में

निर्भय हुई गोएँ सुख पूर्वक चरने लगी, जिसे पहिले कभी चरने का सीमाय्य न था ॥१३॥

## नवाँ अध्याय

तस्मिन्नासभदैतेये सानुगे विनिपातिते ।  
सौम्यं तद्गोपगोपीनां रम्यं तालवनं वभौ ॥१॥  
ततस्ती जातहर्षी तु वसुदेवसुतावुभौ ।  
हत्वा धेनुकदैतेयं भाण्डीरवटमागतौ ॥२॥  
क्ष्वेलमानौ प्रगायन्तौ विचिन्वन्तौ च पादपान् ।  
चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च च नामभिः ॥३॥  
निर्योगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ।  
शुशुभाते महात्मानो बालशृङ्गाविवर्षभी ॥४॥  
सुवर्णाञ्जनचूर्णाम्ब्या तौ तदा रुपिताम्बरी ।  
महेन्द्रायुधसयुक्ता श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥५॥  
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम् ।  
समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥६॥  
मनुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम् ।  
तज्जातिगुणश्रुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥७॥  
ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च नियुद्धंश्च महाबली ।

श्री पराशरजी ने कहा—जब वह गर्दभ रूपी असुर अपने अनुचरों सहित आया गया, तब वह रमणीक तालवन गोपों और गोपियों के लिये सौम्य हो गया ॥१॥ फिर उस दैत्य को मार कर वे दोनों वसुदेव नन्दन हर्षित चित्त से भाण्डीर वट के पास आये ॥२॥ तब गौओं को बाँधने की रस्सी को अपने कंधे पर लटकाये और वनमाला धारण किये वे दोनों बालक नाद करते, गाते, वृक्षों पर चढ़ते—उतरते, गौओं को चराते हुए उनको पुकारते हुए नवीनोत्पन्न सींग वाले बछड़ों के समान शोभा पा रहे थे ॥३-४॥ उन दोनों के वस्त्र स्वर्णिम और

श्याम रङ्ग के होने के कारण वे दोनों इन्द्र धनुष पड़े हुए श्वेन घोर श्याम वर्ण के बादलों जैसे प्रतीत होते थे ॥५॥ वे सभी लोकपालों के स्वामी पृथिवी पर प्रकट होकर विभिन्न लौकिक क्रीड़ाएँ कर रहे थे ॥६॥ मानव धर्म का पालन करते और मानवी-क्रीड़ाएँ करते हुए वे वन में विचरण कर रहे थे ॥७॥

व्यायाम चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयस्तथाश्मभिः ॥८॥

तल्लिप्सुरसुरस्तत्र ह्य भयो रममाणयो ।

आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेपतिरोहित ॥९॥

सोऽवगाहत निश्शङ्कुस्तेषा मध्यममानुष ।

मानुष वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तम ॥१०॥

तयोश्चिद्धान्तरप्रेप्सुरविसह्यमभन्यत ।

कृष्ण ततो रोहिणेय हन्तु चक्रे मनोरथम् ॥११॥

हरिणाक्रीडन नाम बालक्रीडनक ततः ।

प्रकुर्वन्तो हि ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्थितौ ॥१२॥

श्रीदाम्ना सह गोविन्द प्रलम्बेन तथा बल ।

गोपालैरपरंश्चान्ये गोपाला पुप्लुवुस्तत ॥१३॥

श्रीदामान तत कृष्ण प्रलम्ब रोहिणीसुत ।

जितवान्कृष्णपक्षीयंगोपैरन्ये पराजिता ॥१४॥

कभी झूले में झूनते, कभी परस्पर मल्ल युद्ध करते और कभी परस्पर फेंक कर विभिन्न प्रकार का अभ्यास करते ॥८॥ ऐसे ही समय में उन क्रीड़ा करते हुए दोनों बालकों को उठा ले जाने की इच्छा करता हुआ प्रलम्ब नामक एक असुर गोप वेश धारण कर वहाँ आया ॥९॥ दानवों ने श्रेष्ठ प्रलम्बासुर मनुष्य न होते हुए भी मनुष्य वेश में शङ्का रहित भाव से उन बालकों में जा मिला ॥१०॥ वे दोनों कब असावधान होते हैं, इसका अवसर देखते हुए उस असुर ने श्रीकृष्ण को वक्ष में न धारने वाला समझ कर बलरामजी को ही मारने का विचार स्थिर किया ॥११॥ फिर वे सब ग्वाल-बालकों ने हरिणाक्रीडन नामक खेल की इच्छा की और उनमें से दो-दो बालक एक साथ उठ-उठ कर चलने लगे ॥१२॥ उस समय श्रीदामा के साथ कृष्ण, प्रलम्ब के साथ बलराम

तथा अन्याय ग्वालो की दो-दो की जोड़ी इसी प्रकार हिरन की भाँति उछलती हुई चली ॥१३॥ अन्त में कृष्ण से श्रीदामा, बलराम से प्रलम्ब और कृष्ण-पक्ष के अन्यान्य ग्वालो ने अपने प्रति पक्षियों पर विजय प्राप्त करली ॥१४॥

ते बाह्यन्तस्त्वन्योन्य भाण्डीर वटमेत्य वै ।

पुनर्निववृतुस्सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१५॥

सङ्कर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानव ।

नभस्स्थल जगामाशु सचन्द्र इव वारिद ॥१६॥

असह्यौहिण्यस्य स भार दानवोत्तम ।

ववृधे स महाकाय प्रावृषीव बलाहक ॥१७॥

सङ्कर्षणस्तु त दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम् ।

स्वदामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तवम् ॥१८॥

रौद्र शकटचक्राक्ष पादन्यासचलत्क्षितिम् ।

अभीतमनसा तेन रक्षसा रोहिणीसुनः ।

ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत् ॥१९॥

कृष्ण कृष्ण ह्रिये ह्येष पर्वतोदग्रमूर्तिना ।

केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छन्नरूपिणा ॥२०॥

यदत्र साम्प्रत कार्यं मया मधुनिपूदन ।

तत्कथ्यता प्रयात्येष दुरात्मातित्वरान्वित ॥२१॥

उस खेल में जिन बालकों की हार हुई वे अपने-अपने विजेताओं को कन्धों पर चढ़ा कर भाण्डीर वट तक ले गये और लौट आये ॥१५॥ परन्तु प्रलम्बासुर बलरामजी को अपने कन्धे पर चढ़ा कर जैसे चन्द्रमा युक्त मेघ होता है वैसी ही शोभा को प्राप्त होता हुआ अत्यन्त वेग-पूर्वक आकाश में उड़ चला ॥१६॥ विन्तु वह दानवोत्तम प्रलम्ब बलरामजी ने भार को न सह सका और वर्षाकाल में बादल बढ जाता है, वैसे ही वृद्धि को प्राप्त होना हुआ अत्यन्त रघूल होगया ॥१७॥ उस समय मालादि आभूषणों से विभूषित, शिर पर मुकुट धारण किये, रथ चक्र के समान भयानक नेत्र वाले, अपनी चाल से भूमण्डल को क्षिप्त करने वाले तथा जले हुए पर्वत जैसे भावार वाले उस निशङ्क



संस्तूयमानो गोपेस्तु रामा दंत्ये निपातिते ।

प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमायया ॥३८॥

हे अनन्त मूर्ते ! सम्पूर्ण चराचर जगत् को धारण करने वाली पृथिवी के आप ही धारण करने वाले हैं । आप ही अजन्मा निमेषादि काल रूप होकर सत्ययुग आदि के भेद से इस विश्व का स्वयं ही प्राप्त कर लेते हैं ॥२६॥ जैसे बडवानल का जलवायु के द्वारा हिमालय पर पहुँच कर बर्फ वन जाता है और सूर्य-रश्मियों के सयोग से पिघल कर पुनः जल रूप होता है, वैसे ही यह विश्व आपके द्वारा सहार को प्राप्त होकर आपके ही आश्रय में रहता है और जब आप पुनः सृष्टि करने में तत्पर होते हैं, तब यह स्थूल विश्व रूप हो जाता है ॥३०-३१॥ हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों ही इस विश्व के अकेले कारण हैं और लोकहित के लिये ही हमने पृथक्-पृथक् रूप धारण किया है ॥३२॥ इसलिये आप अपने यथार्थ रूप को याद करिये और मानव-भाव के आश्रय में ही इन दैत्य का वध करके जनहित को सिद्ध कीजिये ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा—महात्मा श्रीकृष्ण ने जब उन्हें इस प्रकार याद दिलाई, तब महाबली बलरामजी ने हँसकर प्रलम्बामुर को पीड़ित करना आरम्भ किया ॥३४॥ उन्होंने क्रोध पूर्वक मोहित वरुण के नेत्र करके उसके शिर पर मुष्टिका से प्रहार किया, जिससे ग्राहत होने पर उसके दोनों नेत्र बाहर की ओर निकल पड़े ॥३५॥ फिर मस्तिष्क के फटने से वह महादैत्य रुधिर वमन करता हुआ घरती पर गिर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३६॥ अद्भुत कर्म वाले बलरामजी के द्वारा प्रलम्बामुर का वध हुआ देखकर सभी गोप उन्हें साधुवाद देने लगे ॥३७॥ प्रलम्बामुर के मरने पर गोपों द्वारा प्रशंसित होते हुए बलरामजी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोकुल में लौट आये ॥३८॥

सर्वा अध्याय

तयोविहरतोरं रामकेशवयोव्रजे ।

प्रावृद्ध व्यतीता विक्रमत्मरोजा चाभवच्छरत् ॥१॥

अवापुस्तापमत्यर्थं शफर्यः पल्वनोदके ।  
 पुत्रदोत्रादिसवतेन भमत्वेन यथा गृही ॥१२॥  
 मयूरा मोनमातस्थु परित्यक्तमदा वने ।  
 असारता परिज्ञाय ससारस्येव योगिनः ॥३॥  
 उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलास्मितमूर्तयः ।  
 तत्पुत्रजुश्चाम्बरं मेघा गृह विज्ञानिनो यथा ॥४॥  
 शरत्सूर्याशुतप्तानि ययुश्शोष सराणि च ।  
 बह्वलम्बममत्वेन हृदयानीव दंहिनाम् ॥५॥  
 कुमुदंशरदम्भासि योग्यतागण ययुः ।  
 अवबोधैर्मनासीव समत्वममनात्मनाम् ॥६॥  
 तारकाविमले व्योम्नि रराजान्गुणमण्डलः ।  
 चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साप्रज्ञैश्च यथा ॥

संस्तूयमानो गोपैस्तु रामा दैत्ये निपातिते ।

प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३८॥

हे अनन्त भूतें ! सम्पूर्ण चराचर जगत् को धारण करने वाली पृथिवी के आप ही धारण करने वाले हैं । आप ही अजन्मा निमेषादि काल रूप होकर सत्ययुग आदि के भेद से इस विश्व का स्वयं ही आस कर लेते हैं ॥२९॥ जैसे बडवानल का जनवायु के द्वारा हिमालय पर पहुँच कर बर्फ बन जाता है और सूर्य-रश्मियों के सयोग से पिघल कर पुनः जल रूप होता है, वैसे ही यह विश्व आपके द्वारा सहार को प्राप्त होकर आपके ही आश्रय में रहता है और जब आप पुनः सृष्टि करने में तत्पर होते हैं, तब यह स्थूल विश्व रूप हो जाता है ॥३०-३१॥ हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों ही इस विश्व के अकेले कारण हैं और लोकहित के लिये ही हमने पृथक्-पृथक् रूप धारण किया है ॥३२॥ इसलिये आप अपने यथार्थ रूप को याद करिये और शान्त-भाव के आश्रय में ही हम दैत्य का वध करके जनहित को सिद्ध कीजिये ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा—महार्मा श्रीकृष्ण ! जब उन्हें इस प्रकार याद दिलाई, तब महाशली बलरामजी ने हँसकर प्रलम्बासुर को पीडित करना आरम्भ किया ॥३४॥ उन्होंने क्रोध पूर्वक लोहित वर्ण के नेत्र करके उसके शिर पर मुट्टिका से प्रहार किया, जिसमें ग्राहत होने पर उसके दोनों नेत्र बाहर की ओर निकल पड़े ॥३५॥ फिर मस्तिष्क के फटने से वह महादैत्य रुधिर वमन करता हुआ धरती पर गिर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३६॥ अद्भुत कर्म वाले बलरामजी के द्वारा प्रलम्बासुर का वध हुआ देखकर सभी गोप उन्हें साधुवाद देने लगे ॥३७॥ प्रलम्बासुर के मरने पर गोपों द्वारा प्रशंसित होते हुए बलरामजी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोकुल में लौट आये ॥३८॥

### दमर्षा अध्याय

तयोर्विहरतोरेव रामकेशवयोर्व्रजे ।

प्रावृद्ध व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥१॥

अवापुस्तापमत्यर्थं शफ्यः पल्लवलोदके ।  
 पुत्रश्रेयादिसवतेन ममत्वेन यथा गृही ॥२  
 मयूरा योनमावस्थु परित्यक्तमदा वने ।  
 असारता परिजाय भंगारस्येव योगिनः ॥३  
 उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलास्मितमूर्तयः ।  
 तत्पुत्रजुष्माभ्यं येषां गृहं विज्ञानिनो यथा ॥४  
 धरत्नयुगौतुतानि ययुश्शोष सराणि च ।  
 बलान्मयममत्वेन हृदयानीव देहिनाम् ॥५  
 शुभुर्दशरदम्भांसि योग्यतालक्षणं ययुः ।  
 अयवांधंमनामीय समस्त्यममलात्मनाम् ॥६  
 तारकाविमने व्योम्नि रराजागण्डमण्डलः ।  
 चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साधाले यथा ॥७

पूर्वं त्यक्तस्सरोऽम्भोभिर्हसा योगं पुनर्ययुः ।  
 क्लेशो कुयोगिनोऽप्येपरन्तरायहता इव ॥९॥  
 निभृतोऽभवदत्यर्थं समुद्रः स्तिमितोदकः ।  
 क्रमावाप्तमहायोगो निश्चलात्मा यथा यतिः ॥१०॥  
 सर्वशक्तिप्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन् ।  
 ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनासीव सुमेघसाम् ॥११॥  
 बभूव निर्मलं व्योम शरदा घ्वस्ततोयदम् ।  
 योगाग्निदग्धक्लेशोद्योगिनामिव मानसम् ॥१२॥  
 सूर्याशुजनितं ताप निन्ये तारापतिः शमम् ।  
 अहंमानोद्भव दुःखं विवेकः सुमहानिव ॥१३॥  
 नभसोऽब्ध भुवः पङ्क्तं कालुष्यं चाम्भसश्शरत् ।  
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थम्यः प्रत्याहार इवाहरत् ॥१४॥  
 प्राणायाम एवाम्भोभिस्सरसां कृतपूरकः ।  
 अम्यस्यतेऽनुदिवसं रेचकाकुम्भकादिभिः ॥१५॥

जैसे विवेकी पुरुष पुनः और वैभव में बढ़ते हुए ममत्व को धीरे-धीरे छोड़ देते हैं, वैसे ही जलाशयो का जल भी अपने किनारों को धीरे-धीरे त्यागने लगा ॥९॥ जैसे विष्णो से विचलित हुए कुयोगियों को क्लेशों की पुनः प्राप्ति होती है, वैसे ही पूर्व में त्यागे हुए सरोवर के जल से हस पुनः मिल गये ॥१०॥ जैसे महायोग की उपलब्धि पर यति निश्चलात्मा हो जाता है, वैसे ही जल की स्थिरता से समुद्र निश्चल हो गया ॥१०॥ जैसे भगवान् विष्णु का ज्ञान होने पर ज्ञानियों के चित्त स्वच्छ हो जाते हैं, वैसे ही शरद् ऋतु को प्राप्त होकर जलाशयों का जल स्वच्छ हो गया ॥११॥ जैसे योगाग्नि द्वारा नष्ट क्लेश योगियों के चित्त स्वच्छ हो जाते हैं, वैसे ही मेघों के न रहने से आकाश स्वच्छ हो गया ॥१२॥ जैसे प्रहकार से उत्पन्न हुए दुःख की घान्ति विवेक से हो जाती है, वैसे ही चन्द्रमा से भूयें रश्मियों से उत्पन्न ताप की शान्ति होगई ॥१३॥ जैसे इन्द्रियों के विषयों को प्रत्याहार दूर कर देता है, वैसे ही आकाश से बादलों को, पृथिवी से धूलि को और जल से मल को शरद् काल ने उपस्थित होकर दूर कर दिया

है ॥१४॥ उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि सरोवरो के जल पूरक करके अब कुम्भक और रेचक क्रिया करते हुए प्राणायाम के अभ्यास में लगे है ॥१५॥

विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाम्यागते व्रजे ।

ददर्शेन्द्रमहारम्भायोद्यतास्तान्ब्रजौकस ॥१६॥

कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् ।

कीतूहलादिद वाक्य प्राह वृद्धान्महामति ॥१७॥

कोऽयं शक्रमखो नाम येन वो हर्ष आगत ।

प्राह त नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥१८॥

मेघानां पयसा चेशो देवराजदशतक्रतु ।

तेन सञ्चोदिता मेघा वपन्त्यम्बुमय रसम् ॥१९॥

तद्वृष्टिजनित सस्य वयमन्ये च देहित ।

वर्त्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवता ॥२०॥

क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निवृत्ता ।

तेन सर्वाद्धितैस्सस्यैस्तुष्टा पुष्टा भवन्ति वै ॥२१॥

नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षादितो जन ।

दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहका ॥२२॥

भीममेतत्पयो दुग्ध गोभि सूर्यस्य वारिदै ।

पर्जन्यस्सर्वलोकस्योद्भवाय भुवि वर्षति ॥२३॥

तस्मात्प्रावृषि राजानस्सर्वे शक्र मुदा युना ।

मर्गात्सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवा ॥२४॥

इस प्रकार व्रजमण्डल में जब आकाश स्वच्छ हो गया और धरत काल का प्रागमन हुआ तब श्रीकृष्ण ने सब व्रजवासियों को इन्द्रात्ताप की तैयारी में लगे हुए देखा ॥१६॥ उन गोपों की उत्तम की जमग में भर हुए देग भर श्री कृष्ण ने अपने वृद्धजनो से कीतूहन पूर्वक पूछा ॥१७॥ आप लोग जिसे करने के लिये इतने उत्साहित हैं, वह इन्द्रयज्ञ क्या होगा ? आदर सहित ऐसा प्रश्न किये जाने पर नन्दजी ने उत्तर देहा ॥१८॥ नन्द गोप बोले—मेघ और जल दोनों के ही स्वामी इन्द्र हैं, उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जल रूप रस की वृष्टि

करते हैं ॥१६॥ हम तथा अन्य प्राणी वर्षा से प्राप्त हुए अन्न का ही व्यवहार करते हैं । उमका स्वयं उपभोग करते और उसी से देवताओं को तृप्त करते हैं ॥२०॥ वृद्धि-जल से वृद्धि को प्राप्त हुए तृण से ही यह गीएँ तृप्ति और पुष्टि को प्राप्त करती है । उसी से बछड़ो घाली और दुधारू होती हैं ॥२१॥ जिस भूमि पर वर्षणशील बादल दिखाई देते हैं, वहाँ अन्न या घास की कमी नहीं होती जिससे वहाँ सुघा से किसी को भी पीड़ित नहीं होना होता है ॥२२॥ यह इन्द्र ही सूर्य-रश्मियों के द्वारा पृथिवी के जल को खींचते और मेघों के द्वारा उसी जल को पुनः पृथिवी पर बरसाते हैं ॥२३॥ इसीलिये सब राजा लोग, हम तथा अन्य सब मनुष्य यज्ञों के द्वारा इन्द्र का ही प्रसन्नता पूर्वक पूजन किया करते हैं ॥२४॥

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने ।

रोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥२५॥

न वय कृषिकर्तारो वाणिज्याजीविनो न च ।

गावोऽस्मद्द्वैवतं तात वय वनचरा यतः ॥२६॥

आन्वीक्षिकी त्रयो वार्त्तादिष्वनीतिस्तथा परा ।

विद्याचतुष्टयं चैतद्वार्त्तामात्र शृणुष्व मे ॥२७॥

कृषिर्वणिज्या तद्वच्च तृतीय पशुपालनम् ।

विद्या ह्येका महाभाग वार्त्ता वृत्तित्रयाश्चया ॥२८॥

कर्पकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् ।

अस्माकं गौः परा वृत्तिर्वार्त्ता भेदैरियं त्रिभिः ॥२९॥

विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवत महत् ।

सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥३०॥

यो यस्य फलमश्नन्वै पूजयत्यपर नरः ।

इह च प्रेत्य चैवासी न तदाप्नोति शोभनम् ॥३१॥

कृष्यान्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं च पुनर्वनम् ।

वनान्ता गिरयस्सर्गे ते चास्माकं परा गतिः ॥३२॥

न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा ।

सुखिनस्त्वस्थिले लोके यथा नै चक्रचारिणः ॥३३॥

श्री पराशरजी ने कहा—इन्द्र के पूजन विषयक यह विचार सुनकर भगवान् दामोदर ने इन्द्र को छुट करने के विचार से ही नदजी के प्रति कहा ॥२५॥ हे तात ! हम न तो कृषि जीवी हैं, न वाणिज्य जीवी, हम वनचरो के देवता तो यह गोएँ ही हैं ॥२६॥ तर्क, कर्मकाण्ड, दण्डनीति और वात्ता—यह चार विद्याएँ कही जाती हैं, इनमें से केवल वात्ता के विषय में ही आप से कहता हूँ, उसे सुनिये ॥२७॥ हे महाभाग ! कृषि, वाणिज्य और पशु पालन रूप तीनों वृत्तियों की आश्रय भूता वात्ता नाम की विद्या ही है ॥२८॥ वात्ता के इन तीनों भेदों के कारण किसानों की वृत्ति कृषि, व्यापारियों की वृत्ति वाणिज्य और हमारी वृत्ति गोपालन है ॥२९॥ जो व्यक्ति जिस विद्या को वृत्ति को करता है, उसकी इष्ट देवता वही विद्या है, उसे अपनी उस परम उपचारिणी विद्या की ही पूजन करना चाहिये ॥३०॥ एक देवता से फल-लाभ करके दूसरे देवता या पूजन करने वाले मनुष्य के इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं ॥३१॥ खेतों की समाप्ति पर सीमा आती है और सीमा के अन्त होने पर वन आता है और जब वन भी समाप्त हो जाता है, तब पर्वत आते हैं, इसलिये पर्वत ही हमारे लिये तो परमगति स्वरूप हैं ॥३२॥ हम न तो घर की भीत में रहते हैं, न बिबाड लगाते हैं और न घर या खेत वाले ही हैं, हम तो भ्रमणशील मुनियों के समान ही अपने जनों के समाज में गुरु से रहते हैं ॥३३॥

श्रूयन्ते गिरियदचंब वनेऽस्मिन्यामरूपिणः ।

तत्तद्रूप समास्थाय रमन्ते त्वेषु सानुषु ॥३४॥

यदा चर्तः प्रवाध्यन्ते तेषा ये काननोक्तसः ।

तदा सिंहादिदृगंस्तान्धातयन्ति महीधरा ॥३५॥

१ गिरियज्ञस्त्वय तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम् ।

विमम्माक महेन्द्रेण गावर्शलाश्च देवताः ॥३६॥

मन्त्रयज्ञपरा विप्राम्मीर्यज्ञाश्च वर्षकाः ।

गिरिगोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः ॥३७॥



तस्माद्गोवर्धनश्मैलो भवद्भिविविधारहणः ।  
 अर्च्यतां पूज्यतां मेघ्यान्पशून्हत्वा विधानतः ॥३८॥  
 सर्वघोपस्य सन्दोहो गृह्यतां मा विचार्यताम् ।  
 भोज्यन्तां तेन वै विप्रास्तथा ये चाभिवाञ्छकाः ॥३९॥  
 तत्रार्चिते कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु ।  
 शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणा ॥४०॥  
 एतन्मम मतं गोपास्सम्प्रीत्या क्रियते यदि ।  
 ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥४१॥

मुनते हैं कि इस वन के पर्वत इच्छित रूप धारण करके अपने-अपने मस्तक पर विहार करते रहते हैं ॥३४॥ जब कोई वनवास इन पर्वत देवताओं के विहार में किसी प्रकार बाधक होते हैं, तब यह सिंहादि रूप को धारण करके उनकी हत्या कर डालते हैं ॥३५॥ इसलिये आज से गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञ करने की तैयारी करिये । हमारे देवता तो पर्वत और गौएँ ही हैं, इन्द्र से हमें क्या लेना है ? ॥३६॥ विप्रगण मंत्र यज्ञ और कृपकगण सीर यज्ञ करते हैं, इसलिये हम पर्वतों और वनों में निवास करने वालों के लिये तो गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञ करना ही श्रेयस्कर है ॥३७॥ इसलिये आप मेघ्य बलि देकर विविध पदार्थों के द्वारा विधि पूर्वक गोवर्धन पर्वत का पूजन करिये ॥३८॥ आज ही आप वन भर का सब दूध इकट्ठा करके उससे ब्राह्मणों और निस्तारियों को भोजन कराइये, इस विषय में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है ॥३९॥ गोवर्धन का पूजन, हवन और ब्राह्मण-भोजन की समाप्ति पर शरत्कालीन पुण्यो से सुशोभित मस्तक वाली गौएँ गोवर्धन की प्रदक्षिणा करें ॥४०॥ हे गोपो ! यदि आप मेरे इस मत का अनुसरण करेंगे तो मुझे, गोवर्धन पर्वत को और गौघो को इससे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी ॥४१॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजीकसः ।  
 प्रीत्युत्फुल्लमुखं गोपास्साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥४२॥  
 शोभन ते मतं वत्स यदेतद्भवतोदितम् ।  
 तत्करिष्यामहे सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥४३॥

तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकस ।  
 इधिपायसमासाद्य दंदुशशैलवर्ति तत ॥४४॥  
 द्विजाश्च भोजयामासुश्शतशोऽथ सहस्रश ॥४५॥  
 गावश्शैलं ततश्चकुरचितास्ता प्रदक्षिणम् ।  
 वृषभाश्चातिनदन्तस्सतोया जलदा इव ॥४६॥  
 गिरिमूर्धं नि कृष्णोऽहमिति मूर्तिमान् ।  
 बुभुजेऽन्नं बहुतर गोपवर्याहित द्विज ॥४७॥  
 स्वेनैव कृष्णो रूपेण गोपैस्सह गिरेश्शिरः ।  
 अधिरुह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम् ॥४८॥  
 अन्तर्द्वानि गते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ।  
 कृत्वा गिरिमख गोष्ठं निजमभ्याययु पुन ॥४९॥

श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण ने ऐसे वचन सुनकर नन्दादि गोपो ने प्रसन्नता से प्रफुल्लित हुए मुख से उ हे साथु बाद दिया ॥४९॥ ये कहते लगे—हे वत्स ! तुम्हारा विचार अत्युत्तम है, हम सब उसी के अनुसार करेंगे । अब हम गिरियज्ञ का प्रवर्तन करेंगे ॥४३॥ फिर उन सब व्रजवासियों ने गिरियज्ञ प्रारंभ किया और पर्वतराज गोवर्धन को दही, खीर आदि पदार्थों से बलि दी ॥४४॥ सैंकड़ों हजार ग्राह्यणों को भोजन कराने के पश्चात् पुष्पादि से सजी हुई गौमो और जलयुक्त मेघा के समान गर्जनशील बैलों ने गिरि गोवर्धन की परिक्रमा की ॥४५-४६॥ हे द्विज ! उस समय गिरिराज के शिखर पर अन्य रूप से मूर्तिमान् हुए श्रीकृष्ण ने गोपो द्वारा अर्पित विविध भोजन सामग्री को ग्रहण किया ॥४७॥ गोपो के साथ गिरिराज के शिखर पर चढ़ कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने ही द्वितीय स्वरूप की पूजा की ॥४८॥ इस प्रकार गिरियज्ञ की समाप्ति पर उनसे अपना इच्छित वर प्राप्त करके सभी गोपगण उनके अन्तर्धान होने के पश्चात् अपने अपने गोष्ठों में चले गये ॥४९॥

### ग्यारहवाँ अध्याय

मखे प्रतिहते शक्रो मैत्रेयातिरुपान्वित ।  
 सवर्तक नाम गण तोयदानामथाब्रवीत् ॥१॥  
 भो भो मेघा निशम्यैतद्वचन गदतो मम ।  
 आशानन्तरमेवाशु क्रियतामविचारितम् ॥  
 नन्दगोपस्सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैस्सहायवान् ।  
 कृष्णाश्रयबलाध्मातो मखमङ्गमचीकरत् ॥३॥  
 भ्राजीवो या परस्तेषा गावस्तस्य च कारणम् ।  
 ता गावो वृष्टिवातेन पीड्यन्ता वचनान्मम ॥४॥  
 अहमप्यद्रिशृङ्गाभ तुङ्गमारुह्य वारणम् ।  
 साहाय्य व करिष्यामि वाग्वम्बूत्सर्गयोजितम् ॥५॥  
 इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन मुमुचुस्ते बलाहका ।  
 सातवर्ष महाभीममभावाय गवा द्विज ॥६॥  
 तत क्षणेन पृथिवी ककुभोऽम्बग्मेव च ।  
 एक धारामहासारपूरणेनाभवन्मुने ॥७॥  
 विद्युल्लताकशाघातस्तैरिव धनैर्धनम् ।  
 नादापूरितदिवचक्रैर्धारसारमपात्यत ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! अपने यज्ञ के इस प्रकार रुकने से इन्द्र को अत्ययत क्रोध हुआ और सवर्तक नामक अपने मेघों से कहने लगा ॥१॥ हे मेघगण ! मेरा वचन सुन कर तुम मेरी आज्ञा पर बिना किसी प्रकार का सोच विचार करने तुरत उसका पालन करो ॥२॥ दुर्बुद्धि नन्द ने कृष्ण के प्रबलम्ब से अन्य सब गोपों के सहित मेरे यज्ञ को नष्ट कर दिया है ॥३॥ इसलिये उनकी परम जीविका और गोपत्व के कारण रूप गोधों को वृष्टि और पवन के द्वारा उत्पीडित करो ॥४॥ मैं भी अपने पर्वताकार ऐरावत पर चढ़कर जल और पवन के प्रयोग के समय तुम्हारा सहायक होऊँगा ॥५॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज ! इन्द्र की आज्ञा प्राप्त करके उन मेघों ने गोधों का क्षय करने

वे लिये वर्षा और वायु का प्रयोग किया ॥६॥ हे भुने ! मेघों द्वारा प्रयुक्त महान् जल धाराओं से यह पृथिवी, दिशाएँ और आकाश क्षण भर में ही जल से परिपूर्ण दिखाई देने लगे ॥७॥ उस समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे विद्युत् रूपी सना का आघात होने के डर से भीत हुए मेघ अपने घोर गर्जन से सब दिशाओं को गुजाते हुए घनघोर वृष्टि कर रहे हो ॥८॥

अन्धकारीकृते लोके वर्षद्विरनिश घनं ।

अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च जगदाप्यमिवाभवत् ॥९॥

गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना ।

धूताः प्राणाञ्जुहस्सन्ननिकसक्थिशिरोधरा ॥१०॥

फोडेन वत्सानाक्रम्य तन्धुरन्या महामुने ।

गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥११॥

वत्साश्च दीनवदना वातकम्पितकन्धरा ।

ग्राहि ग्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूवुरिवातुरा ॥१२॥

ततस्तदगाकुल सर्वं गोगोपीगोपसकुलम् ।

अतीवार्त हरिर्दृष्ट्वा मंत्रयाचिन्तयत्तदा ॥१३॥

एतत्कृत महेन्द्रेण मखभङ्गविरोधिना ।

तदेतदखिल गोष्ठं त्रातव्यमधुना मया ॥१४॥

इममद्रिमह धैर्यादुत्पाट्योरशिलाघनम् ।

धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छन्नमिवोपरि ॥१५॥

इस प्रकार रात दिन निरंतर जल वृष्टि और विश्व के अघकारमय हो जाने पर ऊपर, नीचे, इधर, उधर सर्वत्र ही यह सब शोक जल रूप ही होगया ॥९॥ घोर वर्षा और प्रचंड वायु के वेगपूर्ण चलने से गोओं के सर्वांग—कटि, जघा, ग्रीवा आदि निश्चित होगये और वे सम्पाद्यमान होती हुई प्राण त्याग करती हुई ही प्रतीत होने लगी ॥१०॥ हे महामुन ! किसी गो ने तो अपने बछड़े को नीचे धरने तक लिया और कोई-कोई जल के वेग के कारण अपने बछड़े से ही त्रिपुंड मई ॥११॥ दीन शरीर माने बछड़े वायु के वेग से सम्पाद्यमान होते हुए व्याकुलता पूर्वक 'ग्राहि ग्राहि' पुकारन लगे ॥१२॥ हे मेनेयजी !

उस समय गौघो, गौणियों और गौपों के सहित गोकुल को प्रत्यत व्यावस्था में देख कर भगवान् श्री हरि विचार करने लगे ॥१३॥ यज्ञ-भग होने के विरोध में इन्द्र ही यह सब कर्म कर रहा है, इसलिये मुझे भी इस व्रज की रक्षा का उपाय करना चाहिये ॥१४॥ अब मैं विशाल शिलाओं वाले इस महान् पर्वत को उखाड़ कर इससे एक बृहद् छत्र के समान व्रज को ढक लूँगा ॥१५॥

इति कृत्वा मतिं कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् ।

उत्पाद्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१६॥

गोपाश्चाह हसञ्छौरिस्समुत्पाटितभूधरः ।

विशम्भमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ॥१७॥

सुनिवातेषु देशेषु यथा जोषमिहास्पताम् ।

प्रविश्यता न भेतव्य गिरिपाताञ्च निर्भयं ॥१८॥

इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनैस्सह ।

शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्वासाग्पीडिता ॥१९॥

कृष्णोऽपि त दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् ।

व्रजैकवासिभिर्हृषंविस्मिताक्षैर्निरीक्षित ॥२०॥

गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितैक्षणं ।

सस्तूयमानचरितः कृष्णश्शैलमधारयत् ॥२१॥

समराज महामेघा ववपुर्नन्दगोकुले ।

इन्द्रेण चोदिता विप्र गोपाना नाशकारिणा ॥२२॥

ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले ।

मिथ्याप्रतिज्ञो बलमिद्वारयामास तान्धनान् ॥२३॥

व्यभ्रे नमसि देवेन्द्रे वितथात्मवचस्थथ ।

निष्क्रम्य गोकुल हृष्ट स्वस्थान पुनरागमत् ॥२४॥

मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहाचलम् ।

स्वस्याने विस्मितमुखैर्हृष्टस्तस्तु प्रजोक्ते ॥२५॥

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने

गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर लीला पूर्वक ही अपने एत हाथ पर रख लिया

॥१६॥ पर्वत को उखाड़ लेने के पश्चात् उन्होंने सब गोपों से हँसते हुए कहा—  
 आप सब लोग इस पर्वत के नीचे आ जाइये मैंने वर्षा से बचने के लिये ही यह  
 उपाय किया है ॥१७॥ इस निर्वात स्थान में निर्भय होकर घुस आओ और सुख  
 पूर्वक बैठो । पर्वत के गिरने की आशंका न करो ॥१८॥ श्रीकृष्ण की यह बात  
 सुन कर जलधारा में प्रस्त हुए गोप-गोपिकाएँ अपने वर्तनों की छकड़ों में लाद  
 कर और गोधों को भी साथ लेकर पर्वत के नीचे आ गये ॥१९॥ सभी व्रज-  
 वासी श्रीकृष्ण को हृष्य और आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से एकटक देख रहे थे और  
 वह भी निश्चल भाव से खड़े रह कर पर्वत को धारण किये रहे ॥२०॥ पर्वत-  
 धारण करते हुए श्रीकृष्ण प्रीति पूर्वक विस्फारित नेत्रों वाले हृषित चित्त गोप-  
 गोपियों से अपने चरित्र का स्तवन सुनते रहे ॥२१॥ हे विप्र ! गोपों के नाश  
 की कामना वाले इन्द्र की प्रेरणा से मन्द के गोकुल में सात रात तक घनघोर  
 वर्षा होती रही ॥२२॥ परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा गिरिराज के धारण किये जाने से  
 जब उसने अपनी प्रतिज्ञा को भंग होते देखा तब उसने अपने भेषों को निवारण  
 किया ॥२३॥ जब आकाश बादलों से हीन एवं स्वच्छ हो गया, तब इन्द्र की  
 प्रतिज्ञा के टूटने पर सभी गोकुल निवासी पर्वत से निकल कर सहर्ष अपने-अपने  
 स्थान पर आये ॥२४॥ फिर उन व्रजवासियों के आश्चर्य सहित देखते हुए  
 श्रीकृष्ण ने उस महाबल गोवर्धन को उसके अपने स्थान पर स्थापित कर  
 दिया ॥२५॥

### बारहवाँ अध्याय

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले ।  
 रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥१॥  
 सोऽपिरुह्य महानागमैरावतममित्रजित् ।  
 गोवर्धनगिरी कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ॥२॥  
 चारयन्त महावीर्यं गास्तु गोपवपुर्धरम् ।  
 कृत्स्नस्य जगतो गोप वृतं गोपकुमारकैः ॥३॥

उस समय गौशों, गोपियों और गोपों के सहित गोकुल को अत्यन्त व्यावस्था में देख कर भगवान् श्री हरि विचार करने लगे ॥१३॥ यज्ञ-भंग होने के विरोध में इन्द्र ही यह सब कर्म कर रहा है, इसलिये मुझे भी इस वज्र की रक्षा का उपाय करना चाहिये ॥१४॥ अब ये विशाल शिलाओं वाले दम महान् पर्वत को उखाड़ कर इससे एक बृहद् स्तम्भ के समान वज्र को ढक लूंगा ॥१५॥

इति कृत्वा भति कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् ।

उत्पाद्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१६॥

गोपांश्चाह हसन्धौरिस्समुत्पादितभूधरः ।

विशन्वमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ॥१७॥

मुनिवातेषु देशेषु यथा जोषमिहास्यताम् ।

प्रविश्यतां न भेतव्यं गिरिपाताञ्च निर्भयं ॥१८॥

इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनैस्सह ।

शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चासाग्पीडिताः ॥१९॥

कृष्णोऽपि तं दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् ।

ब्रजैकवासिभिर्हृषंविस्मिताक्षैर्निरीक्षितः ॥२०॥

गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्ष्णैः ।

संस्तूयमानचरितः कृष्णश्शैलमधारयत् ॥२१॥

सप्तरात्रं महामेघा बवपुर्नन्दगोकुले ।

इन्द्रेण चोदिता विप्र गोपानां नाशकारिणा ॥२२॥

ततो धृते महाशैले परिव्राते च गोकुले ।

मिथ्याप्रतिज्ञो बलभिद्वारयामास तान्धनान् ॥२३॥

व्यभ्रे नमसि देवेन्द्रे धितथात्मवचस्थय ।

निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टं स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२४॥

मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहाचलम् ।

स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तस्तु प्रजौकसैः ॥२५॥

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार विचार करते अर्थात् श्रीकृष्ण ने

गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर लीला पूर्वक ही अपने एक हाथ पर रख लिया

॥१६॥ पर्वत को उखाड़ लेने के पश्चात् उन्होंने सब गोपो से हँसते हुए कहा—  
 आप सब लोग इस पर्वत के नीचे आ जाइये मैंने वर्षा से बचने के लिये ही यह  
 उपाय किया है ॥१७॥ इस निर्वात स्थान में निर्भय होकर घुस आओ और मुख  
 पूर्वक बैठो । पर्वत के गिरने की आशंका न करो ॥१८॥ श्रीकृष्ण की यह बात  
 सुन कर जलधार में प्रस्थित हुए गोप-गोपिकाएँ अपने वर्तनों को छकड़ों में लपेट  
 कर और गोओ को भी साथ लेकर पर्वत के नीचे आ गये ॥१९॥ सभी व्रज-  
 वासी श्रीकृष्ण को हर्ष और आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से एकटक देख रहे थे और  
 वह भी निश्चल भाव से खड़े रह कर पर्वत को धारण किये रहे ॥२०॥ पर्वत-  
 धारण करते हुए श्रीकृष्ण प्रीति पूर्वक विस्फारित नेत्रों वाले हर्षित चित्त गोप-  
 गोपियों से अपने चरित्र का स्तवन सुनते रहे ॥२१॥ हे विप्र ! गोपो के नाश  
 की कामना वाले इन्द्र की प्रेरणा से नन्द के गोकुल में सात रात तक धनधोर  
 वर्षा होती रही ॥२२॥ परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा गिरिराज के धारण किये जाने से  
 जब उसने अपनी प्रतिष्ठा को भग होते देखा तब उसने अपने मेघों को निवारण  
 किया ॥२३॥ जब आकाश बादलों से हीन एवं स्वच्छ हो गया, तब इन्द्र की  
 प्रतिष्ठा के टूटने पर सभी गोकुल निवासी पर्वत से निजल कर सहर्ष अपने-अपने  
 स्थान पर आये ॥२४॥ फिर उन व्रजवासियों के आश्चर्य सहित देखते हुए  
 श्रीकृष्ण ने उस महाबल गोवर्धन को उसके अपने स्थान पर स्थापित कर  
 दिया ॥२५॥

### बारहवाँ अध्याय

धृते गोवर्धने शैले परिध्राते च गोकुले ।  
 रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनं ॥१॥  
 सोऽधिरुह्य महानागमेरावतममित्रजित् ।  
 गोवर्धनगिरो कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ॥२॥  
 चारयन्तं महावीर्यं मास्तु गोपवपुर्धरम् ।  
 कृत्स्नस्य जगतो गोप वृतं गोपकुमारकैः ॥३॥



गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विज ।

कृतच्छायं हरेर्मूर्ध्नि पक्षाम्या पक्षिपुङ्गवम् ॥४॥

श्रवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम् ।

शक्रस्सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्तारितेक्षणम् ॥५॥

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार गोवर्धन पर्वत धारण पूर्वक गोकुल की रक्षा करने के कारण श्रीकृष्ण के दर्शन की इन्द्र ने इच्छा की ॥१॥ इसलिये शत्रुओं के विजेता इन्द्र अपने ऐरावत पर सारुद्ध होकर गिरि गोवर्धन पर आये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण को ग्वाल-वालों के साथ गोपवेश में गोधारण करते हुए देखा ॥२-३॥ उस समय उन्हें पक्षिराज गरुड अपने पंखों से उनके ऊपर अदृश्य रूप से छाया करते हुए दिखाई दिये ॥४॥ फिर वे ऐरावत से नीचे उतर कर श्रीकृष्ण की ओर बढ़े और एकान्त में उनको प्रीति पूर्वक देखते हुए कहने लगे ॥५॥

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः ।

त्वत्समीप महाबाहो नंतच्चिन्त्य त्वयान्यथा ॥६॥

भारावतारणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतले ।

श्रवतीर्णोऽखिलाधार त्वमेव परमेश्वर ॥७॥

मल्लभङ्गविरोधेन मया गोकुलनाशकाः ।

समादिष्टा महोमेघास्तैश्चेद कदनं कृतम् ॥८॥

आतास्ताश्चत्वया गावस्समुत्पाठ्य महीधरम् ।

तेनाह तोपितो वीर कर्मणात्यद्भुतेन ते ॥९॥

साधितं कृष्ण देवानामह मन्ये प्रयोजनम् ।

त्वयायमद्रिप्रवरः करेणैकेन यदघृतः ॥१०॥

गोभिश्च चोदितः कृष्ण त्वत्सकाशमिहागतः ।

त्वया आताभिरत्यर्थं युष्मत्सत्कारकारणात् ॥११॥

सत्वां कृष्णाभिपेक्ष्यामि गवां वाक्यप्रचोदितः ।

उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्व भविष्यसि ॥१२॥

इन्द्र ने कहा—है श्रीकृष्ण ! है कृष्ण ! आपके पास मेरे आने का

कारण सुनिये । हे महाबाहो ! मेरे कथन को अन्यथा न माने ॥६॥ हे अखि-  
लेश्वर ! आप पृथिवी का भार उतारने के लिये इस भूतल पर अवतीर्ण हुए  
हैं ॥७॥ मेरे यज्ञ के नष्ट होने के विरोध में ही मैंने महामघो को गोकुल का नष्ट  
करने के लिये आज्ञा दी थी और इसीलिये उन्होंने यह जल रूप सहार उपस्थित  
किया था ॥८॥ परन्तु, आपने पर्वत को उखाड़ कर गोमो की क्षा की, आपका  
इस अद्भुत पराक्रम को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥९॥ हे कृष्ण ! आपने  
अपने एक ही हाथ पर पर्वत को साथ लिया था । आपके इस कर्म को देखकर  
मैं देवताओं के उद्देश्य को सिद्ध हुआ समझता हूँ ॥१०॥ आपके द्वारा रक्षित  
हुई गोमो की प्रेरणा ने ही आपको विशेष रूप से सम्मानित करने के लिये मैं  
यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥११॥ हे कृष्ण ! गोमो के वचनों से प्रेरित हुआ मैं  
अब आपको उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त करूँगा । अब से आप गोमो के स्वामी  
का 'गोविन्द' नाम भी विख्यात होगा ॥१२॥

अथोपवाह्यादादाय घण्टामैरावताद् गजात् ।  
अभिषेक तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥१३॥  
क्षियमाणोऽभिषेके तु गात्र कृष्णस्य तत्क्षणात् ।  
प्रलबोद्भूतदुग्धार्द्रा सद्यश्चक्रुर्वसुन्धराम् ॥१४॥  
अभिषिच्य गवा वाक्यादुपेन्द्र वै जनार्दनम् ।  
प्रीत्या सप्रश्रय वाक्य पुनराह शचीपति ॥१५॥  
गवामेतत्कृत वाक्य तथाग्यदपि मे शृणु ।  
यद्ब्रवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया ॥१६॥  
ममाश पुरुषव्याघ्र पृथिव्या पृथिवीधर ।  
अवसीर्णोऽजुं ना नाम सरक्ष्यो भवता सदा ॥१७॥  
भारावतरणे साह्य स ते वीर करिष्यति ।  
सरक्षणीयो भवता यथात्मा मधुसूदन ॥१८॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर आपने वाहन ऐरावत का घण्टा लेकर  
इन्द्र ने उभे पवित्र जल से परिपूर्ण किया और उससे श्रीकृष्ण का अभिषेक  
किया ॥१३॥ जिस समय श्रीकृष्ण का अभिषेक हो रहा था, उस समय गोमो

ने भी अपने स्तनो से खचित होने वाले दूध से पृथिवी का मिचन किया ॥१४॥  
 इस प्रकार गोम्रो के बचनानुसार इन्द्र ने श्रीकृष्ण को उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त  
 कर उनमें प्रीतिपूर्वक पुन निवेदन किया ॥१५॥ हे महाभाग ! मैंने तो यह  
 गोम्रो के बचनो का पालन किया है । अब भू-भार-हरण के अभिप्राय से मैं  
 जो कुछ कहता हूँ, उसे भी सुनिये ॥१६॥ हे भूधर ! हे पुरुष व्याघ्र ! अर्जुन  
 नाम से मेरा एक प्रंश पृथिवी पर अवतरित हुआ है, आप उसके सदा रक्षक  
 रहे ॥१७॥ हे मधुसूदन ! भूमि का भार उतारन में वह आपका सहायक होगा,  
 इसलिये जैसे अपने शरीर की रक्षा की जाती है, वैसे ही आप उसकी रक्षा  
 करें ॥१८॥

जानामि भारते वशे जात पार्थ तवाशत ।  
 तमह पालयिष्यामि यावत्स्थास्यामि भूतले ॥१९॥  
 यावन्महीतले शक्र स्थास्याम्यहमरिन्दम ।  
 न तावदर्जुन कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥२०॥  
 कसो नाम महाबाहुर्देवोऽरिष्टस्तथासुर ।  
 केशी कुवलयपीडो नरकाद्यास्तथा परे ॥२१॥  
 हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः ।  
 तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरण कृतम् ॥२२॥  
 स त्व गच्छ न सन्ताप पुत्रार्थे कर्तुं महंसि ।  
 नार्जुनस्य रिपु कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥२३॥  
 अर्जुनार्थे त्वह मर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान् ।  
 निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्ये दास्याम्यविक्षतान् ॥२४॥  
 इत्युक्त सम्परिष्वज्य देवराजो जनार्दनम् ।  
 आरुह्य रावत नाग पुनरेव दिव ययौ ॥२५॥  
 कृष्णो हि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्ब्रजम् ।  
 आजगामाथ गोपीना दृष्टिपूतेन चर्तमेना ॥२६॥

श्री भगवान् ने कहा—मुझे यह ज्ञात है कि पृथा पुत्र अर्जुन तुम्हारे

प्रशंसे से भरतवश में अवनीण हुआ है । जब तक मैं इस भूतल पर रहूँगा, तब

तक उसकी रक्षा बखूँगा ॥१६॥ हे देवेन्द्र ! मेरे पृथिवी पर रहते हुए उस  
अर्जुन को कोई भी मनुष्य सधाम में न हरा सकेगा ॥२०॥ महाबाहु कस,  
अरिष्ट, केशी, कुवलयपीड और नरक आदि असुरों के मारे जाने के पश्चात् इस  
पृथिवी पर महाभारत नामक युद्ध होगा । हे सहस्राक्ष ! उसी युद्ध के द्वारा भू-  
भार उतरा हुआ समझो ॥२१-२२॥ तुम अपने पुत्र अर्जुन के विषय में किसी  
प्रकार की चिन्ता न करते हुए प्रसन्न चित्त से गमन करो, मैं जब तक यहाँ हूँ,  
तब तक अर्जुन का कोई भी शत्रु सफल नहीं होगा ॥२३॥ अर्जुन के निमित्त  
ही मैं महाभारत युद्ध की समाप्ति पर सब पाण्डवों को सकुशल रूप में कुन्ती  
को सौंप दूँगा ॥२४॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण ५ द्वारा इस प्रकार  
कहा जाने पर इन्द्र ने उनका आर्त्तिगन किया और ऐरावत पर चढ़कर अपने  
लोक को गये ॥२५॥ फिर श्रीकृष्ण भी ग्वाल बालको और गौगो को साथ लिये  
प्रजाङ्गनाओं के देखने से पवित्र हुए मार्ग द्वारा ब्रज में लौट आये ॥२६॥

### तेरहवाँ अध्याय

गते शक्ते तु गोपाला कृष्णमविलष्टकारिणम् ।  
ऊबुः प्रोत्या घृत दृष्टा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१॥  
वयमस्मान्महाभाग भगवन्महतो भयात् ।  
गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२॥  
बालक्रीडेयमतुला गोपालत्व जुगुप्सितम् ।  
दिव्य च भवतः कर्म किमेतत्तात वक्ष्यताम् ॥३॥  
कालियो दमितस्तोये धेनुको विनिपातित ।  
धृता गोवर्धनश्चाय शङ्कितानि मनामि न ॥४॥  
सत्य सत्य हरे पादौ शपामोऽमितविक्रम ।  
यथावद्दीर्यमालोक्य न त्वा मन्यामहे नरम् ॥५॥  
प्रीतिः सम्प्रीतुमारस्य ब्रजस्य त्वीय वेंगव ।  
वर्म चेदमशक्य यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥६॥

बालत्वं चातिदीर्यत्वं जन्म चास्मास्वशोभनम् ।

चिन्त्यमानममेयात्मञ्छङ्का कृष्ण प्रयच्छति ॥७

देवो वा दानवो वा त्व यक्षो गन्धर्व एव वा ।

किमस्माक विचारेण बान्धवोऽसि नमोऽस्तु ते ॥८

श्रीपराशरजी ने कहा—जब इन्द्र चले गये, तब निर्दोष कर्म वाले श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण किये जाने के कारण गोपों ने उनसे प्रेम-पूर्वक कहा ॥१॥ हे भगवन् ! हे महभाग ! आपने गिरिराज धारण का जो कर्म किया, उससे हमारी ओर गोमो की महान् भय से रक्षा हुई है ॥२॥ कहाँ यह उपमा रहित बालक्रीडा, वहाँ यह निन्दित गोपत्व और कहाँ यह दिव्य कर्म ? हे तात ! वह क्या मीला है, सो सब हमारे प्रति कहिये ॥३॥ आपने कालियनाग को मर्दन किया, धेनुकासुर का वध किया और फिर इस गिरि गोवर्धन को धारण कर लिया—आपके यह अद्भुत कर्म हमारे मन में शङ्का उत्पन्न कर रहे हैं ॥४॥ हे अभीमित विक्रम वाले ! भगवान् हरि के चरणों को दास्य पूर्वक हम आपसे कहते हैं कि आपके ऐसे सामर्थ्य को देखकर आपको मनुष्य नहीं माना जा सकता ॥५॥ स्त्री—बालको के सहित सभी ब्रजवासी आपको अत्यन्त प्रेम करते हैं । हे केशव ! आपके जैसा कर्म तो देवताओं के लिये भी सम्भव नहीं है ॥६॥ आपका यह बालरूप, यह अत्यन्त दीर्यत्व और हम जैसे अशोभन व्यक्तियों में जन्म,—इन सब बातों पर जब हम विचार करने लगते हैं तब हे अमेयात्मन् ! हम शङ्का में पड़ जाते हैं ॥७॥ आप देवता, दानव, यक्ष अथवा गन्धर्व—काई भी हो, हमें इस पर विचार करने से क्या लाभ है ? हम तो आपको धपना बन्धु ही मानते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है ॥८॥

क्षण भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चत्प्रणयवोपवान् ।

इत्येवमुक्तस्तेर्गोपे कृष्णोऽप्याह महामतिः ॥९

मत्सम्बन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते ।

श्लाघ्यो वाह तत किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०

यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवता यदि ।

तदात्मबन्धुसदृशो बुद्धिर्वः क्रियता मयि ॥११

नाह देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानव ।  
 अह वो वान्धवो जातो नैतच्चिन्त्यमितोज्जया ॥१२॥  
 इति श्रुत्वा हरेर्वक्त्रं वद्धमौनास्ततो वनम् ।  
 ययुर्गोपा महाभाग तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥  
 कृष्णस्तु विमल व्योम क्षण्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् ।  
 तदा कुमुदिनी फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥  
 वनराजि तथा कृजद्भृङ्गमालामनोहराम् ।  
 विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥

श्री पराशरजी ने कहा—गोपो के ऐसा कहन पर कुछ देर तक चुप रहने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने कुछ प्रणयात्मक क्रोध के साथ कहा ॥६॥ श्री भगवान् बोले—हे गोपो ! यदि मुझसे सम्बन्ध होने के कारण आपको किसी प्रकार से लजित न होना पड़ता हो तो मैं आप लोगों की प्रशंसा का पात्र हूँ, ऐसा सोचने में ही क्या प्रयोजन है ॥१०॥ यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं और मुझे प्रशंसा के योग्य समझते हैं तो आप मुझे अपना बन्धु ही मानते रहे ॥११॥ मैं देवता नहीं हूँ, गन्धर्व भी नहीं हूँ, और न यक्ष अथवा दानव ही हूँ । मैं तो आपका बाधव होकर ही उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये इस विषय में अधिक विचार मत करो ॥१२॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् श्रीहरि की बात सुनकर उन्हें प्रणय-क्रोध में भरा देखकर वे सब गोप वन को चले गये ॥१३॥ फिर श्रीकृष्ण ने स्वच्छ आकाश, शरद् कालीन चन्द्रमा की चन्द्रिका, दिशाभो को सुगन्धित करने वाली कुमुदिनी और भीरो की मधुर गुञ्जार वाली मनलएटी की मनोहरता को देखा तो गोपियों के साथ विहार करने की इच्छा की ॥१४-१५॥

विना रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् ।  
 जगो वलपद शौरिस्तारमन्द्रकृतकमम् ॥१६॥  
 रम्य गीतध्वनिं श्रुत्वा सन्त्यज्यावससथास्तदा ।  
 आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्रास्ते मधुसूदन ॥१७॥  
 शनैश्शनैर्गंगो गोपी काचित्तस्य लयानुगम् ।  
 दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसास्मरत् ॥१८॥

काचित्कृष्णेति कृष्णेति प्रोच्य लज्जामुपाययी ।  
 ययी च काचिद्रेमान्वा तत्पाश्वंमविलम्बितम् ॥१६॥  
 काचिच्चावसथस्यान्ते स्थित्वा दृष्ट्वा वहिर्गुंरम् ।  
 तन्मयत्वेन गोविन्द दध्यौ मौलितलोचना ॥२०॥  
 लब्धित्तविमलह्लादक्षीणपुण्यचया तथा ।  
 तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशोपपातका ॥२१॥  
 चिन्तयन्ती जगत्सूति परब्रह्मस्वरूपिणम् ।  
 निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका ॥२२॥  
 गोपीपरिवृतो रात्रि शरच्चन्द्रमनोरमाम् ।  
 मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२३॥

उस समय बलरामजी नहीं थे । अकेले श्रीकृष्ण ही नारियो को प्रिय  
 लगने वाला मधुर और मृदुल गीत उच्च तथा मन्द स्वर में गाने लगे ॥१६॥  
 उनकी उस सुरम्य गीत-लहरी को सुनकर सभी गोपियाँ तुरन्त अपने घरों को  
 त्याग कर भगवान् मधुसूदन के पास जा पहुँची ॥१७॥ वहाँ पहुँच कर उनमें से  
 किमी ने तो उनके स्वर में स्वर मिलाया और किसी ने मन ही मन उनका  
 स्मरण किया ॥१८॥ कोई कृष्ण ! कृष्ण पुकारती हुई लज्जा और संकोच में  
 भर गई और कोई प्रेमोन्माद में भर कर उनके पाश्वं में खड़ी होगई ॥१९॥  
 जिस किसी गोपी ने बाहर गुरुवनो के होने के कारण घर को नहीं छोड़ा, वह  
 वही श्री गोविन्द के ध्यान में तन्मय होगई ॥२०॥ कोई गोपी विश्व कारण एवं  
 ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करते-करते ही मोक्ष को प्राप्त होगई, क्योंकि  
 भगवान् के न मिलने के घोर दुःख से उसके सब पाप तथा उनके विमल आह्लाद  
 से उसके सम्पूर्ण पुरण क्षीण होगये थे ॥२१-२२॥ रासरूप रस के आरम्भ करने  
 की उत्प्रेक्षा वाले श्रीकृष्ण ने गोपियों से आवृत होकर शरद के चन्द्रमा में  
 सुशोभित उस रात्रि को सम्मान प्रदान किया ॥२३॥

गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्त्तयः ।  
 अन्यदेशं गते कृष्णे चैवृन्दावनान्तरम् ॥२४॥

कृष्णो निवद्धहृदया इदमूचु परस्परम् ॥२५॥  
 कृष्णोऽहमेव ललित व्रजाम्यालोक्यता गति ।  
 अन्या ब्रवीति कृष्णस्य मम गीतिर्निश्चयताम् ॥२६॥  
 दुष्टकालिय तिष्ठान् कृष्णोऽहमिति चापरा ।  
 बाहुमास्फोटय कृष्णस्य लीलया सर्वमाददे ॥२७॥  
 अन्या ब्रवीति भो गोपा निश्शङ्कं स्थीयतामिति ।  
 अल वृष्टिभयेनान धृतो गोवर्धनो मया ॥२८॥  
 धेनुकोऽय मया क्षितो विचरन्तु यथेच्छया ।  
 गावो ब्रवीति चैवान्या कृष्णलीलानुसारिणी ॥२९॥  
 एव नानाप्रकारासु कृष्ण चेष्टासु तास्तदा ।  
 गोप्यो व्यग्रा सम चैरु रम्य वृन्दावनान्तरम् ॥३०॥

(उत्त समय, श्रीकृष्ण जब कहीं चले गये, तब कृष्ण चेष्टा के बशीभूत हुई गोपियाँ दल बनाकर वृन्दावन में घूमने लगी ॥२४॥ कृष्ण ने निवद्ध हृदय वाली वे गोपियाँ परस्पर में इस प्रकार कहने लगी ॥२५॥ एक ने कहा—मैं कृष्ण हूँ, मेरी चाल कितनी मुन्दर है, उसे देखो तो सही । इस पर दूसरी ने कहा—कृष्ण तो मैं हूँ, तुम मेरा गीत सुनो ॥२६॥ किसी अन्य गोपी ने ताल ठोक कर कहा—अरे दुष्ट कालियनाग ! मैं कृष्ण हूँ जरा ठहर तो सही—इस प्रकार कह कर यह गोपी श्रीकृष्ण की सब लीलाओं को करने लगी ॥२७॥ हे गोपो ! मैंने गोवर्धन पर्वत उठा लिया है, तुम नि सकोन हो कर इसके नीचे आ बैठो, वृष्टि से भय मत करो ॥२८॥ किसी अन्य गोपी ने कृष्ण लीला का अनुसरण करते हुए कहा—मैंने देनुवासुर का वध कर दिया, अब गोएँ यहाँ स्वच्छन्द विचरण करें ॥२९॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं में नग्न हो गई गोपियाँ उस अत्यन्त रमणीक वृन्दावन में साथ-साथ विचरण करने लगी ॥३०॥ )

विलोक्यैवा भुव प्राह गोपी गोपवराङ्गना ।  
 पुलकाञ्चितमर्वाङ्गी विवासिनयनोत्पला ॥३१॥



ध्वजवज्राङ्कुशाब्जाङ्कुरेरावन्त्यालि पश्यत ।  
 पदान्येतानि कृष्णस्य लीलाललितगामिनः ॥३२॥  
 कापि तेन समायाता कृतपुण्या मदालसा ।  
 पदानि तस्यादर्चतानि घनान्यल्पतनूनि च ॥३३॥  
 पुष्पापचयमत्रोच्चैश्चक्रे दामोदरो ध्रुवम् ।  
 येनाग्राक्रान्तमात्राणि पदान्यत्र महात्मनः ॥३४॥  
 अत्रोपविश्य वं तेन काचित्सुर्परलङ्कृता ।  
 अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितस्तया ॥३५॥  
 पुष्पबन्धनसम्मानकृतमानामपास्य ताम् ।  
 नन्दगोपसुतो यातो मार्गेणानेन पश्यत ॥३६॥  
 अनुयातेनमत्रान्या नितम्बभरमन्थरा ।  
 या गन्तव्ये द्रुत याति निम्नपादाग्रसंस्थितिः ॥३७॥  
 हस्तन्यस्ताग्रहस्तेय तेन याति तथा सखी ।  
 अनायत्तपदन्यासा लक्ष्यते पदपद्धतिः ॥३८॥

विकसित कमल जैसे लोचन वाली एक सुन्दर गोपी ने सर्वाङ्ग पुलकित होकर भूमि की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा ॥३१॥ हे सखी । लीलाललित-गामी श्रीकृष्ण के यह ध्वजा, वज्र, अङ्कुश, कयल आदि रेखाओं वाले चरण चिन्हों को तो देखो ॥३३॥ उनके साथ कोई मदमाती युवती भी गई है, देखो उस पुण्यवती के यह घने, पतले और छोटे पद चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं ॥३३॥ उन्होंने यहाँ कुछ ऊँचे उठ कर पुष्प इकट्ठी किये हैं, इसीलिए यहाँ उनके चरणों का अगला भाग ही दिखाई देता है ॥३४॥ यहाँ किसी सौभाग्यशालिनी की उन्होंने अवश्य ही पुष्पो से सजाया जान पड़ता है कि उसने अपने पूर्वजन्म में भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया होगा ॥३५॥ अरे, यह देखो । पुष्पो से शृङ्गार किये जाने के सम्मान मद में भर कर उसने मान किया है, इसीलिए नन्दलाल उसे यही छोड़कर इस मार्ग से गये दिखाई देते हैं ॥३६॥ हे सखियो । यहाँ नितम्बर भार के कारण मन्द गति वाली कोई गोपी तीव्र गति से श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गई है, इसी कारण उसके पद चिह्नों के अगले भाग कुछ नीचे

हो गए है ॥३७॥ इस स्थान पर सखी अपना हाथ उनके हाथ में देती हुई गई है, इसीलिए उसके पद चिह्न कुछ परतंत्र से दिखाई दे रहे है ॥३८॥

हस्तसंस्पर्शमात्रेण धूर्तनेपा विमानिता ।

नैराश्यान्मन्दगामिन्या निवृत्त लक्ष्यते पदम् ॥३९॥

नूनमुक्तात्वरामीति पुनरेप्यामि तेऽन्तिकम् ।

सेन कृष्णेन येनेपा त्वरिता पदपद्धतिः ॥४०॥

प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते ।

निवर्तध्वं शशाङ्कस्य नैतद्दीधितिगोचरे ॥४१॥

निवृत्तास्तास्तदा गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने ।

यमुनातीरभासाद्य जगुस्तच्चरित तथा ॥४२॥

ततो ददृशुरायान्त विकासिमुखप कजम् ।

गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तार कृष्णमनिलष्टचेष्टितम् ॥४३॥

काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहृषिता ।

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राह नान्यदुदीरयत् ॥४४॥

काचिद्भ्रूभङ्गं कृत्वा ललाटफलक हरिम् ।

विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्या पपी तन्मुखपंकजम् ॥४५॥

काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलित विलोचना ।

तस्यैव रूप ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ॥४६॥

इन पद चिह्नों से ऐसा लगता है कि वह मन्द गति वाली गोपी निराश हो कर लौट पड़ी है, क्योंकि उस धूर्त ने केवल हाथ से स्पर्श करके ही उसका मान भङ्ग कर दिया है ॥३९॥ इस स्थान पर कृष्ण ने उसके पास से सीधे ही जाने और पुनः लौट आने को कहा होगा, क्योंकि कि यहा उसके पद चिह्न द्रुतगति से जाने के दिखाई दे रहे है ॥४०॥ इस स्थान पर उनके चरण चिह्नों के लोप हो जाने से प्रतीत होता है कि यहा से वह गहन वन में प्रविष्ट होगये हैं । अब हम भी यहा से लौट चलें, क्योंकि यहा चन्द्रमा की किरणें भी दिखाई नहीं देनी ॥४१॥ इसके पश्चात् कृष्ण का दर्शन मिलने की आशा को त्याग यहा से लौट पड़ी और यमुनाजी के तीर पर आकर उनके चरित्रो को

गाने सगी ॥४२॥ (फिर उन गोपियों ने प्रसन्न मुग कमल घांसे त्रंसोपर रक्षक  
थेष्ठसर्मा श्रीकृष्ण की घण्टी घोर छाते हृत् देना ॥४३॥ उन ममय उनको  
घाना देग कर बोई सगी तो घायन उल्लाम के बारग केवल कृष्ण । कृष्ण  
ही रह गयी, उगरे मुग मे काई घन्य नाद नही निवन् मने ॥४४॥ कोई  
गोपी घपने धू-भगिमा पुत्त ललाट को मकुषिग करके भगवान् श्रीहरि को  
देगती २ घपने नेत्र रूपी भीरो के द्वारा उगरे मुग मवरकन्द को पीने सगी  
॥४५॥ कोई गृह गोपी उन्हे देग कर अपने नेत्रों को बन्द करती हुई उनके  
चिन्तन मे योगान्द-भी प्रतीत होने लगी ॥४६॥

ततः पान्थिरिप्रयात्तापे पान्थिभ्रूमङ्गयोश्चिनः ।

निन्येऽनुनयमन्या स्य कस्पर्शेन माधव ॥४७॥

ताभिः प्रमन्नचित्ताभिर्गोपीभिस्तह मादरम् ।

ररास रासगोष्टीभिर्द्वारचरितो हरिः ॥४८॥

रासमण्डलघन्धोऽपि कृष्णपादंमनुग्मना ।

गोपीजनेन नैवाभूदेवस्यानन्धिरात्मना ॥४९॥

हस्तेन गृह्य चैकैवा गोपीना राममण्डलम् ।

चकार तत्परस्पर्शनिमीलितदृश हरि ॥५०॥

ततः प्रववृते रासश्चलद्वलयनिस्वन ।

अनुपातशरत्वाय्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥५१॥

कृष्णशरच्चन्द्रमस वीमुदी कुमुदाकरम् ।

जगो गोपीजनस्त्वेक कृष्णनाम पुन पुन ॥५२॥

परिवृत्तिश्चमेषांका चलद्वलयलापिनीम् ।

ददौ बाहुलता स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः ॥५३॥

वाचित्प्रविलमद्बाहु परिरम्य चुचुम्ब तम् ।

गापो गीतस्तुतिव्याजान्निपुणा मधुसूदनम् ॥५४॥

तब श्रीकृष्ण ने किसी से प्रिय भलाप, किसी पर भूमगी से दृष्टिपात  
घोर किसी के कर ग्रहण पूर्वक उन्हे मनाने का यत्न किया ॥४७॥ इसके  
पश्चात् उस उदारचेता ने उन प्रसन्न चित्त वाली गोपियों के साथ आदर पूर्वक

रास-विहार किया ॥४८॥ उस समय कोई भी गोपी कृष्णके स्पर्श से पृथक् नहीं होना चाहती थी, इस लिए एक ही स्थान पर उनके स्थिर रहने से रास-मण्डल न बन पाया ॥४९॥ तब भगवान् श्री हरि ने एक-एक गोपी का हाथ अपने हाथ में लेकर रास मण्डल बनाया, उस समय उनके कर स्पर्श से गोपियों के नेत्र उन्मीलित हो गये ॥५०॥ इसके पश्चात् रासलीला का आरम्भ हुआ, जिसमें ककुणो के हिलने से ऋक्षार होने लगी और शरद् वर्णन के गीत गाये जाने लगे ॥५१॥ उस समय श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा, कौमुदी और कुमुदवन विषयक गीत गाये और गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण के नाम का गान करने लगी ॥५२॥ तभी एक गोपी नाचते-नाचते थक गई और उसने चञ्चल कङ्कण की झनकार करती हुई अपनी बाहुलता भगवान् के कण्ठ में डाल दी ॥५३॥ किसी एक चतुर गोपी श्रीकृष्ण के गीत की प्रशंसा करने के मिस से अपने बाहुओं को पसार कर उनसे लिपट गई ॥५४॥

गोपीरूपोलसश्लेषमभिगम्य हरेर्भुजौ ।

पुलकोद्गमसस्याय स्वेगाम्बुधनता गतौ ॥५५॥

रासगेय जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः ।

साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुण जगुः ॥५६॥

गतेऽनुगमन चक्रुर्धलने सम्मुख ययुः ।

प्रतिलोमानुलोमाभ्या भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥५७॥

स तथा सह गोपीभी ररास मधुसूदन ।

यथाब्दकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाभवत् ॥५८॥

ता वायंमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।

कृष्ण गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥५९॥

सोऽपि कंशोरकवयो मानयन्मधुसूदन ।

रेमे ताभिरमेयात्मा दृषासु दृषिताहितः ॥६०॥

तद्भर्तृषु तथा तामु सर्वभूतेषु चेश्वरः ।

आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्यापी वायुरिव स्थितः ॥६१॥

यथा समस्तभूतेषु नभोजग्नि पृथिवी जलम् ।

वायुश्चात्मा तथैवासी व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥६२

गोपियों के कपोलों को स्पर्श करती हुई, श्रीकृष्ण की भुजाएँ उनमें पुलकावलि रूपी धान्य को उत्पन्न करने के निमित्त स्वेद रूपी मेघ हो गईं ॥५५॥ भगवान् जितने ऊँचे स्वर में रास-गीत का गान करते, उससे द्विगुण उच्च स्वर में गोपियाँ, 'श्रीकृष्ण धन्य हैं' 'श्रीकृष्ण धन्य हैं'—ऐसी रट लगा रही थी ॥५६॥ जब वह आगे जाते तब गोपियाँ उनके पीछे २ चलती और जब वे पीछे लौटते तब वे सामने चलती थीं । इस प्रकार वे गोपाङ्गनाएँ अनुलोम-प्रतिलोम गति से श्रीकृष्ण का अनुगमन कर रही थी ॥५७॥ वे भी उनके साथ इस प्रकार रास क्रीड़ा कर रहे थे, जिसके आनन्द के कारण, उनके बिना गोपियों को एक क्षण करोड़ वर्ष के समान लगता ॥५८॥ वे रास-रस की रसिका गोपियाँ अपने पति, पिता, माता, भ्राता आदि के द्वारा रोकी जाने पर भी न रुकती और रात्रि में कृष्ण के साथ रास-विहार करती थी ॥५९॥ शत्रुओं के मारने वाले मधुसूदन भी अपनी कंशोरावस्था के मान में रात्रिकाल में उन गोपियों के साथ विहार करते थे ॥६०॥ वे ही सर्वव्याप्त श्रीकृष्ण उन गोपियों, उनके पतियों और अन्य सब प्राणियों को आत्म रूप से प्रतिष्ठित थे ॥६१॥ जैसे आकाश, अग्नि, पृथिवी, जल, वायु और आत्मा सभी प्राणियों में व्याप्त हैं, वैसे ही वे भगवान् भी सब में अवस्थित हैं ॥६२॥

### चौदहवाँ अध्याय

प्रदोषाग्रे कदाचित्तु रसासक्ते जनार्दने ।

आसयन्समदो गोष्ठमरिष्टस्समुपागमत् ॥१

सतोयतोयदन्धायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽकंलोचन ।

सुराग्रपातेरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ॥२

लेलिहानस्सनिष्पेपं जिह्वयोष्ठी पुनः पुनः ।  
 सरम्भाविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३॥  
 उदग्रककुदाभोगप्रमाणो दुरतिक्रमः ।  
 विष्णुवत्सितपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारक ॥४॥  
 प्रलम्बकण्ठोऽतिमुखस्तस्मात्ताडिताननः ।  
 पातयन्स गवा गर्भान्दंत्यो वृषभरूपधृक् ॥५॥  
 सूदयस्तापसानुग्रो वनानटाति यस्तदा ॥६॥

श्री पराशरजी ने कहा—जब एक दिन सायंकाल के समय श्रीकृष्ण रास-  
 क्रीड़ा में तन्मग्न हो रहे थे, तब अरिष्ट नामक एक असुर सब की भय से अस्त  
 करता हुआ गोकुल में आ पहुँचा ॥१॥ उसकी सजल भेष के समान कान्ति,  
 अत्यन्त तीक्ष्ण भीम और सूर्य के समान तेजस्वी नेत्र थे तथा वह अपने खुरो  
 के प्रहार में पृथिवी को विदीर्ण करता हुआ भा प्रतीत होता था ॥२॥ वह दात  
 पीतकर बारम्बार अपनी जिह्वा में मोड़ो को चाटता था, उसने क्रोध के कारण  
 अपनी पूँछ को उठा रखा था, तथा उसके कर्णों के बन्धन टूट थे ॥३॥ उसका  
 ककुद और देह अत्यन्त ऊँचा और अपार था, पीछे का भग मूत्र और गोबर में  
 मत्ता हुआ था और सभी गीएँ उससे भयभीत हो रही थी ॥४॥ उसका कण्ठ  
 अत्यन्त लम्बा तथा वृक्ष के खोखले के समान गभीर था । वह दंत्य बेल का रूप  
 धारण करके गौओं के गर्भों को पातित करता और तपस्वियों को सताता हुआ  
 सदा ही वन में घूमता रहता था ॥५-६॥

ततस्तमतिघोराक्षमवेदयातिभयातुरा ।  
 गोपागोपस्त्रियश्चैव कृष्ण कृष्णोति चुक्रुशु ॥७॥  
 सिंहनाद ततश्चक्रे तलशब्द च केशव ।  
 तच्छ्रुत्वावराणाञ्चासी दामोदरमुपाययौ ॥८॥  
 अग्रन्यस्तविपाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षणा ।  
 अभ्यधावत दुष्टात्मा कृष्ण वृषभदानव ॥९॥  
 आयान्त दंत्यवृषभ दृष्ट्वा कृष्णो महाबलः ।  
 न चचाल तदा स्थानादवज्ञास्मितलीलया ॥१०॥

आसन्नं चैव जग्राह ग्रहवन्मधुसूदनः ।  
 जघान जानुना कुक्षौ विपाणग्रहणाचलम् ॥११॥  
 तस्य दर्पबल भङ्ग्वा गृहीतस्य विपाणयोः ।  
 अपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥१२॥  
 उत्पाटय शृङ्गमेकं तु तेनैवात्ताडयत्ततः ।  
 ममार स महादैत्यो मुखान्छ्योणितमुद्धमन् ॥१३॥  
 तुष्टवृन्निहते तस्मिन्दैत्ये गोपा जनादनम् ।  
 जम्भे हते सहस्राक्षं पुरा देवगणा यथा ॥१४॥

उस अत्यन्त घोर नेत्रों वाले दैत्य को देख कर गोप और गोपियाँ  
 'कृष्ण ! कृष्ण' की पुकार मचाने लगी ॥७॥ उनकी पुकार सुन कर भगवान्  
 ने सिंहनाद करते हुए करतल ध्वनि की, जिसे सुनते ही वह दैत्य उनके पास  
 पहुँचा ॥८॥ और श्रीकृष्ण की कुक्षि को ताकता हुआ वह दुरात्मा वृषभासुर  
 सींगों को उनकी और करके दौड़ पड़ा ॥९॥ उस वृषभासुर को अपनी और तेजी  
 से आता देख कर भी श्रीकृष्ण अविचल भाव से उसका तिरस्कार करते हुए  
 मुसकराते रहे ॥१०॥ जब वह उनके समीप आया, तभी उन्होंने उसे इस प्रकार  
 पकड़ लिया, जैसे किसी क्षुद्र जीव को ग्राह पकड़ता है । फिर सींगों को पकड़  
 कर अपने घुटनों से उस दैत्य की कुक्षी में प्रहार किया ॥११॥ इस प्रकार सींग  
 पकड़ कर उस दैत्य को अपने वक्ष में करने वाले भगवान् ने उसके कण्ठ को  
 इस प्रकार मरोड़ दिया, जैसे किसी गीसे बल्ल को निचोड़ते हैं ॥१२॥ फिर  
 उसके एक सींग को उखाड़ कर उसी के द्वारा उस दैत्य पर प्रहार किया, जिस  
 से वह मुख से रांधर डालता हुआ समाप्त हो गया ॥१३॥ प्राचीन काल में जैसे  
 जम्भ का वध करने पर देवताओं ने सहस्राक्ष इन्द्र की स्तुति की थी, वैसे ही  
 इस दैत्य का सहार होने पर गोपगण भगवान् जनादन की स्तुति करने

## पन्द्रहवां अध्याय

ककुद्मति हतेऽरिष्टे धेनुके विनिपातिते ।  
 प्रलम्बे निधन नीते घृते गोवर्धनाचले ॥१॥  
 दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये ।  
 हताया पूतनाया च शकटे परिवर्तिते ॥२॥  
 कसाय नारद प्राह यथावृत्तमनुक्रमात् ।  
 यशोदादेवकी गर्भपरिवृत्त्याद्यशेषत ॥३॥  
 श्रुत्वा तत्सकल कसो नारदाह्वेय दर्शनात् ।  
 वसुदेव प्रति तदा कोप चक्रे सुदुर्मति ॥४॥  
 सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्वयादवससदि ।  
 जगर्ह यादयाश्चैव कार्यं चैतदचिन्तयत् ॥५॥  
 यावन्न बलमारुढी रामकृष्णो सुबालकी ।  
 तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रूढयोवनी ॥६॥

श्री पराशरजी ने कहा—अरिष्ट, धेनुक और प्रलम्ब का निधन, निरि गोवर्धन का धारण, कालियनाग का मदन, दो विशाल वृक्षों का उत्पादन, पूतना का मरण और शकट का पतन आदि अनेक लीलाओं के पूर्ण होने पर नारदजी कस के पास पहुँचे और वहाँ यशोदा और देवकी के गर्भ परिवर्तन से लेकर सब तब का जो कुछ हुआ था वह सब वृत्तान्त उसे आद्योपान्त कह सुनाया ॥१-३॥ देवता जैसे दिखाई दें वागे नारदजी के मुख से इस प्रकार सुनकर कस ने वसुदेवजी पर घपना अत्यन्त रोष प्रकट किया ॥४॥ वह यादवों की निन्दा करके सोचने लगा कि जब तक यह बालक राम और कृष्ण अपने बल से परिपूर्ण नहीं होजाते, तभी तक इनका वध कर डालना चाहिये, अन्यथा युवावस्था को प्राप्त होकर तो यह किसी प्रकार भी न जीते जा सकेंगे ॥४-६॥

चाणूरोऽन महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबल ।  
 एताभ्या मल्लयुद्धेन मारयिष्यामि दुर्मती ॥७॥



धनुर्महमहायोगव्याजेनानीय तौ व्रजात् ।  
 तथा तथा यतिष्यामि मास्येते सङ्क्षय यथा ॥८॥  
 श्वफल्कतनय शूरमक्रूर यदुपुङ्गवम् ।  
 तयोरानयनार्थाय प्रेषयिष्यामि गोकुलम् ॥९॥  
 वृन्दावनचर घोरमादेक्ष्यामि च केशिनम् ।  
 तत्रैवासावतिबलस्तावुभौ घातयिष्यति ॥१०॥  
 गज कुवलयपीडो मत्सकाशमिहागतौ ।  
 घातयिष्यति वा गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ॥११॥  
 इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कसो रामजनार्दनी ।  
 हन्तु कृतमतिर्वीरावक्रूर वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥

महावीरवाद चासुर और अत्यन्त बलवान् मुष्टिक जैसे अपने मल्लों के साथ उन दोनों दुबुँद वाले को भिड़ा कर उनका वध करा दूँगा ॥७॥ उन्हें धनुर्भञ्ज के बहाने से यहाँ बुला कर उन्हें मारने के लिये विविध उपाय करूँगा ॥८॥ उन्हें व्रज से बुला लाने के लिये श्वफल्क पुत्र अक्रूर को गोकुल भेजूँगा ॥९॥ इसके साथ ही वृन्दावन में घूमने वाले अपने घोर असुर केशी को उन्हें वही मार डालने की आज्ञा दूँगा ॥१०॥ अथवा यदि वे दोनों वसुदेव-पुत्र यहाँ तक आ ही पहुँचे तो मेरा कुवलयपीड हाथी ही उन्हें नष्ट कर डालगा ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार निश्चय कर उस दुष्टात्मा कस ने राम-कृष्ण का वध करने की इच्छा से अक्रूरजी को बुला कर कहा ॥१२॥

भो भो दानपते वाक्य क्रियता प्रीतये मम ।  
 इत स्वयानमारुह्य गम्यता नन्दगोकुलम् ॥१३॥  
 वसुदेवसुतो तत्र विष्णोरशसमुद्भवी ।  
 नाशाय किल सम्भूतो मम दुष्टो प्रवर्द्धत ॥१४॥  
 धनुर्महो ममाप्यत्र चतुर्दश्या भविष्यति ।  
 आनेयो भवता गत्वा मल्लयुद्धाय तत्र तौ ॥१५॥  
 चासुरमुष्टिको मल्लो त्रिगुहकुशलो मम ।  
 ताम्या सहानयोर्युद्ध सर्वलोकोऽय पश्यतु ॥१६॥

गज कृवलयापीडो महामात्रप्रचोदित ।

स वा हनिष्यते पापी वसुदेवात्मजी शिशु ॥१७

तो हत्वा वसुदेव च नन्दगोप च दुर्मतिम् ।

हनिष्ये पितर चैनमुग्रसेन सुदुर्मतिम् ॥१८

ततस्समस्तगोपाना गोधानान्यखितान्यहम् ।

वित्त चापहरिष्यामि दुष्टाना मद्वधेपिणाम् ॥१९

काम ने कहा—हे दानपते । आप मेरी प्रसन्नता के लिये यह कार्य करिये

कि रथ पर आनन्द होकर गोकुल के लिये प्रस्थान कीजिये ॥१३॥ वहाँ वसुदेवजी

द्वारा उत्पन्न विष्णु-अक्ष रूप दो दुष्ट बालक मुझे मारने के लिये ही वहाँ पल रहे

हैं । १४॥ भरे वहाँ आगामी चतुर्दशी के दिन ही धनुर्यज्ञ महोत्सव होने को है,

इसलिये आप उन्हे मल्ल युद्ध के लिये यहाँ लिवा लाइये ॥१५॥ मेरे चाणूर

और मुष्टिक नामक दो मल्ल यह युद्ध में अत्यन्त चतुर हैं, इनका उन दोनों के

माथ जो टुट्ट युद्ध हो, उते सभी लोग यहाँ आकर देखें ॥१६॥ अथवा महापति

की प्रेरणा से मैं वसुदेवलायपीड हाथी ही उन दोनों पापी वसुदेव पुत्रों को मार

हालंगा ॥१७॥ इस प्रकार उन दुष्टों को मरवा कर इस दुर्बुद्धि वामुदेव, नन्द

तथा वसुद्धि बाले अपने पिता उग्रसेन का भी वध कर दूँगा ॥१८॥ फिर मेरे

वध की कामना का न इन सब दुष्ट गोपों के सम्पूर्ण गयादि धनों का भी हरण

कर लूँगा ॥१९॥

स्वामृते मादवाच्यंते द्विपो दानपते मम ।

एतेषा च यथायाह यनिष्येऽनुममात्तत ॥२०

तदा निष्पष्टन सर्व गज्यमेनदयादवम् ।

प्रमाधिष्ये स्वया तस्मान्मत्प्रीत्यै वीर गम्यनाम् ॥२१

यथा च माहिष मपिरंधि पाप्पुपटायं वं ।

गोपाग्नमानयन्वागु तथा वाचगान्त्वया च ते ॥२२

इत्याजमन्दाक्रूरो महाभागवनो द्विज ।

प्रीतिमानभवत्पुण श्री द्रुपामोनि मत्वर ॥२३

तथेत्युक्त्वा च राजान रथमारुह्य शोभनम् ।

निश्चक्राम ततः पुर्या मधुराया मधृप्रियः ॥२४॥

हे दानपते ! आपके अतिरिक्त ये सभी यादव मुझसे द्वेष भाव रखते हैं, इसलिये मैं इन सभी को मार डालने का प्रयत्न करूँगा ॥२०॥ फिर आपको माथ लेकर इस यादव-विहीन राज्य का निष्कटक रूप से उपभोग करूँगा । अब आप मेरी प्रसन्नता के लिये शीघ्र ही गमन कीजिये ॥२१॥ आप गोकुल में जाकर उन गोपों से इस प्रकार बातें करे, जिससे वे भैंस के घी और दही आदि उपहारों को लेकर शीघ्र ही यहाँ चले आवें ॥२२॥ श्री पराशरजी ने कहा— कस की आज्ञा सुनकर 'कल श्रीकृष्ण के दर्शन करूँगा' ऐसा सोच कर महा भागवत अकूरजी प्रसन्न हुए ॥२३॥ और राजा कस से 'जो आज्ञा' कह कर श्रेष्ठ रथ पर आरोहण हुए और मधुरा नगरी से बाहर की ओर चल दिये ॥२४॥

### सोलहवाँ अध्याय

केशी चापि बलोदग्रः कसदूतप्रचोदितः ।

कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥१॥

स खुरक्षतभूपृष्ठस्तटाक्षेपधुताम्बुदः ।

द्रुतविक्रान्तचन्द्राकमार्गो गोपानुपाद्वत् ॥२॥

तस्य ह्येपितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः ।

गोप्पञ्च भयसविम्ना गोविन्दं शरणां ययुः ॥३॥

ग्राहि ग्राहीति गोविन्दः श्रुत्वा तेषा ततो वचः

सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥४॥

अल त्रासेन गोपाला केशिन किं भयातुरैः ।

भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥५॥

किमनेनाल्पसारेण ह्येपिताटोपवारिणा ।

दैतेयवलवाह्येन वल्गता दुष्टवाजिना ॥६॥

एहो हि दुष्ट कृष्णोऽहं पूज्यास्त्विव पिनाकधृक्  
पातयिष्यामि दशनान्वदनादखिलास्तव ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—इधर कस के दून ने महाबली कशा का कृष्ण की हत्या करने के लिये भेजा, जो इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये वृन्दावन में जा पहुँचा ॥१॥ यह अपने खुगों के द्वारा भूतल की कुरेदता, पठ के द्वारा सब की छिन्न-भिन्न करता और अत्यन्त वेग से सूर्य चन्द्रमा के मार्ग की लंघता हुआ गोपों की ओर दौड़ पड़ा ॥२॥ उस छोटे के रूप वाले दैत्य की हिनहिनाहट को सुनकर डरे हुए सब गोप-गोपियाँ भगवान् की दृग्गण में गयी ॥३॥ उनके 'रक्षा करो, रक्षा करो' पुकारने पर जलयुक्त बादल के समान गर्जन युक्त वाणी में श्रीकृष्ण ने कहा ॥४॥ हे गोपगण ! इस केशी में प्राप भतभीत न हो, आपने गोपजाति के होकर भी इस प्रकार डर कर अपने बीरोचित पुरुषार्थ की पत्नी त्याग दिया है ? ॥५॥ (यह अल्प बल वाला हिनहिनाहट से घातकित करने और नाचने वाला तथा दैत्यो के लिये बल प्रवक चढ़ने के लिये बाहुन रूप यह भद्र आपका क्या अनिष्ट कर सकता है ? ॥६॥) फिर उन्होंने केशी को सल-कारा—घरे दुष्ट ! तू इधर आ । जैसे धनुर्धारी वीरभद्र ने पूर्ण के दाँत तोड़ दिये थे वैसे ही मैं कृष्ण तारे गभी दाँत उग्राड फेंकूँगा ॥७॥

इत्युपतवास्फोट्य गोविन्द केशिनस्तन्मुख ययौ ।

विवृतास्यश्च सोऽप्येन दैतेयाश्च उपाद्रवत् ॥८

बाहुमाभोगिन कृत्वा मुखे तस्य जनार्दन ।

प्रवेशयामास तदा केशिना दुष्टवाजिन ॥९

केशिनो वदने तेन विशता कृष्णबाहुना ।

पातिता दशना पेतु मिताभावयवा इव ॥१०

कृष्णस्य वक्रे बाहु केशिदेहगतो द्विज ।

विनाशाय यथा व्याधिगसम्भूतेररक्षित ॥११

विपाटितोऽपि बहुल मपेन रुधिर वमन् ।

सोऽक्षिणी विवृते चक्रे निनिष्टे मृत्तज्जघने ॥१२

जघान धरणी पार्दशकृन्मूत्र समुत्सृजन् ।  
 स्वेदाद्रं गात्रशान्तश्च निर्यत्नम्मोऽभवत्तदा ॥१३॥  
 व्यादितास्यमहारन्ध्रम्मोऽमुर कृष्णवाहना ।  
 निपातितो द्विधा भूमौ वंद्युतेन यथा द्रुम ॥१४॥  
 द्विपादे पृष्ठपुच्छादे श्वरणाक्षिनासिके ।  
 केशिनस्ते द्विधाभूते शकले द्वे विरेजतु ॥१५॥

पह वह कर श्रीकृष्ण ने उछन कर केसी का सामना किया और मश्व  
 रूप वाला वह दैत्य भी मुख खोल कर उन पर झपटा ॥१३॥ तब श्रीकृष्ण ने  
 अपनी भुजा फैला कर दुष्ट के मुख में घुसा दी ॥१४॥ जैसे ही उमके मुख में  
 उनकी भुजा प्रविष्ट हुई, वैसे ही उमसे टकराकर उम दैत्य के मथ दाँत श्वेत मेघ  
 पण्डो के समान टूट कर पृथिवी पर आ गिरे ॥१०॥ हे द्विज ! जैसे उत्पन्न  
 होते ही रोग की चिकित्सा न होने पर उसकी वृद्धि होती रहती है, वैसे ही  
 केसी के मुख में घुसी हुई भगवार् की भुजा वृद्धि को प्राप्त होन लगी ॥११॥  
 अन्त में उमका मुख फट गया और वह फेनयुक्त रक्त जलटने लगा । तभी स्नायु  
 बधनों के शिथिल होने से उसके नेत्रों की ज्योति भी नष्ट होगई ॥१२॥ तब वह  
 मल-मूत्र को त्यागता हुआ अपने पाँवों को पटकने लगा, उसका देह स्वेद से शीतल  
 हो गया और उमने सूच्छा पा गई ॥१३॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण की भुजा से  
 फैलाये गये मुख के विशाल रन्ध्र के फटने में ध्वजपात से पतित हुए वृक्ष के  
 समान दो टुक होकर वह असुर धरती पर लेट गया ॥१४॥ केसी के देह के  
 दोनो टुकड़े दो पाँव, एक कान, एक नेत्र, आधी पीठ, आधी पूँछ और एक  
 नासिका छिद्र के साथ जोभा पाने लगे ॥१५॥

हत्वा तु केशिन कृष्णो गोपालैर्मुदितैवृत ।  
 अनायस्ततनुस्त्वम्यो हसस्तत्रैव तम्यिवान् ॥१६॥  
 ततो गोप्यश्च निहतो केशिनि स्वति विस्मिता ।  
 तुण्डवु पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥१७॥  
 अथाहान्तर्हितो विप्र नारदो जलदे म्यित ।  
 केशिन निहत दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानस ॥१८॥

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत ।

निहतोऽयत्त्वया केशी क्लेशदस्त्रिदिवीकसाम् ॥१६

युद्धोत्सुकोऽहमन्तर्धं नरवाजिमहाह्वम् ।

अभूतपूर्वमित्यत्र द्रष्टु स्वर्गादिहागत ॥२०

कर्माण्यत्रावतारे च ते कृतानि मधुसूदन ।

यानि तैर्विस्मित चेतस्तोपमेतेन मे गतम् ॥२१

इस प्रकार केशी-वध से प्रसन्न हुए ग्वाल स घिरे हुए श्रीकृष्ण बिना किसी प्रकार की थकान के स्वस्थ मन से खड़े हुए हँसते रहे ॥१६॥ उस समय केशी के मारे जाने से आश्चर्य को प्राप्त हुए गोप-गोपियो ने उन कमल नयन एवं मनोरम भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥१७॥ उस राक्षस को मरा हुआ देख कर बादलो की छाड़ में छिप कर खड़े हुए नारदजी ने अत्यन्त हर्ष पूर्वक उनसे कहा ॥१८॥ हे जगन्नाथ ! हे अच्युत ! आप धन्य हैं । आपने देवताओं को सतप्त करने वाले इस केशी को खेल-खेल में ही मार डाला ॥१९॥ मैंने मनुष्य और घोड़े का युद्ध पहिले कभी नहीं देखा था, उसी को देखने के लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥२०॥ हे मधुसूदन ! आपके द्वारा इस अश्वतार में किये जाने वाले कर्मों को देखकर मेरा मन अत्यन्त आश्चर्य चकित और प्रसन्न हो रहा है ॥२१॥

तुरङ्गस्यास्य शक्रोऽपि वृष्ण देवाश्च विम्यति ।

धृतकैसरजालस्य ह्येपतोऽभ्रावलोकिन ॥२२

यस्मात्स्वयंप दुष्टात्मा हत केशी जनार्दन ।

तस्मात्पेशवनाम्नः त्व लोके ह्यातो भविष्यसि ॥२३

स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कसयुद्धेऽधुना पुन ।

परश्चाऽहं समेप्यामि त्वया केशिनिपूदन ॥२४

उग्रसेनसुते वसे सानुगे विनपातिते ।

भारावतारकर्ता त्व पृथिव्या पृथिवीधर ॥२५

तत्रानेकप्रकाराणि युद्धानि पृथिवीक्षिताम् ।

द्रष्टव्यानि मया युद्ध त्वत्प्रणीतानि जनार्दन ॥२६

मोक्षं प्राप्नुयामि मोक्षिन् देवतां मे प्राप्नुयाम् ।

स्वयेन विहितं सर्वं स्वयं सेतुं श्रुताम्यहम् ॥२७॥

नारदे तु मने वृष्णम्यहं गोपेभ्यमभिहितम् ।

विषेन गोमुखं गोपीनेवसानं च भाजनम् ॥२८॥

हे वृष्ण ! आपने धर्मों को पढ़कर अपने धर्म विहितता का पता लगा री धर्म देखने मात्र हम आप से इच्छा कि सब देवता भक्तभीत होने दें ॥२७॥ हे जनाशन ! आपने हम दुष्ट केशी का बंध बिछा है, इन्द्रियों का 'देहब' बंध तोड़ने ॥२८॥ हे केशी के भागने का प्रभो ! आपकी कृपा हो, अब मैं जा रहा हूँ, अब आपका बंध के नाम जो मुक्त होगा, उसे देने के लिए पुनः उपस्थित हूँगा ॥२९॥ हे भूधर ! आप उपनेन-पुनः का जो उपरं चतुर्धाविषो गतिं मार कर भू-धार का हस्त करेगा ॥३०॥ उम समय मैं भी वहाँ अपने-प्राप्तियों के साथ आप धर्मिणां पुत्र के मुक्त-वर्तमानों को देखूँगा ॥३१॥ हे मोक्षिन् ! मैं अब जा रहा हूँ । आपने देवताओं का धर्म महत्त्व पूर्ण कार्य-प्राप्त किया है । आप सर्वज्ञाता हैं, आपका ब्रह्माण्ड हो ॥३२॥ फिर नारदजी के आने पर गोपों के द्वारा सम्मानित धर्म गोविन्दों के मन्त्रों के लिये एक मात्र पान करने योग्य श्रीवृष्ण गोपों के गति गोमुख में प्रविष्ट हुए ॥३३॥

### मन्त्रद्वयं अध्याय

अक्रूरेऽपि विनिध्यम्य स्यन्दनेनाशुगामिना ।

वृष्णसदृशं नावाङ्क्षति प्रमयो नन्दगोमुखम् ॥१॥

चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया ।

योऽहमशावतीणस्य मुखं द्रष्टुमिच्छामि धर्मिणः ॥२॥

अथ मे सफलं जन्म सुप्रभाताभवन्निशा ।

यदुन्निद्राभपन्नास विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३॥

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं सङ्कल्पनामयम् ।

तत्पुण्डरीकनयनं त्रिणोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥४॥

विनिर्जग्मुयंतो वेदा वेदाङ्गात्यखिलानि च ।  
 द्रक्ष्यामि तत्पर धाम धाम्नां भगवतो मुग्धम् ॥५॥  
 यज्ञेषु यज्ञपुरुष. पुरुषं पुरुषोत्तम. ।  
 इज्यते योऽखिलाधारस्त द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥  
 इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञाना शतेनामरराजताम् ।  
 अवाप तमनन्तादिमह द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—इधर मधुरा पुरी से बाहर निकलते हुए  
 अक्षरजी अपने शीघ्रगामी रथ के द्वारा श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से मन्दजी  
 के गोकुल को चले ॥१॥ उस समय अक्षरजी विचार करने लगे कि आज मैं  
 चक्रधारी भगवान् विष्णु के अंश रूप परमेश्वर का अपने नेत्रों से दर्शन करूँगा,  
 इसलिये मेरे समान भाग्यशाली कोई नहीं है ॥२॥ आज मेरा जन्म सफल हो  
 गया है, यह रात्रि अवश्य ही श्रेष्ठ प्रातःकाल वाली है, जिसके कारण मैं उन  
 विवर्तित पद्म के से नयन भगवान् के मुख को देखूँगा ॥३॥ भगवान् के जिस  
 सकल्पात्मक मुख कमल के स्मरण मात्र से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी  
 का मैं आज दर्शन करूँगा ॥४॥ सभी तेजस्वियों के परम आश्रय रूप जिन  
 मुखारविन्द से वेद-वेदाङ्ग उत्पन्न हुए हैं आज मैं उन्हीं मुख का देखूँगा ॥५॥  
 सभी पुरुष जिन यज्ञ पुरुष को यज्ञानुष्ठानों में यजन किया करते हैं, उन्हीं विश्वा-  
 श्रय विश्वेश्वर का आज मैं दर्शन करूँगा ॥६॥ जिनका सौ बार यजन करके  
 ही इन्द्र को देवराज-पद की प्राप्ति हुई है, उन्हीं अनादि पुरुष अनन्त भगवान् का  
 मैं दर्शन करूँगा ॥७॥

न श्रद्धा नेन्द्ररुद्राश्विर्वस्वादित्यमरुद्गणा ।  
 यस्य स्वरूप जानन्ति प्रत्यक्ष याति मे हरि. ॥८॥  
 सर्वात्मा सर्ववित्सर्वस्सर्वभूतेष्ववस्थित. ।  
 यो ह्यचिन्त्योऽयमयो व्यापो स वक्ष्यति मया सह ॥९॥  
 मत्स्यकूर्मंवराहार्धसहस्ररूपादिभिः स्थितिम् ।  
 चकार जगतो योजःसोऽद्य भा प्रलपिष्यति ॥१०॥



साम्प्रत च जगत्स्वामी कार्यमात्महृदि स्थितम् ।

कर्तुं मनुष्यता प्राप्तस्वेन्द्रादेहधृगव्यय ॥११॥

योऽनन्तः पृथिवी धत्ते शेखरस्थितिसस्थिताम् ।

सोऽवतीर्णो जगत्पर्ये मामक्रूरेति वक्ष्यति ॥१२॥

पितृपुत्रसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम् ।

यन्माया नालमुत्ततुं जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३॥

तरत्यविद्या वितता हृदि यस्मिन्निवेशिते ।

योगमायाममेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४॥

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य और मरुद्गण भी जिनके स्वरूप को नहीं जानत, वे ही श्रीहृदि मेरे नयनों के समक्ष प्रत्यक्ष होंगे ॥८॥

जो सर्वव्यापक भगवान् सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वरूप, सर्वभूतो मे अवस्थित, अचिन्त्य और अव्यय स्वरूप है, वे आज साक्षात् रूप में मुझसे सम्भाषण करेंगे ॥९॥

जिन अजन्मा प्रभु न मत्स्य, वृषभ, वराह, हयग्रीव, नृसिंह आदि रूपों में ससार की रक्षा की, आज वे ही भगवान् मेरे साथ बातें करेंगे ॥१०॥ उन अव्ययात्मना

जगत्स्वामी ने अपन इच्छित कार्य की पूर्ति के लिये ही मनुष्य रूप में अवतार लिया है ॥११॥ अपन शिर पर पृथिवी को धारण करने वाले अनन्त भगवान्

ने जगत्-रत्याण के लिये पृथिवी पर जन्म धारण किया है, वे ही आज मुझे अक्रूर कह कर वार्तालाप करेंगे ॥१२॥ पिता, पुत्र, सुहृद्, भ्राता, माता और

बन्धु रूप वाली माया के जो स्वामी हैं, उनका नमस्कार, नमस्कार है ॥१३॥ जिनमें वित्तवृत्ति लगा देने में इस योगमाया रूपी घोर अविद्या को लाघा जा

सकता है, उन विद्या रूप प्रभु को नमस्कार है ॥१४॥

यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतै ।

वेदान्तवेदिभिर्विष्णु प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५॥

यथा यत्र जगद्वाग्निं धातयैतत्प्रतिष्ठितम् ।

सदसत्तेन सत्येन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६॥

स्मृते सकलकल्याणभाजन यत्र जायते ।

पुरुषस्तमज नित्य ब्रजामि शरण हरिम् ॥१७॥

इत्थ सञ्चिन्तयन्विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानसः ।  
 अक्रूरो गोकुलं प्राप्त किञ्चित्सूर्ये विराजति ॥१७॥  
 स ददर्श तदा कृष्णमादावादोहने गवाम् ।  
 वत्समध्यगत फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१८॥  
 प्रफुल्लपद्मपत्राक्ष श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।  
 प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोर-स्थलमुन्नतम् ॥२०॥  
 सविलासस्मिताधारं विभ्राण मुखपङ्कजम् ।  
 तुङ्गरक्तनख पद्म्या धरण्या सुप्रतिष्ठितम् ॥२१॥

याज्ञिक जिन्हें यज्ञ पुष्प, सात्वत जिन्हें वासुदेव और वेदान्त के जानने वाले जिन्हें विष्णु पहकर पुकारते हैं, उनको मेरा नमस्कार है ॥१५॥ जिस सत्य के बल से यह सत्-प्रमत् रूप विश्व उसी विश्वाधार में अवस्थित है, उसी के द्वारा वे मेरे प्रति सौम्य हो ॥१६॥ जिनका स्मरण करने से ही मनुष्य कल्याण भाजन हो जाता है, उन्हीं भजन्मा भगवान् हरि की शरण में, मैं जाता हूँ ॥१७॥ श्री पराशर जी ने कहा—भक्ति से विनम्रता को प्राप्त हुए अक्रूरजी इस प्रकार भगवान् विष्णु का हृदय में चिन्तन करते-करते, सूर्य के घटन होने से कुछ पहिले ही गोकुल में जा पहुँचे ॥१८॥ वहाँ पहुँचने पर उन्हें विकसित नीलोत्पल जैसी कान्ति वाले श्रीकृष्ण गोआ क दोहन-स्थान में बछड़ों के मध्य स्थित दिखाई दिये ॥१९॥ उनके विवसित कमल जैसे नेत्र थे । लम्बी भुजाएँ, श्रीवत्सावित हृदय, विताल और उन्नत वक्षस्थल तथा ऊँची नाभिका थी ॥२०॥ जो सविलास मुसवान युक्त मनोहर मुखपद्म में सुशोभित हो रहे थे तथा जो लाल बरंग के नखों वाले ऊँचे चरणों से पृथिवी पर प्रतिष्ठित थे ॥२१॥

विभ्राण वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम् ।  
 सेन्दुनीलाचलाभ त सिताम्भोजावतसकम् ॥२२॥  
 हसमुन्दन्दुधवल नीलाम्बरधर द्विज ।  
 तस्यानु वलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३॥  
 प्रागुमुत्तुङ्गबाह्वं स विकासिमुखपङ्कजम् ।  
 मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४॥

तो दृष्ट्वा विकसद्वक्षत्रमरोजः स महामतिः ।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाक्रूरोऽभवन्मुने ॥२५॥

तदेतत्परम धाम तदेतत्परमं पदम् ।

भगवद्वासुदेवाशो द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥२६॥

साफल्यमक्षणोर्गुणमेतदत्र दृष्टे जगद्धातरि यातमुच्चैः ।

अप्यङ्गमेतद्भूगवत्प्रसादात्तदङ्गसङ्गे फलवन्मम स्यात् ॥२७॥

जो नीलाम्बर और वन के पुष्पो से सुशोभित थे तथा जिनका इसका शरीर श्वेत कमल के भलसुन्दारों से सुसज्जित हुआ नीलाचल जैसा प्रतीत हो रहा था ॥२५॥ हे द्विज ! उन्हीं के पीछे हम, सुन्द भधवा चन्द्रमा जैसे गौर वर्ण वाले तथा नीलाम्बर धारण किये हुए बलरामजी दिखाई दिये ॥२६॥ जो विशाल बाहुएँ, उन्नत बन्धे और विरसित मुख कमल से सुशोभित हुए मेघमाला से घिरे हुए द्वितीय कैलास पर्वत जैसे प्रतीत होते थे ॥२७॥ हे मुने ! मद्रामनि अक्रूरजी ने उन बालकों को जैसे ही देखा, वैसे ही उनका सुन्दारविन्द खिल उठा और उनका सम्पूर्ण देह पुलकित होने लगा ॥२८॥ उन्होंने सोचा कि इन दो स्वरूपों में प्रकट हुआ भगवान् वासुदेव का अंश ही परमधाम तथा परम पद है ॥२९॥ संसार को उत्पन्न करने वाले इन बालकों के दर्शन से प्राज्ञ मेरे दोनों नेत्र सफल होगये, परन्तु क्या मैं इनके अङ्ग-अङ्ग के लाभ से भी धन्य हो सकूँगा ? ॥३०॥

अप्येप पृष्ठे मम हस्तपद्मं करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः ।

यस्याङ्गुलिस्पर्शहृताखिलायं रवाप्यते सिद्धिरपास्तदोषा ॥३१॥

येनाग्निविद्युद्रविरश्मिमाला करालमत्युग्रमपेतचक्रम् ।

चक्रं धनता देत्यपतेहृतानि दैत्याङ्गनानां नयनाञ्जनानि ॥३२॥

यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्मनोशा नवाप भोगान्वसुधातलस्थः ।

तथामरत्व त्रिदशाधिपत्व मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम् ॥३३॥

अप्येप मां कंसपरिश्रहेण दोषास्पदीभूतमदोषदुष्टम् ।

कर्तावमानोपहत धिगस्तु तञ्जन्म यत्साधुबहिष्कृतस्य ॥३४॥

ज्ञानात्मकस्यामलसत्त्वरशिरोरपेतदोषस्य सदा स्फुटस्य ।

किं वा जगत्पत्र समस्तं सा मज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ३२

तस्मादहं भक्तिविनम्रचेता ब्रजामि सर्वेश्वरभीश्वराणाम् ।

अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य ह्यनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३॥

जिनकी अँगुली का स्पर्श होने से ही सब पापों से शुन्य हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं, क्या वे अनन्त भूति धरने पर कमल की मेरी पीठ पर फेरेंगे ? ॥२८॥ जिन्होंने अपने अग्नि, विद्युत् और मादित्य की रश्मि माला के समान उग्र धक्र के प्रहार से दैत्यराज की सेना का सहार कर दैत्याङ्गनाभों के मयनाञ्जन को बहा दिया था ॥२९॥ जिन्हे एक जल-विन्दु देकर ही राजा बलि ने इस भूतल पर मनोज्ञ भोगों को प्राप्त कर एक मन्वन्तर पर्यन्त शत्रु-विहीन अमर इद्र पद का उपभोग किया था ॥३०॥ क्या वे भगवाद् मुक्त बोध-रहित को कस के साथ रहने के कारण दोषी मानकर मेरा तिरस्कार करेंगे ? यदि ऐसा हो तो साधु-जन द्वारा बहिष्कृत होने वाले मेरे जन्म को धिक्कार है ॥३१॥ जगत् ने ऐसा कौन-सा विषय है जिस के न जानते हो क्योंकि ये तो ज्ञानरूप, निर्दोष, सत्त्वरशि, नित्यप्रकाश और सब जीवों के हृदयों में स्थित रहते हैं ॥३२॥ इसलिये मैं भक्ति-भाव पूर्वक उन ईश्वरों के भी ईश्वर, अनादि, अमध्य और अनन्त पुरुषोत्तम के अंशावतार की शरण को प्राप्त होता हूँ ॥३३॥

### अठारवाँ अध्याय

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव ।

अक्रूरोऽस्मीति चरणौ ननाम शिरसा हरः ॥१॥

सोऽप्येन ध्वजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना ।

सप्तृश्याकृत्य च प्रीत्या मुगाढ परिपम्बजे ॥२॥

कृतसुबन्दी तेन ययावद्वलकेगवो ।

ततः प्रविष्टो सहृष्टो तमादायात्ममन्दिरम् ॥३॥

सह ताम्यां तदाक्रूर. कृतसवन्दनादिकः ।  
 भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचक्षे ततस्तयोः ॥४  
 यथा निर्भर्त्सितस्तेन कंसेनानकदुन्दुभिः ।  
 यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥५  
 उग्रसेने यथा कसस्स दुरात्मा च वर्त्तते ।  
 यं चैवार्थं समुद्दिश्य कसेन तु विसर्जितः ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—यादव अक्रूरजी इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्री गोविन्द के पास गये और उनके चरणों में मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए बोले कि “मैं अक्रूर हूँ” ॥१॥ तब श्रीकृष्ण ने भी उन्हें अपने ध्वजा, वज्र, पद्म, चिह्न वाले हाथों से स्पर्श किया और प्रेम सहित अपनी ओर खींचकर दृढ़ आलिंगन किया ॥२॥ फिर अक्रूर द्वारा वन्दित हुए बलराम और कृष्ण अत्यन्त आनन्द पूर्वक उनके साथ अपने घर आये ॥३॥ तब अक्रूर का वहाँ सत्कार हुआ और उन्हें भोजनादि कराया गया । तदनन्तर अक्रूर ने उन्हें कस का वसु-देव-देवकी को फटकारने अपने पिता उग्रसेनजी को सताने तथा अक्रूर को वृन्दावन भेजने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ॥४-६॥

तत्सर्वं दिस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्देवकीसुतः ।  
 उवाचाखिलमप्येतज्ज्ञातं दानपते मया ॥७  
 करिष्ये तन्महाभाग यदत्रोपयिक मतम् ।  
 विचिन्त्य नान्यथैतत्ते विद्धि कस हत मया ॥८  
 अहं रामश्च मथुरा श्रो यास्यावस्सह त्वया ।  
 गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति ह्यादायोपायन बहु ॥९  
 निशेय नीयतां वीर न चिन्ता कर्तुं महींस ।  
 त्रिरात्राम्यन्तरे कसं निहनिष्यामि सानुगम् ॥१०  
 समादिश्य ततो गोपानक्रूरोऽपि च केशव ।  
 सुध्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे ततः ॥११  
 ततः प्रभाते विमले कृष्णरामौ महाद्युतौ ।  
 अक्रूरेण समं गन्तुमुद्यतो मथुरा पुरीम् ॥१२

दृष्ट्वा गोपीजनम्मास्र. श्लथद्वलयबाहुक ।

नि.शश्वासातिदु स्नात्तं प्राह चेद परस्परम् ॥१३

उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ने अक्रूर से कहा—  
हे दानपते ! मुझे यह सब बाते ज्ञात हो चुकी है ॥७॥ हे महाभाग ! अब जो  
मैं ठीक समझूँगा, वह बरूँगा । तुम कस को मेरे द्वाग मारा गया ही समझो,  
इसमें कुछ अन्यथा नहीं है ॥८॥ मैं और बलरामजी तुम्हारे साथ बल ही मथुरा  
चलेगे तथा अन्य वृद्ध गोपगण भी बहुत सा उपहार लेकर वहाँ जायेंगे ॥९॥  
हे वीर ! आप चिन्ता को छोड़ कर सुख से रात्रि बिथाम करिये । मैं वस को  
उसके अनुगामियों के सहित तीन रात में ही नष्ट कर दूँगा ॥१०॥ श्री परा-  
शर जी ने कहा—अक्रूर, केशव और बलरामजी ने अभी गोशे को कस का  
आदेश सुनाया और नन्द भवन में जाकर शयन करने लगे ॥११॥ फिर प्रातः-  
काल होने पर महातेजस्वी बलराम और कृष्ण अक्रूरजी के साथ मथुरा जाने  
को उद्यत हुए तब डील दूग बकण वाली गोपियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रों से दु स्नात्त होती  
हुई शीघ्र श्वास छोड़ती लगी और परस्पर में बोली ॥१२-१३॥

मथुरा प्राप्य गोविन्द कथं गोकुलमेध्यति ।

नगरस्त्रीकलालापमधु श्रात्रेण पाम्यति ॥१४

विलासवाक्यपानेषु नागरीणां कृतास्पदम् ।

चित्तमस्य कथं भूया ग्राम्यगोपीषु यास्यति ॥१५

सार समस्तगोष्ठस्य विविना हरता हग्निम् ।

प्रहृत गोपयोपित्सु निर्घृणेन दुरात्मना ॥१६

भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति ।

नागरीणामतीवन्तत्कटाक्षेक्षितमेव च ॥१७

ग्राम्यो हरिग्य तासां विलासनिगडंयुत ।

भवतीनां पुनः पार्श्वं कथा युक्त्या समेध्यति ॥१८

एतैरथमारुह्य मथुरा याति नेशव ।

क्रूरेणाक्रूरकेणान्न निर्घृणन प्रतारित ॥१९

किं वेत्ति नृशंसोऽयमनुरागपर जनम् ।

येनैवमक्षोराह्लाद नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥२०॥

एष रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिर्धृण ।

रथमारुह्य गोविन्दस्त्वयंतामस्य वारणे ॥२१॥

जब गोविन्द मधुरा पहुँच जायगे तब गोकुल में क्यों लौटेंगे ? क्यों कि वहाँ इनके कानों को नगर की स्त्रियों का मधुरालाप स्वी रस उपलब्ध होगा ॥१४॥ नगर की स्त्रियों के विलास-वाक्यों में रम जाने पर गँवारियों की ओर इनका मन क्यों रहेगा ? ॥१५॥ दुरात्मा विधाता भी कैसा निर्दयी है, जिसने सम्पूर्ण ब्रज के सारभूत भगवान् श्रीहरि को छीन कर हम गोपाङ्गनाम्नी पर प्रहार किया है ॥१६॥ नगर की नारियों में स्वभाव से ही भावमयी और मुन-कानमयी बाणी, विलास-लालित्य तथा कटाक्षमयी वितवन की अधिष्ठाता होती है । उनके विलास-बन्धन को प्राप्त होकर यह ग्रामीण कृष्ण फिर किस प्रकार तुम्हारे पास आ सकेंगे ? ॥१७-१८॥ देखो, यह क्रूर अक्रूर कैसा निर्दयी है, जिसके बहकावे में आकर यह केशव उसके रथ पर चढ़ कर मधुरा जा रहे हैं ? ॥१९॥ क्या यह नृशंस अक्रूर अनुरागियों के हृदयगत भावों से अनजान है जो हमारे नेत्रों को सुख देने वाले हरि को यहाँ से अन्यत्र ले जा रहा है ? ॥२०॥ भरी देखो, यह गोविन्द भी कैसे निष्ठुर हो गये हैं जो बलरामजी के साथ रथ-लुब्ध होकर जा रहे हैं । इन्हें रोकने में क्षीप्रता करनी चाहिये ॥२१॥

गुरुणामग्रतो वक्तुं किं ब्रवीषि न न क्षमम् ।

गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना ॥२२॥

नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यताः ।

नोद्यम कुस्ते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥

सुप्रभात्ताद्य रजनी मयुरावासियोपिताम् ।

पास्यन्त्यच्युतवक्त्राब्ज यासा नेत्रादिपङ्क्तयः ॥२४॥

धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्त्यनिवारिताः ।

उद्धिध्यन्ति पदयन्तस्स्वदेह पुलकाञ्चितम् ॥२५॥

मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः ।

गोविन्दावयवैर्दृष्टैरतीवाद्य भगिष्यति ॥२६॥

को नु स्वप्नमभ्यामिहृष्टस्ताभिरघोक्षजम् ।

विस्तारिकान्तिनयना या द्रश्यन्त्यनिवारिता ॥२७॥

अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम् ।

उत्कृताभ्यद्य नेत्राणि विधिनाकरुणात्मना ॥२८॥

अरी, तू यह क्या कहती है कि अपने बड़ों के सामने इस प्रकार कहने में हम ममर्थ नहीं हैं ? हम तो विरहाग्नि में दग्ध हो चुकी हैं, बड़े अब हमारा क्या करेगे ? ॥२२॥ देवो, यह नन्दादि गोप भी उनके साथ जाने को उद्यत हैं । इनमें से भी कोई गोविन्द को वहाँ जाने से नहीं रोकता ॥२३॥ मथुरा की स्त्रियों के लिये आज की रात सुषुप्त प्रभात वाली हुई है, न्योक्ति आज उनके नेत्र लप्री भ्रमर भगवान् अभ्युक्त के मूल-मकरन्द का पान करेंगे ॥२३॥ श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाले ही धन्य हैं, न्योक्ति वे उनका दर्शन-लाभ करते हुए ही अपने पुलकित देह को चलाते हैं ॥२४॥ श्री गोविन्द व भक्तों को देखकर मथुरा निवासियों के नेत्र महोत्सव मनायेगे ॥२५॥ आज मथुरा की कान्तिमय विद्याल नेत्री वाली मौभाशालिनी नारियो न एमा वीन-मा शुभ स्वप्न देखा है, जिसके फलस्वरूप वे स्वच्छन्दता पूर्वक श्री अधोक्षज का दर्शन करेंगी ॥२७॥ अरे, ये विद्याल कितना निन्दुर है, जिम्ने महानिधि दिखाकर ही हम गोपियों के नेत्र खींच लिये हैं ॥२८॥

अनुरागेण क्षैथिल्यमस्मासु व्रजिते हरी ।

क्षैथिल्यमुपयान्त्याशु करेणु बलयान्यपि ॥२९॥

अक्रूर क्रूरहृदयक्षीघ्र प्रेरयते हयान् ।

एवमार्तासु सुकृपा कस्यान्यथा न जायते ॥३०॥

एष कृष्णरथस्याच्चञ्चक्रेणुनिरीक्ष्यताम् ।

दूरीभूतो हरियेन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते ॥३१॥

इत्येवमतिहाद्वेन गोपीजननिरीक्षितः ।

तत्याज व्रजभूभाग सह गमेण केशव ॥३२॥



गच्छन्तो जवनाश्वेन रथेन यमुनातटम् ।

प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाकूरजनादर्ना ॥३२

अथाह कृष्णमकूरो भनद्भूयां तावदास्यताम् ।

यावत्करोमि कालिन्ध्या आह्लिकाहंणमम्भमि ॥३४

देखो, भगवान् हरि का अनुराग भी हमारे प्रति शिथिल होगया है, इसी से तो हमारे हाथों के कगन ढीले होगये हैं ॥२९॥ देखो, यह भकूर कैसा क्रूर हृदय है जो अश्वों को शीघ्रता से हाँक रहा है, अन्यथा हमारे जैसी आत्मा हुई नारियो पर कौन कृपा न करेगा ? ॥३०॥ देखो, अब कृष्ण के रथ की उड़ती हुई यह धूलि हो दिखाई दे रही है, परन्तु अब तो वे इतने दूर जा पहुँचे कि उस धूलि का दिखाई देना भी रुक गया ॥३१॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार गोपियो द्वारा अनुराग—पूर्वक देखते—देखते ही श्रीकृष्ण—बलराम व्रजभूमि को छोड़ कर आगे बढ़ गये ॥३२॥ फिर वे तीनों—बलराम, कृष्ण और भकूर शीघ्रगति वाले अश्वों से संयुक्त रथ में चलते हुए मध्याह्न बाल में यमुना के निकट पहुँच गये ॥३३॥ वहाँ जाकर भकूर ने श्रीकृष्ण से कहा—'मैं मुना जी में जाकर मध्याह्न काल की उपासना करूँगा । मेरे वहाँ से लौटने तक आप यहीं रहें ॥३४॥

तथेत्युक्तस्ततस्स्नातस्स्वाचान्तस्स महामतिः ।

दध्यौ ब्रह्मा पर विप्र प्रविष्टो यमुनाजले ॥३५

फणासहस्रमालाढयं बलभद्रं ददर्श सः ।

कुन्दमालाङ्गमुन्निद्रपथपत्रायतेक्षणम् ॥३६

वृत्तं वासुकिरम्भाद्यभेहद्भिः पवनाशिमिः ।

ससूयमानमुद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७

दधानमसिते वस्त्रे चारुपद्मावतंसकम् ।

चारुकुण्डलिनं भान्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८

तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम् ।

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ॥३९

पीते वसान वसने चित्रमात्योपशोभितम् ।  
 शक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥  
 श्रीवत्सवक्षस चारु स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।  
 ददर्श कृष्णमविलिष्ट पुण्डरीकावतसकम् ॥४१॥  
 सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्सिद्धयोगैरकल्मषं ।  
 सन्निवन्त्यमान तत्रस्थैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥४२॥

श्री पराशर जी ने कहा—हे विप्र ! भगवान् द्वारा सहमति प्रकट करने पर महामति अक्रूरजी ने यमुना-जल में प्रवेश किया और आचमन आदि के पश्चात् परब्रह्म का चिन्तन करने लगे ॥३५॥ उस समय उन्हें बलरामजी हृजार फलो से युक्त दिखाई देने लगे । उनका देह कुन्दपुष्पो की माला के समान तथा नेत्र लिले हुए पद्म पत्र के समान प्रतीत हुआ ॥३६॥ तथा वे वासुकि और रम्भ आदि महासर्पों से घिर कर स्तुत हो रहे हैं । उनके देह पर सुगन्धित वन-मालाएँ शोभा पा रही हैं ॥३७॥ उन श्याम वस्त्रधारी ने कमल पुष्पों के सुन्दर आभूषण धारण किये हुए हैं और वे कुण्डली लगा कर जल में अवस्थित हैं ॥३८॥ फिर उनकी गोद में स्थित श्वेत विभूषित आनन्द-वद श्रीकृष्णचन्द्र को उन्होंने देखा, जो बादल के समान श्याम देह, किञ्चित् लाल एवं विद्याल लोचन, मनोहर अङ्ग और उपागो तथा शङ्ख-चक्रादि आयुधों से शोभित चार भुजा, वनमाला और पीताम्बर से सुमज्जित तथा इन्द्रधनुष और विद्यु-माला युक्त मेघ जैसे प्रतीत हो रहे थे । उनके वक्ष स्थल में श्री वत्स का चिह्न और पानों में मकराकार कुण्डल मुद्राशोभित थे ॥३९-४०-४१॥ तथा सनन्दनादि मुनि, दीप-रहित सिद्ध और योगी उसी जल में स्थित रहकर नासिका के अप्रभाग पर दृष्टि रखते हुए श्रीकृष्ण का ही व्यान कर रहे हैं ॥४२॥

बलकृष्णौ तथाक्रूर प्रत्यभिज्ञाय विस्मित ।  
 अचिन्त्यद्रथान्छोघ्र कथमनागताविति ॥४३॥  
 विवक्षो स्तम्भयामास वाच तस्य जनार्दनः ।  
 ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमग्यागत पुनः ॥४४॥

ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपरि निष्ठितौ ।  
 रामकृष्णौ यथापूर्वं मनुष्यवपुषान्वितौ ॥४५॥  
 निमग्नश्च पुनस्तोये ददर्श च तथैव तौ ।  
 सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगै ॥४६॥  
 ततो विज्ञातसद्भावस्स तु दानपतिस्तदा ।  
 तृष्ठाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७॥

इस प्रकार बलराम कृष्ण को वहाँ देखकर भ्रूज की बड़ा आश्चर्य हुआ और वे मोचने लगे कि यह दोनों रथ से उतर कर इतनी जल्दी यहाँ कैसे आगये ? ॥४५॥ जब उन्होंने कुछ कहने की इच्छा की तो उनकी वाणी ही रुक गई । तब उन्होंने रथ के पास आकर बलराम—कृष्ण दोनों को ही पहिले के समान रथ पर बैठे देखा ॥४४-४५॥ इस पर भ्रूज की पुनः यमुनाजी के जल में घुपे तो उन्हें गन्धर्वों, सिद्धों, मुनियों और नागों ने स्तुत होते हुए वे दोनों बालक उन्नी प्रकार दिवाई दिये ॥४६॥ तब तो भ्रूज की उस ययार्थ रहस्य का समझ गये और सर्वविज्ञानात्मक अच्युत परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥४७॥

सन्मात्ररूपिणोऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने ।  
 व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः ॥४८॥  
 नमो विज्ञानपाराय पराय प्रकृते प्रभो ॥४९॥  
 भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ।  
 आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पञ्चधा स्थितः ॥५०॥  
 प्रसीद सर्वं सर्वार्थमन् क्षराक्षरमयेश्वर ।  
 ब्रह्माविष्णुशिवास्याभि कल्पनाभिरदीरित ॥५१॥  
 अनाम्येयम्बन्धात्मघनाम्येयप्रयोजन ।  
 अनाम्येयाभिधान त्वा नतोऽस्मि परमेश्वर ॥५२॥

भ्रूज की न ब्रह्मा—सन्मात्र रूप, अचिन्त्य महिम, व्यापक, एक तथा प्रनेक रूप वाले उन परमात्म देव का नमस्कार है ॥४८॥ हे प्रभो ! आप अचिन्त्य एवं सर्वरूप हवि स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है । आप विज्ञान और

प्रकृति से परे को नमस्कार है ॥४६॥ आप एक ही भूनात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और परमात्मा—इन पाँचों रूपों में स्थित है ॥५०॥ हे सर्व ! से सर्वात्मन् ! हे क्षर—अक्षरमय परमेश्वर ! आप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव रूप से कल्पित किये जाते हैं । हे प्रभो ! आप प्रसन्न हों ॥५१॥ हे परमेश्वर ! आपके नाम, रूप, प्रयोजन—सभी अक्वनीय है । आपको मेरा नमस्कार है ॥५२॥

न यत्र नाय विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः ।  
तद्ब्रह्म परम नित्यमविकारि भवानज ॥५३॥  
न कल्पनामृतेऽर्णम्य सर्वस्याधिगमो यतः ।  
ततः कृष्णान्युत्तानन्तविष्णुसङ्गाभिरीक्ष्यते ॥५४॥  
सर्वार्थास्त्वमज विकल्पनाभिरेतं,  
देवार्थं भवति हि यैरनन्तविश्वम् ।  
विश्वात्मा त्वमिति विकारहीनमेत-  
त्सवस्मिन्न हि भवतोऽसि किञ्चिदन्यत् ॥५५॥  
त्व ब्रह्मा पशुपतिरयमा विधाता ।  
धाता त्व त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्निः ।  
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको,  
भिन्नाधीर्जगदभियासि शक्तिभेदः ॥५६॥  
विश्व भवान्सृजति सूर्यगभस्तिरूपो,  
विश्वेश ते गुणमयोऽयमतः प्रपञ्च ।  
रूप पर सदिति वाचकमक्षर य-  
ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७॥  
ॐ नमो वासुदेवाय नमस्सकर्मणाय च ।  
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥५८॥

हे नाथ ! आप नाम—जाति आदि कल्पनाओं से परे, नित्य, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्म हैं ॥५३॥ कल्पना के बिना किसी वस्तु का ज्ञान सम्भव न होने से ही कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामों में आपको धाराधना

की जाती है ॥१४॥ हे अज ! जिन देवादि कल्पना वाले पदार्थों से यह अनन्त संसार उत्पन्न हुआ है, वह सब आप ही है । आप ही विकारहीन आत्म वस्तु होने से विश्वात्मा है । इन सब में आपसे भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है ॥१५॥ आप ही ब्रह्मा, पशुपति, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, समीर, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम के रूप में विभिन्न कार्य-भेद के द्वारा इस सम्पूर्ण विद्व की रक्षा करते हैं ॥१६॥ हे विश्वेश्वर ! आप ही सूर्य-रश्मियों के रूप में होकर जगत् की सृष्टि करते हैं । इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण प्रपञ्च आपका ही स्वरूप है । जिसका वाचक सत् है, वह प्रणव आपका ही रूप है, इसलिये उस ज्ञानात्मक सत्स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१७॥ वासुदेव, संकर्यण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूपों को मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१८॥

### उन्नीसवाँ अध्याय

एवमन्तर्जले विध्रुमभिष्टूय स यादवः ।  
 अर्चयामास सर्वेश धूपपुष्पमनोमयैः ॥१॥  
 परित्यक्तान्यविषयो मनस्तत्र निवेश्य सः ।  
 ब्रह्मभूते चिर स्थित्वा विरराम समाधितः ॥२॥  
 कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामतिः ।  
 आजगाम रथं भूयो निर्गम्य यमुनाम्भसः ॥३॥  
 ददर्श रामकृष्णौ च यथापूर्वमवस्थितौ ।  
 स्मिताक्षस्तदाक्रूरस्तं च कृष्णोऽभ्यभाषत ॥४॥  
 नूनं ते दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले ।  
 विस्मयोत्फुल्लनयनो भवान्सलस्यते यतः ॥५॥  
 अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्टं तत्र मयाच्युत ।  
 तदत्रापि हि पश्यामि भूतिमत्पुरतः स्थितम् ॥६॥  
 जगदेतन्महाश्चर्यरूपं यस्य महात्मनः ।  
 तेनाश्चर्यपरेणाहं भवता कृष्ण सङ्गत ॥७॥

तत्किमेतेन मथुरा यास्यामो मधुसूदन ।

विभेमि कसाद्विग्नजन्म परपिण्डोपजीविनाम् ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—यदुवशी अक्रूरजी ने जल क भीतर भगवान् विष्णु की इस प्रकार स्तुति की और मनोभाव स ही धूष, दीपक, पुष्पादि से उनका पूजन किया ॥१॥ अन्य विषयो से चित्त को हटा कर उन्ही म तन्मय करते हुए अक्रूरजी ने चिरकाल तक ध्यानावस्थित रहकर समाधि तोड़ दी ॥२॥ फिर अपने को धन्य मानते हुए यमुना-जल से निकल कर रथ के पास पहुँचे ॥३॥ वहाँ उन्होंने बलराम-कृष्ण को विस्मित नेत्रों से पहिले के समान ही रथ में बैठे हुए देखा । तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥४॥ श्रीकृष्ण बोले—हे अक्रूर ! आपने यमुनाजी के जल में अवश्य ही कोई विस्मय करने वाली वस्तु देखी है, यह बात आपके चकित नेत्रों से प्रतीत हो रही है ॥५॥ अक्रूर ने कहा—ह अच्युत ! यमुनाजी के जल में जा आश्चर्य मुझे दिखाई दिया था, उसे मैं इस समय भी अपने समक्ष देखता हूँ ॥६॥ हे कृष्ण ! जिसका स्वरूप यह आश्चयमय विश्व है, उन्ही आप परम आश्रय रूप के साथ मेरा सग द्वेषा है ॥७॥ हे मधुसूदन ! अब उस आश्चर्य के विषय में क्या कहूँ ? अब हम शीघ्र ही मथुरा पहुँचना है, क्योंकि कस से मैं अत्यन्त भयभीत हूँ । पराय अक्ष के प्राधार पर जीवित रहने वालों का जीवन भी व्यय है ॥८॥

इत्युक्त्वा चोदयामास स हयान् वातरहस ।

सम्प्राप्तश्चापि सायाह्ने साञ्ज्जुरा मथुरा पुराम् ॥९॥

विलाक्य मथुरा कृष्ण राम चाह स मादव ।

पद्म्या यात महावीरो रथेनको विशाम्यहम् ॥१०॥

गतव्य वसुदेवस्य नो भवद्म्या तथा गृहम् ।

युवयोहि कृते वृद्धस्स कसेन निरस्थते ॥११॥

इत्युक्त्वा प्रविवेशाय सोञ्ज्जुरा मथुरा पुरीम् ।

प्रविष्टो रामकृष्णौ च राजमागमुपागतौ ॥१२॥

श्रीभिनर्गं सानन्द लोचनैरमिवीक्षितौ ।

जगन्तुर्ललिया वीरो मत्तो बालगजाविव ॥१३॥

यह कहकर अक्रूरजी ने बाधुवेग वाले अपने अश्वों को चलाया और सायकाल होने पर मथुरा पुरी में जा पहुँचे ॥६॥ उस मथुरा नगरी को देखकर बलराम-कृष्ण से अक्रूर ने कहा—हे महावीरो ! यहाँ से मैं अवेला ही रथ पर जाऊँगा, आप पंदल ही वहाँ आजाइये ॥१०॥ मथुरा में जाकर आप बसुदेवजी के घर में मत जाना, क्योंकि कस उन वृद्ध बसुदेवजी का आपके कारण ही तिरस्कार किया करता है ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कहकर अक्रूरजी मथुरापुरी में प्रविष्ट होगये फिर बलराम और कृष्ण भी राज मार्ग के द्वारा पुरी में आगये ॥१२॥ मदमत्त तक्षण हाथियों की-सी चाल चलते हुए उन दोनों वीरों को मथुरा के नर-नारी परम आनन्द पूर्वक देख रहे थे ॥१३॥

भ्रममाणौ ततो दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ।

अयोधेता सुरुपाणि वासासि रुचिराणि तौ ॥१४॥

कसस्य रजकं सोऽथ प्रसादारुढविस्मयः ।

बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चैः रामकेशवौ ॥१५॥

ततस्तिलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः ।

पातयामास रोपेण रजकस्य शिरो भुवि ॥१६॥

हृत्वादाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरो ततः ।

कृष्णरामौ मुदा युक्ती मालाकारगृहं गतौ ॥१७॥

विकासिनेत्रयुगला मालाकारोऽतिविस्मयः ।

एतौ वस्य सुतो यातौ भवेयाचिन्तयत्तदा ॥१८॥

पीतनीलाम्बरधरो तौ दृष्ट्वातिमनोहरो ।

स तर्कयामास तदा भुवः दवावुपागतौ ॥१९॥

विकासिमुखपद्माभ्यां ताम्बा पुष्पाणि याचितः ।

भुवः विष्टभ्य हस्ताभ्यां वरस्पर्शं शिरसा मेहीम् ॥२०॥

प्रसादपरमो नाथो मम मेहुमुपागतौ ।

घन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीवन ॥२१॥

माग में उन्हें एक कपड़े रँगने वाला रजक दिखाई दिया, जिससे उन्होंने सुन्दर बरतों की याचना की ॥१४॥ वह रजक वस का वृषापात्र होने से अत्यन्त

अहङ्कारी होगया था, इसलिये राम-कृष्ण द्वारा वस्त्र की याचना करने पर उसने विस्मय पूर्वक अनेक आक्षेप युक्त वचन कहे ॥१५॥ इस पर श्रीकृष्ण ने छट होकर अपनी हथेली के प्रहार से उस दुष्ट के मस्तक को पृथिवी पर गिरा दिया ॥१६॥ इस प्रकार उसका वध करके उन्होंने उसके सब वस्त्रों को ले लिया और उन नीले-पीले वस्त्रों को पहिन कर दृष्टि होते हुए एक माली के घर आये ॥१७॥ हे मीत्रेयजी ! उस माली ने जैसे ही उन्हें देखा वैसे ही उसके नेत्र हर्ष से विकसित होगये और वह विस्मय पूर्वक सोचने लगा कि यह किसके पुत्र, कहाँ से चले आ रहे हैं ? ॥१८॥ उन पीले-नीले वस्त्रों को धारण करने वाले मनोहर बालको को देखकर उसने दो देवताओं को पृथिवी पर आया हुआ समझा ॥१९॥ फिर उन सिले हुए मुल्लारविन्द वालों ने उससे पुष्पों की याचना की तब उसने अपने हाथों को टेक कर अपने शिर से भूमि को स्पर्श करते हुए कहा— हे नाथ ! आपने मेरे घर आकर बड़ी कृपा की है । मैं आज आपका पूजन करके धन्य हो जाऊँगा ॥२०-२१॥

ततः प्रहृष्टवदनस्तयोः पुष्पाणि कामतः ।

चारुण्येक्षान्यथैतानि प्रपदौ स प्रलोभयन् ॥२२

पुनः पुनः प्रणम्याभी मालाकारो नरोत्तमौ ।

ददौ पुष्पाणि चारुणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥२३

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरान् ।

श्रीस्त्वा मत्सश्रया भद्रं न कदाचित्पि विष्यति ॥२४

ब्रह्महानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा ।

यावद्दिनानि तावच्च न नशिष्यति सन्ततिः ॥२५

भुक्त्वा च विपुलान्भोगास्त्वमन्ते मत्प्रसादतः ।

ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यं लोकमवाप्स्यसि ॥२६

धर्मं मनश्च ते भद्रं सर्वकालं भविष्यति ।

गुणमत्सन्ततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥२७

नोपसर्गादिकः दोषं गुणमत्सन्ततिसम्भवः ।

अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥२८



इदुक्त्वा तद्गृहात्कृष्णो बलदेवसहायवान् ।

निजंगाम मुनिश्रेष्ठ मालाकारेण पूजितः ॥२६॥

फिर उस माली ने 'यह बहुत सुन्दर पुष्प हैं, यह अत्यन्त सुन्दर हैं' इस प्रकार प्रसन्न मुस से उन्हें आर्कषित कर-करके पुष्प प्रदान किये ॥२२॥ उसने उन दोनों को बारम्बार प्रणाम करते हुए अत्यन्त सुन्दर, सुगन्धित और मनोहर पुष्प दिये ॥२३॥ तब श्रीकृष्ण भी उस माली पर प्रसन्न होगये और उन्होंने उसे वर दिया कि मेरी आश्रिता लक्ष्मी कभी तेरा त्याग न करेगी ॥२४॥ हे सोम्य ! तेरा बल और धन कभी क्षीण नहीं होगा और जब तक दिनो का अस्तित्व रहेगा, तब तक तेरा वंश समाप्त न होगा ॥२५॥ तू भी अपने जीवन पर्यन्त विविध प्रकार के सुख-भोग करता हुआ, अन्त में मेरी कृपा से मेरा स्मरण करेगा, जिससे तुझे दिव्यलोक की प्राप्ति होगी ॥२६॥ हे भद्र ! तेरा वित्त सदा धर्म में लगा रहेगा और तेरे वंशज दीर्घ आयु वाले होंगे ॥२७॥ हे महाभाग ! संसार में सूर्य की स्थिति तक तेरे किसी भी वंशज को उपसर्ग दोष की प्राप्ति नहीं होगी ॥२८॥ श्री परशुरजो ने कहा—ये मुनिवर ! यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने आता बलरामजी सहित उस माली द्वारा पूजित होकर वहाँ से चल दिये ॥२९॥

### वीसवाँ अध्याय

राजमार्गे ततः कृष्णस्सानुलेपनभाजनाम् ।

ददर्श कुब्जामायान्ती नवयौवनगोचराम् ॥१॥

तामाह ललित कृष्णः कस्येदमनुलेपनम् ।

भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने ॥२॥

सकामेनेव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति ।

प्राह सा ललितं कुब्जा तद्दर्शनवलात्कृता ॥३॥

कान्त कस्मात्तु जानासि कसेन विनियोजिताम् ।

नैकयक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्माणि ॥४॥

नान्यपिष्ट हि कसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम् ।

भवाम्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम् ॥५॥

सुगन्धमेतद्राजाहं रुचिर रुचिरानने ।

आवयोगानिसदृश दीयतामनुलेपनम् ॥६॥

श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने कुब्जा नाम की एक नवयौवना नारी को अनुलेपन का पात्र ग्रहण किये हुए राजमार्ग पर आते हुए देखा ॥१॥ तब उन्होंने उससे लालित्यपूर्ण वचनों में कहा—हे पद्म-लोचने ! सत्य बता कि तू इस अनुलेपन को किस पुरुष के लिये ले जा रही है ? ॥२॥ भगवान् द्वारा कामुक के समान ऐसा पूछा जाने पर अनुरागवती कुब्जा उनको देखकर आसक्त चित्त होगई और विवास पूर्वक कहने लगी ॥३॥ हे कान्त ! क्या तुम मुझे नहीं जानते ? राजा कस द्वारा मैं अनुलेपन-कार्य में निमुक्त हूँ और मेरा नाम 'अनेकवक्रा' प्रसिद्ध है ॥४॥ राजा को मेरे द्वारा बनाया हुआ अनुलेपन ही अच्छा लगता है, इसीलिय मैं उनकी महती कृपापात्री हूँ ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे सुन्दर मुग्धवाली ! यह सुन्दर सुगन्ध वाला उद्य-टन तो राजा के योग्य ही है । यदि तुम्हारे पास कोई अनुलेपन हमारे देह के योग्य हो तो हम देदो ॥६॥

श्रुत्वंतदाह सा कुब्जा गृह्यतामिति सादरम् ।

अनुलेपनं च प्रददौ गात्रयाग्यमथोभया ॥७॥

भक्तिच्छेदानुनिष्ठाङ्गी ततस्तां पुरपथंभौ ।

सेन्द्रचापी व्यराजेता मितकृष्णाधिवाम्बुदौ ॥८॥

ततस्तां चिवुके शीरिरुत्तापनविधानवित् ।

उत्पाटय तोलयामास द्वयङ्गुलेनाग्रदाणिना ॥९॥

चकप पद्मघा च तदा शृजुन्व केशवोऽनयत् ।

ततस्तां शृतुजा प्राप्ता यापितामभवद्वरा ॥१०॥

विलासललित प्राह प्रेमगर्भमगलसम् ।

वन्द्ये प्रमृष्ट गाविन्द मम गेह यजेति वं ॥११॥

एवमुक्तस्तथा शोरी रामस्यालोक्य चाननम् ।

प्रहस्य कुब्जां तामाह नैक्यक्रामनिन्दिताम् ॥१२॥

आयास्ये भवतीमेहमिति ता प्रहसन्हरिः ।

विससर्ज जहासोच्चै रामस्यालोक्य चाननम् ॥१३॥

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा सुन कर कुब्जा ने उनके शरीर पर लगाने योग्य अनुलेपनादि उन्हें प्रदान किये ॥७॥ तब वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ अनुलेपन-युक्त होकर इन्द्रधनुषमय इयाम और इवेत बादलों के समान शोभा पाने लगे ॥८॥ फिर उल्लास-विधान के ज्ञाता श्रीकृष्ण ने उसकी चिबुक को अपनी दो अँगुलियों में उचका कर भटका दिया और अपने चरणों से उसके पाँव दबा लिये । इस प्रकार उन्होंने उसकी देह सीधी कर दी । इस प्रकार सीधी होकर कुब्जा सब स्त्रियों से सुन्दर प्रतीत होने लगी ॥९-१०॥ तब उसने भगवान् का वस्त्र पकड़ लिया और प्रेम गर्व से अलसाई हुई ललित वाणी में कहने लगी कि 'मेरे घर पर पधारिये' ॥११॥ पहिले जिसके अनेक भङ्ग कुबड़े थे और जो अब सीधे अंग होने से सुन्दरी होगई थी, उस कुब्जा की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने बलरामजी के मुख की ओर देखते हुए हँस कर कहा—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा' । ऐसा कह कर उन्होंने कुब्जा को हँसते हुए विदा किया और बलरामजी के मुख की ओर देख कर उच्च हास करने लगे ॥१२-१३॥

भक्तिभेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीताम्बरी तु तौ ।

धनुश्शाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१४॥

आयागं तद्वनूरत्न ताम्या पृष्टंस्तु रक्षिभिः ।

आख्याते सहसा कृष्णो गृहीत्वापूरयद्धनुः ॥१५॥

ततः पूरयता तेन भज्यमान बलाद्धनुः ।

चकार सुमहच्छब्द मथुरा येन पूरिता ॥१६॥

अनुयुक्तौ ततस्तौ तु भग्ने धनुषि रक्षिभिः ।

रक्षिसंन्य निहत्योभौ निष्क्रान्तौ कामुं कालयात् ॥१७॥

अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य महद्धनुः ।

भग्नं श्रुत्वा च कंसोऽपि प्राह चाणरमुष्टिकी ॥१८॥

गोपालदारकी प्राप्ति भवद्भ्यां तु ममाग्रतः ।  
मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहर्त्रौ हि तौ ॥१६॥  
नियुद्धे तद्विनाशेन भवद्भ्यां तोषितो ह्यहम् ।  
दास्याम्यभिमतान्कामान्नान्ययंतौ महाबली ॥२०॥  
न्यायतोऽन्यायतो वापि भवद्भ्यां तौ ममाहिताः ।  
हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्य सामान्यं वा भविष्यति ॥२१॥

फिर धनुलेपन और चित्र विचित्र मालामो से विभूषित तथा क्रमशः नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए बलराम और कृष्ण धनुर्धर के स्थान पर पहुँचे ॥१४॥ वहाँ जाकर उन्होंने यज्ञीय धनुष के विषय में यज्ञ रक्षकों से पूछा और जब उन्होंने बतला दिया तब श्रीकृष्ण ने उस धनुष को सहसा उठा लिया और उस पर प्रत्यक्ष चढ़ाने लगे ॥१५॥ जब वह बल पूर्वक प्रयत्न चढ़ा रहे थे, तभी वह धनुष अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ टूट गया, जिससे संपूर्ण मथुरापुरी गूँज गई ॥१६॥ उस धनुष के टूटने पर उसके रक्षक उन्हें मारने की दौड़े तब उन रक्षकों की सेना को नष्ट करके उस यज्ञशाला से दोनों निकल आये ॥१७॥ इसके उपरान्त जब कस का अङ्गू के व्रज से लौट आने तथा उस महान् धनुष के भी टूटने का समाचार मिला तब उसने चाणूर मुष्टिक को बुलाकर कहा ॥१८॥ कस ने कहा—वे दोनों गोप-नाटक यहाँ प्रागये और मेरे प्राणों का हरण करने के प्रयत्न में हैं, इसलिये तुम उन्हें मल्लयुद्ध करके मार दो । यदि तुम उन्हें मार कर मुझे प्रसन्न करोगे तो मैं भी तुम्हारे मनोरथ पूर्ण कर दूँगा । मेरी इस बात की श्रद्धा मत जानो ॥१९-२०॥ ग्याय से अन्याय स, जिस प्रकार भी हो, मेरे इन महाबली दानुओं का वध कर डालो जब वे मारे जायेंगे तब यह सम्पूर्ण राज्य मेरा और तुम्हारा बराबर हो जायगा ॥२१॥

इत्यादिश्च स तौ मल्लौ ततश्चाहूय हस्तिपम् ।  
प्रोवाचोर्ध्वस्त्वया मल्लममाजहारि कुङ्कर ॥२२॥  
स्थाप्य कुवलयापीडस्तेन तौ गोपदारवौ ।  
धाननीयो नियुद्धाय र गद्दारमुपागतौ ॥२३॥

तमप्याज्ञाप्य दृष्ट्वा च सर्वान्मन्त्रानुपाकृतान् ।  
 आसन्नमरणः कसः सूर्योदयमुदैक्षत ॥२४॥  
 ततः समस्तमन्त्रेषु नागरस्स तदा जनः ।  
 राजमन्त्रेषु चास्त्वास्सह भृत्यैर्नराधिपाः ॥२५॥  
 मत्स्यप्राद्विनकवर्गश्च रङ्गमध्यसमीपगः ।  
 कृतः कसेन कंसोऽपि तुङ्गमन्त्रे व्यवस्थितः ॥२६॥  
 अन्तः पुराणां मन्त्राञ्च तथान्ये परिकल्पिताः ।  
 अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नागरयोपिताम् ॥२७॥  
 नन्दगोपादयो गोपा मन्त्रेऽन्येऽन्ये व्यवस्थिताः ।  
 अक्रूरवसुदेवौ च मन्त्रप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥२८॥  
 नागरीयोपिता मध्ये देवकीपुत्रगर्धिनो ।  
 अन्तर्कालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुखं स्थिता ॥२९॥

कस ने अपने भस्त्रो को इस प्रकार बह कर अपने महावत को आज्ञा दी कि रंगभूमि के द्वार पर कुवलयपीठ को खड़ा कर दो और जैसे ही वे गोप पुत्र वहाँ पावें, वैसे ही उस हाथी के द्वारा मरवा दो ॥२२-२३॥ महावत को इस प्रकार की आज्ञा देकर और सब मन्त्रों को यथा स्थान रखे देख कर आसन्न भूयुक्त सूर्य के उदित होने की बात देखने लगा ॥२४॥ जब प्रातःकाल हुआ तब राजमन्त्रों पर अपने अनुचरों सहित राजावाण तथा सामान्य मन्त्रों पर सभी नागरिक बैठ गये ॥२५॥ फिर रंगभूमि के बीच में मुष्ट-निर्णायको को स्थित कर एक उच्च निहासन पर कम स्तय बैठ गया ॥२६॥ वहाँ अन्तःपुर की महिलाओं, प्रमुख वरागनाथों और नगर की प्रतिष्ठित नारियों के लिये पृथक् २ मन्त्रों की रचना की गई थी ॥२७॥ कुछ अन्य मन्त्रों पर नन्दादि गोपों को स्थान दिया गया, जिनके समीपस्थ मन्त्रों पर अक्रूरजी और वसुदेवजी बैठे थे ॥२८॥ नगर की महिलाओं के मध्य में ही बैठे हुई देवकीजी सोच रही थी कि अन्त समय में अपने पुत्र का मुख तो देख लूँगी ॥२९॥

वाद्यमानेषु तूयैषु चाणुरे चापि यत्नति ।

हाहाकारपरं लोके ह्याम्फोटयति मुष्टिके ॥३०॥

इपद्धसन्तो वीरो बलभद्रजनार्दनौ ।

गोपवेपथरो बालो रङ्गद्वारमुपागतौ ॥३१॥

ततः कुवल्यापीडो महामात्रप्रचोदितः ।

अभ्यधावत् वेगेन हन्तुं गोपकुमारको ॥३२॥

हाहाकारो महाशूरो रंगमध्ये द्विजोत्तम ।

बलदेवोऽनुजं दृष्ट्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३॥

हन्तव्यो हि महाभागनागोज्यं शत्रुचोदितः ॥३४॥

फिर तुहरी ब्रज उठी, चाणूर अत्यन्त उछलने और मुष्टिक ताग ठोकने लगा । इसमें लोगो में हाहाकार भवने लगा । उसी समय बलराम और कृष्ण भी कुछ हँसते हुए गोपवेश में रंगभूमि के द्वार पर आ पहुँचे ॥३०-३१॥ उन के आते ही महाशूरो ने कुवल्यापीड को प्रेरित किया, सब वह उनका बध करने के लिये वेग पूर्वक उनके ऊपर झपटा ॥३२॥ हे द्विजोत्तम ! उस समय रंगभूमि में घोर हाहाकार होने लगा, सब बलरामजी ने श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि करके उनसे कहा—हे महाभाग ! इस शत्रु द्वारा प्रेरित हाथी का बध कर देना ही उचित है ॥३३-३४॥

इत्युक्तस्सोऽग्रजेनाथ बलदेवेन वं द्विज ।

सिंहनाद ततश्चक्रे माधवः परवीरज्ञ ॥३५॥

करेण करमाकृत्य तस्य केशिनिपूदन ।

भ्रामयामास त शीगिरंरावतसम बले ॥३६॥

ईशोऽपि सर्वजगता बाललीलानुमागत ।

क्लीडित्वा मुषिन् वृष्ण कग्निदन्तपदाम्बरे ॥३७॥

उत्पाटय वामदन्त तु दक्षिणेनैव पाणिना ।

ताडयामास यन्तार तस्याभीच्छत्तथा शिरः ॥३८॥

दक्षिण दन्तमुत्पाटय वनभद्रोऽपि तत्क्षणान् ।

मगोपस्तेन पार्श्वस्थान् गजपानान्पोषयत् ॥३९॥

ततस्तूष्णमुन्य वेगेन रोहिणेयो महाबलः ।

जघान वामपादेन ममूतके हस्तिन ग्पा ॥४०॥

स पपात हतस्तेन बलभद्रेण लीलया ।

सहस्राक्षेण वज्रेण ताडित पर्वतो यथा ॥४१॥

हे विप्र ! वहे भाई बलरामजी के वचन सुन कर शत्रु सहारक भगवान् श्रीकृष्ण ने घोर सिंहनाद किया ॥३५॥ और उन बेशी-हन्ता से ऐरावत के समान महाबली कुवलयपीठ की सूँड को अपने हाथ में लेकर जोर में धुमाया ॥३६॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्व के ईश्वर हैं, फिर भी उन्होंने बाललीला का अनुसरण करके बहुत देर तक खेल करते हुए अपने दाये हाथ से हाथी का बाँया दाँत उखाड़ लिया और उसके द्वारा महावत पर आघात किया, जिससे महावत का शिर फट कर सैकड़ों खण्डों में विभक्त हो गया ॥३७-३८॥ उसी समय बलरामजी ने हाथी का दाया दाँत उखाड़ कर उसके निकटवर्ती महावतों का क्रोध पूर्वक वध कर डाला ॥३९॥ फिर उन महाबली रोहिणी पुत्र ने अत्यन्त वेग पूर्वक उछल कर कुवलयपीठ के मस्तक पर अपने बाएँ पद से प्रहार किया ॥४०॥ इस प्रकार बलरामजी के द्वारा वह हाथी लीला पूर्वक ही अपनी जीवन लीला समाप्त करके जैसे इन्द्र ब्रह्म के प्रहार से पर्वत गिर जाते हैं, वैसे ही पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४१॥

हत्वा कुवलयपीठ हस्त्यारोहप्रचोदितम् ।

मदासृगनुलिप्तागो हस्तिदन्तवरायुधो ॥४२॥

भृगमध्ये यथा सिंहैर्गर्वलीलावलोकितो ।

प्रविष्टौ सुमहार ग बलभद्रजनादनी ॥४३॥

हाहाकारी महाञ्जने महारगे त्वनन्तरम् ।

कृष्णोऽथ बलभद्राऽथमिति लोकस्य विस्मय ॥४४॥

सोऽथ येन हता घोरा पूतना बालघातिनी ।

क्षिप्त तु शकटं येन भग्नौ तु यमलार्जुनौ ॥४५॥

सोऽथ य बालियं नाग ममदीरुह्य बालक ।

धृतो गोवर्धनो येन मत्तराथ महागिरि ॥४६॥

अरिष्टो येनोक्त केजो लीनवर्धन महात्मना ।

निहना येन दुर्वृत्ता दृश्यतामेव सोऽच्युत ॥४७॥

अयं चाम्य महाबाहुर्वलभद्रोऽग्रतोऽग्रज ।

प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दन ॥४८॥

अयं स कथ्यते प्राज्ञं पुराणार्थविशारदं ।

गोपालो यादव वंश मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥४९॥

अयं हि सर्वलोकस्य विष्णोरखिलजन्मन ।

अवतीर्णो महीमणो नूनं भारहरो भुवः ॥५०॥

इस प्रकार महावत के द्वारा प्रेरित किये गये कुवलयापीड का वध करने से उसके मद और रुधिर में सने हुए बलराम कृष्ण उनके दातों को पकड़े हुए गर्व एवं लीलामयी चितवन से देखते हुए भृगो के मध्य में सिंह के निर्भयता पूर्वक चले आने के समान ही उस महान् राष्ट्रभूमि में आ पहुँचे ॥४२-४३॥ उस समय वहाँ अन्यन्त्र हाहाकार मचा हुआ था और जगने आते ही सब में कृष्ण है, यह बलराम है, इस प्रकार विस्मय पूर्वक कहने लगे ॥४४॥ यह वही है जिसने बानकी का घात करने वाली भयङ्करी पूतना का वध किया, छकड़े को उलट दिया यमनाजुंन वृक्षों को उखाड़ दिया, कालिय नाग का वध किया और सात रात्रि पर्यंत महान् पर्वत गोवर्धन को धारण किया था ॥४५-४६॥ यह वही अच्युत है, जिन्होंने अरिष्ट, धेनुक और केशी आदि को खेल-खेल में ही मार डाला था ॥४७॥ इनके आगे इनके ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी हैं, जो लीला पूर्वक चलने वाले तथा भेत्तों को अत्यन्त सुख देने वाले हैं ॥४८॥ पुराणार्थ के ज्ञाता विज्ञानों का कथन है कि यही गोपाल यादवों का उद्धार करेंगे ॥४९॥ यह सर्वलोकस्वामी एवं सब कारण भगवान् विष्णु के ही अवतार हैं और यह भू-भार-हरण के निम्न ही पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥५०॥

इत्येव वर्णिते पौरं रामे कृष्णे च तत्क्षणात् ।

उरस्तनाप देवक्याः स्नेहस्रुतपयोधरम् ॥५१॥

महोत्सवमिवासाद्य पुत्राननवितोक्त्वात् ।

युवेव वसुदेवोऽभूद्विहायाम्यागता जराम् ॥५२॥

विस्तरिताक्षियुगलो राजान्तं पुरयोपिताम् ।

नागरम्प्रोसमूहश्च द्रष्टुं न विरगम तम् ॥५३॥



सख्य पश्यत कृष्णस्य मुखमत्यरुणोक्षणम् ।  
 गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाचितम् ॥५४॥  
 विकासिशरदम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् ।  
 परिभूय स्थित जन्म सफल क्रियता दृश ॥५५॥

जिस समय पुर वासीयण बलराम और कृष्ण के विषय में इस प्रकार कह रहे थे, उस समय स्नेहवश देवकी के स्तना से दूध टपकने लगा और उस का हृदय अत्यन्त सन्न हो उठा ॥५१॥ पुत्रों के मुख देखने के कारण उत्लसित मन वाले वसुदेवजी जैसे प्राप्त हुई पृष्ठावस्था को त्याग कर पुन नवयौवन को प्राप्त हो गये हैं ॥५२॥ राजा कम के अन्त पुर की महिलाएँ और नगर में निवास करने वाली स्त्रियाँ—सभी उन्हें टकटकी लगाकर देखने लगी ॥५३॥ उन्होंने कहा—हे सखियों कृष्ण का धरण नेत्रों वाला श्रेष्ठ मुख तो देखो जो हाथी से युद्ध करने के श्रम के कारण स्वेद युक्त हो कर हिम-वर्णों के द्वारा सींचे गये शरत्कालीन विवसित कमल को भी पीका कर रहा है । इनक दर्शन से अपने नेत्रों को सफल बना लो ॥५४-५५॥

श्रीवत्साङ्क महद्वाम बालस्पर्तद्विलोक्यताम् ।  
 विपक्षक्षपण वक्षो भुजयुग्म च भामिनि ॥५६॥  
 किं न पश्यसि दुग्धेन्दुमृणालधवलाकृतिम् ।  
 बलभद्रमिम नीलपरिधानमुपागतम् ॥५७॥  
 बल्लता मुष्टिवेनैत्र चाणूरेण तया ससि ।  
 श्रीडतो बलभद्रस्य हरेर्हाम्य विलोक्यताम् ॥५८॥  
 सम्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमय हरि ।  
 समुपैति न सन्त्यत्र किं वृद्धा मुक्तारिण ॥५९॥  
 नव यौवनोन्मुखोभूतगुक्नुमास्तनुहंरि ।  
 नव वज्रवठिनाभोगरीरोज्य महासुर ॥६०॥  
 इमो सुनलितेरङ्गवर्तते नवयौवनो ।  
 दैतेयमत्ताभ्याणुप्रमुग्धास्त्रनिदारणा ॥६१॥

नियुद्धप्राश्निकानां तु महानेप व्यतिक्रमः ।

यद्बालवलिनोर्युद्धं मध्यस्थैस्समुपेक्ष्यते ॥६२॥

हे भामिनि ! इस बालक के श्री वत्मांकित हृदय और शत्रुघो को हरा देने वाली दोनों भुजाओं को तो देखो ॥५६॥ इस पर किसी अन्य ने कहा— क्या तुम्हें कमलनाभ, दूध अथवा चंद्रमा के समान शुभ्रवर्ण वाले नीलाम्बरधारी मलराम दिखाई नहीं दे रहे हैं ? ॥५७॥ अरी सखियो ! देखो यह कृष्ण चाणूर के साथ युद्ध करने के लिये बढ रहे हैं । क्या कोई भी वृद्ध पुरुष इन्हे रोकने के लिये उद्यत नहीं होता ? ॥५७-५८॥ जहाँ तो युवावस्था में पैर रखने वाले यह मुकुमार देह वाले हरि और कहाँ यह वज्र के समान कठोर देह वाला यह घोर असुर ? ॥६०॥ यह दोनों नवयौवन सम्पन्न एवं अत्यंत कोमल शरीर वाले हैं तथा ये चाणूर आदि मल्ल-दैत्य अत्यंत विकराल हैं ॥६१॥ मल्ल-युद्ध के निर्णायकों का यह अन्याय पूर्ण कार्य ही है कि जो मध्यस्थ होकर भी इस विषय में उपेक्षा करते हैं ॥६२॥

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदनश्चालयन्मुवम् ।

ववल्ग वद्धकक्ष्योऽन्तर्जनस्य भगवान्हरि ॥६३॥

वलभद्रोऽपि चास्फोच्य ववल्ग ललित तथा ।

पदे पदे तथा भूमिर्यन्न शीर्णा तदद्भुतम् ॥६४॥

चाणूरेण तत कृष्णो युयुधेऽमितविक्रम ।

नियुद्धकुशलो दैन्या बलभद्रेण मुष्टिक ॥६५॥

सन्निपाताबधूतस्तु चाणूरेण सम हरि ।

प्रक्षेपणं मुष्टिभिश्च कीलवज्रनिपातनै ॥६६॥

पादोद्बधूतं प्रमृष्टैश्च तयोर्युद्धमभून्महत् ॥६७॥

अशस्त्रमतिघोरं तन्तयोर्युद्धं सुदारुणम् ।

वलप्राणविनिष्पाद्य समाजोत्सवमन्निधौ ॥६८॥

यावत्तावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा मह ।

प्राणहानिमवापाद्य तावत्तावत्त्वत्त्वत्त्वम् ॥६९॥

कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मय ।

खेदाञ्चालयता कोपान्निजशेसरकेसरम् ॥७०॥

श्री पराशरजी न बड़ा—नगर की महिलाएँ इस प्रकार वार्तानाप कर ही रही थी तभी भगवान् श्रीहरि न अपनी बटि को बस लिया तथा पृथिवी को सम्पायमान करत हुए, सभी दशकों की उपस्थिति में, रणभूमि में छलांग मारी ॥६३॥ अपने भुज दण्डों को ठोकते हुए बलरामजी भी उत्तेजना पूर्वक उछलने लगे । उस समय उनके पदाघात से पृथिवी विदीर्ण नहीं हुई—यहाँ विस्मय की बात है ॥६४॥ फिर इन्द्र-युद्ध का प्रारंभ हुआ, जिसमें चाणूर से कृष्ण और मुष्टिक से बलरामजी भिड़ गये ॥६५॥ कृष्ण और चाणूर भिड़ कर, नीचे गिरा कर, मुष्टिका और कोहनी से प्रहार कर, पदाघात कर तथा परस्पर में अङ्ग से अङ्ग रगड़ कर युद्ध करने लगे । उस समय का वह युद्ध भयंकर हो उठा ॥६६-६७॥ इस प्रकार समाजोत्सव की सन्निधि में केवल बल और प्राण से ही सम्पन्न होने वाला विना अस्त्र के ही अत्यन्त भयंकर युद्ध होरहा था ॥६८॥ चाणूर जैसे जैसे कृष्ण से अत्यन्त घोर भिडन्त करने लगा, वैसे ही वैसे उसकी प्राण शक्ति का ह्रास होने लगा था ॥६९॥ उस समय जगन्मय भगवान् श्रीकृष्ण भी परिश्रम और क्रोध के कारण अपने पुष्पमय मुकुट की बेशर को कम्पित करने वाले चाणूर से लीला पूर्वक ही युद्ध कर रहे थे ॥७०॥

बलक्षय विवृद्धि च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयो ।

वारयामास तूर्याणि कस कोपपरायण ॥७१॥

मृदङ्गादिषु तूर्येषु प्रतिपिद्धेषु तत्क्षणात् ।

सै सङ्गतान्यवाञ्छन्त देवनूर्याण्यनेकश ॥७२॥

जय गोविन्द चाणूर जहि केशव दानवम् ।

अन्तर्दानगता दवास्तमूचुरतिहर्षिता ॥७३॥

चाणूरेण चिर काल क्रीडित्वा मधुसूदन ।

उत्थाप्य भ्रामयामास तद्वधाय कृताद्यम ॥७४॥

भ्रामयित्वा क्षतगुण दैन्यमल्लमभिन्नजित् ।

भूमावास्काटयामास गगने गतजीवितम् ॥७५॥

भूमावास्फोटितस्तेन चाणूर शतधाभवत् ।  
 रक्तम्बावमहापङ्का चक्रा च तदा भुवम् ॥७६॥  
 बलदेवोऽपि तत्ताल मुष्टिकेन महाबल ।  
 युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरि ॥७७॥  
 सोऽप्येन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ।  
 पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेय गतायुषम् ॥७८॥

उम समय चाणूर का बल घटता और श्रीकृष्ण का बल बढ़ता हुआ  
 देव कर कस भल्ला उठा और उसने बजते हुए सभी बाजे बदकरा दिये ॥७६॥  
 परन्तु, रंगभूमि में बजते हुए तुरही आदि बाजों के बद होते ही आकाश में  
 अनेकों बाजे एक साथ ही बज उठे ॥७७॥ तभी देवतामा ने अप्रकट रूप से  
 कहा—गोविन्द की जय ! हे केशव ! इस दानव चाणूर का वध कीजिये ॥७८॥  
 फिर उस चाणूर के साथ श्रीकृष्ण ने बहुत देर तक मल्लकीड़ा की और उसे  
 मारने की इच्छा से उठा कर घुमाया ॥७९॥ शत्रुआ के जीतने वाले श्रीकृष्ण ने  
 उस दैत्य की सँवडो धार आवाक्ष में फिराया और फिर पृथिवी पर डाल दिया  
 ॥८०॥ इस प्रकार गिराया जात ही उसके देह के सँकड़ो टूक हा गये और रक्त  
 प्रवाहित होने से पृथिवी पर कीचड़ हा गई ॥८१॥ जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने  
 चाणूर के साथ युद्ध किया था, उसी प्रकार महाबली बलरामजी भी मुष्टिक  
 नामक मल्ल से मड़ि रह थे ॥८२॥ मुष्टिक के मस्तक पर बलरामजी ने मुष्टिका-  
 चात किया और वक्ष स्थल पर अपने जानु से टक्कर मारी । फिर उस निक्षेप  
 आयु वाले दैत्य का पृथिवी पर पटक कर दुरी तरह मर्दिन किया ॥८३॥

कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लगज महाबलम् ।  
 वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतले ॥८४॥  
 चाणूरे निहते मल्ले मुष्टिके निनिपातिते ।  
 नीते क्षय तोशनके सर्वे मल्लना प्रवृद्धवु ॥८५॥  
 वरत्नतुस्ततो रङ्गे कृष्णमङ्गुर्णवृभी ।  
 समानवयसो गोपान्वलादावृष्य हर्षितौ ॥८६॥

कसोऽपि कोपरत्काक्ष. प्राहोच्चैर्व्यायितान्नरान् ।  
 गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येता वलादित ॥८२॥  
 नन्दोऽपि गृह्यता पापो निगलैरायसैरिह ।  
 अश्रुद्धाहंण दण्डेन वसुदेवोऽपि वध्यताम् ॥८३॥  
 गल्गन्ति गोपा कृष्णेन ये चेमे सहिताः पुर ।  
 गात्रो निगृह्यतामेपा यच्चास्ति वसु किञ्चन ॥८४॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने बहावली तोशल पर बाँध हाथ की मुट्ठी से प्रहार किया और अन्त में घरावासी कर दिया ॥७९॥ चारणूर, मुष्टिक और तोशल जैसे महामल्लो के मरते ही सब मल्ल रग भूमि से भाग गये ॥८०॥ उस समय कृष्ण और बलराम दोनों ही अपने समान आयु वाले गोपो से आनिगन करते हुए हर्ष से उछलने लगे ॥८१॥ इस पर कस के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उसने उपस्थित पुरुषों में कहा—अरे, कोई इन दोनों खालों का इस समाज में निकाल बाहर करो ॥८२॥ पापात्मा नन्द को सोहे की जजीरो में कस लो और वसुदेव को भी अश्रुद्धो जैसी कठोर यातना देकर मार डालो ॥८३॥ कृष्ण ने माथ यह जितने भी खाले उछल कूद कर रहे हैं, इन सब का सहार कर इनके गवादि धन को छीन लो ॥८४॥

एवमाज्ञापयन्त तु प्रहस्य मधुमूदनः ।  
 उत्प्लुत्यारुह्य त मञ्च कस जग्राह वेगत ॥८५॥  
 केशेष्वावृष्य विगलत्किरीटमवनीतले ।  
 स कस पातयामास तस्योपरि पपात च ॥८६॥  
 अशेषजगदाधारगुरुणा पततोपरि ।  
 कृष्णेन त्याजित. प्राणानुग्रसेनात्मजो नृप ॥८७॥  
 मृतस्य केशेषु तदा गृहीत्या मधुमूदन ।  
 चकर्ष देह कसस्य रगमध्ये महाबल ॥८८॥  
 गीर्वेणानिमहता पश्या तेन वृष्यता ।  
 वृता कमस्य देहेन वेगेनेव महाम्भसः ॥८९॥

कसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रूपा ।

सुमालो बलभद्रेण लीलयैव निपातितः ॥६०॥

ततो हाहाकृत सर्वभासीत्तद्रंगमण्डलम् ।

अवजया हत दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम् ॥६१॥

राजा कस इस प्रकार की आज्ञा दे ही रहा था, तभी श्रीकृष्ण हँसते-हँसते उसके सिंहासन पर उछल कर चढ़ गये और तुरत ही उसे पकड़ लिया ॥६५॥ फिर उसके केश पकड़ कर खींचते हुए पृथिवी पर दे मारा और फिर स्वयं भी उसके ऊपर कूद पड़े । इस अवस्था में उसके सिर का मुकट उतर कर पृथक् जा गिरा ॥६६॥ जगदाधार कृष्ण के ऊपर गिरते ही उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया ॥६७॥ फिर उन महाबली कृष्ण ने मरे हुए कस के बालों को पकड़ कर उसके शरीर को पृथिवी पर घसीटा ॥६८॥ कंस का शरीर इतना भारी था कि उसके घसीटे जाने से जल-वेग से पड़ी हुई दरार के समान पृथिवी फट गई ॥६९॥ जब श्रीकृष्ण ने कस के केश पकड़े थे, तभी उसके भाई सुमाली ने उन पर क्रोध पूर्वक आक्रमण किया, परंतु बलरामजी ने उसका लीला पूर्वक ही वध कर डाला ॥६०॥ इस प्रकार मथुरेश कस को कृष्ण द्वारा मारा जाता हुआ देख कर सभी उपस्थित जन समाज हाहाकार कर उठा ॥६१॥

कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरः ।

देवक्याश्च महाबाहुर्वलदेवसहायवान् ॥६२॥

उत्थाप्य वसुदेवस्त देवकी च जनार्दनम् ।

स्मृतजन्मोक्तवचनो तावेव प्रणतो स्थितौ ॥६३॥

प्रसीद सीदता दत्तो देवाना यो वरः प्रभो ।

तथावयोः प्रसादेन कृतोद्धारस्त केशव ॥६४॥

आराधितो यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम ।

दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन नः पावित कुलम् ॥६५॥

त्वमन्तः सर्वभूताना सर्वभूतमयः स्थितः ।

प्रवर्तते समस्तात्मस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥६६॥

यज्ञैस्त्वमिज्येसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत ।  
 त्वमेव यज्ञो यष्टा च यज्वना परमेश्वर ॥६७॥  
 समुद्भवस्समस्तस्य जगतस्त्व जनादेन ॥६८॥  
 सापह्णव मम मनो यदेतत्त्वयि जायते ।  
 देवक्याश्चात्मजप्रोत्या तदत्यन्तविडम्बना ॥६९॥  
 त्व कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान् ।  
 त्वा मनुष्यस्य कस्यैषा जिह्वा पुनेति वक्ष्यति ॥१००॥

सभी महाबाहु श्रीकृष्ण ने बलरामजी के सहित जाकर वसुदेव और  
 देवकी के चरण पकड़े ॥६२॥ उस समय उद्भव काल में कहे हुए भगवान् के  
 वचनों को याद करके वसुदेव देवकी न श्रीकृष्ण को पृथिवी से उठाया और  
 स्वयं उनके समक्ष विनीत भाव से खड़े होगये ॥६३॥ श्री वसुदेवजी ने कहा—  
 हे प्रभो ! हे वेशव ! हम पर प्रसन्न हूँ । आपने देवताओं को जो वर प्रदान  
 किया था उसे हम पर भी कृपा करते हुए पूर्ण कर दिया ॥६४॥ हे भगवान् !  
 मेरे द्वारा आराधन करने पर आपने दुष्टों के सहारायं मेरे यहाँ जन्म लेकर  
 हमारे कुल का ही पवित्र कर दिया है ॥६५॥ आप सर्वभूतात्मक तथा सभी  
 भूतों में प्रवर्णित हैं । हे सर्वात्मन् ! भूत, भविष्यत् की प्रवृत्ति भी आपसे ही  
 है ॥६६॥ हे अचिन्त्य ! हे अच्युत ! हे सर्व द्वात्मक देव ! सभी यज्ञों के द्वारा  
 आपका ही यजन होना है तथा आप ही याज्ञिकों से याजक और यज्ञरूप हैं ॥६७॥  
 हे जनादेन ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व का उत्पत्तिकर्ता हैं, आपके प्रति आत्मज  
 भाव होने से ही मेरा और देवकी का चित्र भ्रात होगया है, यह कौसी विडम्बना  
 है ॥६८-६९॥ आप ही सब भूतों के कर्ता, अनादि तथा अन्त-रहित है, फिर  
 ऐसा कोन-सा मनुष्य होगा, जिसकी जिह्वा आपको पुत्र कहेगी ॥१००॥

जगदेतज्जगन्नाथ सम्भूतमखिल यत् ।

कया मुक्त्या विना माया सोऽस्मत्त सम्भविष्यति ॥१०१॥

यस्मिन्प्रतिष्ठित सर्व जगत्स्थावर्जङ्गमम् ।

सकोटोत्सङ्गशयनो मानुषो जायते कथम् ॥१०२॥

स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्व-  
मशावतारकरणं ममासि पुत्र ।  
आब्रह्मपादपमिद जगदेतदीश  
त्वत्ता विमोहयमि किं पुरुषोत्तमास्मान् ॥१०३॥  
मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति  
कसाद्भूय कृतमपास्तभयातितीव्रम् ।  
नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलेन ।  
वृद्धि गतोऽसि मम नास्ति ममत्वभीश ॥१०४॥  
कर्माणि रुद्रमरुदश्विशतक्रतूना ।  
साध्यानि यस्य न भवन्ति निरीक्षितानि ।  
त्व विष्णुरीश जगतामुपकारहेतोः ।  
प्राप्तोऽसि न परिगतो विगतो हि मोह ॥१०५॥

हे जगदीश्वर ! जिनसे इस सम्पूर्ण ससार का प्राकट्य हुआ है, वह माया शक्ति वे अतिरिक्त अन्य किस प्रकार से हमारे द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं ? ॥१०१॥ जिसमें सम्पूर्ण चराचर विश्व स्थित है, वह ईश्वर क्यों और गोद में सोन वाला मानव किस प्रकार से हो सकता है ? ॥१०२॥ हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर अपने अशावतार के द्वारा ससार की रक्षा करिये । हे परमेश्वर ! मैं जानता हूँ कि आप मेरे पुत्र नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्मादि से युक्त यह सम्पूर्ण विश्व आप ही की रचना है । फिर, आप हमें मोह में क्यों डाल रहे हैं ? ॥१०३॥ हे भयासीत ! मायावश आपकी पुत्र समझते हुए ही मैं कब से अत्यंत भयभीत रहा था, और उसी शत्रु के कारण आपकी गोबुल पहुँचा आया था । फिर आप वही रहते हुए इस वय-वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिये भी आपके प्रति मेरा ममत्व नहीं रहा है ॥१०४॥ जो कर्म रुद्र, मरुद्रण और इन्द्र द्वारा भी किये जाने सम्भव नहीं हैं, वे आपके द्वारा होते हुए मैंने देखे हैं । इससे मेरा मोह नष्ट हो गया है । आप ही ईश्वर एवं भगवान् विष्णु हैं तथा लोक-कल्याण के लिये ही आप अवनीण हुए हैं ॥१०५॥



## इक्ष्वाकुसर्वा अध्याय

तो समुत्पन्नविज्ञानी भगवत्कर्मदर्शनात् ।  
 देवकीवसुदेवो तु हृष्टा माया पुनर्हरिः ।  
 मोहाय यदुचक्रस्य विततान स वंष्णवीम् ॥१॥  
 उवाच चाम्ब हे तात चिरादुत्कृष्टितेन मे ।  
 भवन्ती कंसभीतेन हृष्टौ सङ्कर्षणेन च ॥२॥  
 कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।  
 तत्त्वच्छमायुषो व्यर्थमसाधूना हि जायते ॥३॥  
 गुरुदेयद्विजातीना मातापित्रोश्च पूजनम् ।  
 कुर्वतां सफलः कालो देहिना तात जायते ॥४॥  
 तत्सन्तव्यमिद सर्वमतिक्रमकृत पितः ।  
 कंसवीर्यप्रतापाम्यामावयो. परवक्ष्ययो. ॥५॥  
 हर्युक्त्वाथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमात् ।  
 यथावदभिपूज्याथ चक्रतु. पीरमाननम् ॥६॥  
 कसपत्न्यस्ततः कस परिवार्य हतं भुवि ।  
 विलेपुर्मातरश्चास्य दुःखलोकपरिप्लुताः ॥७॥  
 बहुप्रकारमत्यर्थं पश्चात्तापातुरो हरिः ।  
 तास्ममाश्वासयामास स्वयमस्त्राविलेक्षणाः ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—जब भगवान् ने यह देखा कि उनके ईश्वरीय  
 कर्मों की दंष्ट्रकर वसुदेव-देवकी को विज्ञान उत्पन्न हो गया है, तब उन्होंने  
 मादवी को मोह में डालने के लिये अपनी माया को विस्तृत किया ॥१॥ उन्होंने  
 कहा—हे चाम्ब ! हे तात ! और बलरामजी दोनों ही कस के भय से बहुत  
 समय से छिपकर रहते हुए भी आपके दर्शनों के लिये लात्तायित थे, जिसकी  
 आज हम प्राप्ति हुई है ॥२॥ माता-पिता की सेवा बिना व्यतीत हुआ आयु-  
 और असाधुत्व को प्राप्त करता हुआ व्यर्थ ही जला जाता है ॥३॥ हे तात !  
 शरीर धारियों के जीवन की सफलता ही गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिता

उस नि शक चित्त से कहिये ॥११॥ ययाति के शापप्रज्ञ यद्यपि हमारे वश को राज्य करने का अधिकार नहीं है, फिर भी आप भुक्त सत्वक के सामने अन्य राजाओं को क्या, देवताओं को भी आज्ञा देन में समर्थ है ॥१२॥ श्री पराशरजी ने कहा—मनुष्य रूप धारी भगवान् ने उग्रसेन से इस प्रकार कह कर वायु का स्मरण किया और उसके उपस्थित होते ही उससे कहने लगे ॥१३॥ हे वायो । तुम इन्द्र के पास जाकर उससे कहो कि महाराज उग्रसेन के लिये अपनी सुधर्मा नाम की सभा प्रदान करदो ॥१४॥ श्रीकृष्ण का कहना है कि यह सुधर्मा नाम सभा राजा के लिये ही शोभनीय है, इसलिये इसमें यदुवश का प्रतिष्ठित होना उचित है ॥१५॥

इत्युक्त पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम् ।  
 ददौ सोऽपि सुधर्मस्थ्या सभा वायोः पुरन्दर ॥१६॥  
 वायुना चाहता दिव्या सभा ते यदुपुङ्गवा ।  
 बुभुजस्सर्वरत्नाढ्या गोविन्दभुजसश्रया ॥१७॥  
 विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि ।  
 शिष्याचार्यक्रम बीगी स्थापयन्ती यदूत्तमी ॥१८॥  
 ततस्सान्दीपनि काश्यपवन्तिपुरवासिनम् ।  
 विद्यार्थं जग्मतुर्बालौ कृतोपनयनक्रमौ ॥१९॥  
 भेदाभ्यासकृतप्रीती सङ्कर्षणजनादनी ।  
 तस्य शिष्यन्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरी हि तौ ॥२०॥  
 दर्शयान्श्चतुर्वीरावाचारमखिले जने ।  
 सरहस्य धनुर्वेद ससङ्ग्रहमधीयताम् ॥२१॥  
 अहोरात्रचतुष्पष्टया तदद्भुतमभूद्विज ।  
 सान्दीपनिरसस्भाव्य तयो कर्मातिमानुषम् ॥२२॥  
 विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरी ।  
 साङ्गाश्च चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥२३॥  
 अस्यग्रामसंश्लेष प्रोक्तमात्रमवाप्य तौ ।  
 उचतुर्त्रियता या ते दातव्या गुरुदक्षिणा ॥२४॥

श्रीपराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वायु ने इन्द्र के पास जाकर सब बात वही जिस पर उसने वह सभा वायु को दे दी ॥१६॥ तब उस सर्वरत्नमयी दिव्य सभा का उपभोग श्रीकृष्ण के भुज बल के आश्रित हुए यादव करने लगे ॥१७॥ फिर सभी विज्ञानों के ज्ञाता श्रीकृष्ण और बल-राम गुरु शिष्य का सम्बन्ध प्रवट करने के लिये उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्या पढ़ने के लिये काशी में उत्पन्न श्री सन्दीपन मुनि के यहाँ अवन्तिकापुर गये ॥१८॥ वहाँ कृष्ण और बलराम सान्दीपन के शिष्य होकर वेदाम्यास करते हुए गुरु की सेवा-मुश्रुपादि लोक-दिष्टाचार पूर्वक रहने लगे । उन्होंने केवल चौमठ बिन म ही रहस्य और सग्रह क सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा पूरा करली । सान्दीपन ने उनके असम्भव एवं अमानवीय कर्मों को देखा तो सूर्य-चन्द्रमा की ही अपने घर आया हुआ समझा । उन्होंने सर्वांग सहित चारों वेद, सभी शास्त्र तथा अस्त्र विद्या को एक बार सुनकर सीख लिया और फिर गुरुजी से पूछा—आपको गुरुदक्षिणा में क्या दिया जाय ? ॥२०-२४॥

सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयो कर्म महामति ।

अयाचत मृत पुन प्रभासे लवणाणवे ॥२५

गृहीतास्त्री ततस्तौ तु मार्घ्यहस्तो महोदधि ।

उवाच न मया पुत्रो हृतस्सान्दीपनेरिति ॥२६

दैत्य पञ्चजनो नाम शङ्खरूपस्त बालकम् ।

जग्राह योऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ॥२७

इत्युक्ताऽन्तर्जलं गत्वा हत्वा पञ्चजनं च तम् ।

कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभव शङ्खमुत्तमम् ॥२८

यस्य नादेन दैत्यानां बलहानिरजायत ।

देवानां ववृधे तेजो यात्यघमंश्च सङ्क्षयम् ॥२९

त पञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरं हरि ।

बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वतं यमम् ॥३०

त बाल यातनासस्थं यथापूर्वंशरीरिणम् ।

पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिना व ॥३१

मथुरा च पुन प्राप्ताबुधमेनेन पालिताम् ।

प्रहृष्टपुरुषस्त्रोक्वामुभौ रामजनार्दनौ ॥३२

महामनि मान्दीपन न उनको अद्भुत कर्मा देवकर प्रभास क्षेत्र स्थित नमक के समुद्र में हूबकर मृत्यु को प्राप्त हुए पुत्र की उनसे याचना की ॥३५॥ नदनन्तर वे शस्त्र लेकर समुद्र के निकट गये तब समुद्र स्वयं ही अर्घ्य लेकर उनसे सामने आया और कहने लगा कि हे प्रभो ! सान्दीपन के पुत्र का हरण मैंने नहीं किया है ॥३६॥ हे अमुर सूदन ! मेरे जल में पञ्चजन नामक एक दैत्य शस्त्र रूप से निवास करता है, उसने ही उस बालक का हरण किया है ॥३७॥ श्री पराशरजी ने कहा—समुद्र की बात सुनकर श्रीकृष्ण उसके जल में गये और वहाँ उन्होंने पञ्चजन को मार कर उसकी अस्थियों से उत्पन्न शस्त्र को ग्रहण कर लिया ॥३८॥ उस शस्त्र के शब्द से दैत्यों का बल क्षीण होता, देवताओं के तेज की वृद्धि होती और अघमं नष्ट हो जाता है ॥३९॥ उसी पाँच-जन्य शस्त्र का घोष करते हुए कृष्ण—बलराम यमपुत्री पटुंघे और वहाँ सूर्य पुत्र यम को पराजित कर नरक की यन्त्रणा भोगते हुए उस बालक को पूर्ववत् देह में स्थापित कर उसके पिता के पास लाकर सौग दिया ॥३०-३१॥ फिर जिस मथुरापुरी में सब स्त्री—पुरुष आनन्द मना रहे थे, उस उपसेन द्वारा पानित पुत्री में कृष्ण—बलराम लौट आये ॥३२॥

### बाईसवाँ अध्याय

जरासन्धसुते कस उपयेमे महाबल ।

अस्ति प्राप्ति च मैत्रेय तयोर्भर्तुं हण हरिम् ॥१

महाबलपरीवारो मगधाधिपतिर्वली ।

हन्तुमभ्याययो वोपाञ्जरासन्धस्स्यादवम् ॥२

उपत्म मथुरा सोऽय क्रोधे मगधेश्वरः ।

अक्षौहिणीभिस्सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिवृत् ॥३

निष्क्रम्यात्पपरीवारारुभौ रामजनादनी ।

युपुधाते सम तम्य बलिनो बलिमैनिकैः ॥४

तनो रामश्च कृष्णश्च मति चक्रतुरञ्जना ।

आयुधाना पुराणानामादाने मुनिसत्तम ॥५

अनन्तर हरेश्शाङ्गं तूणी चाक्षयमायकी ।

आकाशादागतो विप्र तथा कीमोदकी गदा ॥६

हल च बलभद्रस्य गगनादागत महत् ।

मनसोऽभिमत विप्र सुनन्द मुसल तथा ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हूँ मीनेयजी ! महाबली कस का बिबाह जरासन्ध की पुत्री अस्ति और प्राप्ति से हुआ, वह बलवान् मगधराज जरासन्ध ने अपने जामाता के बधिवं श्रीहरि को सम्पूर्ण यादवों के सहित नष्ट करने के लिये बहुत बड़ी सेना लेकर मथुरापुरी पर आक्रमण किया ॥१-२॥ उस समय मगधराज की तेईस अश्विणी सेना से मथुरापुरी घिरी हुई थी ॥३॥ तब बलराम और कृष्ण छोड़ी-सी सेना साथ लेकर पुरी से बाहर आये और जरासन्ध के बलवान् सैनिकों से भिड़ गये ॥४॥ हे मुनिवर ! उस युद्ध में बलराम-कृष्ण ने अपने प्राचीन शस्त्रों को ग्रहण करने की इच्छा की ॥५॥ श्रीकृष्ण द्वारा स्मरण करते ही उनका साङ्गं धनुष, अक्षय बाणों से परिपूर्ण दो तरकश और कीमोद नामक गदा—यह सब आकाश से उनकी सेवा में आगये ॥६॥ हे विप्र ! बलरामजी के लिये भी उनका इच्छित हल तथा सुनन्द नामक मूसल आकाश से उनके पास आगये ॥७॥

ततो युद्धे पराजित्य ससैन्य मगधाधिपम् ।

पुरी विविशतुर्भीरावुभौ रामजनादनी ॥८

जिते तस्मिन्मुदुर्गते जरासन्धे महामुने !

जीवमाने गते कृष्णस्तेनामन्यत नाजितम् ॥९

पुनरप्याजगामाथ जरासन्धे बलावन्त ।

जिनश्च रामकृष्णाम्यामपक्रान्तो द्विजोत्तम ॥१०

दश चाष्टौ च सङ्ग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः ।

यदुभिर्मगिघो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥११

सर्वेव्वेतेषु युद्धेषु यादवैस्स पराजितः ।

अपक्रान्तो जरासन्धस्स्वल्पसैन्यैर्वलाधिकः ॥१२

न तद्वृत्तं यादवानां विदितं यदनेकशः ।

तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः ॥१३

मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगत्पतेः ।

अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥१४

इसके पश्चात् बलराम और कृष्ण ने जरासन्ध की सेना के महित पराजित कर दिया और फिर मथुरा नगरी को लौट आये ॥१८॥ हे महापुत्रे ! उस दुर्वृत्त जरासन्ध को हरा कर भी उसके जीवित बच निकलने के कारण श्रीकृष्ण ने अपने को विजेता नहीं माना ॥१९॥ हे द्विजोत्तम ! जरासन्ध ने उतनी ही सेना लेकर पुनः मथुरा पर आक्रमण किया, परन्तु बलराम-कृष्ण से हार कर भाग गया ॥१०॥ इस प्रकार उस अत्यन्त दुर्मद जरासन्ध ने यादवों के साथ घठारह बार सप्राग किया ॥११॥ इन सभी सग्रामों में वह बहुत अधिक सेना के साथ आकर भी अल्प सेना वाले यादवों में पराजित होकर चला गया ॥१२॥ यादवों की अल्प सेना भी उससे न हार सकी, यह सब भगवान् विष्णु के अष्ट रूप श्रीकृष्ण की सन्निधि की ही महिमा थी ॥१३॥ उन मनुष्य धर्म का अनुकरण करने वाले जगत्पति की यह लीला है जो वे अपने शत्रुओं पर विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते हैं ॥१४॥

मनसैव जगत्सृष्टिं संहारं च करोति यः ।

तम्यारिपक्षक्षपणो कियानुद्यमविस्तरः ॥१५

तथापि यो मनुष्याणां धर्मस्तमनुवर्तते ।

कुर्वन्बलवता सन्धिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ ॥१६

सामं चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन् ।

करोति दण्डपानं च ववचिदेव पनायनम् ॥१७

मनुष्यदेहिना चेष्टामित्येवमनुवर्तते ।

लीला जगत्पतेस्तस्यच्छन्दतः परिवर्तते ॥१८॥

जिनके सङ्कल्प मात्र मे विश्व की उत्पत्ति और संहार करते हैं, उन्हें अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिये कितना प्रयत्न करना होता है ? ॥१५॥ फिर भी वे यत्नवान् पुरुषों से सन्धि और निर्वृत्ति से विग्रह करके मनुष्य धर्म के अनुकरण में लगे हैं ॥१६॥ वे कही साम-नीति, कही दान-नीति, कही दण्ड नीति और कही भेद-नीति से कार्य लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर कही युद्ध में से भाग भी आते हैं ॥१७॥ इस मनुष्य शरीरियों की चेष्टाओं का अनुसरण करते हुए वे स्वेच्छा पूर्वक लीलाएँ करते रहते हैं ॥१८॥

### तेईमवां अध्याय

गार्ग्यं गोष्ठ्या द्विज श्यालण्यण्ड इत्युक्तवान्द्विज ।

यदूना सन्निधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा ॥१॥

ततः कोपरीतात्मा दक्षिणापथमेत्य सः ।

सुतमिच्छन्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ॥२॥

आराधयन्महादेव लोहचूर्णमभक्षयत् ।

वदौ वर च तुष्टोऽस्मै वर्षे तु द्वादशे हरः ॥३॥

सन्तोषयामास च तं यवनेशो ह्यनात्मजः ।

तद्योपित्मङ्गमास्त्रास्य पुत्रोऽभूदलिसन्निभः ॥४॥

त कालयवन नाम राज्ये स्वे यवनेश्वर ।

अमिषिच्य वन वज्राग्रकठिनोरसम् ॥५॥

स तु वीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान् ।

अपृच्छन्नास्वस्तम्मे कथयामास यादवान् ॥६॥

म्लेच्छ कोटिसहस्राणा सहस्रं स्तोऽमिसवृत ।

गजाश्वरथसम्पन्नैश्चकार परमोद्यमम् ॥७॥

श्री पराशरजी बोले—हे द्विज ! एक यादवों के समाज में महर्षि गार्ग्य से उनके साले ने पण्ड (पुंसत्वहीन) कह दिया, उस समय सभी यादव हँसने लगे ॥१॥ इससे महर्षि गार्ग्य अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने दक्षिण-ममुद्र के किनारे पर जाकर यादवों के लिये भयावह हो सके, ऐसे पुत्र की कामना से तप किया ॥२॥ उन्होंने केवल लौह चूर्ण भक्षण करते हुए भगवान् शङ्कर की आराधना की, तब बारहवें वर्ष में शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने महर्षि गार्ग्य को इच्छित वर दिया ॥३॥ एक यवनराज पुत्र हीन था, उसने महर्षि गार्ग्य की सेवा-सुधुपा करके उन्हें प्रसन्न किया तब उसकी स्त्री की सगति से एक भँवर के समान काले रङ्ग का बालक उत्पन्न हुआ ॥४॥ उस कालयवन नामक बालक का दक्ष स्थल अत्यन्त हृदय ॥ यवनराज ने उसका राज्य पर अभिषेक किया और स्वयं वन को चला गया ॥५॥ फिर बल विक्रम के भद्र में उन्नत हुए कालयवन ने नारदजी से प्रश्न किया कि पृथिवी पर कौन-कौन से राजा अधिक बलवान् हैं, तब नारदजी ने यादवों को ही अधिक बलशाली बतलाया ॥६॥ यह सुनकर कालयवन असह्य हाथी, घोड़े, रथ और म्लेच्छ सेना आदि को मथुरा पर चढाई करने के लिये तैयार करने लगा ॥७॥

प्रययौ सोऽव्यवच्छिन्नं छिन्नयानो दिने दिने ।

यादवान्प्रति सामर्षो मैत्रेय मथुरा पुरीम् ॥८॥

कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादवं बलम् ।

यवनेन रणे गम्य मागधस्य भविष्यति ॥९॥

मागधस्य बलं क्षीणं स कालयवनो बली ।

हन्तैतदेवमायातं यदूनां व्यसनं द्विधा ॥१०॥

तस्माद् दुर्गं करिष्यामि यदूनामरिदुर्जयम् ।

स्त्रियोऽपि यत्र युष्येयुः किं पुनर्वृष्णिपुङ्गवाः ॥११॥

मयि मत्ते प्रमत्ते वा मुप्ते प्रवसितेऽपि वा ।

यादवाभिभवं दुष्टा मा कुर्वन्त्वरयोऽधिकाः ॥१२॥

इति सञ्चिन्त्य गोविन्दो योजनानां महोदधिम् ।

ययाचे द्वादश पुरी द्वारका तत्र निर्ममे ॥१३॥



दृष्टमात्रश्च तेनामी जज्जाल यवनोऽग्निना ।

तत्क्रोधजेन मंत्रेण भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२१॥

जब कालयवन मधुग के निःकट गढ़वा तभी श्रीकृष्ण ने सब मथुरा-  
वासियों को द्वारवा में जा गढ़वाथा घोर स्वयं मथुरा में लौट आये ॥१५॥  
कालयवन की सेना के द्वारा मथुरा के घेर लिये जाने पर जब श्रीकृष्ण निःशस्त्र  
ही मथुरा नगरी में बाहर निकले तभी कालयवन ने उन्हें देख लिया ॥१६॥  
जो महायोगियों के भी चिन्तन में नहीं आते, उन्हीं भगवान् कृष्ण को बाहुमात्र  
से आता देखकर कालयवन उनके पीछे दौड़ पड़ा ॥१७॥ कालयवन को पीछे  
धाने देखकर भागते हुए श्रीकृष्ण उस गुफा में प्रविष्ट हुए, जिसमें महाबली राजा  
मुचुकुन्द शयन कर रहा था ॥१८॥ उस बुद्धिहीन कालयवन ने गुफा में जाकर  
मुचुकुन्द को कृष्ण ममका और उसके शयन करते हुए में ही पद-प्रहार किया  
॥१९॥ उसक पदाघात से मुचुकुन्द की नींद खुल गई और उसने उठकर अपने  
सामने कालयवन को पड़ा हुआ देखा ॥२०॥ हे मन्त्रेश्वरी ! मुचुकुन्द ने जैसे ही  
उस यवन को देखा, बस ही वह उसकी क्रोधान्धि में दग्ध होगया ॥२१॥

म हि देवासुरे युद्धे गतो हत्वा महासुरान् ।

निद्रातंसुमहाकाल निद्रा वव्रं वर सुरान् ॥२२॥

प्रोक्तश्च देवैस्सुप्तं यन्त्वामुस्थापयिष्यति ।

देहजेनाग्निना सद्यस्स तु भस्मीभविष्यति ॥२३॥

एव दग्ध्वा स त पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम् ।

यन्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शिन कुले ॥२४॥

वसुदेवस्य तनयो यदोर्वेशसमुद्भव ।

मुचुकुन्दोऽपि तत्रासौ वृद्धगार्ग्यं वचोऽस्मरत् ॥२५॥

सम्मृत्यं प्रतिपत्यैनं सर्वं सर्वेश्वर हरिम् ।

प्राह जातो भवान्विष्णोरशस्त्व परमेश्वरः ॥२६॥

पुनः गार्ग्येण कथितमष्टाविंशतिमे युगे ।

द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवशे भविष्यति । २७

बुद्धिरव्याकृतप्राणाः प्राणेशस्त्व तथा पुमान् ।

पुंस. परतर यच्च व्याप्यजन्मविकारवत् ॥३३

शब्दादिहीनमजरममेय क्षयवर्जितम् ।

अवृद्धनाश तद्वद्ब्रह्म त्वमाद्यन्तविवर्जितम् ॥३४

त्वत्तोऽमरास्मपितरो यक्षगन्धर्वंश्चिरा ।

सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३५

सरीसृपा मृगास्सर्वे त्वत्तत्सर्वे महीरुहा ।

यच्च भूत भविष्य च किञ्चिदन्न चराचरम् ॥३६

हे देव ! जब देवासुर सन्नाम हुआ था, तब महाबली दैत्य भी मेरे तेज को सहन करने में समर्थ नहीं थे, वही मैं आपके तेज को सहन नहीं कर रहा हूँ ॥३०॥ विश्व में पतितों के आप ही परम आश्रय और शरणागतों के सङ्कट को दूर करने वाले हैं । इसलिये आप प्रसन्न होकर मेरे सङ्कट को नष्ट करिये ॥३१॥ हे प्रभो ! आप ही समुद्र, नदी, वन, पृथिवी, आकाश, वायु, जल और अग्नि है तथा मन भी आप ही हैं ॥३२॥ आप ही बुद्धि, प्राण, तथा प्राणों के अधिष्ठाता पुरुष हैं । आप ही पुरुष से परे व्यापक अजन्मा और निर्विकार प्रभु हैं ॥३३॥ आप ही शब्दादि से परे, जरा-रहित, अमेय, अक्षय, अविनाशी, वृद्धि-रहित तथा आदि-अन्त से परे हैं ॥३४॥ देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, विष्मर, मिद्ध और अप्सराओं की उत्पत्ति आप से ही हुई है । मनुष्य, पशु, पक्षी, सरी-सृप, मृग, वृक्ष तथा भून, भविष्यत्काल चराचर विद्व—सब कुछ आप ही हैं ॥३५ ३६॥

मूर्तिमूर्त तथा चापि स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा ।

तत्सर्वं त्वं जगत्कर्ता नास्ति किञ्चित्त्वया विना ॥३७

मया ममारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता भगवान् सदा ।

तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३८

दुःखान्येव मुनानीति मृगतृष्णा जलाशया ।

मया नाथ गृहीतानि नात्र नाप्य मेत्यनन ॥३९

राज्यमुर्वी बल कोशो मित्रपक्षस्तथात्मजा ।

भार्या भृत्यजनो ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥४०॥

सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमन्ययम् ।

परिणामे तदेवेश तापात्मकमभून्मम ॥४१॥

हे प्रभो ! आप ही मूर्त, अमूर्त, स्थूल, सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है वह सब है, आपसे पृथक् कुछ भी नहीं है ॥३७॥ हे भगवन् ! तीनों तापो से अभिभूत हुआ मे सदा ही इस ससार-चक्र में घूमता रहा हूँ, मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिली ॥३८॥ हे नाथ ! जल की आशा वाली मृगतृष्णा के समान ही मैंने दुखों को सुख माना था, परन्तु उन सब से मुझे सन्ताप ही हुआ है । ॥३९॥ हे प्रभो ! राज्य, पृथिवी, सेना, कोष, मित्र, पुत्र, स्त्री, भृत्य और शब्दादि विषयों को अविनाशी और सुख मान कर ग्रहण किया था, परन्तु अन्त में वे सभी वस्तुएँ दुःख रूप सिद्ध हुई ॥४०-४१॥

देवलोकगतिं प्राप्नो नाथ देवगणोऽपि हि ।

मत्तस्साहाय्यकामोऽभूच्छाश्वती कुत्र निवृत्तिः ॥४२॥

त्वामनाराध्यं जगता सर्वेषां प्रभवास्पदम् ।

शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निवृत्तिः ॥४३॥

त्वंमायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान् ।

अथाप्य तापान्पश्यन्ति प्रेतराजमनन्तरम् ॥४४॥

ततो निजक्रियामूर्ति नरकेष्वतिदारुणम् ।

प्राप्नुवन्ति नराः दुःखमस्वरूपविदस्त्व ॥४५॥

अहमत्यन्तविषयो मोहितस्तव मायया ।

ममत्वगवंगतन्तिर्भमामि परमेश्वर ॥४६॥

सोऽहं त्वा शरणमपारमप्रमेय सम्प्राप्त परमपद यतो न किञ्चित् ।

ससारभ्रमपरितापतप्तचेता निर्वाणो परिणतधाम्नि साभिलाषः ॥४७॥

हे प्रभो ! जब देवलोक वाली देवताओं को भी मेरी सहायता लेनी

पड़ी तो उनके उस सोच में भी नित्य शान्ति कहाँ होगी ? ॥४२॥ हे नाथ !

आप सब समार में उद्भव ध्यान की आराधना के बिना शरयत शान्ति किसे

मिल सकती है ॥४३॥ हे प्रभो आपकी माया में भ्रमे हुए मनुष्य जन्म, जरा और मृत्यु आदि दुखों को भोग करत हुए अन्त में यमराज को देखते हैं, ॥४४॥ जो आपके रूप को नहीं जानते, वे नरकों को प्राप्त होकर अपने फल रूप क्लेशों को भोगते हैं ॥४५॥ हे परमेश्वर ! मैं विषयो के प्रति दीव्यता हुआ आपकी माया से भ्रम कर भमता और अभिमान गर्ने में भटकता रहा हूँ ॥४६॥ परन्तु आज मैं उस पार रहित और अप्रमेय परम पद रूप परमात्मा की शरण में आया हूँ, जिससे भिन्न कोई भी नहीं है । हे नाथ ! ससार में चक्कर काटने से लिप्त हुआ मैं आप निरतिशय, प्रवासमान एवं मोक्ष स्वरूप ब्रह्म की ही कामना करता हूँ ॥४७॥

### चौथीमर्वा अध्याय

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता ।  
 ग्राहेश सर्वभूतानामनादिनिघनो हरि ॥१॥  
 यथाभिवाञ्छितान्दिव्यान्गच्छ लोकाश्वराधिप ।  
 अव्याहतपरेश्वर्यो मत्प्रसादोपवृ हित ॥२॥  
 भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगान्भग्न्यसि महाकुले ।  
 जातिस्मरो मत्प्रसादात्तता मोक्षमवाप्स्यसि ॥३॥  
 इत्युक्तं प्रणिपत्येश जगतामच्युत नृप ।  
 गुह्यमुखाद्वि निष्क्रान्तस्स ददर्शात्पकाश्वरान् ॥४॥  
 तत बलियुगं मत्वा प्राप्त तप्तु नृपस्तप ।  
 नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५॥  
 कृष्णोऽपि घातयित्वारिमुपत्येन हि तद्बलम् ।  
 जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥६॥  
 आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्या न्यवेदयत् ।  
 पराभिभवनिश्चङ्क बभूव च यदो कुलम् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—महामति मुचुकुन्द द्वारा स्तुत हो कर सर्व-  
भूतेश्वर अनादि एव अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण न रहा ॥१॥ श्री भगवान् बोले—  
हे राजन् ! आप अपने इच्छित दिव्य लोको को गमन कीजिये, आपको मेरी  
कृपा से परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी ॥२॥ कहा आपको अत्यन्त दिव्य भोगों  
की प्राप्ति होगी, फिर एक महान् कुल में आपका जन्म होगा, जिसमें पूर्व जन्म  
वृत्तान्त याद रहेगा और मेरे अनुग्रह से मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥३॥ श्रीपराशर  
जी ने कहा—भगवान् द्वारा इस प्रकार कहे जान पर राजा ने विश्वेश्वर श्री  
कृष्ण को प्रणाम किया और गिरि वन्दरा से बाहर आकर भोगों के आहार  
बहुत छोटे हुए देखे ॥४॥ उस समय कलियुग को आया जानकर तप करने की  
इच्छा से राजा मुचुकुन्द नर-नरामण के परम रयान रूप गधमाशन पर्वत पर  
चले गये ॥५॥ इस यत्न से दानु को समाप्त कर श्रीकृष्ण मधुग को लोट आये  
और कालयज्ञ की रथ, हाथी, घोड़े आदि से युगजित सम्पूर्ण सेना को अपने  
बस में करके द्वारका जाकर उग्रगन का सौंप दी । उस समय ही यादव दानुओं  
की ओर से भय रहित हो गये ॥६-७॥

बलदेवोऽपि मंत्रेय प्रदान्ताखिलविग्रह ।  
ज्ञातिदर्शनमोत्वण्ठ प्रययौ नन्दगोबुलम् ॥८॥  
ततो गोपाश्च गोपीश्च यथापूर्वमभिप्रजित् ।  
तथैवाम्ययत्प्रेम्णा बहूमानपुरस्मरम् ॥९॥  
स वैश्वित्मम्परिवृक्त वाश्विच्च परिपम्बजे ।  
हास्य चक्रं सम वंश्रिदुर्गोपगोपीजनैस्तथा ॥१०॥  
प्रियाण्यनेनान्यउदन् गोपास्तत्र हन्यायुधम् ।  
गाव्यश्च प्रेमगुपिता प्रांगुस्तेष्वमयापग ॥११॥  
गोप्य पप्रच्छुरपग नागरोजनवल्लभ ।  
वक्षिदाम्ते सुग कृष्णश्चनप्रेमलयात्मक ॥१२॥  
अम्महं प्रामपहमत्र वक्षित्पुण्योपिताम् ।  
सोभामयमानमधिर वरोति क्षणमाहृद ॥१३॥

कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कलम् ।

अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४

हे मंत्रेयजी ! जब यह सम्पूर्ण विग्रह दान्त हो गया तब बलरामजी अपने बन्धुओं से मिलने के लिये नन्द जी के गोकुल को पधारे ॥८॥ वहाँ जाकर उन्होंने गोपो और गोपियों को पूर्ववत् अत्यन्त आदर और प्रेम पूर्वक अभिवादन किया ॥९॥ किसी को उन्होंने हृदय से लगाया और कोई उनसे कण्ठ से कण्ठा भिड़ा कर मिला तथा किसी गोपी और गोप के साथ उनका हास परिहास हुआ ॥१०॥ गोपो ने उनसे अनेक प्रकार से प्रिय सम्भाषण किया तथा किसी गोपी ने प्रेम युक्त उपालम्भ दिया और किसी ने प्रणय कोप प्रदर्शित किया ॥११॥ बिन्ही गोपियों ने उनसे प्रश्न किया कि अल्प प्रेम और चञ्चल चित्त वाले तथा नगर की स्त्रियों के प्राणवत्सल श्रीकृष्ण कुशल से तो हैं ॥१२॥ उन क्षणिक स्नेह वाले कृष्ण ने क्या हमारे प्रेम का उपहास और नगर की स्त्रियों के सौभाग्य और सम्मान की वृद्धि नहीं की है ? ॥१३॥ क्या वे कभी हमारे गीतमय मनोहर स्वर की भी याद करते हैं ? और क्या वे एक बार अपनी माता की देखने के लिये भी यहाँ नहीं आवेंगे ? ॥१४॥

अथवा कि तदालापैः क्रियन्तामपराः कथाः ।

यस्यास्माभिर्विना तेन विनास्माकं भविष्यति ॥१५

पिता माता यथा भ्राताभर्ता बन्धुजनश्च किम् ।

सन्त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञध्वजो हि सः ॥१६

तथापि कच्चिदालापमिहागमनसंश्रयम् ।

करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता राम नानृतम् ॥१७

दामोदरोऽमी गोविन्दः पुरस्त्रीसक्तमानसः ।

अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दशः प्रतिभाति नः ॥१८

आमित्रतश्च कृष्णोति पुनर्दामोदरेति च ।

जहमुष्मन्मरे गोप्यो हरिणा हतचेतसः ॥१९

रान्देशंस्माममधुरैः प्रेमगर्भैरगविजैः ।

रामेणाश्रमिना गोप्यः कृष्णस्यानिमनोहरैः ॥२०

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत् ।

वृन्दावनसमुत्पन्नकदम्बतरुकोटरे ॥४॥

विचरन् बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुत्तमम् ।

आध्नाय मदिरातर्पणमवापाथ वराननः ॥५॥

ततः कदम्बात्सहसा मद्यधारा स लाङ्गली ।

पतन्ती बोक्ष्य मैत्र्य प्रययौ परमा मुदम् ॥६॥

पपौ च गोपगोपीभिस्समुपेतो मुदान्वितः ।

प्रगीयमानो ललित गीतवाद्यविशारदः ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—अपने महान् कार्यों के द्वारा पृथिवी को चलाय-  
मान करने वाले तथा धरणी के धारण करने वाले माया स मनुष्य बने हुए  
दोषावतार बलरामजी को गोपों के साथ व्रजभूमि में क्रीड़ा करते देख कर बहण  
ने उनके भोग के निमित्त वारुणी को आज्ञा दी ?—हे मंदिर! जिन महाबली अनन्त  
भगवान् को तुम सदा ही प्रिय लगती हो, उनके उपभोग और प्रसन्नता के निमित्त  
तुम क्षीघ्र ही उनके पास पहुँचो ॥१-३॥ वरण की आज्ञा पाकर वह वारुणी  
वृन्दावन में उत्पन्न हुए कदम्ब तरु के कोटर में जाकर स्थित हुई ॥४॥ जब  
मनोहर मुख वाले बलरामजी वन में घूम रहे थे, तब मदिरा की गंध पाकर  
जन्होंने उसके पान करने की इच्छा की ॥५॥ हे मैत्रेयजी! उसी कदम्ब के वृक्ष  
से धार रूप में मदिरा गिरने लगी, जिसे देखने पर बलरामजी को अत्यंत  
प्रसन्नता हुई ॥६॥ फिर गायन-वादन चतुर गाप-गोपियों के मधुरालाप पूर्वक  
उनके साथ मिल कर बलरामजी ने हर्ष सहित मदिरा का पान किया ॥७॥

स मत्तोऽन्यन्तर्धर्माग्नि कणिकामौक्तिकोज्ज्वलः ।

आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वलः ॥८॥

तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामवमत्य वै ।

नाजगाम ततः कुन्तो हल जग्राह लाङ्गली ॥९॥

गृहीत्वा ता हलान्तेन चकपे मदविह्वलः ।

पापे नायासि नायासि गम्यतामिच्छयान्यतः ॥१०॥

साकृष्टा सहसा तेन मार्गं सन्त्यज्य निम्नगा ।  
यत्रास्ते बलभद्रोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११  
शरीरिणी तदाभ्येत्य त्रासविह्वललोचना ।  
प्रसीदेत्यन्नवीद्राम मुञ्च मा मुसलायुध ॥१२  
ततस्तस्या मुवचनमाकर्ण्य स हलायुध ।  
सोऽन्नवीदवजानासि भम शौर्यबले नदि ।  
सोऽहं त्वा हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा ॥१३

फिर धूप के अधिक ताप से स्वेद बिन्दु रूपी मोतियो से सुशोभित हुए मदनोन्मत्त बलरामजी ने विह्वलता पूर्वक कहा हे यमुने ! यहाँ आ, मेरी इच्छा स्नान करने की है ॥८॥ उनके उस कथन को यमुना ने मदिरा से उन्मत्त हुए मनुष्य का प्रलाप मात्र समझा और उस पर कुछ भी ध्यान न देती हुई वह वहाँ नहीं पहुँची । इस पर क्रोधित होकर उन्होंने अपना हल ग्रहण किया ॥९॥ उन मदविह्वल बलराम ने हल को नाव से यमुना को पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—शरी पापे ! तू नहीं आई ? अच्छा तू अपनी इच्छा से कही जाकर तो दिखा ॥१०॥ इस प्रकार बलरामजी के द्वारा खिंची हुई यमुना अपने मार्ग को छोड़ कर, जहाँ बलराम खड़े थे वहाँ आ गई और उम स्नान को जल से भर दिया ॥११॥ फिर वह भय से अश्रु-युक्त नेत्र वाली यमुना देह धारण कर बलरामजी के समक्ष उपस्थित हुई और उसने उनसे कहा—हे हलधर ! आप प्रवृत्त होकर मुझे मुक्त कर शीजिय ॥१२॥ उसकी बात सुनकर बलरामजी बोले—हे नदी ! क्या तू मेरे शौर्य और बल का तिरस्कार करती है । देख, इस हल के द्वारा ही मैं तूरी हज़ारा धाराएँ बना दूँगा ॥१३॥

इत्युक्त्यातिसन्त्रासात्तया नद्या प्रसादित ।  
भूभागे प्लाविते तस्मिन्मुमोच यमुना बल ॥१४  
ततस्स्नातस्य वै कान्तिरजायत महात्मन ।  
अवतसोत्पत चारु गृहीत्वैव च कुण्डलम् ॥१५  
वरुणप्रहिता चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम् ।  
समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले तक्ष्मीरयच्छत ॥१६



कृतावतंसस्स तदा चारुकुण्डलभूषितः ।  
 नीलाम्बरधरस्त्रग्वी शुशुभे कान्तिसयुतः ॥१७॥  
 इत्थं विभूषितो रेमे तत्र रामस्तथा व्रजे ।  
 मासद्वयेन यातश्च स पुनर्द्वारिकां पुरीम् ॥१८॥  
 रेवती नाम तनयां रैवतस्य महीषते ।  
 उपयेमे बलत्तस्यां जज्ञाते निशठोल्मुकी ॥१९॥

श्री पराशरजी ने कहा—बलरामजी के ऐसा कहने पर भय से काँपनी हुई यमुना उस भू-खण्ड पर प्रवाहित होने लगी, तब प्रसन्न होकर उन्होंने यमुना को मुक्त कर दिया ॥१४॥ उसमें स्नान कर लेने पर महात्मा बलरामजी अत्यंत सुशोभित हुए । तब लक्ष्मीजी ने प्रकट होकर उन्हें एक सुन्दर कुरङ्गल, वरुण द्वारा भेजी गई सदा प्रफुल्लित रहने वाली पद्ममाला और ममूद्र जैसी कान्ति वाले दो नीलाम्बर प्रदान किये ॥१५-१६॥ उन सब को धारण करके बलरामजी अत्यंत कांति वाले और शोभा सम्पन्न हो गये ॥१७॥ इस प्रकार झलझुल हुए बलरामजी ने व्रज में लीलाएँ करते हुए दो मास पर्यंत निवास किया और फिर द्वारकापुरी में लौट आये ॥१८॥ जहाँ उन्होंने राजा रैवत की पुत्री रेवती का पाणिग्रहण किया और उससे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१९॥

### छत्वीसवाँ अध्याय

भीष्मकः कुण्डिने राजा विदभंविपयेऽभवत् ।  
 रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना ॥१॥  
 रुक्मिणी चकमे कृष्णस्सा च तं चारुहासिनी ।  
 न ददौ याचते चैना रुक्मी द्वेपेण चक्रिणे ॥२॥  
 ददौ च शिशुपालाय जरासन्धप्रचोदितः ।  
 भीष्मको रुक्मिण्या साद्धं रुक्मिणीपुरदिग्धम् ॥३॥

विवाहार्थं तत सर्वे जरासन्धमुखा नृपाः ।  
भीष्मकस्य पुरं जग्मुश्शिशुपालप्रियैर्पिणः ॥४॥  
कृष्णोऽपि बलभद्रार्थं यदुभिः परिवारितः ।  
प्रययौ कुण्डिन द्रष्टुं विवाहं च यभूभृतः ॥५॥

श्री पराशरजी ने कहा—विदर्भदेश में कुण्डिनपुर नामक एक नगर था, जिसका शासन राजा भीष्मक करते थे उनके पुत्र का नाम रुक्मी और पुत्री का नाम रुक्मिणी था ॥१॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और रुक्मिणी भी उसी की कामना करती थी, परन्तु भगवान् द्वारा माचना किये जाने पर भी उनके द्वेषी रुक्मी ने रुक्मिणी उन्हें नहीं दी ॥२॥ जरासन्ध की प्रेरणा से राजा भीष्मक ने रुक्मी का प्रस्ताव से सहमत होकर शिशुपाल के लिये अपनी कन्या देना स्वीकार किया ॥३॥ तब शिशुपाल के हित-चिन्तक जरासन्ध आदि सब राजा बरात लेकर महागज भीष्मक के नगर में पहुँचे ॥४॥ यादवों और बलरामजी को साथ लेकर श्रीकृष्ण भी चेदिगज शिशुपाल का विवाह देखने के निमित्त कुण्डिनपुर में आ गये ॥५॥

श्रोभाविनी विवाहे तु ता कन्या हृतवान्हरि ।  
विपक्षभारमासज्य रामादिष्वय बन्धुषु ॥६॥  
ततश्च पाण्डुकश्चीमान्दन्तवक्रो विदूरथः ।  
शिशुपालजरासन्धशाल्वाद्याश्च महीभृतः ॥७॥  
कुपितास्ते हर्षि हन्तुं चक्रुर्योगमुत्तमम् ।  
निजिताश्च ममागम्य रामाद्यैर्यदुपुद्गवै ॥८॥  
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि ह्यहत्वा युधि केशवम् ।  
श्रुत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमनुद्रुतः ॥९॥  
हत्वा च न मनागाश्व पत्तिम्यन्दनमकुलम् ।  
निजितं पातितश्चोर्व्यां लीनयैव न चक्रिणा ॥१०॥  
निजित्य रुक्मिणं सम्प्रगुपयेमे च रुक्मिणीम् ।  
राक्षसेन द्विवाहेन सम्प्राप्ता मधुसूदन ॥११॥

तस्या जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनाग्रस्तवीर्यवान् ।

जहार शम्बरो य वै यो जघान च शम्बरम् ॥१२॥

फिर, जब विवाह होने में एक दिन शेष था तब श्रीकृष्ण ने रक्मिणी का हरण करके विपक्षियों से भिड़ने का भार बलरामजी आदि यादवों को दिया ॥१॥ उस समय पीण्डूव, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शात्वादि नरेशों ने श्रीकृष्ण का बंध करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु बलरामजी आदि वीरश्रेष्ठों से युद्ध में हार गये ॥७-८॥ तब रुक्मी ने कृष्ण को मार बिना, कुरिण्डनपुर में प्रवेश न करने की प्रतिज्ञा की और वेग पूर्वक श्रीकृष्ण का पीछा किया ॥९॥ परन्तु श्रीकृष्ण ने उसकी रथ, घोड़ा, गज और पैदलों से सम्पन्न सेना को पराजित कर रुक्मी को पृथिवी पर गिरा दिया ॥१०॥ इस प्रकार रुक्मी को हराकर राक्षस विवाह की पद्धति से प्राप्त हुई रक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण ने विधिवत् विवाह किया ॥११॥ उन रक्मिणी से उन्होंने कामदेव के प्रशस्ति अत्यंत वीर्यशाली प्रद्युम्न को उत्पन्न किया, जिसका शम्बरगसुर ने हरण कर लिया था और जिसने द्वारा उन शम्बरगसुर की मृत्यु हुई थी ॥१२॥

### मत्तार्त्तिसर्गो अध्याय

शम्बरेण हतो वीर प्रद्युम्न स कथं मुने ।

शम्बर स महावीर्यं प्रद्युम्नेन कथं हत ॥१॥

यस्तेनापहतं पूर्वं स कथं विजघान तम् ।

एतद्विस्तरत श्रोतुमिच्छामि सर्वं स गुरो ॥२॥

पठेऽहं जातमानं तु प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् ।

ममैव हन्तेति मुने हृतवान्कालशम्बरः ॥३॥

हत्वा विक्षेप चैवं स ग्राह्यो लवणारण्ये ।

कल्लोलजनितावर्त्ते सुधोरे मकरालये ॥४॥

पातितं तत्र चैवं चो मत्स्यो जग्राह बालकम् ।

न भमार च तस्यापि जठराग्निप्रदीपित ॥५॥

श्री मैत्रेयजी ने बड़ा-हे मुने ! शम्बरासुर ने महावीर्य प्रद्युम्न को कैसे हर लिया और फिर प्रद्युम्न ने उसका वध किस प्रकार किया ? ॥१॥ जिसका उसने हरण किया उसी न उसको कैसे मार डाला ? हे गुरो ! इस वृत्तान्त को विस्तृत रूप से सुनने की मेरी इच्छा है ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! बाल के समान विकराल शम्बर ने प्रद्युम्न को अपना काल समझ कर जन्म के छठवें दिन ही प्रसूति गृह में चुरा लिया था ॥३॥ उसे चुरा लेने के बाद शम्बर ने तारे समुद्र में डाल दिया, जा कल्बोल जनिष्ठ घावों से परिपूर्ण तथा बड़े मत्स्यो का सदन है ॥४॥ समुद्र में डाले गये उम बालक को एक मत्स्य निगल गया, परन्तु उसकी जठराग्नि में पडकर श्री उसकी मृत्यु नहीं हुई ॥५॥

मत्स्यबन्धेश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यस्सह द्विज ।

यातितोऽमुन्वर्याय शम्बराय निवेदित ॥६॥

तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्वरी ।

कारयामास सुदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥७॥

दारिते मत्स्यजठरे मा ददर्शातिशोभनम् ।

कुमार मन्मथतरोर्ध्वस्थं प्रथमाकुरम् ॥८॥

कोऽयं बन्धमयं मत्स्यजठरे प्रविवेक्षित ।

इत्येव कौतुकाविष्टा तन्वी प्राहाथ नारद ॥९॥

अथ समन्जसजगन् स्थितिसंहारकारिण ।

शम्बरेण हृतो विष्णोस्तनय सूतिकागृहात् ॥१०॥

क्षिप्तस्तमुद्रे मत्स्येन निगीर्यस्ते गृह गत ।

नगरतन्मिदं सुभ्रुं विस्मया परिपालय ॥११॥

नारदेनैवमुक्ता सा पालयामास तं शिशुम् ।

वात्पादेवातिरागेण स्पातिशयमोहिता ॥१२॥

स यदा यौवनाभागभूषिताऽभून्महामते ।

साभिलाषा तदा मापि बभूव गजगामिनी ॥१३॥

मायावती ददौ तस्मै मायाम्मर्त्रा महामुने ।

प्रद्युम्नायानुरागान्वा तन्न्दस्तद्दयेऽगमा ॥१४॥

उस मत्स्य को अन्य मछलियों के सहित मछुओं ने जाल में फँसाया अश्व-  
 शम्बरामुर की भेंट कर दिया ॥६॥ उसकी मायावती नाम की पत्नी उसके घर  
 की स्वामिनी थी और वही श्रेष्ठ लक्षण वाली सब ग्मोइयों की देय भाल करती  
 थी ॥७॥ उस मत्स्य के उदर को चीरते नमय एक सुन्दर बालक दिखाई पड़ा,  
 जो जले हुए नाम रूपी वृक्ष का प्रायमित्र भ्रकुर था ॥८॥ मायावती विस्मय  
 पूर्वक यह सोचने लगी कि 'यह बालक कौन है तथा मत्स्य के उदर में कैसे  
 पड़ा' । उसके इस विस्मय का निवारण देवर्षि नारद ने इस प्रकार किया ॥९॥  
 से मुञ्चू ! यह बालक सम्पूर्ण विद्व की स्थिति और गहार करने वाले भगवान्  
 विष्णु का पुत्र है । शम्बरामुर ने सूतिकागृह में ही इसका अपहरण करके समुद्र  
 में डाल दिया । वहाँ जो मत्स्य इसे निगल गया था, उसके यहाँ लाये जाने पर  
 यह भी यहाँ था गया है । अब तू आश्वस्त होकर इसका परिपालन कर ॥१०-  
 ११॥ श्री पराशरजी ने कहा—नारदजी की बात सुनकर मायावती उस अत्यन्त  
 सुन्दर बालक पर मोहित होती हुई उसका अत्यन्त स्नेह से परिपालन में तत्पर  
 हुई ॥१२॥ जब वह बालक नव बौवन के सम्पर्क में आया तभी से गज गामिनी  
 मायावती उसमें अनुरागमयी हो गई ॥१३॥ हे महामुने ! जिस मायावती ने  
 अनुराग में ग्रन्थी होकर अपने हृदय तथा नेत्रों का उसमें तन्मय कर दिया था,  
 उसने उसे सब प्रकार की माया सिखा डाली ॥१४॥

प्रसञ्जन्ती तु ता प्राह स कार्णि कमलेक्षणाम् ।

मातृत्वमपहायाद्य किमेव वर्तसेऽन्यथा ॥१५॥

सा तस्मै कथयामास न पुत्रस्त्व भमेति वै ।

तनय त्वामय विष्णोर्हृतवान्कालशम्बर ॥१६॥

क्षिप्तः समुद्रे मत्स्यस्य सम्प्राप्तो जठरान्मया ।

सा हि रोदिति ते माता कान्ताद्याप्यतिवत्सला ॥१७॥

इत्युक्तश्शम्बर युद्धे प्रद्युम्न स समाह्वयत् ।

क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबल ॥१८॥

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य यादव ।

सप्त माया ज्यतिव्रम्य माया प्रयुयुजेऽष्टमीम् ॥१९॥

तया जघान त दैत्य मायया कालशम्बरम् ।

उत्पत्य च तया सार्द्धमाजगाम पितुः पुरम् ॥२०॥

इम प्रकार उस पचासी वी अपने ऊपर आसक्त हुई देवकी प्रद्युम्न ने कहा—तुम मातृत्व के भाव को छोड़ कर अन्य भाव क्यों दिखा रही हो ? ॥१५॥ इस पर मायावती बोली—तुम मेरे पुत्र नहीं, भगवान् विष्णु के पुत्र हो । शम्बरामुर न तुम्हें चुरा कर जिम समुद्र में डाल दिया था, उम समुद्र में प्राप्त मत्स्य के पेट में तुम मुझे मिले हो । पुत्र स्नेह से यतन हुई तुम्हारी माता अब भी विलाप करत होगी ॥१६-१७॥ श्री पराशरजी ने कहा—मायावती की बात सुनकर महाबली प्रद्युम्न ने क्रोधाकुल होकर शम्बरामुर को ललकारा और उसमें भिड़ गये ॥१८॥ फिर उम दैत्य को सब सेना का महार कर और उसकी मात मायामो को अपने वन में बंधे छाठवी माया का स्वयं प्रयोग किया ॥१९॥ उसी माया के द्वारा उन्होंने शम्बरामुर का वध कर दिया और मायावती को साथ लेकर गगन मार्ग से अपने पिता की द्वारकापुरी में आ पहुँचे ॥२०॥

अन्त पुत्रे निपातित मायावत्या समन्वितम् ।

त दृष्ट्वा कृष्णसङ्कल्पा बभूवुः कृष्णयोपित ॥२१॥

रुक्मिणी साभवत्प्रेम्णा साऽदृष्टिरनिन्दिता ।

धन्याया खल्वय पुत्रो वर्तते नवयौवने ॥२२॥

अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ।

सभाग्या जननी वत्स सा त्वया वा विभूषिता ॥२३॥

अथवा यादृश स्नेहो मम यादृश्वपुस्तव ।

हरेरपत्य सुव्यक्त भवान्वत्स भविष्यति ॥२४॥

मायावती के साथ अन्न पुर में जान पर श्रीकृष्ण की रानियों ने उन्हें कृष्ण ही समझा ॥२१॥ परन्तु उसे देखकर रुक्मिणीजी के नेत्रों में आसू आगये और वे कहने लगी कि यह नवयौवन का प्राप्त हुआ किसी बटभागिनी का ही पुत्र होगा ॥२२॥ यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न कहीं जीवित हो तो उसकी अवस्था भी इतनी ही होगी । हे वत्स ! तेरे स कोन—मीमांसावती माता अलकृत हुई है ? ॥२३॥ अथवा जैसे तेरा रूप है और मेरा चित्त तेरी ओर स्नेह से आक-

पित हुआ है, उससे यही लगता है कि तू भगवान् का ही पुत्र है ॥२४॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तस्सह कृष्णेन नागद ।

अन्त पुग्चरा देवी रुक्मिणी प्राह हर्षयन् ॥२५॥

एष ते तनय सूभ्रु हत्वा शम्बरमागत ।

हतो येनाभवद् बालो भवत्यास्तूतिकागृहात् ॥२६॥

इय मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती ।

शम्बरस्य न भार्येय श्रुयतामत्र कारणम् ॥२७॥

मन्मथे तु गते नाग तदुद्धवपरायणा ।

शम्बर मोहयामास मायारूपेण रूपिणी ॥२८॥

विहाराद्युपभोगेषु मायामय शुभम् ।

दर्शयामास दैत्यस्य यस्येय मदिरक्षणा ॥२९॥

कामोऽवतीर्णं पुत्रस्ते तस्येय दयिता रति ।

विशङ्का नात्र कर्तव्या स्नुषेय तव शोभने ॥३०॥

ततो हर्षसमाविष्टी रुक्मिणीकेशवी तदा ।

नगरी च ममस्ता सा माधुसाधिरत्यभाषत ॥३१॥

चिर नष्टं पुत्रेण मङ्गला प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् ।

अवाप विष्मय सर्वो द्वाग्वत्पा तदा जन ॥३२॥

श्री पराशरजी ने कहा—उसी समय श्रीकृष्ण ने साथ नारदजी भी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने रुक्मिणीजी को अत्यन्त आनन्दित करते हुए कहा— हे श्रेष्ठ भ्रूवाली ! यह तेरा ही पुत्र है, जो शम्बरानुर का वध करके यहाँ आया है । इसी को उसने सूतिकागृह से चुरा लिया था ॥२६॥ यह मायावती शम्बरानुर की श्री नहीं है, तेरे इसी पुत्र की पत्नी है, अब मुझे इसका कारण सुन ॥२७॥ जब पूर्वकाल में कामदेव भग्न हो गया था तब उसके पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करती हुई इस मायावती ने अपने भाषा युक्त-रूप में शम्बरानुर को मोहित कर लिया था ॥२८॥ यह मत्त नया बानी मायावती उस दैत्य का विहारादि कर्म मम अपने प्रत्यक्ष सुन्दर मायामय रूपों का दर्शन करानी रहनी थी ॥२९॥ वह नामदन ही तेरे यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ है और यह

उसकी पत्नी रति है । हे शोभने ! इसके अपनी पुत्रवधू होने में कोई सन्देह मत कर ॥३०॥ इस बात से रुक्मिणी और वृष्ण अत्यन्त आनन्दित हुए और द्वारका में निवास करने वाले सभी मनुष्यों को हर्ष हुआ ॥३१॥ बहुत समय से नष्ट हुए पुत्र के साथ रुक्मिणी का पुनर्मिलन देखकर द्वारका वासियों को अत्यन्त विस्मय हुआ ॥३२॥

### अष्टाडेमवां अध्याय

चारुदेष्ण च चारुदेह च वीर्यवान् ।

सुपेण चारुगुप्त च भद्रचारु तथा परम् ॥१॥

चारुविन्द सुचारु च चारु च बलिना वरम् ।

रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्या चारुमती तथा ॥२॥

अन्याश्च भार्या कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभना ।

कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्राजिती तथा ॥३॥

देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी ।

मद्राजमुता चान्या सुग्रीवा शीलमण्डिता ॥४॥

माग्राजिती मत्स्यभामा लक्ष्मणा चारुहामिनी ।

षोडशासन् सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिण ॥५॥

श्री पराशरजी न बट्टा—रुक्मिणीजी के चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुपेण, चारुगुप्त भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और चारु नामक महाबली पुत्र तथा चारुमती नाम की एक पुत्री हुई ॥१॥ २॥ रुक्मिणी के प्रतिरिक्त श्रीकृष्ण की जो सात रानियाँ थीं उनमें नाम कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, कामरूपिणी जाम्बवती, रोहिणी, मद्राजमुता भद्रा मग्राजितमुता, मत्स्यभामा और मुन्दर हामवानी लक्ष्मणा अत्यन्त सुन्दर थीं । इनके अनिर्गुण श्रीकृष्ण के मोनह हुआ रानियाँ और थीं ॥३-४-५॥

प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिण्यमनया शुभाम् ।

म्वयवरे ता जग्राह मा च त तनय हरे ॥६॥



तस्यामभ्याभवत्पुत्रो महाबलपराक्रमः ।

अनिरुद्धो रणे रुद्धवीर्योदधिररिन्दमः ॥७

तस्यापि रुक्मणः पौत्रो वरयामास केशव ।

दोहित्राय ददौ रुक्मी ता स्पृष्ट्वन्नपि चक्रिणा ॥८

तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह ।

रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विज ॥९

विवाहे तत्र निर्धूतं प्राद्युम्नेस्तु महात्मनः ।

कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणः वाक्यमब्रुवन् ॥१०

अनक्षत्रो हली द्यूते तथास्य व्यसनं महत् ।

न जयामो बलं कस्माद् द्यूतेनैव महाबलम् ॥११

महाबली प्रद्युम्न न रुक्मी की कन्या की कामना की ओर उस कन्या ने भी प्रद्युम्न का स्वयंवर में धरणा किया ॥६॥ प्रद्युम्न न उस स्वयंसीसुता से अनिरुद्ध नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो युद्ध में कभी न हकने वाला और शत्रुओं का मर्दन में बल का समुद्र ही था ॥७॥ श्रीकृष्ण ने रुक्मी की पौत्री के साथ उसका विवाह किया । श्रीकृष्ण से द्वेष होते हुए भी रुक्मी ने अपने दोहित्र को अपनी पुत्री देने का निश्चय कर लिया ॥८॥ श्रीकृष्ण के साथ बलरामजी तथा अन्य यादवगण भी उस विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये राजा रुक्मी के भोजकट नामक नगर में जा पहुँचे ॥९॥ प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध का विवाह—सम्कार पूरा हो चुकने पर कलिगराज आदि प्रमुख नरेशों ने रुक्मी से कहा—यह बलरामजी द्यूत क्रीड़ा में चतुर न होते हुए भी, उसके बड़े इच्छुक रहते हैं । इसलिये हम उन्हें द्यूत में ही क्यों न पराजित कर दें ? ॥११॥

तथेति तानाह नृपान् रुक्मी बलमदान्वितः ।

सभाया सह रामणं चक्रे द्यूतं च वै तदा ॥१२

सहस्रमेकं निष्काराणां रुक्मिणा विजितो बलः ।

द्वितीयेऽपि परो चान्यत्सहस्रं रुक्मिणा जितं ॥१३

ततो दशसहस्राणि निष्काराणां परामाददे ।

बलमद्रोऽजयत्तानि रुक्मी द्यूतविदा वरः ॥१४

ततो जहास स्वनवत्कलिङ्गाधिपतिद्विज ।

दन्तान्विदर्शयन्मूढो रुक्मी चाह मदोद्धत ॥१५॥

अविद्योऽय मया द्यूते बलभद्र पराजित ।

मुधेवाक्षावलेपान्धो योऽवमेनेऽक्षकोविदान् ॥१६॥

श्री पराशरजी ने कहा—तब बल-मद से उत्तम हुआ रुक्मी उन

राजाओं से 'बहुत अच्छा' कहकर सभा में गया और बलरामजी के साथ द्यूत-

क्रीड़ा करने लगा ॥१२॥ प्रथम दाँव में उसने एक हजार निष्क जीते तथा

द्वितीय दाँव में भी एक हजार निष्क पुन जीत लिये ॥१३॥ फिर बलरामजी

ने दस सहस्र निष्क का दाँव लगाया, उसमें भी वे रुक्मी से हार गये ॥१४॥

इस पर कलिगराज उनकी हँसी उड़ाता हुआ जार-जार में हँसने लगा । उसी

समय रुक्मी ने कहा—द्यूतक्रीड़ा न जानने वाल बलरामजी मुझसे हार गये हैं,

यह पासे के घमण्ड में व्यर्थ ही पाने में मुझसे व्यक्तियों का तिरस्कार करते

थे ॥१६॥

दृष्ट्वा कलिङ्गराज त प्रयाशदशनाननम् ।

रुक्मिणा चापि दुर्वाक्य कोप चक्रे हलायुध ॥१७॥

ततः कापपरीतात्मा निष्वकाटि समाददे ।

ग्लह जग्राह रुक्मी च तदर्थेऽश्नानपातयत् ॥१८॥

अजयद्वलदेवस्त प्राहोर्चर्चविजित मया ।

मयेति रुक्मी प्राहोर्चरलीकोक्तेरल बल ॥१९॥

त्वयोक्तोऽय ग्लहस्मृत्य न मय्यपोऽनुमोदित ।

एव त्वया चेद्विजित विजित न मया वयम् ॥२०॥

अथान्तरिक्षे वागुच्चै प्राह गम्भीरनादिनी ।

बलदेवस्य त कोप वद्धयन्ती महात्मन ॥२१॥

जित बलेन धर्मणा रुक्मिणा भाषित मृषा ।

अनुवत्वापि वचः किञ्चित्कृत भवति धर्मणा ॥२२॥

इस प्रकार कलिगराज को हँसी उड़ाते और रुक्मी को दुर्वचन कहते

देताकर बलरामजी को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१७॥ तब उन्होंने क्रोध पूर्वक एक

बराह निष्क दाँव पर लगाये और उम जीतने के लिये स्वामी ने भी पासे डाले ॥१८॥ उस दाँव को बलरामजी जीत गया और उच्च स्वर से बोल कि इसे मैं जीता हूँ । इस पर स्वामी ने भी जोर से कहा कि बलरामजी ! मिथ्या वचन कहने में क्या लाभ है ? यह दाँव मैंने ही जीता है ॥१९॥ आपने इस दाँव के विषय में जो कहा था, उसका मैंने अनुमोदन कदापि नहीं किया । इस प्रकार यदि आप इस अपन द्वारा जीता हुआ कहते हैं तो मैंने ही इस किस प्रकार नहीं जीता है ? ॥२०॥ श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् बलरामजी की क्रोध वृद्धि करती हुई आकाश वाणी ने गम्भीर स्वर में कहा—इस दाँव की जीत बलरामजी की ही हुई है, स्वामी का वचन यथार्थ नहीं है, क्योंकि वचन के अभाव में भी कार्य के द्वारा अनुमोदन हुआ ही माना जायगा ॥२१-२२॥

ततो बल समुत्थाय कोपसरक्तलोचन ।

जघानाष्टापदेनैव रुक्मिणं स महाबल ॥२३॥

बलिङ्गराज चादाय विस्फुरन्त बलाद्वल ।

वभञ्ज दन्तान्कुपितो यै प्रकाश जहास स ॥२४॥

आकुप्य च महास्तम्भ जातरूपमय बल ।

जघान तान्येतत्पक्षे भूभृत कुपितो भृशम् ॥२५॥

ततो हाहाकृत सर्व पलायनपर द्विज ।

तद्राजमण्डल भीत वभूज कुपिते बले ॥२६॥

बलेन निहत दृष्ट्वा रुक्मिणं मधुसूदन ।

नोवाच किञ्चिन्मन्त्रेण रुक्मिणीवल्लभयात् ॥२७॥

ततोऽनिरुद्धमादाय कृतदार द्विजोत्तम ।

द्वारकामाजगामाथ यदुचक च केशव ॥२८॥

तब क्रोध से लाल नत्र वाल बलरामजी ने जुआ खेलने के पासे से ही रुक्मी का वध कर दिया ॥२३॥ फिर दाँता का दिखाकर बलरामजी की हसी उड़ान वाले बलिङ्गराज को पकड़ कर उन्होंने उसका दाँत तोड़ डाले ॥२४॥ इनके अनिरुद्ध उसके पक्ष के जो भी राजा थे, वे सब एक सोने के स्तम्भ को उखाड़ कर, उससे मार दिए ॥२५॥ हे द्विज ! बलरामजी को क्रोधित हुए

दण्डकर जम समय हा-हाकार मच गया और सभी राजागण डर के मार वहाँ से भाग गये ॥२६॥ हे मौन्यजी ! हमी का वध हुआ दण्डकर श्रीकृष्ण ने बलरामजी और खिमणीजी दोनों के ही डर के कारण मौन धारण कर लिया ॥२७॥ फिर हे द्विजोत्तम ! फिर श्रीकृष्ण पत्नी युक्त अनिन्द्य का माय लेकर सम्पूर्ण यादवा के सहित द्वारका में लौट आये ॥२८॥

### उसन्नां अध्याय

द्वारवत्या स्थिते कृष्णे शक्रस्त्रिभुवनेश्वर ।  
 आजगामाथ मौन्येय मत्तं रावतपृष्ठे ॥१॥  
 प्रविश्य द्वारका सोऽथ समेत्य हरिणा तन ।  
 वययामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम् ॥२॥  
 त्वया नायेन देवाना मनुष्यैश्चपि तिष्ठता ।  
 प्रदाम सर्वदुःखानि नीतानि मधुमूदन ॥३॥  
 तपम्विध्यमनार्याय साऽरिष्टो धनुस्त्वया ।  
 प्रदृत्तो यस्त्वया वंशी त सर्वे निहतान्त्वया ॥४॥  
 वग युवनयापीड. पूतना बालघातिनी ।  
 नाग नीतास्त्वया सर्वे वज्र्ये जगदुपद्रवा ॥५॥  
 पुष्पदादण्डमभूतिपरित्रात जगत्त्रय ।  
 यज्यमानागमप्राप्त्या तृप्तिं यान्ति रिपोरस ॥६॥  
 नाऽहं नाम्प्रतापयामा यन्निमित्तं जनादन ।  
 तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीसारप्रयत्नं कर्तुं महामि ॥७॥

है ॥३॥ अरिष्ट, धेनुक, केशी आदि जो दैत्य सदा तपस्वियों को सताया करते थे, उन सबका आपने वध कर दिया ॥४॥ कस, कुवलयपीड और बालघातिनी पूतना अथवा अन्य सभी उपद्रवियों को आपने मार डाला ॥५॥ आपके भुज-दण्ड के आश्रय में तीनों लोकों के सुरक्षित होने के कारण यज्ञ भागों को प्राप्त करते हुए सब देवताओं को अब तृप्ति-लाभ हो रहा है ॥६॥ हे जनार्दन ! अब मैं जिस कारण से यहाँ आया हूँ, उसे श्रवण कर उसके निवारण का उपाय करिये ॥७॥

करोति सर्वभूतानामुपघातमरिन्दम ॥८॥

देवसिद्धासुरादीना नृपाणा च जनार्दन

हृत्वा तु सोऽमुर कन्या ररुधे निजमन्दिरे ॥९॥

छन यत्सलिलस्तावि तज्जहार प्रचैतस ।

मन्दरस्य तथा शृङ्ग हृतवान्मणिपर्वतम् ॥१०॥

अमृतस्ताविणी दिव्ये मन्मातु कृष्ण कुण्डले ।

जहार सोऽमुरोऽदित्या वाञ्छित्यैरावत गजम् ॥११॥

दुर्नीतमेतद्गोविन्द मया तस्य निवेदितम् ।

यदन प्रतिकर्तव्य तत्स्वय परिमृश्यताम् ॥१२॥

इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीमुत ।

गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्थो वगसनात् ॥१३॥

सञ्चिन्त्यागतमारुह्य गरुड गगनेचरम् ।

सत्यभामा समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिष पुरम् ॥१४॥

हे शत्रुघ्नो क नाशक ! पृथिवी-पुत्र भरकासुर प्राग्ज्योतिषपुर का अधीश्वर है । वह सभी प्राणियों को नष्ट करने में लगा हुआ है ॥८॥ हे जनार्दन ! उसने देवता, सिद्ध, असुर और राजा आदि की पुत्रियों का बलपूर्वक अपहरण किया और उन्हें अपने अन्त पुर में रख लिया है ॥९॥ उसने वरुण का जन-वर्षक छत्र तथा मन्दराचल का मणि पर्वत नामक शृङ्ग भी छीन लिया है ॥१०॥ हे कृष्ण ! उसन मेरी माता अदिति के नुरण्डल भी बलपूर्वक ले लिये हैं और अब इस ऐरावत को भी छीन लेने की इच्छा करता है ॥११॥ हे गोविन्द ! उसकी

सभी दुर्नीतियों का मैंने आपसे वरुण कर दिया है, अब उसके प्रतिकार का उपाय आप स्वयं ही सोच लें ॥१२॥ इन्द्र की बात सुनकर भगवान् कुछ मुसकराये और इन्द्र का हाथ पकड़ते हुए आसन से उठ खड़े हुए ॥१३॥ फिर उन्होंने गरुड का स्मरण किया और उसके उपस्थित होते ही सत्यगामा सहित उस पर आरोहण होकर प्राग्न्योतिषपुर के लिये चल दिये ॥१४॥

आरुह्यै रावत नाग शक्रोऽपि त्रिदिक् ययौ ।

ततो जगाम कृष्णश्च पश्यता द्वारकौकसाम् ॥१५॥

प्राग्न्योतिषपुरस्यापि समन्ताच्छतयोजनम् ।

आचिता मोरवै पाशौ क्षुरान्तर्भू द्विजोत्तम ॥१६॥

ताश्चिच्छेद हरि पाशान्क्षिप्त्वा चक्र सुदर्शनम् ।

ततो मुरस्समुत्तस्थौ त जघान च केशव ॥१७॥

मुरस्य तनयान्सप्त सहस्रास्तास्ततो हरि ।

चक्रधाराग्निनिर्दग्धाश्चकार शलभानिव ॥१८॥

हत्वा मुर हयग्रीव तथा पञ्चजन द्विज ।

प्राग्न्योतिषपुर धीमास्त्वरारान्समुपाद्रवत् ॥१९॥

नरकेणास्य तत्राभून्महासैन्येन सयुगम् ।

कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान्सहस्रश ॥२०॥

क्षिप्त्वा चक्र द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा ॥२१॥

हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वादितिकुण्डले ।

उपतस्थे जगन्नाथ वाक्य चेदमयाद्रवीत् ॥२२॥

सब द्वारकावासियों के देखते-देखते इधर श्रीकृष्ण चल दिये, उधर इन्द्र भी अपने ऐरावत पर चढ़कर स्वर्गलोक को चले गये ॥१५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्राग्न्योतिषपुर के चारों ओर सौ योजन तक की भूमि मुरदैत्य निर्मित छुरा की धार के समान अत्यन्त तीक्ष्ण पाशों के द्वारा घिरी हुई थी ॥१६॥ उन पाशों को श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला तो मुरदैत्य उनसे लड़ने के लिये सामने आया तभी उन्होंने उसका वचन कर डाला ॥१७॥ फिर उन्होंने मुर के सात सहस्र पुत्रों को अपने चक्र की धार रूप ज्वाला में पतन के समान

जला दिया ॥१८॥ इस प्रकार महाभैयावो श्रीकृष्ण मुर, हयग्रीव और पञ्चजन  
आदि दैत्यों का सहार कर प्राग्ज्योतिपुर में प्रविष्ट हुए ॥१९॥ वही उन्होंने  
अत्यन्त विनाश सेना वाले नरकामुर से युद्ध किया, जिममें उसके हजारों दैत्य  
मारे गये थे ॥२०॥ दैत्यदल-दलन, चक्रघारी भगवान् श्रीहरि ने दास्त्रास्त्रों की  
पर्या करतें हुए पृथिवीमुर नरकामुर के अपने मुदर्शन चक्र से दो राख्ड कर डाले  
॥२१॥ उसके मरते ही अदिति के कुण्डलो को हाथ में लिये हुए पृथिवी मूर्ति  
मान् रूप से उपस्थित हुई और श्रीकृष्ण के प्रति बोली ॥२२॥

यदाहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना ।  
त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तदायं भग्यजायत ॥२३॥  
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः ।  
गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सन्ततिम् ॥२४॥  
भारावतरणार्थाय भवेयं भगवानिमम् ।  
अ दोन लोकमायातः प्रसादसुसुखः प्रभो ॥२५॥  
त्व कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽप्ययः ।  
जगता त्व जगद्रूप स्तूयतेऽच्युत किं तव ॥२६॥  
व्याप्तिर्व्याप्यं क्रिया कर्ता कार्यं च भगवन्मया ।  
सर्वभूतात्मभूतस्य स्तूयते तव किं तथा ॥२७॥  
परमात्मा च भूतात्मा त्वमात्मा चाव्ययो भवान् ।  
यथा तथा स्तुतिर्नाथ किमर्थं ते प्रवर्तते ॥२८॥  
प्रसीद सर्वभूतात्मभूतकेण तु यत्कृतम् ।  
तत्क्षम्यतामदोषाय त्वत्सुतस्त्वन्निपातितः ॥२९॥

पृथिवी ने कहा—हे नाथ ! जब बराह रूप में भवतीएँ हो कर आपने  
मुझे निकाला था, तब आपके ही स्पर्श से मेरे इस पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२३॥  
इस प्रकार आपके द्वारा दिये हुए पुत्र को आपने स्वयं ही मार दिया, अब आप  
इन कुण्डलो को ग्रहण करिये तथा इसकी सन्तति की रक्षा करिये ॥२४॥ हे  
प्रभो ! आपने मुझे प्रसन्न हो कर मेरा बोक उतारने के लिये अपने अंश से  
भवतार ग्रहण किया है ॥२५॥ हे अच्युत ! आप ही इस विश्व के कर्ता,

स्थितिकर्त्ता तथा हर्त्ता हैं, आप जगद्रूप ही इसकी उत्पत्ति लय के स्थल हैं, फिर मैं आपके किस वृत्तान्त को लेकर स्तुति करूँ ॥२६॥ हे प्रभो ! आप ही व्याप्ति व्याप्त, क्रिया, कर्त्ता, कार्यरूप एवं सब के आत्म स्वरूप हैं तब किस वस्तु के द्वारा आपकी स्तुति की जाय ? ॥२७॥ आप ही परमात्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी जीवात्मा है, सब किस वस्तु के लिये आपकी स्तुति की जा सकती है ? ॥२८॥ हे सर्व भूतात्मन् ! आप प्रसन्न होकर नरकासुर के सब अपराधों को क्षमा कर दीजिये, आपने अपने इस पुत्र का वध उसे दोषों से मुक्त करने के लिये ही किया है ॥२९॥

तथेति चोक्त्वा घरणी भगन्वान्भूतभावन ।  
रत्नानि नरकावासाञ्जग्राह मुनिसत्तम ॥३०॥  
कन्यापुरे स कन्यानां शोडपातुलविक्रम ।  
शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामुने ॥३१॥  
चतुर्दंष्ट्रान्गजाश्चाग्र्यान् पट्सहस्राश्च दृष्टवान् ।  
काम्बोजानां तथाश्वानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२॥  
ता कन्यास्ताम्रतथा नागास्तान्श्वान् द्वारका पुरीम् ।  
प्रापयामास गोविन्दस्त्वहो नरककिंकरैः ॥३३॥  
ददृशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् ।  
आरोपयामास हरिर्गण्डे पतंगेश्वरे ॥३४॥  
आरुह्य च स्वयं कृष्णस्सत्यभामासहायवान् ।  
अदित्या कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम् ॥३५॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार भूत भावन भगवान् श्रीकृष्ण ने 'ऐसा ही हो' कह कर नरकासुर के घर से अनेक प्रकार के रत्न ग्रहण किये ॥३०॥ हे महामुने ! अत्यन्त बली भगवान् ने नरकासुर की कन्याओं के अन्त पुर में जाकर सोलह हजार कन्याओं को देखा ॥३१॥ वही चार दौंठ वाले ८ हजार हाथी और इक्कीस लाख काम्बोजी जाति के घोड़े देखे ॥३२॥ उन सब कन्याओं, हाथियों और घोड़ों को उन्होंने नरकासुर के शृंगों के द्वारा द्वारकापुरी पहुँचवा दिया ॥३३॥ फिर उन्होंने वारुण के छत्र और मणि पर्वत



को वही देग कर उठा तिया घोर पतिराज गरुड को पीठ पर रूने साद  
॥२४॥ तथा सायभामा सहित स्वर्ग भी गरुड पर धाम्प हो कर प्रदिशि को  
उतरे कुरण्डन देने के लिये स्वर्ग-नीच को गये ॥२५॥

### तीसरा अध्याय

गरुडो यागण द्युत्र तमेव भणिपयंतम् ।  
सभायं च हृषीकेन लीलयेय यह्न्ययो ॥१॥  
ततश्चाह्मुपाध्माभीत्स्वर्गद्वारगतो हरिः ।  
उपतस्थुस्तथा देवास्तार्घ्यहस्ता जनादेनम् ॥२॥  
स देवेरचितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम् ।  
सिताभ्रशिरात्तार प्रविश्य दृशेऽदितिम् ॥३॥  
स ता प्रणम्य दाकेण सह ते कुण्डलोत्तमे ।  
ददौ नरकनाशं च दाशसास्यं जनादेनः ॥४॥  
ततः प्रीता जगन्माता धातारं जगता हरिम् ।  
तुष्टावादितिरघ्यग्रा कृत्वा तत्प्रवण मन ॥५॥  
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयकर ।  
सनातनात्मन् सर्वात्मन् भूतात्मन् भूतभावन ॥६॥  
प्रणेतमनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मक ।  
त्रिगुणातीतं निर्द्वन्द्वं शुद्धसत्त्वं हृदि स्थित ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—धरणि के द्युत्र, मणि पर्वत सत्यभामा और  
श्रीकृष्ण को लीला पूर्वक धारण किये हुए ही पतिराज गरुड स्वर्ग के लिये  
चले ॥१॥ स्वर्ग द्वार के आते ही श्रीकृष्ण ने अपना शस्त्र बजाया, जिसकी ध्वनि  
सुनते ही देवगण अर्घ्य सहित उनके समक्ष उपस्थित हुए ॥२॥ देवताओं द्वारा  
पूजन को प्राप्त हुए श्रीकृष्ण ने देवमाता अदिति के पुत्र मेघ निखर जैसे भवन  
में पहुँच कर उन्हें देखा ॥३॥ फिर इन्द्र के सहित श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम  
किया और नरकासुर के मारने का पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर उन्हें उनके कुरण्डल

अरित त्रिये ॥४॥ फिर जगन्माता यदिनि ते शत्यन्त आनन्दित हो कर विश्व सदा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥५॥ अदिति ने कहा—हे पुरण्डरीकाक्ष ! हे भक्त भयहारी सनातन स्वरूप ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन आपको नमस्कार है ॥६॥ हे मन, बुद्धि और इन्द्रियो के रचने वाले गुण रूप एवं गुणातीत ! हे इन्द्र-रहित, शुद्ध सत्त्व एव अन्तर्यामिन् ! आपको प्रणाम है ॥७॥

सितदीर्घादिनिश्शेषकल्पनापरिवर्जित ।

जन्मादिभिरसंस्पृष्ट स्वप्नादिपरिवर्जित ॥८॥

सन्ध्या रात्रिरहो भूतिर्गगन वायुरम्बु च ।

हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्वं तथाच्युत ॥९॥

सर्गस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ।

ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर ॥१०॥

देवा दैत्यास्तथा यक्षा राक्षसास्सिद्धपन्नगाः ।

कूष्माण्डाश्च पिशाचाश्च गन्धर्वा मनुजास्तथा ॥११॥

पशवश्च मृगाश्चैव पतङ्गाश्च सरीसृपाः ।

वृक्षगुल्मलता बह्वधः समस्तास्तृणजातयः ॥१२॥

स्थूला मध्यास्तथा सूक्ष्मास्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराश्च ये ।

वेहभेदा भवान् सर्वे ये केचित्पुर्गलाधयाः ॥१३॥

माया तवेयमज्ञातपरमार्थातिमोहिनी ।

अनात्मन्यात्मविज्ञान यया मूढो निरुद्धधते ॥१४॥

हे नाथ ! आप स्वैठावि गर्श, वीर्षादि मान तथा जन्मादि विकारों से

दूर हैं । स्वप्नादि तीन अवस्थाएँ भी आप में नहीं हैं, ऐसे आपको नमस्कार

है ॥८॥ हे अच्युत ! सायं, रात्रि, दिवस, पृथिवी, आकाश, वायु, जल, अग्नि,

मन, बुद्धि और अहंकार—सब कुछ आप ही तो हैं ॥९॥ हे ईश्वर ! आप,

ब्रह्मा, विष्णु और शंकर नामक अपने तीन रूप से ससार की सृष्टि, स्थिति,

और संहार करते हैं । आप ही कर्त्ताओं के कर्त्ता हैं ॥१०॥ देवता, दैत्य, यक्ष,

राक्षस, सिद्ध, नाग, कूष्माण्ड, पिशाच गन्धर्व, मनुष्य, पशु, मृग, पतंग, सरीसृप

वृक्ष, गुल्म, लता, सम्पूर्ण प्रकार के तृण और स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से

भी सूक्ष्म जितने भी देह के भेद परमाणु के आश्रय में हैं, वे सभी आप हैं ॥११॥

-१३॥ आपकी ही माया परमार्थतत्त्व से अनभिज्ञ पुरुषों को मोहित करती है, जिसके कारण अज्ञानी मनुष्य अनात्म को आत्म समझ कर बन्धन में पड़ते हैं ॥१४॥

अस्वे स्वमिति भावोऽत्र यत्पुंसामुपजायते ।

अहं ममेति भावो यत्प्रायेणैवाभिजायते ।

संसारमालुर्मायायास्तवेतन्नाथ चेष्टितम् ॥१५॥

यैः स्वधर्मपरं नाथ नरैराराधितो भवान् ।

ते तरन्त्यखिलांमेतां मायामात्मविमुक्तये ॥१६॥

ब्रह्माद्यास्तसकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा ।

विष्णुमायामहावर्तमोहान्घतमसावृताः ॥१७॥

आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभवक्षयम् ।

यदेते पुरुषा माया संवेयं भगवंस्तव ॥१८॥

मया त्वं पुत्रकामिन्या वरिपक्षजयाय च ।

आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत् ॥१९॥

कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ।

जायते यदपुण्यानां सोऽपराधः स्वदोषजः ॥२०॥

तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय ।

अज्ञानं ज्ञानसद्भावभूतं भूतेश नाशय ॥२१॥

हे प्रभो ! अनात्मा मे आत्मा और ममता के भाव की जो उत्पत्ति हो जाती है, वह सब आपकी माया का ही प्रभाव है ॥१५॥ हे नाथ ! जो मनुष्य अपने धर्म का आचरण करते हुए आपकी उपासना में रत रहते हैं, वे अपनी मुक्ति के लिये सब माया को लौंघ खाते हैं ॥१६॥ ब्रह्मादि सब देवता, मनुष्य तथा पशु आदि सब विष्णु माया रूपी महान् गढ़ में पड़कर मोह रूपी अन्धकार से ढक जाते हैं ॥१७॥ हे प्रभो ! आप भव-बन्धन के काटने वाले की आराधना करके भी जो पुरुष विभिन्न प्रकार के भोग ही मांगते हैं, वह सब आपको माया का ही प्रभाव है ॥१८॥ मैं भी शत्रुओं को हराने के लिये पुरुषों की विजय-कामना करते हुए ही आपका आराधन किया था, मोक्ष के लिये नहीं किया

यह भी आपकी माया का ही प्रभाव था ॥१६॥ मत्पुत्रश से भी जो पुण्य-विहीन पुरुष वस्त्रादि की ही याचना करते हैं तो उनका यह दोष कर्म से ही उत्पन्न हुआ है ॥२०॥ हे सम्पूर्ण विश्व मे माया-मोह के उत्पन्न करने वाले प्रभो ! आप प्रगल्भ हूँजिये । हे भूतेश्वर ! मेरे ज्ञान के अभिमान से उत्पन्न हुए अज्ञान को आप नष्ट कर डालिये ॥२१॥

नमस्ते चक्रहस्ताय शार्ङ्गहस्ताय ते नमः ।

गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय ते नमः ॥२२

एतत्पश्यामि ते रूप स्थूलचिह्नोपलक्षितम् ।

न जानामि पर यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥२३

भवित्येवं स्तुतो विष्णुः प्रहस्याह सुरारणिम् ।

माता देवि त्वमस्माक प्रसीद वरदा भव ॥२४

एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषंस्मुरासुरै ।

अजेयः पुरुषव्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि ॥२५

तत कृष्णस्य पत्नी च शक्रपत्न्या सहादितिम् ।

सत्यभामा प्रणम्याह प्रसीदेति पुनः पुनः ॥२६

मत्प्रसादान् ते सुभ्रू जरा वैरूप्यमेव वा ।

भविष्यत्यनवघाट्नि सुस्थिर नवयौवनम् ॥२७

अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम् ।

यथावत्पूजयामास बहुमानपुरस्सरम् ॥२८

हे चक्रपाणे ! हे शार्ङ्ग धनुषधारी आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।

हे गदा श्रीर शङ्ख धारण करने वाले विष्णो ! आपकी बारम्बार नमस्कार है

॥२२॥ मैं आपके स्थूल चिह्नो के आरोप वाले इसी रूप को देख रही हूँ, आपके

उस यथार्थ पर स्वरूप को तो मैं जानती ही नहीं । हे परमेश्वर ! आप मुझ

पर प्रसन्न हो ॥२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—अदिति की इस प्रकार की स्तुति

को सुनकर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए देवजननी से कहा—हे देवि ! आप तो

हमारी माता है, आप प्रसन्न होकर हमारे लिये वर देने वाली बनो ॥२४॥

अदिति ने कहा—हे पुरुष व्याघ्र ! ऐसा ही हो, तुम इच्छानुसार-फल प्राप्त

करो । मत्संलोक में तुम सब देवताओं और दैत्यों से अजेय रहोगे ॥२५॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर इन्द्र की भार्या शची के सहित कृष्ण पत्नी सत्यभामा ने अदिति को बारम्बार प्रणाम किया और उनसे निवेदन किया कि आप हम पर प्रसन्न हों ॥२६॥ हे सुभ्रू ! मेरी कृपा से वृद्धावस्था या विरूपता तेरे निकट न आयेगी और तू सदा ही अनिन्दित अङ्ग वाली और स्थिर नवयौवन से सम्पन्न रहेगी ॥२७॥ श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् अदिति की आज्ञा से देवराज इन्द्र ने श्रीकृष्ण का अत्यन्त मान के सहित पूजन किया ॥२८॥

शची च सत्यभामायै पारिजातस्य पुष्पकम् ।

न ददौ मानुषी मत्वा स्वयं पुष्परलङ्कृता ॥२९॥

ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान् ।

देवोद्यानानि हृद्यानि नन्दनादीनि सप्तम ॥३०॥

ददर्श च सुगन्धाढ्यं मञ्जरीपुञ्जधारिणम् ।

निरयाह्लादकरं ताम्रबालपल्लवशोभितम् ॥३१॥

मध्यमानेऽमृते जातं जातरूपोपमत्वचम् ।

पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसूदनः ॥३२॥

तुतोप परमप्रीत्या तद्वराजमनुत्तमम् ।

तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तम ।

कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः ॥३३॥

यदि चेत्त्वद्वचः सत्यं त्वमत्यर्थं प्रियेति मे ।

मद्गेहनिष्कुटार्याय तदयं नीयतां तरु ॥३४॥

न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी ।

सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम् ॥३५॥

उस समय कल्पवृक्ष के पुष्पों से सुशोभिता इन्द्राणी ने सत्यभामा के मानुषी होने के कारण पारिजात-पुष्प नहीं दिये ॥२९॥ फिर सत्यभामा के सहित श्रीकृष्ण ने देवताओं के नन्दन वानन आदि शुरभ्य उपवनो को जाकर देखा ॥३०॥ बेसी के मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने यही पर सुगन्धित मञ्जरी पुञ्ज से लदे हुए, नित्यानन्द करने वाले, ताम्ररङ्ग के बाल धोर पत्रों से गुहो-

भित, स्वर्णिम छाल से युक्त उस अमृत मंथन से उत्पन्न हुए पारिजात वृक्ष को देखा ॥३१-३२॥ हे द्विजोत्तम ! उस सर्वश्रेष्ठ तरराज के दर्शन कर उसके प्रति अत्यन्त प्रीति करती हुई सत्यभामाजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई और भगवान् से कहने लगी—हे प्रभो ! इस तरराज को द्वारका क्यों नहीं ले चलते ? ॥३३॥ यदि आप अपने वचनानुसार मुझे अपनी अनन्यतम प्रियतमा मानते हैं तो इस वृक्षराज को मेरे भवन के उद्यान में लगाने के लिये ले चलिये ॥३४॥ हे कृष्ण ! हे नाथ ! आप अनेक बार कह चुके हैं कि हे सत्ये ! मुझे तेरे ममान जाम्बती या रुक्मिणी कोई भी प्यारी नहीं है ॥३५॥

सत्य तद्यदि गोविन्द नोपचारकृत मम ।

तदस्तु पारिजातोऽथ मम गेहविभूषणम् ॥३६॥

विभ्रती पारिजातस्य केशपक्षेण मञ्जरीम् ।

सपत्नीनामह मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३७॥

इत्युक्तन्स प्रहस्येना पारिजातं गुरुमति ।

आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिण ॥३८॥

भो शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम् ।

पारिजातं न गोविन्द हतुं मर्हसि पादपम् ॥३९॥

उत्पन्नो देवराजाय दत्तस्सोऽपि ददौ पुन ।

महिष्यै सुमहाभाग देव्यै शक्यै कुतूहालात् ॥४०॥

शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्यते ।

उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वेन गमिष्यसि ॥४१॥

देवराजो मुखप्रेक्षी यस्यास्तस्या परिग्रहम् ।

मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वेन हि को व्रजेत् ॥४२॥

हे गोविन्द ! यह आपका वह वचन सत्य और मेरे प्रति बहाना मान

नहीं है, तो इस पारिजात को मेरे घर की शोभा बनाइये ॥३६॥ मैं चाहती हूँ

कि अपने केशों में इन पारिजात पुष्पों को गूँथ कर अपनी अन्य सौतों में अधिक

शोभा सम्पन्न बन जाऊँ ॥३७॥ श्री जराक्षरजी ने कहा—सत्यभामा के वचन

सुनकर भगवान् श्रीहरि हँस पड़े और उन्होंने उस पारिजात वृक्ष को उठाकर

गरुड की पीठ पर रख लिया । इस पर नन्दन कानन के रक्षको ने उनसे कहा—  
॥३८॥ हे गोविन्द ! यह पारिजात इन्द्राणी शची की निजी सम्पत्ति है, आप  
इसे न लीजिये ॥३९॥ जब यह क्षीर-सागर से उत्पन्न हुआ था, तब इसे देव-  
राज ने प्राप्त करके अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया था ॥४०॥ शची को  
अलङ्कृत करने के लिये अमृत मयन के समय इसे देवताओं ने उत्पन्न किया था,  
इसलिये आप इसको कुशल पूर्वक नहीं ले जा सकते ॥४१॥ देवराज भी जिस  
शची का मुख निहारते रहते हैं यह पारिजात उसी की सम्पत्ति है, जिसे ग्रहण  
करने का आपका विचार भूलता का हो है, भला इसका हरण करके कौन बचकर  
निकल सकता है ॥४२॥

अवश्यमस्य देवेन्द्रा निष्कृति कृष्ण यास्यति ।

वज्रोद्यतकर शक्रमनुयास्यन्ति चामरा ॥४३॥

तदल सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ।

विपाककटु यत्कर्म तन्न शसन्ति पण्डिता ॥४४॥

इत्युक्त तैरुवाचैतान् सत्यभामातिकोपिनी ।

का शची पारिजातस्य को वा शक्रस्सुराधिप ॥४५॥

सामान्यस्सर्वलोकस्य यद्येपोऽमृतमन्थने ।

समुत्पन्नस्ततः कस्मादेवो गृह्णाति वामव ॥४६॥

यथा सुरा यथैवेन्दुर्यथा श्रीवर्नरक्षिण ।

सामान्यस्सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुम ॥४७॥

भर्तुं वाहुमहागर्वाद्गुणद्वयेनमथो शची ।

तत्कथ्यतामल क्षान्त्या सत्या हारयति द्रुमम् ॥४८॥

वध्यता च द्रुत गत्वा पौलोम्या वचन मम ।

सत्यभामा वदत्येतदिति गर्वोद्धताक्षरम् ॥४९॥

यदि त्व दयिता भर्तुं यदि वश्य पतिस्तव ।

मद्भर्तुर्हंरतो दृक्ष तत्कारय निवारणम् ॥५०॥

जानामि ते पति शक्र जानामि त्रिदशेश्वरम् ।

पारिजात तथाप्येन मानुषी हारयामि ते ॥५१॥

हे कृष्ण ! इसकी रक्षा के लिये देवराज वज्र ग्रहण करके अवश्य आयेंगे तथा अन्य सभी देवगण उनकी सहायता करेंगे ॥४३॥ इसलिये, हे अच्युत ! सब देवताओं से शत्रुता करना उचित नहीं है, क्योंकि पण्डितजन कटु परिणाम वाले कार्य का निषेध करते हैं ॥४४॥ श्री पराशरजी ने कहा—उनके इस प्रकार कहने पर सत्यभामा क्रोधित होगई और कहने लगी—इस पारिजात के सुरपति इन्द्र और शची ही कौन हैं ? ॥४५॥ यदि अमृत मयन के समय इसकी उत्पत्ति हुई है तो इस पर सब लोकों का समान रूप से अधिकार है तब अकेले इन्द्र ही इसे कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? ॥४६॥ हे वन रक्षको ! जैसे मदिरा, चन्द्रमा और लक्ष्मी का सभी समान रूप से उपभोग करते हैं, वैसे ही यह पारिजात भी सभी के लिये उपभोग्य है ॥४७॥ यदि अपने पति के भुजबल के घोर गर्व में भर कर शची ने इस पर एकाधिकार कर लिया है, तो उसे बताना कि तुम क्षमा के योग्य नहीं हो, इसलिये सत्यभामा उस वृक्ष को ले गई है ॥४८॥ तुम शीघ्रता पूर्वक शची के पास जाकर यह कह दो कि सत्यभामा ने अत्यन्त गर्व पूर्वक कहा है कि यदि तुम्हारे पति तुम्हें अत्यन्त प्रेम करते हैं और तुम्हारे वश में हैं तो मेरे पति को पारिजात से जाने से रोके ॥४९-५०॥ मैं तुम्हारे पति को जानती हूँ कि वे देवताओं के अधीश्वर हैं, फिर भी मैं मानुषी होकर तुम्हारे पारिजात को लिये जाती हूँ ॥५१॥

इत्मुक्ता रक्षिणो गत्वा शच्याः प्रोचुर्यथोदितम् ।

श्रुत्वा चोत्साहयामास शची शक्रं सुराधिपम् ॥५२॥

ततस्समस्तदेवाना संन्यैः परिवृतो हरिम् ।

प्रययौ पारिजातार्थमिन्द्रो योद्धुं द्विजोत्तम ॥५३॥

ततः परिघनिस्त्रिशगदाशूलवरायुधाः ।

धनुस्त्रिदशस्सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥५४॥

ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् ।

शक्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥५५॥

चकार शङ्खनिर्घोष दिशश्शब्देन पूरयन् ।

मुमोच शरसङ्घातान्सहस्रायुतशशितान् ॥५६॥



ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशतैश्चितम् ।

मुमुचुस्त्रिदशास्सर्वे ह्यस्यशस्त्राण्यनेकशः ॥५७॥

श्री पराशरजी ने कहा—सत्यभामा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मालियो ने सब वृत्तान्त शची के पास जाकर सब वृत्तान्त यथावत् सुना दिया, जिसे सुनते ही शची ने सुरपति को वृक्ष की रक्षा के लिये उद्बुद्ध किया ॥५२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर सब देवताओं की सेना को साथ लेकर सुरराज इन्द्र पारिजात को रोकने के लिये श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये गये ॥५३॥ जैसे ही इन्द्र ने वज्र ग्रहण किया, जैसे ही सब देवता पवित्र, निर्लिप्त, गदा और धूलालि श्रेष्ठ धायुधों में सज कर तैयार होगये ॥५४॥ फिर देवसेना सहित इन्द्र को युद्ध के लिये आया हुआ देखकर गरुडपामी गोविन्द ने अपनी शक्ति-ध्वनि से सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करके हजारों-लाखों तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की ॥५५-५६॥ इस प्रकार सब दिशाओं और आकाश को बाणों से घातित कर देवराज देवताओं ने भी अपने-अपने शस्त्रों का प्रयोग किया ॥५७॥

एकैरुमस्त्रं शस्त्रं च देवमुक्तं सहस्रशः ।

चिच्छेद लीलयैवेशो जगता मधुसूदनः ॥५८॥

पाश सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः ।

चकार खण्डशश्चञ्च्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५९॥

यमेन प्रहित दण्ड गदाविक्षेपखण्डितम् ।

पृथिव्यां पातयामास भगवान् देवकीसुतः ॥६०॥

शिविका च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः ।

चकार शीरिरकं च दृष्टिदृष्टहृत्तोजसाम् ॥६१॥

नीतोऽग्निश्शीतता बाणैर्द्राविता वसवो दिशः ।

चक्रावच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः ॥६२॥

साध्या विश्वेऽस्य मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः ।

शार्ङ्गिणा प्रेरितैरस्ता व्योम्नि शाल्मलिनूलवत् ॥६३॥

गस्त्रमानपि तुण्डेन पक्षाम्बा च नखाङ्कुरैः ।

भक्षयस्ताडयन् देवान् दारयंश्च चचार वै ॥६४॥

जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक ही देवताओं के प्रत्येक शस्त्रास्त्र के हजारों खण्ड कर डाले ॥५८॥ सर्पों का आहार करने वाले गरुड ने जलराज वरुण के पाश को सर्प के बालक के समान अपनी चोंच से चबाकर अनेक टुकड़ों में विभक्त कर दिया ॥५९॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने यम द्वारा प्रेरित दण्ड को अपनी गदा से टूक-टूक कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥६०॥ कुबेर के विमान का चूर्ण कर दिया और अपनी तेजोमयी दृष्टि से देखकर ही तेज-हीन कर दिया ॥६१॥ बाण-वर्षा द्वारा अग्नि को शीतल कर वसुओं को सब दिशाओं में भगा दिया और त्रिशूलों की नोक को अपने चक्र से काट डाला और रत्नों को भूमि पर गिरा दिया ॥६२॥ उनके द्वारा प्रेरित किये गये बाणों से राक्षसगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण और सभी गन्धर्व सेमल की रई के समान उड़ते हुए, व्योम में ही विलीन होगये ॥६३॥ उस समय गरुड भी अपनी चोंच, पंख और पंजों के द्वारा देवताओं का भक्षण करते, विदीर्ण करते और मारते हुए विचर रहे थे ॥६४॥

ततश्शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनी ।

परस्पर ववर्षति धाराभिरिव तोयदौ ॥६५॥

ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र सङ्कुले ।

देवस्त्वस्त्वस्तं युयुधे शक्रेण च जगार्दन ॥६६॥

भिन्नेष्वक्षेपवाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरन् ।

जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६७॥

ततो हाहाकृतं सर्वं त्रिलोक्यं द्विजसन्तम् ।

वज्रचक्रकरो दृष्ट्वा देवराजजनार्दनो ॥६८॥

क्षिप्तं वज्रमयेन्द्रं जग्राह भगवान्हरिः ।

न मुमोच तदा चक्रं शक्रं तिष्ठेति चाग्रवीत् ॥६९॥

फिर जैसे दो बादलों से जल की वर्षा हो रही हो, वैसे ही श्रीकृष्ण और इन्द्र परस्पर बाण-वर्षा कर रहे थे ॥६५॥ उस समय गरुड-ऐरावत भिड़त हो रही थी तथा श्रीकृष्ण देवताओं और इन्द्र से भिड़ रहे थे ॥६६॥ सभी बाणों के समाप्त होने और शस्त्रास्त्रों के छिन्न-भिन्न होजाने पर इन्द्र ने

वज्र और कृष्ण ने सुदर्शन चक्र ग्रहण किया ॥६७॥ हे द्विजसत्तम ! उस समय इन्द्र को वज्र और कृष्ण को सुदर्शन चक्र लेकर युद्ध करते देख कर तीनो लोको मे हाहाकार मच गया ॥६८॥ श्रीकृष्ण ने इन्द्र द्वारा प्रेरित वज्र को पकड़ लिया और अपने चक्र को हाथ मे ग्रहण किये हुए ही इन्द्र से सलकार कर कहा—‘ठहर तो सही’ ॥६९॥

प्रणष्टवज्र देवेन्द्र गरुडक्षतवाहनम् ।

सत्यभामाव्रवीहीर पलायनपरायणम् ॥७०॥

त्रैलोक्येश न ते युक्त शचीभर्तुं पलायनम् ।

पारिजातस्रगाभागा त्वामुपस्थास्यते शची ॥७१॥

कीदृश देवराज्य ते पारिजातस्रगुज्ज्वलाम् ।

अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाम्यागता शचीम् ॥७२॥

अल शक्र प्रयासेन न व्रीडा गन्तुमर्हसि ।

नीयता पारिजातोऽय देवास्सन्तु गतव्यथा ॥७३॥

पतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरस्सगम् ।

न ददर्श गृह यातामुपचारेण मा शची ॥७४॥

स्त्रीत्वादगुरुचित्ताह स्वभर्तृश्लाघनापरा ।

तत कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम् ॥७५॥

तदल पारिजातेन परस्वेन हृतेन मे ।

रूपेण गर्विता सा तु भर्त्रा का स्त्री न गर्विता ॥७६॥

इस प्रकार वज्र छिन जाने और ऐरावत का गरुड के प्रहारो से बुरी तरह आहत होन के कारण इन्द्र भागने लगा, तब सत्यभामा ने उससे कहा— हे त्रैलोक्येश ! तुम शचीपति को इस प्रकार युद्ध से नहीं भागना चाहिये । क्योंकि पारिजात के पुष्पो से अलवृत्त हुई शची अब व्रीध ही तुम्हारे पास उपस्थित होगी ॥७०-७१॥ हे इन्द्र ! जब पारिजात पुष्पो से दूग्य शची तुम्हारे पास प्रभवश उपस्थित होगी, तब उसे उस प्रकार देख कर तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा ? ॥७२॥ हे इन्द्र ! अब अधिक प्रयास मत करो, निसर्कोच इस पारिजात को लेजामो, क्योंकि इसे पाने पर ही देयताओ की व्यथा दूर होगी

॥७३॥ अपने पति के भुजबल से गविता हुई दाची ने मुझे अपने घर पर आई हुई देख कर भी मेरा कुछ विशेष सम्मान नहीं किया था ॥७४॥ मैं भी स्त्री होने के कारण अधिक गभीर चित्त वाली नहीं हूँ, इसलिये अपने पति का गौरव दिखाने के लिये ही मैंने यह युद्ध कराया था ॥७५॥ मुझे इस पारिजात रूप पराई पम्पसि को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है । जैसे दाची को अपने रूप और पति का गर्व है, वैसे ही अन्य स्त्री को भी क्यों न होगा ? ॥७६॥

इत्युक्तो वं निववृत्ते देवराजस्तथा द्विज ।

प्राह चैनामल चण्डि सख्यु खेदोक्तिविस्तरै । ७७

न चापि सर्गसंहारस्थितिकर्ताखिलस्य य ।

जितस्य तेन मे ग्रीडा जायते विश्वरूपिणा ॥७८

यस्माञ्जगत्सकलभेदनादिमध्या-

द्यस्मिन्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात् ।

तेनेद्भुवप्रलयपालनकारणेन

ग्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७९

सकलभुवनसूतिमूर्तिरल्पाल्पसूक्ष्मा

निदत्तसकलवेदैर्जायते मत्स्य नान्यै ।

तमजमकृतमीश शाश्वत स्वेच्छयेन

जगदुपकृतिमर्त्यं को विजेतु समर्थ ॥८०

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज ! इस प्रकार कहे जाने पर देवराज इन्द्र लौट आये और कहने लगे—मैं तो तुम्हारा मुहूद ही हूँ, मेरे प्रति इस प्रकार की श्लोक्तिओं के विस्तार से क्या लाभ है ? ॥७७॥ सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहारवर्त्ता तथा विश्वरूप परमात्मा से हारे जाने में सबोच या कोई कारण नहीं है ॥७८॥ हे देवि ! जिन आदि-मध्य से रहित भगवान् से यह विदग्ध उत्पन्न होकर उन्हीं के द्वाग स्थित होता और अन्त में विलीन होजाता है, ऐसे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप ईश्वर से पराजित होने में सबोच क्या ? ॥७९॥ जिनकी सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाली अल्प से भी अल्प और सूक्ष्म मूर्ति को सब वेदों के ज्ञाता भी नहीं जान

सयते सया जिह्मोने स्येच्छा पूर्वक सोफ मत्स्याण ये लिये मर्त्यलोके मे भवतार  
लिया है, उन जन्म-रहित, कर्म-रहित और नाथ स्वरूप परमेश्वर को पराजित  
करने का सामर्थ्य किसमें होगा ? ॥८०॥

### इकतीसवाँ अध्याय

सस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशव ।  
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१॥  
देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।  
क्षान्तव्यं भवतं वेदमपराधं कृतं मम ॥२॥  
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम् ।  
गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३॥  
वज्रं चेदं गृहाण त्वं यदत्र प्रहितं त्वया ।  
तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४॥  
विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् ।  
जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥५॥  
योऽसि सोऽसि जगत्प्राणप्रवृत्तीनाथ संस्थितः ।  
जगत्तश्शत्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥  
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवती पुरीम् ।  
मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नाथ सस्थास्यते भुवि ॥७॥  
देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।  
शङ्खचक्रगदापाणे क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति  
किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गम्भीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—  
हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र हैं और हम मरणधर्मी मानव, इसलिये हम  
आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात

को इसके अपने स्थान पर ही रखिये क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने के लिये ही मैंने इसे ग्रहण किया था ॥३॥ आप अपने फँके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह में क्यों डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हूँ, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नहीं है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो हैं, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए हैं तथा उसे कटक-विहीन कर रहे हैं ॥६॥ हे वृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती की सेवाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नहीं रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कुप्पण ! हे विष्णो ! हे महा-भुज ! हे शल-चक्र-गदापाणो ! मेरे अपराध को क्षमा करिये ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुव हरिः ।

प्रसक्तं सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरपिभिः ॥९॥

ततश्शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि सस्थितः ।

हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिना द्विज ॥१०॥

भवतीर्माथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।

निष्कुटे स्थापयामास पारिजातमहातरुम् ॥११॥

यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।

वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२॥

ततस्ते यादवास्सर्वे देहवन्धानमानुषान् ।

ददृशुः पादपे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो' कहा श्रीर सिद्ध, गन्धर्व और देवपियो से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥९॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होंने शल-ध्वनि करके द्वारकावासियों को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उनके सहित गरुड से उतरे श्रीर पारिजात को वही रखवा दिया ॥११॥ जिसकी निकटता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पों की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को मुरझित रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उससे

सकते तथा जिन्होंने स्वेच्छया पूर्वक सोच मन्वाण के लिये मर्त्यलोच में अवतार लिया है, उन जन्म-रहित, धर्म-रहित और नित्य स्वरूप परमेश्वर को पराजित करने का सामर्थ्य किसे होगा ? ॥८०॥

### इकलीसवाँ अध्याय

सस्तुतो भगवानित्यं देवराजेन केशवः ।  
 प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१॥  
 देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।  
 क्षान्तव्यं भवतैवेदमपराध कृतं मम ॥२॥  
 पारिजाततरुध्वायं नीयतामुचितास्पदम् ।  
 गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३॥  
 वज्रं चेदं गृहाण त्व यदत्र प्रहितं त्वया ।  
 तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४॥  
 विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् ।  
 जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मचिदो घयम् ॥५॥  
 योऽसि सोऽसि जगत्त्राणप्रवृत्तौ नाथ संस्थितः ।  
 जगतश्शत्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥  
 नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवती पुरीम् ।  
 मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नाथ संस्थास्यते भुवि ॥७॥  
 देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।  
 शङ्खचक्रगदापाणो क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गम्भीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र हैं और हम भरणधर्मा मानव, इसलिये हमसे आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात

को इसके अपने स्थान पर ही रखिये क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने के लिये ही मैंने इसे ग्रहण किया था ॥२॥ आप अपने फेंके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह में क्यों डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हूँ, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नहीं है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो हैं, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए हैं तथा उसे कटक-विहीन कर रहे हैं ॥६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती को लेजाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नहीं रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महा-भुज ! हे शंख-चक्र-गदापाणे ! मेरे अपराध को क्षमा करिये ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुव हरिः ।

प्रसक्तः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरपिभिः ॥९॥

ततश्शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि सस्थितः ।

हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिना द्विज ॥१०॥

अवतीर्यथि गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।

निष्कृटे स्थापयामास पारिजातमहातरुम् ॥११॥

यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।

वास्यते यस्य पुष्पोत्यगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२॥

ततस्ते यादवास्सर्वे देहवन्धानमानुषान् ।

ददृशुः पादपे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो' कहा और सिद्ध, गन्धर्व और देवपियो से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥९॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होंने शंख-ध्वनि करके द्वारकावासियों को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उनके सहित गरुड से उतरे और पारिजात को वही रखवा दिया ॥११॥ जिसकी निकटता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पों की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को मुरभित रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उसकी



सकते तथा जिन्होंने स्वेच्छा पूर्वक लोक कल्याण के लिये मर्त्यलोक में अवतार लिया है, उन जन्म-रहित, कर्म-रहित और नित्य स्वरूप परमेश्वर को पराजित करने का सामर्थ्य किसमें होगा ? ॥८०॥

### इकतीसवाँ अध्याय

सस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः ।  
 प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१॥  
 देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।  
 क्षन्तव्यं भवतु वेदमपराधं कृतं मम ॥२॥  
 पारिजाततरुश्राव्यं नीयतामुचितास्पदम् ।  
 गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३॥  
 वज्रं चेदं गृहाण त्वं यदत्र प्रहितं त्वया ।  
 तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४॥  
 विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् ।  
 जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥५॥  
 योऽसि सोऽसि जगन्नाथप्रवृत्तो नाथ सस्थितः ।  
 जगत्क्षत्यनिष्कर्षं करोष्यसुरमूदन ॥६॥  
 नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवती पुरीम् ।  
 मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नाथ संस्थास्यते भुवि ॥७॥  
 देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।  
 शङ्खचक्रगदापाणे क्षमस्वेतद्व्यतिक्रमम् ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गम्भीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र हैं और हम गरुडधर्मा मानव, इसलिये हमसे आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात

को इसके अपने स्थान पर ही रखिये क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने में लिये ही मैंने इसे ग्रहण लिया था ॥२॥ आप अपने फँके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! सन्तुष्टों को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह गये डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हूँ, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नहीं है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो है, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए हैं तथा उसे कटक-विहीन कर रहे हैं ॥६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती को लेजाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नहीं रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महा-भुज ! हे शस्त्र-चक्र-गदापाणे ! मेरे अपराध को क्षमा करिय ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुव हरि ।

प्रसक्तं सिद्धगन्धर्वं स्तूयमानं सुरपिभिः ॥९॥

ततश्शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि सस्थितः ।

हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिना द्विज ॥१०॥

भवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।

निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम् ॥११॥

यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।

वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२॥

ततस्ते यादवास्सर्वे देहवन्धानमानुषान् ।

ददृशुः पादपे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो' कहा और सिद्ध, गन्धर्व और देवपियो से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥९॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होंने शस्त्र-ध्वनि बरके द्वारकावासियों को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उसके सहित गरुड से उतरे और पारिजात को वही रखवा दिया ॥११॥ जिसकी निष्कृता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पों की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को सुरभित रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उसकी

को पोत्री और बाणासुर की पुत्री उपा से दृष्टा ॥७॥ उस विवाह के अवसर पर श्रीकृष्ण और शंकर में घोर संग्राम हुआ था तथा बाणासुर की हजार भुजायें काट डाली गई थी ॥८॥

कथं पुद्गममूदग्रहान्नुपायै हरकृष्णयोः ।

कथं क्षय च बाणस्य बाहूना कृतवान्हरिः ॥९॥

एतत्सर्वं महाभाग ममाख्यातुं त्वमर्हसि ।

महत्स्मृतूहलं जातं कथां श्रोतुमिमा हरेः ॥१०॥

उपा बाणमुता विप्र पार्वती सह क्षम्भुना ।

क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम् ॥११॥

ततस्सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् ।

अलभत्यर्थंतापेन भर्ता त्वमपि रंस्यसे ॥१२॥

इत्युक्ता सा तया चक्रे कदेति मतिमात्मनः ।

को वा भर्ता ममेत्याह पुनस्तामाह पार्वती ॥१३॥

वंशाखशुक्लद्वादश्या स्वप्ने योऽभिभवं तव ।

करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मा ! उपा के लिये कृष्ण-शंकर में संग्राम क्यों हुआ था और श्रीकृष्ण ने बाणासुर की भुजायें क्यों काट डाली थी ॥९॥ हे महाभाग मैं उस कथा को सुनने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ, अतः आप मुझसे उसका पूर्ण वर्णन करिये ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे विप्र ! एक बार की बात है कि शंकर-पार्वती की क्रीडा-रत देख कर बाणासुर-मुता उपा ने भी अपने पति के साथ क्रीडा करने की इच्छा की ॥११॥ तब सबके चित्त को जानने वाली पार्वतीजी ने उससे कहा कि—तू सताप न कर, समय आने पर तू भी अपने पति का संग प्राप्त करेगी ॥१२॥ उनके ऐसा कहने पर उपा ने यह सोच कर कि वह समय कब आयेगा, और मेरा पति कौन होगा ? इस विषय में पार्वतीजी से पूछा तो उन्होंने उससे फिर कहा ॥१३॥ पार्वतीजी बोली—हे राजकुमारी ! वंशाख शुक्ल द्वादशी की रात्रि में जिस पुरुष के साथ सगति करने का तू स्वप्न देखेगी, वही पुरुष तेरा पति होगा ॥१४॥

तस्या त्रिधावुपास्वप्ने यथा देव्या समीरितम् ।  
 तथैवाभिभव चक्रे कश्चिद्राग च तत्र सा ॥१५॥  
 ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती समुत्सुका ।  
 क्व गतोऽसीति निलंङ्घ्या मन्त्रेयोक्तवती सखीम् ॥१६॥  
 बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।  
 तस्याः सख्यभवत्मा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते ॥१७॥  
 यदा लङ्काकुला नास्य कथयामास सा सखी ।  
 तदा विश्वासमानीय सर्वमेवाभ्यवाधयत् ॥१८॥  
 विदितार्था तु तामाह पुनश्चोपा ययोदितम् ।  
 देव्या तथैव तत्प्राप्तौ यो ह्यपायं कुरुष्व तम् ॥१९॥  
 दुर्विज्ञयमिदं वक्तुं प्राप्तुं वापि न शक्यते ।  
 तथापि किञ्चित्कर्तव्यमुपकारं प्रिये तव ॥२०॥  
 सप्ताष्टदिनपर्यन्तं तावत्कालं प्रतीक्ष्यताम् ।  
 इत्पुक्त्वाभ्यन्तरं गत्वा उपायं तमथाकरोत् ॥२१॥

श्री पराशरजी न बहा—फिर उसी तिथि में उपा की स्वप्नावस्था में  
 जिस पुरुष ने पार्वतीजी के वचनानुसार उससे मङ्गलति की थी, उसी से उपा की  
 अनुराग होगया था ॥१५॥ हे मन्त्रेयजी । जब उसका स्वप्न भंग हुआ तब उसने  
 उस पुरुष को न देखकर उस प्राप्त करने की कामना करके उसने अपनी सखी  
 के सामने ही लङ्का त्याग कर कहा कि तुम कहीं चले गये ? ॥१६॥ बाणामुर  
 के मन्त्री कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा उपा की मन्त्री थी, उसने पूछा कि 'तुम  
 यह किमर्थ लिय कह रही हो ? ॥१७॥ परन्तु उपा ने उसे कुछ भी न बताया  
 तो चित्रलेखा ने उसे विश्वास देकर उपा से सब वृत्तान्त पूछ लिया ॥१८॥  
 चित्रलेखा का जब यह बात विदित होगई, तब उपा ने उसे पार्वतीजी के वचन  
 भी सुना दिये और फिर उसने चित्रलेखा से उस पुरुष की प्राप्ति का उपाय करने  
 को कहा ॥१९॥ चित्रलेखा बोली—हे प्रिय मन्त्री ! तुम्हारे देने हुए पुरुष को  
 जब तक ज्ञान न लिया जाय तब तक उसका प्राप्त होना कैसे सम्भव है ? फिर  
 भी मैं तुम्हारा कुछ कार्य बनाने का यत्न करूँगी ॥२०॥ तुम सात-आठ दिन

तक प्रतीक्षा करो । यह कहकर उस पुरुष की खोज करने का उपाय करने के लिये वह अपने घर चली गई ॥२१॥

ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वाश्च प्रधानतः ।

मनुष्याश्च विलिप्त्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत् ॥२२॥

अपास्य सा तु गन्धर्वास्तयोरगसुरासुराद् ।

मनुष्येषु ददौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकदृष्टिणाम् ॥२३॥

कृष्णरामौ विलोक्यासीत्सुभ्रूलंज्जाजडेव सा ।

प्रद्युम्नदर्शने श्रीडादृष्टिं निन्येज्यतो द्विज ॥२४॥

दृष्टमात्रे ततः कान्ते प्रद्युम्नतनये द्विज ।

दृष्ट्वात्यर्थं विलासिन्या लज्जा क्वापि निराकृता ॥२५॥

सोऽयं सोऽयमितीत्युक्ते तया सा योग्यामिनी ।

चित्रलेखाव्रवीदेनामुपा बाणसुता तदा ॥२६॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर चित्रलेखा ने प्रमुख-प्रमुख देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्यों के चित्र बनाकर उपा को दिखाये ॥२२॥ उस समय उपा ने गन्धर्व, नाग, देवता, दैत्य आदि पर ध्यान नहीं दिया और अधकृत्या वृष्णिवशी मनुष्यों को ही देखने लगी ॥२३॥ हे द्विज ! बलराम और कृष्ण के चित्रों को देखकर वह लज्जा से जड़ के समान होगई और प्रद्युम्न को देखकर तो उसे बहुत ही लज्जा आई ॥२४॥ फिर प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखते ही, उसकी लज्जा नष्ट होगई ॥२५॥ और यही है, यही है, कह उठी । उसके ऐसे वचन सुनकर चित्रलेखा ने उपा से कहा ॥२६॥

अयं कृष्णस्य पौत्रस्ते भर्ता देव्या प्रसादितः ।

अनिरुद्ध इति ख्यातः प्रख्यातः प्रियदर्शनः ॥२७॥

प्राप्तोऽपि यदि भर्तारमिमं प्राप्त त्वया खिलम् ।

दुष्प्रवेशा पुरी पूर्वं द्वारका कृष्णपालिता ॥२८॥

तयापि यत्नाद्भूतारिमानयिष्यामि ते सखि ।

रहस्यमेतद्वक्तव्यं न कस्यचिदपि त्वया ॥२९॥

अचिरादागमिष्यामि सहस्व विरहं मम ।

ययौ द्वारवती चोपां समाश्रास्य ततः सखीम् ॥३०॥

चित्रलेखा ने कहा—भगवती पार्वती ने प्रसन्न होकर कृष्ण के पौत्र इस अनिरुद्ध को ही तेरा पति बनाया है । यह अपनी सुन्दरता के लिये विरघात हो रहा है ॥२७॥ इसे पति रूप में पाने पर तो तुझे सर्वम्ब ही मिल जायगा, परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित द्वारका में प्रथम तो घुसना ही दुष्कर है ॥२८॥ फिर भी हे सखि ! मैं तेरे पति को लाने का उपाय करूँगी, परन्तु तू इस गुप्त बात को किसी पर प्रकट न करना ॥२९॥ अब मैं जाती हूँ और शीघ्र ही लौटूँगी । इस प्रकार उपा को आश्वामन देती हुई चित्रलेखा द्वारकापुत्री के लिये चल दी ॥३०॥

### तेतीसवाँ अध्याय

वाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे मंत्रैयाह त्रिलोचनम् ।

देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽस्म्याह्वं विना ॥१॥

कच्चिन्मर्मपा बाहूना साफल्यजनको रणः ।

भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजं ॥२॥

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा वाण भविष्यति ।

पिशिताशिनानन्दं प्राप्स्यसे त्व तदारणम् ॥३॥

ततः प्रणम्य वरदं शम्भुमभ्यागतो गृहम् ।

सभग्नं ध्वजमालोक्य हृष्टो हर्षं पुनर्ययौ ॥४॥

एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्यावलेन तम् ।

अनिरुद्धमयानिन्ये चित्रलेखा वराप्सरा ॥५॥

पन्यान्तं पुरमभ्येत्य रममाणं महोपया ।

विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशमुदित्यभूपतेः ॥६॥

व्यादिष्टं विद्वराणां तु सैन्यं तेन महात्मना ।

जघान परिघं घोरमादाय परवीरहा ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे शीतलजी ! एक बार भगवान् विवेका ने बाणपुर में प्रणाम पूर्वक कहा था कि हे देव ! मुझ के बिना, इन हजार भुजाओं के कारण मुझे घोर होश है ॥१॥ क्या अभी मेरी इन भुजाओं की मरत करने वाला मराम हो गयेगा ? क्योंकि मुझ के बिना यह भुजाएँ भार रखना प्रयोग हो रही हैं, फिर इनमें प्रयोग ही क्या है ? ॥२॥ भगवान् संतर ने कहा—हे बाणपुर ! जब मेरी मनुष्य-रक्षा भंग हो आयी तभी इसी घोर विनाश की प्रशंसा करने वाले मराम की प्राप्ति होगी ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा—तब बाणपुर में बरदासक शिवजी की प्रणाम विद्या घोर घमसे पर मीट आया । फिर कुछ समय दशरथ होने पर उसकी रक्षा दूट गई, बिगे देवदत्त रमि अत्यन्त दुःख हुआ ॥४॥ इसी घनमर पर विचिन्ता द्वारका जाकर अपने योग दण के प्रभाव में घनिष्ठ की वही ने घाई ॥५॥ जब घनपुर के राजा की घनिष्ठ का उठा के साथ रहना जान हुआ, तब उन्होंने बाणपुर के पास जाकर गय वृत्तान्त निवेदन किया ॥६॥ यह सुनकर बाणपुर में अपने मेवकी की घनिष्ठ की परदने की यात्रा हो, पशु राजा की नष्ट करने वाले घनिष्ठ में उत गमूण सेना की छोड़े के एक दण्ड में द्विप्र-भित कर दिया ॥७॥

हृतेषु तेषु बाणोऽपि रमस्यस्तद्वधोद्यतः ।  
 मुष्पमानो यथाशक्ति यदुबीरेण निजितः ॥८॥  
 मायया मुमुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः ।  
 ततस्तं पन्नगाम्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९॥  
 शरवत्यां बब यातोऽभावनिर्द्धेति जल्पताम् ।  
 यदूनामाचचक्षे त वद्ध बाणेन नारदः ॥१०॥  
 त गोणितपुर नीत श्रुत्वा विद्याविदग्धया ।  
 योपिता प्रत्ययं जम्भुर्यादवा नामरंरिति ॥११॥  
 ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रागत हरिः ।  
 बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥  
 पुरप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महात्मनः ।  
 ययौ बाणपुगभ्याश नीत्वा तान्सङ्क्षय हरिः ॥१३॥

जब बाणासुर के मेवव मारे गये तब बाणासुर अनिरुद्ध का वध करने के विचार से रथारूढ होकर अनिरुद्ध से युद्ध में प्रवृत्त हुआ, परन्तु अपने जी-जान लगाकर भी वह अनिरुद्ध से हार गया ॥८॥ तब उसने मन्त्रियों के परामर्श से माया फैला कर अनिरुद्ध को नाग-पाश में जकड़ लिया ॥९॥ इधर द्वारका में अनिरुद्ध के सहवा अदृश्य हो जाने पर विविध प्रकार की बातें चल रही थी, तभी देवर्षि नारद ने अनिरुद्ध के नागपाश में बाँध जाने का समाचार दिया ॥१०॥ योग-विद्या में कुशल विनलेखा द्वारा अनिरुद्ध को क्षीणितपुर लेजाया गया यह सुनकर यादवों ने ममभ लिया कि अनिरुद्ध का देवताओं ने अपहरण नहीं किया है ॥११॥ फिर स्मरण करने पर तत्काल उगस्थित हुए गरुड पर चढ़ कर बलराम और प्रद्युम्न ने सहित श्रीकृष्ण बाणासुर के नगर को गये ॥१२॥ वहाँ पहुँचते ही उन तीनों को शिव-पार्षद प्रमथगणों से मग्नम करना पड़ा । उनको मार कर वे बाणासुर को निकट जा पहुँचे ॥१३॥

ततस्त्रिपादस्त्रिभिर्गजैरो माहेश्वरो महान् ।  
 बाणरक्षार्थमभ्येत्य युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४  
 तद्भूमस्पर्शमभूतताप कृष्णाङ्गमङ्गमात् ।  
 अवाप बलदेवोऽपि श्रममामीलितेक्षणः ॥१५  
 ततस्म युद्धधर्मानिस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा ।  
 वृष्णवेन ज्वरेणाशु कृष्णदहान्निरावृतः ॥१६  
 नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् ।  
 त वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह ॥१७  
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त वृष्णव ज्वरम् ।  
 प्रात्मन्येव नय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८  
 मम त्वया सम युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवा ।  
 विज्वराम्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ ज्वर ॥१९  
 ततोऽग्नीन्भगवान्य-व क्रिया नीत्या तथा क्षयम् ।  
 दानवाना बलं शृण्वन्तूर्णयामाग नीतया ॥२०



उसके पश्चात् बाणासुर की रक्षा में जो तीन शिर और तीन पाँव वाला माहेश्वर ज्वर नियुक्त था, उसने अग्रसर होकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया ॥१३॥ उस ज्वर द्वारा प्रेरित गरुड के स्पर्श से श्रीकृष्ण भी सन्न हो उठे और कृष्ण के अङ्गों के स्पर्श से बलरामजी ने श्री शिखिता को प्राप्त होकर अपने नेत्र बन्द कर लिये ॥१४॥ इस प्रकार जब वह माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्ण के देह में व्याप्त होकर युद्ध कर रहा था, तब वैष्णव ज्वर ने आक्रमण करके उसे उनके शरीर से दूर कर दिया ॥१५॥ उस समय भगवान् की भुजाओं के आघात को सहन न करने से सन्न हुए उस माहेश्वर ज्वर को विह्वल देखकर ब्रह्माजी ने उसे क्षमा करने के लिये श्रीकृष्ण से कहा ॥१६॥ तब श्रीकृष्ण ने उसे क्षमा करके वैष्णव ज्वर को अपने देह में ही विलीन कर लिया ॥१७॥ तब माहेश्वर ज्वर ने कहा—आपके शरीर मेरे मध्य में हुए इस युद्ध का जो स्मरण करेंगे, उन्हें ज्वर व्याप्त नहीं होगा । यह कहकर वह ज्वर चला गया ॥१८॥ फिर श्रीकृष्ण ने पचाग्निगों को बशीभूत कर उन्हें नष्ट कर डाला और लीला पूर्वक ही दानवों को मारने लगे ॥१९॥

ततस्समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेस्सुतः ।

युयुधे दारुणश्चैव कार्तिकेयश्च शौणिष्ठा ॥२१॥

हरिशङ्करयोर्मुदमतीवासीत्सुदारुणम् ।

बुधुभुस्तकला लोकाः शस्त्रास्त्राणुप्रतापिताः ॥२२॥

प्रलयोऽयमक्षेपस्य जगतो नूनमागतः ।

मेनिरे त्रिदशास्तत्र वर्तमाने महारणे ॥२३॥

जृम्भकास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शङ्करम् ।

ततः प्रणोदुर्दतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥२४॥

जृम्भाभिभूतस्तु हरो रथोपस्थ उपादिशत् ।

न दशावः ततो योद्धुः कृष्णेनाविलष्टवमंशा ॥२५॥

गरुडक्षतवाहश्च प्रणुम्नास्त्रेण पीडितः ।

कृष्णहृद्भारनिर्भूतशक्तिः प्रापययौ गृहः ॥२६॥

तदन्तर बलिपुत्र बाणासुर, भगवान् शङ्कर और स्वामी कार्तिकेयजी सम्पूर्ण दैत्य सेना के सहित आगे बढ़ कर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में तत्पर हुए ॥२१॥ भगवान् श्रीहरि और शङ्करजी में परस्पर अत्यन्त घोर सग्राम हुआ, जिसमें प्रयुक्त शस्त्रास्त्रों के तेज जाल से सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध एवं संतप्त होगये ॥२२॥ इस भयङ्कर युद्ध के होने से देवगण समझने लगे कि सम्पूर्ण विश्व का प्रलयकाल आगया जान पड़ता है ॥२३॥ गोविन्द द्वारा प्रेरित जूम्भकास्त्र से शङ्करजी भगवती और जमुहाई लगे लगे, उनकी ऐसी दशा देखकर दैत्यो और प्रमथो में भगदड मच गई ॥२४॥ भगवान् शङ्कर निद्रा से अभिभूत होकर रथ के पिछले भाग में बैठ कर महान् बर्मा कृष्ण से युद्ध करने में विफल रहे ॥२५॥ फिर स्वामि कार्तिकेय भी अपने वाहन के द्वारा गरुड द्वारा मारे जाने से और श्रीकृष्ण की हुकार तथा प्रद्युम्न के शस्त्रो से आहत होकर युद्ध भूमि से भाग निकले ॥२६॥

जूम्भते शङ्करे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते ।  
नीते प्रमथसैन्ये च सङ्क्षयं शङ्गधन्वना ॥२७॥  
नन्दिना सङ्गृहीतं श्वमधिरूढो महारथम् ।  
बाणस्तत्राययी योद्धुं कृष्णकाष्णिगसैरसह ॥२८॥  
धलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा ।  
विव्याध बाणं प्रभ्रश्य धर्मतश्च पलायत ॥२९॥  
आकृष्य लाङ्गलाग्रं च मुसलेनाद्यु ताडितम् ।  
बलं बलेन दह्ये बाणो बाणंश्च चक्रिणा ॥३०॥  
ततः कृष्णेन बाणस्य युद्धमासीत्सुदारणम् ।  
समस्यतोरिपून्दीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१॥  
कृष्णश्चिच्छेद बाणंस्तान्बाणेन प्रहिताञ्छितान् ।  
विव्याध केशव बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२॥  
मुमुचाते तथास्थाणि बाणवृष्णी जिगीषया ।  
परस्परं क्षतिकरी ताघवादनिषा द्विज ॥३३॥  
इत प्रहार शिवजी के भगवती सेने, दैन्य-सेना के नष्ट होने, स्वामि कार्ति-

वेय के पलायन करने और शिवगणों के क्षीण होने पर नन्दीश्वर द्वारा हाँके जाते हुए महाग्न्य पर आरूढ हुआ बाणासुर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न से युद्ध करने के लिये मामने आया ॥२७-२८॥ तब महाबली रामजी ने बाण-वर्षा के द्वारा दैत्य-सेना को छिन्न-भिन्न किया, तब वह कायरता पूर्वक वहाँ से भाग चली ॥२९॥ उस समय बाणासुर ने देखा कि उनकी सेना को बलराम जी स्पर्ति पूर्वक हल में पीचते और भूसल से मारते हैं तथा कृष्ण उमें बाणों में भीषे डालते हैं ॥३०॥ तब उमने श्रीकृष्ण के साथ महा मग्न म मचाया । दोनों ही कवच भेदी बाणों का प्रयोग करने लगे ॥३१॥ फिर जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर द्वारा प्रयुक्त बाणों को काट डाला, तब बाणासुर ने उन्हें और उग्नोने बाणासुर को बाणों से पीटना आरम्भ किया ॥३२॥ हे द्विज ! उस समय बाणासुर और कृष्ण दोनों ही परस्पर में प्रहार करते हुए विजय की कामना स कुर्हीं से आयुधों का आदान-प्रदान करने लगे ॥३३॥

भिद्यमानेष्वशेषेषुशरेष्वस्त्रेषु सीदति ।

प्राबुय्येण ततो बाण हन्तु चक्रे हरिर्मनः ॥३४॥

ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सदृशद्युति ।

जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक सुदर्शनम् ॥३५॥

मुञ्चतो बाणनाशाय ततश्चक्र मधुद्विप ।

नग्ना दैतेयविद्याभूत्कोटरी पुरतो हरे ॥३६॥

तामप्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षस्सुदर्शनम् ।

मुमोच बाणमुद्दिश्यच्छेत्तु बाहुवन रिपो ॥३७॥

क्रमेण तत्तु बाहूना बाणम्याच्युतचोदितम् ।

छेद चक्रेऽमुरापास्तशम्भोऽक्षपणादृतम् ॥३८॥

छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थ मधुमूदन ।

मुमुक्षुर्वाणनाशाय विज्ञातम्विपुरद्विपा ॥३९॥

ममुपेत्याह गोविन्द सामपूर्वंमुमापति ।

विलोक्य बाण दोदण्डच्छेदासृक्प्रावर्षापिणम् ॥४०॥

अन्त म जब सभी बाण टूट गये और सभी शस्त्रास्त्र ध्वस्त होगये, तब

भगवान् श्रीहरि ने बाणासुर को नष्ट करने का निश्चय किया ॥३४॥ फिर दैत्यो के महान् शत्रु भगवान् हरि ने सैकड़ों सूर्यों जैसे तेज वाले सुदर्शन चक्र को हाथ में ग्रहण किया ॥३५॥ जब वह उसे मारने के लिये अपने चक्र को छोड़ने में तत्पर हो रहे थे, तभी दैत्यो की विद्या कोटरी नग्नावस्था में श्रीकृष्ण के सामने आई ॥३६॥ उसे देखकर भगवान् ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और बाणासुर की भुजाओं रूरी वन को काटने के लिये, उसे लक्ष्य करके चक्र प्रेरित किया ॥३७॥ तब उस चक्र ने दैत्यो द्वारा प्रेरित अस्त्रों को काट कर बाणासुर की भुजाओं को भी काट कर गिरा दिया ॥३८॥ तब भगवान् शङ्कर ने यह समझ कर कि अब श्रीकृष्ण हम बाणासुर का वध करने के लिये पुनः अपने चक्र को प्रेरित करने में तत्पर हैं ॥३९॥ तब बाणासुर के बटे हुए भुजदण्डों से रुधिर-धार प्रवाहित होती देखकर उन पार्वतीनाथ त्रिपुरारि शङ्कर ने भगवान् गोविन्द के पास आकर कहा ॥४०॥

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम् ।

परेश परमात्मानमनादिनिधन हरिम् ॥४१॥

देवतियंङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका ।

लीलेय सर्वभूतस्य तव चेशोपलक्षणा ॥४२॥

तत्प्रसीदाभय दत्त बाणस्याम्य मया प्रभो ।

तत्त्वया नानृत कार्यं यन्मया व्याहृतं वच ॥४३॥

अस्मत्सश्रयदृष्टोऽयं नापराधी तवाव्यय ।

मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

इत्युक्तं प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम् ।

प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५॥

भगवान् शङ्कर बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! मुझे ज्ञात

है कि आप परम पुरुष, परमात्मा और आदि-अन्त-निहीन श्रीहरि हैं ॥४१॥

आप देव तिर्यक् और मनुष्यादि योनियों में उत्पन्न होते हैं, यह सब आप स्व-भूतात्मक प्रभु की लीला ही है ॥४२॥ हे प्रभो ! आप प्रसन्न हो । मैंने इन

बाणासुर को जो अभयदान दिया है, मेरे उन वचन को आप भगवान् कीजिये

केय के पत्न्यायन करने और शिवगणों के क्षीण होने पर नन्दोभय द्वारा हीं जाने हुए महाग्रह पर बालुड हुआ बाणामुर कृष्ण, बनगम और प्रद्युम्न ने मुद्र करने के लिये गामने आया ॥२७-२८॥ तब महाबली रामजी ने बाण-वर्षा के द्वारा दैत्य-मेना को छिन्न-भिन्न किया, तब वह बायरता पूर्वक वहीं में भाग घनी ॥२९॥ उस समय बाणामुर ने देखा कि उसकी मेना को बनगम जी पूर्ण पूर्वक हन से भीचते और मूलत में मार्गते है तथा कृष्ण उसे बाणों से बीधे डालने हैं ॥३०॥ तब उसने श्रीकृष्ण के साथ महा मय म कहाया । दोनों ही कवच भेदी बाणों का प्रयोग करने लगे ॥३१॥ फिर जब श्रीकृष्ण ने बाणामुर द्वारा प्रयुक्त बाणों को काट डाला, तब बाणामुर ने उन्हें और उन्होंने बाणामुर को बाणों से बीधना प्रारम्भ किया ॥३२॥ हे द्विज । उस समय बाणामुर और कृष्ण दोनों ही परस्पर में प्रहार करते हुए विजय की कामना से कुर्वी म धायुधों का प्रादान-प्रदान करने लगे ॥३३॥

मिथ्यमानेध्वमेपेपुनरेष्वम्त्रेषु सीदति ।

प्रादुर्येषु ततो बाण हन्तु चक्रे हरिमनः ॥३४॥

ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सहस्रद्युति ।

जग्राह दैत्यचक्रारिहरिश्चक्रमुदर्शनम् ॥३५॥

मुञ्चतो बाणनाशाय ततश्चक्रमधुद्विप ।

नाना दैत्यविद्याभूत्कोटरी पुरतो हरे ॥३६॥

तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षमुदर्शनम् ।

मुमोच बाणमुद्दिश्यच्छेत्तु बाहुवन रिपो ॥३७॥

क्रमेण तत्तु बाहुना बाणस्याच्युतचोदितम् ।

त्रेद चक्रेऽमुरापास्तशस्त्रोघक्षपणादृतम् ॥३८॥

छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थ मधुमूदन ।

मुमुक्षुर्वाणनाशाय जिज्ञातस्त्रिपुरद्विपा ॥३९॥

ममुपेत्याह गोविन्द सामपूर्वमुमापति ।

विनोक्त्य बाण दोर्दण्डच्छेदासृक्स्त्राववर्षिणम् ॥४०॥

अन्त में जब सभी बाण टूट गये और सभी शस्त्रास्त्र ध्वस्त होगये, तब

भगवान् श्रीहरि ने बाणासुर को नष्ट करने का निश्चय किया ॥३४॥ फिर दैत्यो के महान् शत्रु भगवान् हरि ने सैकड़ों सूर्यों जैसे तेज वाले सुदर्शन चक्र को हाथ में ग्रहण किया ॥३५॥ जब वह उसे मारने के लिये अपने चक्र को छोड़ने में तत्पर हो रहे थे, तभी दैत्यो की विद्या कौटरी नग्नावस्था में श्रीकृष्ण के सामने घाई ॥३६॥ उसे देखकर भगवान् ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और बाणासुर की भुजाओं की वन को काटने के लिये, उसे लक्ष्य करके चक्र प्रेरित किया ॥३७॥ तब उस चक्र ने दैत्यो द्वारा प्रेरित अस्त्रों को काट कर बाणासुर की भुजाओं को भी काट कर गिरा दिया ॥३८॥ तब भगवान् शङ्कर ने यह समझ कर कि अब श्रीकृष्ण इस बाणासुर का वध करने के लिये पुनः अग्न चक्र को प्रेरित करने में तत्पर हैं ॥३९॥ तब बाणासुर के कटे हुए भुजदण्डों से रुधिर-धार प्रवाहित होती देखकर उन पार्वतीनाथ त्रिपुरारि शङ्कर ने भगवान् गोविन्द के पास आकर कहा ॥४०॥

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम् ।

परेण परमात्मानमनादिनिधन हरिम् ॥४१॥

देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका ।

लीलेय सर्वभूतस्य तव चेष्टोपलक्षणा ॥४२॥

तत्प्रसीदाभय दत्त बाणस्यान्य मया प्रभो ।

तत्त्वया नानृत धार्य यन्मया व्याहृत वच ॥४३॥

अस्मत्सश्रयदृष्टोऽय नापराधी तवाव्यय ।

मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

इत्युक्त प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम् ।

प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽमुर प्रति ॥४५॥

भगवान् शङ्कर बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! मुझे ज्ञात है कि आप परम पुण्य, परमात्मा और प्रादि-घन-विहीन श्रीहरि हैं ॥४१॥ आप देव तिर्यक् और मनुष्यादि योनियों में उत्पन्न होते हैं, यह सब आप स्व-भूतारमण प्रभु की लीला ही है ॥४२॥ हे प्रभो ! आप प्रसन्न हो । मैंने इस बाणासुर को जो अभयदान दिया है, मेरे उग्र वचन को आप भगवान् की प्रिये

॥४३॥ हे अव्यय ! इग्ने मेरे आश्रय के कारण इतना गर्वोला होने से ही आपका अपराध किया है, इसलिये यह आपका अपराधी नहीं है । इसे मैंने जो वर प्रदान किया था, उम्मीद रक्षा के लिये ही मैं इसे दामा करने के लिये आपसे आप्रह्न करता हूँ ॥४४॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् शङ्कर के वचन सुन कर श्रीवृष्ण ने वाणासुर के प्रति उत्पन्न हुए अपने क्रोध को त्याग दिया और प्रसन्न मुख होकर उनसे बोले ॥४५॥

युष्मद्वत्तवरो वाणो जीवतामेष शङ्कर ।  
 त्वद्वाक्यगीरवादेतन्मया चक्र निवर्तितम् ॥४६॥  
 त्वया यदभय दत्तं तद्वत्तमस्त्रिल मया ।  
 मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ॥४७॥  
 योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।  
 मत्तो नान्यदशेष यत्तत्त्व ज्ञातुमिहार्हसि ॥४८॥  
 अविद्यामोहितात्मानं पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।  
 वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ॥४९॥  
 प्रसन्नोऽहं गमिष्यामि त्वं गच्छ वृषभध्वज ॥५०॥

श्री भगवान् ने कहा—हे शङ्कर ! आपके वरदान के कारण यह वाणासुर जीवित रहे । आपका वचन भगवत् न हो, इसलिये मैं अपने चक्र को रोकता हूँ ॥४६॥ हे शिव ! आपने जो वर दिया है, उसे मेरे द्वारा ही दिया हुआ समझें, आप मुझे सदैव अपने से अभिन्न ही देखें ॥४७॥ जो मैं हूँ, वही आप हैं । सम्पूर्ण विश्व—देवता, दैत्य, मनुष्यादि कोई भी तो मुझसे भिन्न नहीं है ॥४८॥ हे शङ्कर ! अविद्या से अमित वित्त वाले मनुष्य ही हम दोनों में भेद कथन करते अथवा देखते हैं । हे वृषभध्वज ! आप गमन कीजिये, मैं भी अब जा रहा हूँ ॥४९-५०॥

इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्ण प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति ।  
 तद्वन्धफणिनो नेशुर्गरुडानिलपोथिता ॥५१॥  
 ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति ।  
 आजग्मुर्द्वारिका रामकाष्णिगदामोदराः पुरीम् ॥५२॥

पुत्रपौत्रः परिवृतस्तत्र रेमे जनार्दनः ।

देवीभिस्सतत विप्र भूभारतरणेच्छया ॥५३॥

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्ध के पास पहुँचे । उनके वहाँ जाते ही अनिरुद्ध के लिये पाश रूप हुए सभी नाग गरुड के चलने से उत्पन्न हुए पवन के वेग से नाश हो प्राप्त हुए ॥५१॥ फिर अनिरुद्ध को उसकी पत्नी उषा के सहित गरुड पर चढ़कर बलराम और प्रद्युम्न सहित श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में आगये ॥५२॥ हे द्विज ! वहाँ पृथिवी का भार उतारने की इच्छा से अपने पुत्र पौत्रादि के सहित निवास करते हुए भगवान् अपनी रानियों के साथ क्रीडा करने लगे ॥५३॥

### चौतीसवाँ अध्याय

चक्रे कर्म महच्छीरिविभ्राणो मानुषी तनुम् ।

जिगाय शक्रं शर्वं च सर्वान्देवाश्च लीलया ॥१॥

यच्चान्यदकरोत्कर्म दिव्यचेष्टाविधातकृत् ।

तत्त्वथ्यता महाभाग पर कौतूहल हि मे ॥२॥

गदतो मम विप्रर्षे श्रूयतामिदमादरात् ।

नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥३॥

पौण्ड्रको वासुदेवस्तु वासुदेवोऽभवद्भुवि ।

अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः ॥४॥

स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले ।

नष्टस्मृतिस्ततस्सर्वं विष्णुचिह्नमचीकरत् ॥५॥

दूत च प्रेषयामास कृष्णाय सुमहात्मने ।

त्यक्त्वा चक्रादिक चिह्नं मदीयं नाम चात्मनः ॥६॥

वासुदेवात्मकं मूढं त्यक्त्वा सर्वमश्रेयसः ।

आत्मनो जीवितार्थाय ततो मे प्रणतिं व्रज ॥७॥



ततस्तु केशवोद्योगं श्रुत्वा काशिपतिस्तदा ।

सर्वसैन्यपरीवारः पार्थिवग्राह उपाययौ ॥१४

दूत ने उसके संदेश को यथावत् श्रीकृष्ण को जा सुनाया, तब उन्होंने हँसते हुए कहा—हे दूत पौंड्रक को कहना कि मैं अपने चक्र रूप बिह्व को तेरे लिये अवश्य छोड़ूंगा । मैंने तेरे संदेश का यथार्थ भाव ग्रहण कर लिया, अब तू जैसा चाहे वैसा कर ॥८-१॥ मैं अपने बिह्व और वेश के सहित तेरे यहाँ आकर इन्हें तेरे ऊपर ही छोड़ दूंगा ॥१०॥ और मैं तेरी आज्ञा का पालन करने के लिये कल ही तेरी क्षरण में उपस्थित होऊँ ॥११॥ मैं तेरी क्षरण में पहुँच कर तुझे भय-रहित करने का पूर्ण उपाय करूँगा ॥१२॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण जी की बात सुनकर दूत चला गया तब भगवान् ने गरुड का स्मरण किया, जिससे वह तत्काल भा गये । भगवान् उस पर चढ़ कर पौण्ड्रक की राजधानी की ओर चल दिये ॥१३॥ भगवान् के वहाँ आने का समाचार प्राप्त कर काशी नरेश भी पौंड्रक की सहायता के लिये अपनी सेना के सहित भा गया ॥१४॥

ततो बलेन महता काशिराजबलेन च ।

पौण्ड्रको वासुदेवोऽसीकेशवाभिमुखो ययौ ॥१५

त वदशं हरिद्वं राडुदारस्यन्दने स्थितम् ।

चक्रहस्तं गदाशङ्खबाहुं पार्थिवगताम्बुजम् ॥१६

स्रग्धरं पीतवसनं सुपर्णरचितध्वजम् ।

वक्ष स्पले वृत्त चास्य श्रीवत्स दृष्टे हरिः ॥१७

किरीटकुण्डलधरं नानारत्नोपशोभितम् ।

त दृष्ट्वा भावगम्भीर जहास गरुडध्वजः ॥१८

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्ववलिना द्विज ।

निस्त्रिंशसिगदाशूलशक्तिनामुं कशालिना ॥१९

क्षणेन पाङ्गुनिमुं तं क्षारं ररिविदारणं ।

गदाचक्रनिपातं च गूदयामास तदवलम् ॥२०

काशिराजबल चैव क्षय नीत्वा जनार्दन ।

उवाच पौण्ड्रक मूढमात्मचिह्नोपलक्षितम् ॥२१॥

इमके पदचात् काशी नरेश की सेना के साथ ही अपनी महान् सेना को लेकर पौण्ड्रक भगवान् वासुदेव के सामने आया ॥१५॥ भगवान् ने उसे हाथ में चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और पद्म धारण किये एक श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए देखा ॥१६॥ उसके कण्ठ में वंजयन्ती माला, देह में पीताम्बर, वक्ष स्थल में श्रीवत्स का चिह्न और गरुड से चित्रित ध्वजा थी ॥१७॥ उसे विभिन्न प्रकार के रत्नादि से भुक्त किरीट-कुण्डल धारण किये हुए देख कर गरुडध्वज भगवान् वासुदेव गम्भीरता पूर्वक हँस पड़े ॥१८॥ हे द्विज ! फिर उसकी अश्व-मजादि से सम्पन्न एवं निस्त्रिंश, सङ्ग, गदा, धूल, शक्ति धनुष आदि प्रायुधों से सज्जित सेना के साथ युद्ध करने में तत्पर हुए ॥१९॥ भगवान् ने शत्रुओं को विदीर्ण करन वाले अपने तीक्ष्ण बाणों को शार्ङ्ग धनुष से छोड़ कर तथा गदा और चक्र से शत्रुओं पर प्रहार करके क्षण भर में ही उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥२०॥ इसी प्रकार काशिराज की भी सेना मार दी और अपने सामने सभी चिह्न धारण किये हुए पौण्ड्रक को देख कर उससे बहा ॥२१॥

पौण्ड्रकोक्त त्वया यत्तु दूतवक्त्रेण मा प्रति ।

समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते सम्पदयाम्यहम् ॥२२॥

चक्रमेतत्समुत्सृष्ट गदेय ते विसर्जिता ।

गरुत्मानेप चोत्सृष्टस्समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३॥

इत्युच्चार्य विमुक्तेन चक्रेणासी विदारित ।

पातितो गदया भग्नो ध्वजश्चास्य गरुत्मता ॥२४॥

ततो हाहाकृते लोके काशिपुर्धधपो बली ।

युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितो स्थितः ॥२५॥

ततश्शार्ङ्गं धनुमुक्तं शिच्छन्वा तस्य शिरश्शरं ।

काशिपुर्या स चिक्षेप कुर्वल्लोकस्य विस्मयम् ॥२६॥

हत्वा त पौण्ड्रक शरीरं काशिराज च सानुगम् ।

पुनर्द्धारवती प्राप्तो रेमे स्वर्गगतो यथा ॥२७॥

श्री भगवान् ने कहा—हे पौंड्र ! तूने मुझे मन्देन भेजा था कि मेरे चित्तों को छोड़ दे, इस लिये उम धात्रा का पालन तेरे ही नामने करता हूँ ॥२२॥ देव, तेरे ऊपर यह चक्र छोड़ दिया, यह गदा भी छोड़ दी और धव गरट की भी छोड़ रहा हूँ, जो तेरी प्यवा पर बढ जाय ॥२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह बहूँ बार छोड़े गये चक्र ने पौंड्र की सिदीएँ कर दिया और गदा ने उगे धराणापो किया तथा गदह ने उमकी प्यवा बाट डाली ॥२४॥ इस पर सब मेमा में हा-हाकार मच गया । गदह देव कर गिर के प्रतिशोभायं वासिराज ने श्रीकृष्ण से मुछ लिया ॥२५॥ तब भगवान् ने एक बाण से ही उमका मगक बाट कर बानीपुरी में फेंक दिया, इससे सभी धादर्य करने लगे ॥२६॥ इस प्रकार पौंड्र और बानीराज का सम्पूर्ण सेना सहित संहार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण द्वाराय से धावर स्वयं के समान उगे भोगने लगे ॥२७॥

है, तो अपने पुरोहित की सहायता से उसने भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया ॥२६॥ उस अविमुक्त महाक्षेत्र में प्रसन्न हुए भगवान् शङ्कर ने प्रकट हो कर उस राजपुत्र से कहा—‘वर माँग’ ॥२७॥ इस पर उसने कहा—‘हे महेश्वर ! हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें मेरे पिता को मारने वाले कृष्ण के विनाशार्थ कृत्या उत्पन्न हो जाय ॥२८॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् शङ्कर बोले कि ‘ऐसा ही होगा’ । उनके ऐसा कहने पर दक्षिणाग्नि वा घयन करने पर उससे उड़ी अग्नि को नष्ट करने वाली कृत्या उत्पन्न हो गई ॥२९॥ उसका ज्वाला मालाओं से परिपूर्ण विकराल मुख और अग्नि शिखा के समान प्रज्वलित केश थे । ऐसी वह कृत्या कृष्ण ! कृष्ण ! पुकारती हुई क्रोध पूर्वक द्वारका पुरी में जा पहुँची ॥३०॥

तामवेक्ष्य जनस्त्रासाद्विचलत्लोचनो मुने ।  
 ययौ शरण्य जगता शरण मधुसूदनम् ॥३४  
 काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम् ।  
 उत्पादिता महाकृत्येत्यवगम्याथ चक्रिणा ॥३५  
 जहि कृत्यामिमामुग्रा वह्निज्वालाजटालकाम् ।  
 चक्रमुत्सृष्टमक्षेपु क्रीडासक्तेन लीलया ॥३६  
 तदग्निमालाजटिलज्वालोद्गारातिभीषणाम् ।  
 कृत्यामनुजगामाशु विष्णुचक्र सुदर्शनम् ॥३७  
 चक्रप्रतापनिर्दग्धा कृत्या माहेश्वरी तदा ।  
 ननाश वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम् ॥३८  
 कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता ।  
 विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तम ॥३९  
 तत काशीवल भूरिप्रमथोना तथा बलम् ।  
 समस्तशस्त्रास्त्रयुत चकस्याभिमुख ययौ ॥४०

हे मुने ! उसे देख कर सभी द्वारका निवासी भय से व्याकुल हो उठे और तत्काल ही भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जा पहुँचे ॥३४॥ तब जुष्ठा खेलने में सगे हुए भगवान् ने उस कृत्या की काशिराज के पुत्र द्वारा प्रसन्न हुए

पञ्चर के प्रसाद से वहाँ भाई हुई जान कर अपने चक्र को आदेश दे दिया कि इस ज्वालामयी भयङ्करी कृत्या को नष्ट कर दे ॥३५-३६॥ आज्ञा पाते ही उस छूटे हुए सुवर्ण चक्र ने अग्निमाल गण्डित जटामो और अग्निमुख के कारण भयानक मुख वाली उस कृत्या का पीछा किया ॥३७॥ तब उस चक्र के तेज से जलती हुई कृत्या धिस्त-भिस्त होती हुई द्रुतवेग से भागी और चक्र ने भी उस का उसी वेग से पीछा किया ॥३८॥ हे मुनिसत्तम ! चक्र के तेज से प्रभावहीन हुई वह कृत्या उल्टी लौट कर काशी में हो जा पहुँची ॥३९॥ उस समय शिव जी के प्रमथगण और वाशिराज की सम्पूर्ण सेना शम्भालो से सज कर उस चक्र के सामने धा गये ॥४०॥

शस्त्रास्त्रमोक्षचतुर दग्ध्वा तद्वलमोजसा ।

कृत्यागर्भमशेषा ता तदा वाराणसी पुरीम् ॥४१॥

सभ्रभृद्भृत्यपौरा तु साश्वमातङ्गमानवाम् ।

अशेषगोष्ठकोशा ता दुर्निरीक्ष्या सुरैरपि ॥४२॥

ज्वालापरिष्कृताणेपगृहप्राकारचत्वराम् ।

ददाह तद्वरेष्वकं सकलामेव ता पुरीम् ॥४३॥

अस्तीशामर्षमत्युग्रसाध्यसाधनसस्पृहम् ।

तच्चक्र प्रम्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्यापयो करम् ॥४४॥

उस समय उस चक्र ने अपने तेज से सब प्रकार के प्रायुषो के प्रेरण से अधस्त उस सम्पूर्ण सेना को भस्म कर उग कृत्या के सहित सम्पूर्ण वासी पुरी को दग्ध करना आरम्भ किया ॥४१॥ जो वाराणसी राजा, प्रजा, सेवक, हाथी, घोटे और मनुष्यादि से परिपूर्ण, सभी गोष्ठो और कोष्ठो से भग्ना तथा देवताओ के लिये दुर्लभ दर्शन थी, उसे उस विष्णु चक्र ने धर, कोट, चतुस्तरे आदि के सहित भस्म कर दिया ॥४२-४३॥ अन्त में वह शशान्त तथा उग्रवर्मा प्रत्यन्त तेजोमय चक्र वहाँ से लौटकर पुन भगवान् के हाथ में जा पहुँचा ॥४४॥

### पैतीसर्वा अध्याय

भूय एवाहमिच्छामि बलभद्रस्य धीमतः ।  
 श्रोतुं पराक्रम ब्रह्मन् तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१॥  
 यमुनाकर्षणादीनि श्रुतानि भगवन्मया ।  
 तत्कथ्यतां महामाग यदन्यत्कृतवान्बलः ॥२॥  
 मैत्रेय श्रूयतां कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम् ।  
 अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीधृता ॥३॥  
 सुयोधनस्य तनयां स्वयवरकृतक्षणाम् ।  
 बलादादत्तवान्बौरस्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥४॥  
 ततः क्रुद्धा महावीर्या कण्ठदुर्योधनादयः ।  
 भीष्मद्रोणादियस्त्वेनं बन्धूयुधि निजितम् ॥५॥  
 तच्छ्रुत्वा यादवास्सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु ।  
 मैत्रेय चक्रुः कृष्णश्च तान्निहन्तुं महोद्यमम् ॥६॥  
 तान्निवार्यं बलः प्राह मदलोलकलाक्षरम् ।  
 मोक्षयन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् ॥७॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं बलरामजी के पराक्रम का वृत्तान्त सुनने का उत्सुक हूँ, उसे कहिये ॥१॥ यमुना को खींचने आदि पराक्रम तो सुन चुका, अब उनके अन्य कार्यों को बतलाइये ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! गोपावतार श्री बलरामजी द्वारा किये गये कर्मों की मुझसे सुनो ॥३॥ एक बार जाम्बवती-पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री के स्वयवर से उसे बल पूर्वक हर लिया था ॥४॥ तब महाबली कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण आदि ने क्रोधित होकर उसे बाँध कर अपने वश में कर लिया ॥५॥ यह समाचार मिलने पर श्रीकृष्णादि यदुवर्षियों ने अश्रयत क्रोधित होकर उनको मारने के लिये आगे तैयारी की ॥६॥ बलरामजी ने उन्हें रोक्ते हुए कहा कि मेरे

कहने मात्र से कौरवगण साम्ब को मुक्त कर देंगे, इसलिये मे भवेला ही वहाँ जाना है ॥७॥

बलदेवस्ततो गत्वा नगर नागसाह्वयम् ।  
 बाह्योपवनमध्येऽभून्न विवेश च तत्पुरम् ॥८॥  
 बलमागतमाज्ञाय भूपा दुर्योधनादय ।  
 गामर्घ्यमुदक चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥९॥  
 गृहीत्वा विधिर्वत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ।  
 आज्ञापयत्युग्रसेनस्साम्बमाशु विमुञ्चत ॥१०॥  
 ततस्तद्वचन श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो नृपा ।  
 कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्षुर्भुविजसत्तम ॥११॥  
 ऊबुश्च कुपितास्मर्वे बाह्लिकाद्याश्च कौरवा ।  
 भ्राज्याहं यदोवंशमवेक्ष्य मुसलायुधम् ॥१२॥  
 भो भो किमेतद्भूवता बलभद्रे रित वचः ।  
 आज्ञा कुरुकुलोत्पाना यादव क प्रदास्यति ॥१३॥  
 उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञा कौरवाणां प्रदास्यति ।  
 तदल पाण्डुर्गृह्णन्नैनृं पयोग्यैर्विडम्बनै ॥१४॥

श्री पद्मशर जी ने कहा—इसके पश्चात् बलरामजी हस्तिनापुर पहुँच कर नगर से बाहर एक उद्यान में ठहर गये ॥८॥ बलरामजी के वहाँ आने का समाचार दुर्योधनादि ने गी, अर्घ्य और पाद्यादि के निवेदन पूर्वक उनका सत्कार किया ॥९॥ उसे स्वीकार करके बलरामजी ने उनसे कहा—राजा उग्रसेन की आज्ञा है कि आप साम्ब को मुक्त कर दें ॥१०॥ हे द्विजसत्तम ! यह सुनकर भीष्म, प्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि अत्यन्त क्षुब्ध हुए ॥११॥ और यदुवश को राज्य के अयोग्य समझ कर क्रोध पूर्वक बलरामजी से बोले ॥१२॥ हे बलरामजी ! आप क्या कहते हैं ? वीर सा यदुवशी वीर किसी वीरव वीर को आज्ञा देने में समर्थ है ? ॥१३॥ यदि उग्रसेन जैसे भी वीरवा को आज्ञा दे सकते हैं तो वीरव को इस श्वेन राजद्वय के धारण की क्या आवश्यकता है ? ॥१४॥

तद्गच्छ बल मा वा त्वं साम्बमन्यायचैष्टितम् ।

विमोक्ष्यामो न भवतश्चोग्रसेनस्य शासनात् ॥१५॥

प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकः ।

ननाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः ॥१६॥

गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनः ।

को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीत्या नावलोकिता ॥१७॥

अस्माभिरर्धो भवतो योश्रं बल निवेदितः ।

प्रेमणैतन्नंतदस्माकं कुलाद्युभक्तुस्तोचितम् ॥१८॥

इत्युक्त्वा कुरवः साम्बं मुञ्चामो न हरेस्तुतम् ।

कृतंकनिश्चयास्तूर्णं विवसुगंजसाह्वयम् ॥१९॥

मत्तः कोपेन चाधूणंस्ततोऽधिकेपजन्मना ।

उत्थाय पाण्ड्या वसुधां जघान स हलायुधः ॥२०॥

ततो विदारिता पृथ्वी पाप्मिणघातान्महात्मनः ।

आस्फोटयामास तदा दिशश्चन्द्रेण पूरयन् ॥२१॥

इसलिये हे बलरामजी ! तुम जानो या रहो, परन्तु हम तुम्हारी बगवां चग्रसेन की आज्ञा पर साम्ब को मुक्त नहीं करेंगे ॥१५॥ पहिले सभी यदुवंशी हमें प्रणाम करते थे, परन्तु अब ये वैसा न करके सेवक होते हुए भी स्वामी को कैसे आता दे रहे हैं ? ॥१६॥ तुम्हारे साथ समान व्यवहार करके हमने ही तुम्हें चढ़ा दिया है, इसमें तुम्हारा भी कुछ दोष नहीं है, हमने ही प्रेम के बशी-भूत होकर नीति पर ध्यान नहीं दिया था ॥१७॥ हे बलराम ! तुम्हें यह भ्रष्टादि भी हमने प्रेमवश ही दिया है, यथार्थ रूप में तो हमारे द्वारा तुम्हारा सम्मान किया जाना अनुचित ही है ॥१८॥ श्री पराशरजी ने कहा—कृष्ण-पुत्र साम्ब को बन्धन मुक्त न करने का निश्चय प्रकट करके सब कोरवगण उसी समय नगर में चले गये ॥१९॥ इस प्रकार तिरस्कृत हुए बलरामजी ने रोप पूर्वक पृथिवी में पद-प्रहार किया ॥२०॥ इससे पृथिवी फट गई और बलरामजी अपने शब्द से सब दिशाओं को गुञ्जार कम्पित करने लगे ॥२१॥



उवाच चातिताम्राक्षो भृकुटीकुटिलानन ।  
 ग्रहो मदावलेपोऽयमसाराणा दुरात्मनाम् ॥२२  
 कौरवाणा महीपत्वमस्माक किल कालजम् ।  
 उग्रसेनस्य ये नाज्ञा मन्यन्तेऽद्यापि लङ्घनम् ॥२३  
 उग्रसेन समध्यास्ते सुधर्मा न शचीपतिः ।  
 धिङ्मानुपशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषा नृपासने ॥२४  
 पारिजाततरो पुष्पमञ्जरीर्वनिताजन ।  
 विभर्ति यस्य भृत्याना सोऽप्येषा न महीपति ॥२५  
 समस्तभूभृता नाय उग्रसेनस्त तिष्ठतु ।  
 अथ निष्कौरवीमुर्वी कृत्वा यास्यामि तत्पुरीम् ॥२६  
 कर्णं दुर्योधन द्रोणमद्य भीष्म सवाल्लिकम् ।  
 दुःशासनादीन्भूरि च भूरिश्रवसमेव च ॥२७  
 सोमदत्त शल चैव भीमाजुंनयुधिष्ठिरान् ।  
 यमौ च कौरवाश्चान्यान्हत्वा साश्वरथद्विपान् ॥२८  
 वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक तत पुरीम् ।  
 द्वारकामुग्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९  
 अथ वा कौरवावास समस्तं कुरुभिस्सह ।  
 भागीरथ्या क्षिपाम्माशु नगर नागसाह्वयम् ॥३०

बलरामजी की भृकुटी टेढ़ी और गाँठ लाल हो गई, उन्होंने कहा—  
 यह दुरात्मा कौरव राजमद में कैसे उन्मत्त होगये हैं ? वह समझते हैं कि हमारा  
 भूगलश्व स्वयं ही सिद्ध है, इसीलिये महाराज उग्रसेन की आज्ञा का तिरस्कार  
 कर रहे हैं ॥२२-२३॥ आज महाराज उग्रसेन उस सुरमा सभा में बैठते हैं,  
 जिसमें इन्द्र भी नहीं बैठ सकते । इन उच्छिष्ट सिंहासन पर बैठने वाले कौरवों  
 को पिक्कार है ॥२४॥ जिनके भृत्यों की पत्नियाँ पारिजात पुष्पों से शृङ्गार  
 करती हैं, वह महाराज उग्रसेन इनके लिये आदरणीय नहीं है ? ॥२५॥ वही  
 उग्रसेन सब राजाओं के सिरताज बन कर रहेगें । आज मैं अकेला ही इस  
 पृथिवी को कौरवों से ध्वस्त करने उनकी द्वारकापुरी को तोड़ूँगा ॥२६॥ कर्ण,

दुर्पोषन, द्रोण, भीष्म, बाह्लिक, दुर्गामन, भृङ्गि, भूरिश्चवा, सोमदत्त, शल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेवादि जितने भी कौरव हैं उन सबका सेना-महित बध करके और पत्नी सहित साम्ब को लेकर ही मैं द्वारका को लौटूँगा ॥२७-२८॥ अथवा सब कौरवों सहित उनके हस्तिनापुर को ही मैं आज गङ्गा में डुबाये दे रहा हूँ ॥३०॥

इत्मुक्त्वा मन्दरक्ताक्ष कर्पणाघोमुख हलम् ।  
 प्राकारवप्रदुर्गस्य चकर्म मुसलायुध ॥३१॥  
 आघूर्णित तत्सहसा ततो वै हास्तिन पुरम् ।  
 दृष्ट्वा सधुर्व्यहृदयाश्चक्षुभु सर्वकौरवा ॥३२॥  
 राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यता त्वया ।  
 उपसह्रियता कोप प्रसीद मुसलायुध ॥३३॥  
 एष साम्बस्सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल ।  
 अविशतप्रभावाणा क्षम्यतामपराधिनाम् ॥३४॥  
 ततो निर्यातयामासुस्साम्ब पत्नीसमन्वितम् ।  
 निष्क्रम्य स्वपुरात्तूर्णं कौरवा मुनिपुङ्गव ॥३५॥  
 भीष्मद्रोणवृषादीना प्रणम्य वदता प्रियम् ।  
 क्षांतमेव मयेत्याह बलो बलवता वर ॥३६॥  
 अद्याप्याघूर्णिताकार लक्ष्यते तत्पुर द्विज ।  
 एष प्रभावो रामस्य बलशौर्षोपलक्षण ॥३७॥  
 ततस्तु कौरवास्साम्ब सम्पूज्य हलिना मह ।  
 प्रेपयामासुरुद्धाह्वनमार्यासमन्वितम् ॥३८॥

श्री पराशरजी ने कहा—यह कहकर बनरामजी ने हस्तिनापुर के छारों और दुर्गों के सहित आनार मून में हल की नोक को बधाकर उसे खींचा ॥३१॥ उससे सम्पूर्ण नगर कांपने लगा यह देखकर समस्त कौरव भयभीत होगये ॥३२॥ उन्होंने कहा—हे बलराम ! हे महाबाहो ! हम क्षमा करो । याने प्रणम्य की क्षान्त करके प्रसन्न होगये ॥३३॥ हम इस साम्ब की इतनी भार्या के सहित आपकी सौतेले हैं । आपका प्रभाव न जानने के कारण हमने जो अपराध

बना है, उसे क्षमा करिये ॥३४॥ श्री पराशरजी बोले—हे मुनिवर ! वीरवो ने साम्ब को पत्नी सहित बलरामजी के पास लाकर सोप दिया नव भीष्म द्रोण, कृप आदि से बलरामजी ने कहा कि अन्ध्रा, क्षमा करता हूँ ॥३५-३६॥ हे द्विज ! हस्तिनापुर अब भी कुछ भुका हुआ-सा दिखाई देता है, यह बलरामजी की वीरता का प्रभाव समझो ॥३७॥ फिर वीरवो ने बलरामजी सहित साम्ब का पूजन कर बहुत सी दात और भार्या के सहित द्वारका के लिये विदा किया ॥३८॥

### छत्तीसवां अध्याय

मैत्रेयैतद्वल तस्य बलस्य बलशालिन ।  
 कृत यदन्यत्तेनाभूत्तदपि श्रूयता त्वया ॥१॥  
 नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिन ।  
 सखाभवन्महावीर्यो द्विविदो वानरर्षभ ॥२॥  
 वैरानुबन्ध बलवान्स चकार सुरान्प्रति ।  
 नरक हतवान्कृष्णो देवराजेन चोदित ॥३॥  
 करिष्ये सर्वं देवानां तस्मादेतत्प्रतिक्रियाम् ।  
 यज्ञविध्वसनं कुर्वन् मर्त्यलोकक्षयं तथा ॥४॥  
 ततो विध्वसयामास यज्ञानज्ञानमोहित ।  
 विभेद साधुमर्यादा क्षयं चक्रे च देहिनाम् ॥५॥  
 ददाह सवनान्वेशान्पुण्याभ्यान्तराणि च ।  
 क्वचिच्च पर्वताश्लेषग्रीवादीन्समचूर्णयत् ॥६॥  
 शैलानुत्पाट्य तोयेषु भुमोचाम्बूनिधौ तथा ।  
 पुनश्चार्णवमव्यस्य क्षोभयामास सागरम् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! बलरामजी का ऐसा ही प्रभाव था, अब उनके अन्य कर्मों को सुनो ॥१॥ देवताओं के द्रोही नरनामूर का मित्र

द्विविद नामक एक अत्यन्त बनी बन्दर था ॥२॥ इन्द्र की प्रेरणा से श्रीकृष्ण ने नरवासुर को मारा था, इसीलिये द्विविद ने देवताओं से क्षमा माँगी ली ॥३॥ मैं मर्यतोका को छोड़ करके यन्त्रादि को बन्द कर दूँगा, इससे देवताओं से बदला ले लिया जयगा ॥४॥ ऐसा निश्चय करके वह यज्ञों को विघ्नस करने, साधुओं की मर्यादा को नष्ट करने और दारीय धारियों को मारने लगा ॥५॥ यह धन, देश, पुर और ग्रामादि को भस्म करना या उन पर पर्वतादि को गिरा देता है ॥६॥ कभी समुद्र में पर्वत-शिला पेंवता तो कभी समुद्र में धुमकर उसमें क्षोभ उत्पन्न करता है ॥७॥

तेनैविक्षोभितश्च विघ्नद्वे लो द्विज जायते ।

प्लारयस्तीरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेगवान् ॥८॥

कामरूपी महारूप कृत्वा सस्यान्यशेषतः ।

सुठन्भ्रमणसम्मर्दस्मच्छूर्णयति वानरः ॥९॥

तेन निप्र कृत सर्व जगदेतद्दुरात्मना ।

निस्त्वाध्यायवपट्कार मंत्रेयासीत्सुदु खितम् ॥१०॥

एवदा रैवतोद्याने पपी पान हलायुध ।

रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रिय ॥११॥

उद्गीयमानो विलसत्ललनामोलिमध्यग ।

रेमे यदुकुलश्रेष्ठ कुबेर इव मन्दरे ॥१२॥

ततस्स वानरोऽभ्येत्य गृहोत्वा सीरिणो हलम् ।

मुसल च चकारास्य सम्मुख च विडम्बनम् ॥१३॥

तथैव योषिता तासा जहासाभिमुख कपि ।

पानपूर्णाश्च करकाञ्चिक्षेपाहत्य वै तदा ॥१४॥

तब वह क्षुभित हुआ समुद्र अपने सटवर्ती ग्राम आदि को दबा देता ॥८॥ जब वह कामरूपी बन्दर विनाश रूप धारण कर सैतो पर लेट जाता तब सभी धान्यों को कुचल कर नष्ट कर देता है ॥९॥ उस पापी ने सम्पूर्ण विश्व को यज्ञ और स्वाध्याय से विषुय कर दिया इससे दुष्टों की अत्यन्त वृद्धि हुई ॥१०॥ एक दिन बलरामजी रैवतोद्यान में रेवती और अन्य सुन्दरिया के साथ

बैठे हुए मग्य भी रहे थे ॥११॥ मन्दराचल पर कुबेर के खीड़ा करने के समान  
ही श्रियो द्वारा गायन-वादन चलने पर उठते मध्य में सुशोभित थे ॥१२॥ उसी  
समय वही यह द्विविध नाम का बन्दर आगया और बलरामजी से हन-भूतल  
उठा पर उनकी नवल बनाने लगा ॥१३॥ फिर उसने मदिरा के घड़े का फोड़  
पैदा और श्रियो की घोर धूर-धूर का होने लगा ॥१४॥

ततः कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास तं हृत् ।

तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलध्वनिम् ॥१५॥

ततः स्मयित्वा स बन्धो जग्राह मुमलं रपा ।

मोऽपि शूलशिला भीमा जग्राह प्लवगोत्तमः ॥१६॥

चिक्षेप स च ता क्षिमा मुसलेन सहस्रधा ।

विभेद यादयश्चेष्टस्ता पपात महीतले ॥१७॥

प्रथ तन्मुमल चागी समुत्लङ्घ्य प्लवङ्गम् ।

येनैनागत्य रोपेण फरेणारम्यताडयत् ॥१८॥

ततो धलेन योपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः ।

पपात गपिरोद्गारी द्विविध क्षीणजीवित ॥१९॥

पाता तच्छरीरेण गिरेद्वृद्धमधीयंत ।

३२६ ] .

रामजी पर फेंकी तो उन्होंने अपने मूसल से उसके हजारों खण्ड करके पृथिवी पर गिरा दी ॥१७॥ तब बन्दर ने बलरामजी के मूसल की मार से बचकर उनकी छाती में बड़े वेग से मुष्टिका का प्रहार किया ॥१८॥ तब उन्होंने क्रोध पूर्वक उस बन्दर के सिर में घूँसा मार कर पृथिवी पर गिरा दिया और वह रक्त वमन करता हुआ समाप्त होगया ॥१९॥ उस बन्दर के गिरने से, जैसे इन्द्र के वज्र से पर्वत बिदीराँ होते हैं, वैसे ही पर्वत-शिखर के संकड़ों खण्ड होगये ॥२०॥ उस समय देवताओं बलरामजी पर पुष्प वृष्टि करते हुए उनकी स्तुति की ॥२१॥ उन्होंने कहा कि जगत् को घोर त्रास देने वाला यह दुष्ट बन्दर आज आपके द्वारा नष्ट होगया, यह कितने सौभाग्य की बात हुई है, यह कहते हुए सभी देवगण प्रसन्न होते हुए स्वर्गलोक को गये ॥२२-२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—शेषावतार श्री बलरामजी के ऐसे असंख्य कर्म हैं, जिनकी गणना सम्भव नहीं है ॥२४॥

### सैंतीसवाँ अध्याय

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान् ।  
 चक्रं दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ॥१॥  
 क्षितेश्च भारं भगवान्फाल्गुनेन समन्वितः ।  
 अवतारयामास विभुस्समस्ताक्षोहिणीवघात् ॥२॥  
 कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाखिलानृपान् ।  
 शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३॥  
 उत्सृज्य द्वाग्कां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मनः ।  
 साशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश मुने निजम् ॥४॥  
 स विप्रशापव्याजेन संजह्ये स्वकुलं कथम् ।  
 कथं च मानुष देहमुत्सर्जं जनार्दनः ॥५॥  
 विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः ।  
 पिण्डारके महातीर्थे दृष्ट्वा यदुकुमारकैः ॥६॥

ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिता ।

साम्यं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यथा ॥७॥

प्रथितास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरस्सरम् ।

इयं स्त्री पुत्रकामा वै ब्रूत किं जनयिष्यति ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार लोकहितैषी बलरामजी के सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने दैत्यो घोर राजाओं का सहार किया ॥१॥ फिर अर्जुन के साथ मिनरर उन्होंने अठारह सौहिणी सेना को नष्ट कर भू-भार उतार दिया ॥२॥ इस प्रकार सब राजाओं का मर्त्य सहार कर उन्होंने ब्राह्मणों के साथ के बहाने से अपने कुल का भी उपगहार किया ॥३॥ हे मुने ! अन्त में उन्होंने द्वारकापुरी और अपने मानव देह के परित्याग पूर्वक अपने घरा सहित स्वर्ग में प्रवेश किया ॥४॥ श्री मंत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण ने अपने कुल का उपगहार किस प्रकार किया और कंग अपने मानव शरीर का त्याग किया ? ॥५॥ श्री पराशरजी ने कहा—एक बार यादवी के बानवों ने पिण्डारक क्षेत्र में विद्यामित्र, बरह और नारदादि महर्षियों को देखा ॥६॥ तब उन्होंने जाम्बवती के पुत्र साम्य को स्त्री-वेश में मजाकर उन मुनियों से प्रणाम पूर्वक पूछा कि 'इस पुत्र की इच्छा है तो बनाइये हमारे क्या उपप्र होता ?' ॥७॥

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धाः कुमारवै ।

मुनयः कुपिताः प्राप्नुमुं गतं जनयिष्यन्ति ॥९॥

सर्वपादयगहारस्मारणं भुवनोत्तरम् ।

येनागिनानुलोत्पादो यादवानां भविष्यति ॥१०॥

इत्युत्तमो कुमारस्तु प्राचक्षुर्धुयंयातयम् ।

उत्तमेनायं मुगलं जज्ञे माम्बग्यं चोदरात् ॥११॥

जज्ञे तद्वरवाचं प्रथितं तमेहोऽप्यो ॥१२॥

मुगलरायं सोऽहं पूगितम्यं तु यादवं ।

गच्छ पूगितेन तु तनो यत्तोमराट् ॥१३॥

तदप्यम्बुनिधो क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः ।

घातितस्योदरात्तस्य क्षुब्धो जग्राह तञ्जराः ॥१४

विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान्मधुसूदनः ।

नेच्छत्तदन्यथा वतुं विधिना यत्समीहितम् ॥१५

श्री पराशरजी ने कहा—यादव—बालको फी हँसी को लाठ कर उन महर्षियो ने क्रोधपूर्वक कहा—इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब घोर से यादवों के नाश का कारण हो जायगा ॥६-१०॥ मुनियों के ऐसा कहने पर उन बालको ने राजा उग्रसेन को जाकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया ॥११॥ उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण कराकर समुद्र में फिकवा दिया, जिससे बहुत से सरकंडे उत्पन्न होगये ॥१२॥ उस मूसल का भावे की नोक जैसा एक भाग चूर्ण करने से रह गया, उसे भी समुद्र में डलवा दिया था, उस भाग को एक मछली ने निगल लिया । मछेरो द्वारा पकड़ी गई उस मछली के धीरे धीरे निकला हुआ मूसल का वह टुकड़ा जरा नामक व्याघ्र ने चठा लिया ॥१३-१४॥ श्रीकृष्ण इन सब बातों को जानते थे, परन्तु उन्होंने विधाता के विधान में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा ॥१५॥

देवैश्च प्रहितो वायुः प्रणिपत्याह केशवम् ।

रहस्येवमह दूतः प्रहितो भगवन्मुरै ॥१६

वस्त्वश्विमरूदादित्यरुद्रसाध्यादिभिस्सह ।

विज्ञापयति शक्रस्त्वां तदिदं श्रूयतां विभो ॥१७

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम् ।

भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैस्सह चोदित ॥१८

दुर्वृत्ता निहता दंत्या भुवो भारोऽवतारित ।

त्वया सनाथास्त्रिदशा यवन्तु त्रिदिवे सदा ॥१९

तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम् ।

इदानीं गम्यता स्वर्गो भवता यदि रोचते ॥२०

देवैर्विज्ञाप्यते देव तथात्रैव रतिस्तव ।

तत्स्थीयता यथाकालमाख्येयमनुजीविभि ॥२१



इसी अवसर पर देवताओं द्वारा भेजे गये वायु ने श्रीकृष्ण को प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! मुझे दूत-रूप से देवताओं ने आपके पास भेजा है ॥१६॥ हे विभो ! वसुगण, अश्विनी द्वय, रुद्र, आदित्य, मरुत् और साध्यादि देवताओं की सहमति से इन्द्र के भेजे सन्देश को सुनिये ॥१७॥ देवताओं की प्रार्थना पर उनके साथ ही पृथिवी पर भू-भार हरणार्थ उद्भूत हुए सौ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं ॥१८॥ आपने दैत्यो को मार कर पृथिवी का भार उतार दिया, इसलिये अब सब देवता आपके सहित स्वर्गलोक में ही सनाथ करे ॥१९॥ हे जगदीश्वर ! पृथिवी पर आये हुए आपको सौ वर्ष से अधिक होगये, अब यदि इच्छा हो तो आप स्वर्गलोक को पधारे ॥२०॥ हे देव ! उन्होंने यह भी कहा है कि आप वही रहना चाहें तो रहें, सेवकों का कर्त्तव्य तो निवेदन करने का ही है ॥२१॥

यत्त्वमात्थाखिल दूत वेदम्येतदहमप्युत ।

प्रारब्ध एव हि भया यादवाना परिक्षय ॥२२

भुवो नाद्यापि भारोऽय यादवैरनिवर्हित ।

श्रवतार्यं करोम्येतत्सप्तरात्रेण सत्वर ॥२३

यथा गृहीतामम्भोधेर्दत्त्वाह द्वारकाभुवम् ।

यादवानुपसहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४

मनुष्यदेहमुत्सृज्य सङ्कर्षणसहायवान् ।

प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथामरै ॥२५

जरासन्धादयो येऽन्ये निहता भारहेतव ।

क्षितेस्तेभ्य कुमारोऽपि यदूना नापचीयते ॥२६

तदेतं सुमहाभारमवतार्यं क्षितेरहम् ।

यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ॥२७

श्री भगवान् ने कहा—हे दूत ! तुम्हारी बात ठीक है, मैंने यादवों के नाश का उपाय कर दिया है ॥२२॥ इन यादवों के रहते हुए पृथिवी का बोझ नहीं घट सकता, इसलिये सात रात के भीतर ही मैं तुम्हारे बड़े अनुसार चलाऊँगा ॥२३॥ इस द्वारकापुरी की भूमि मैंने समुद्र से माँगी थी, इसलिये इसे

उसको लौटाकर और यादवों को नष्ट कर स्वर्ग को प्रस्थान करूँगा ॥२४॥ प्रब-  
सव देवताओं और इन्द्र को यह बता देना कि बलरामजी के सहित मुझे स्वर्ग  
में पहुँचा हुआ ही समझो ॥२५॥ पृथिवी के बोक स्वर्ण जरासन्ध आदि जो  
राजा नष्ट हुए हैं, यह यदुवंशी भी उनसे किसी प्रकार न्यून नहीं है ॥२६॥ इस-  
लिये देवताओं से कहना कि पृथिवी का बोक उतार कर ही शीघ्र ही स्वर्गलोक  
में आकर उसका पालन करूँगा ॥२७॥

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूतः प्रणम्य तम् ।

मैत्रेय दिव्यया गत्या देवराजान्तिकं ययौ ॥२८॥

भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यभीमान्तरिक्षजान् ।

ददर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय दिवानिशम् ॥२९॥

तान्दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् ।

महोत्पाताञ्छमायैषा प्रभास याम मा चिरम् ॥३०॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन यादवप्रवरस्ततः ।

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥३१॥

भगवन्मया कार्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम् ।

मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्सहरिष्यति ॥३२॥

नाशायस्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३३॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर  
वायु उन्हें प्रणाम करके चल दिये और तुरन्त ही इन्द्र के पास पहुँचे ॥२८॥  
इधर द्वारकापुरी में नाश सूचक दिव्य, पार्थिव और अन्तरिक्ष सम्बन्धी घोर  
उत्पात होते दिखाई पड़े ॥२९॥ तब भगवान् ने यादवों से कहा कि यह घोर  
उपद्रव हो रहे हैं, प्रभास क्षेत्र में चलकर इनकी शान्ति का उपाय करें ॥३०॥  
श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की बात सुनकर उद्धवजी ने उन्हें प्रणाम  
करके कहा—हे प्रभो ! अब आपकी इच्छा से इस कुल का नाश होता दिखाई  
देता है, सब ओर ऐसे ही अपसृजित हो रहे हैं, इसलिये मुझे जो करना हो, वह  
भाजा फीजिए ॥३२-३३॥

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्तया ।  
यद्वदर्याश्रमं पुण्य गन्धमादनपर्वते ।  
नरनारायणस्थाने तत्पवित्रं महीतले ॥३४॥  
मन्मना मत्प्रमादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि ।  
अहं स्वर्गं गमिष्यामि ह्युपसंहृत्य वै कुलम् ॥३५॥  
द्वारकां च मया त्यक्ता समुद्रः प्लावयिष्यति ।  
मद्वेश्म चैकं मुक्त्वा तु भयान्मत्तो जलाशये ।  
तत्र सन्निहितश्चाह भक्तानां हितकाम्यया ॥३६॥  
इत्युक्तः प्रणिपत्येनं जगामाशु तपोवनम् ।  
नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः ॥३७॥  
ततस्ते यादवास्सर्वे रथानारुह्य शीघ्रगान् ।  
प्रभासं प्रययुस्साढं कृष्णरामादिभिर्द्विज ॥३८॥  
प्रभासं समनुप्राप्ताः कुरुरान्धकवृष्णयः ।  
चक्रुस्तत्र महापानं वासुदेवेन चोदिताः ॥३९॥  
पिबतां तत्र चैतेषां सङ्घर्षेण परस्परम् ।  
अतिवादेन्धनो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः ॥४०॥

श्री भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! अब तुम मेरी कृपा से प्राप्त हुई दिव्य गति से गन्धमादन पर्वत के बदरिकाश्रम में जाओ, वह सबसे पवित्र क्षेत्र है ॥३४॥ वहाँ मृगमे अनन्य चित्त रखने से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी । अब मुझे भी मनुकुल के गृष्ट होने पर स्वर्गलोक को प्रस्थान करना है ॥३५॥ मेरे यहाँ से जाते ही समुद्र द्वारका को अपने जल में विलीन कर लेगा, परन्तु केवल भवन ही शेष रह जायगा, जिसमें भक्तों के हितार्थ में सदा निवास करता हूँ ॥३६॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की आज्ञा सुनकर उद्धवजी ने उन्हें प्रणाम किया और तुरन्त ही बदरिकाश्रम चले गये ॥३७॥ फिर कृष्ण बल-रामादि सब यादव रथों पर चढ़ कर प्रभास क्षेत्र गये ॥३८॥ वहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सभी यादवों ने महापान किया ॥३९॥ पान करते समय उनमें कुछ विवाद हो गया, जिसे कलहाग्नि घघकने लगी ॥४०॥

स्व स्व वै भुञ्जता तेषा कलहः किन्निमित्तकः ।  
 सङ्घर्षो वा द्विजथेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥४१॥  
 मृष्ट मदीयमन्नं ते न मृष्टमिति जल्पताम् ।  
 मृष्टामृष्टकया जज्ञे सङ्घर्षंकलहौ ततः ॥४२॥  
 ततश्चान्योन्यमभ्येत्य क्रोधसरक्तलोचनाः ।  
 जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्देववलात्कृताः ॥४३॥  
 क्षीणशस्त्राश्च जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम् ॥४४॥  
 एरका तु गृहीता वं वज्रभूतेव लक्ष्यते ।  
 तया परस्परं जघ्नुस्सप्रहारे सुदारुणे ॥४५॥

प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माश्च सात्यकिः ।  
 अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुविपृथुरेव च ॥४६॥  
 चारुवर्मा चारुक्श्च तथाक्रूरदयो द्विज ।  
 एरकारूपिभिर्वर्जस्ते निजघ्नु परस्परम् ॥४७॥

निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम् ।  
 सहाय मेनिरैऽरीणां प्राप्तं जघ्नु परस्परम् ॥४८॥

श्री मेनैयजी ने कहा—हे द्विजवर ! भोजन करते हुए उन यदुवंशियो में कलह क्यों हुआ ? यह बतलाइये ॥४१॥ श्री पराशरजी ने कहा—मेरा पदार्थ छुड़ है, तेरा भोजन ठीक नहीं, इसी प्रकार विवाद करते हुए उन यादवों में सघर्ष होने लगा ॥४२॥ तब वे देवी प्रेरणा से परस्पर में शस्त्र प्रहार करने लगे और जब शस्त्र भी समाप्त हो गये तो उन्होंने निकटवर्ती क्षेत्र से सरकण्डे ग्रहण किये ॥४३-४४॥ वे सरकण्डे वज्र जैसे लग रहे थे, उन्हीं के द्वारा वे परस्पर में आघात—प्रत्याघात करने लगे ॥४५॥ प्रद्युम्न तथा साम्बादि वृष्णसुत कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक् और क्रूर आदि यादव उन्हीं सरकण्डों का परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥४६-४७॥ जब श्रीकृष्ण ने उन्हें निवृत्त करना चाहा तो वे उन्हें प्रतिपक्षी का सहायक समझ कर परस्पर प्रहार करने से न रुके ॥४८॥

कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे ।  
 वधाय सोऽपि मुसल मुष्टिर्लोहमभूतदा ॥४९॥  
 जघान तेन निश्शेषान्यादवानाततायिलः ।  
 जन्नुस्ते सहसाभेत्य तथान्येऽपि परम्परम् ॥५०॥  
 ततश्चाणवमध्येन जेत्रोऽसौ चक्रिणो रथः ।  
 पश्यतो दारुस्याथ प्रायादश्वैर्धृतो द्विज ॥५१॥  
 चक्रं गदा तथा शङ्खं तूणी शङ्खोऽभिरेव च ।  
 प्रदक्षिण हरिं कृत्वा जग्मुदरादित्यवर्त्मना ॥५२॥  
 क्षणेन नाभवत्कश्चिद्यादवानामघातितः ।  
 ऋते कृष्ण महात्मान दारुक च महामुने ॥५३॥  
 चङ्कम्यमाणौ तौ राम वृक्षमूले कृतासनम् ।  
 ददृशाते मुखाब्धास्य निष्क्रामन्तं महोरगम् ॥५४॥  
 निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजङ्गमः ।  
 प्रययावर्णय सिद्धं पूज्यमानस्तयोरगं ॥५५॥  
 ततोऽर्घ्यमादाय तदा जलधिस्तम्मुख ययौ ।  
 प्रविवेश ततस्तोय पूजित पद्मगोत्तमै ॥५६॥

इस पर क्रुद्ध हुए श्रीकृष्ण ने भी एक मुट्ठी भर कर सरकडे उठाये,  
 जो कि लोह के मूसल जैसे प्रतीत होने लगे ॥४९॥ उन सरकडो से वे सब  
 आक्रमणकारी यादवों को मारने लगे और यादव-गण परस्पर भी मारने-मरने  
 लगे ॥५०॥ फिर दारुक के देखते-देखते ही श्रीकृष्ण का जैत्र नामक रथ अश्वों  
 के द्वारा विचता हुआ समुद्र के मध्य मार्ग से चला गया ॥५१॥ तथा शङ्ख,  
 चक्र, गदा, धनुष, तरकश अस्ति आदि सब आधुन श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके  
 सूर्य-पथ से चले गये ॥५२॥ हे महामुने ! क्षण भर में ही श्रीकृष्ण और दारुक  
 के अतिरिक्त और कोई भी यादव शेष न रहा ॥५३॥ उन दोनों ने बलरामजी  
 को एक वृक्ष के नीचे बैठे और उनसे मुख से एक विशाल सर्प को निकलते देखा

गया ॥५५॥ तभी समुद्र अर्घ्य लेकर उपस्थित हुआ और वह नागों द्वारा पूजित  
सर्प समुद्र में प्रविष्ट हो गया ॥५६॥

दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ।  
इद सर्वं समाचक्ष्व वसुदेवोऽग्रसेनयोः ॥५७॥  
निर्याणं बलमद्रस्य यादवानां तथा क्षयम् ।  
योगे स्थित्वाहमप्येतत्परित्यक्ष्ये कलेवरम् ॥५८॥  
वाच्यश्च द्वारकावासी जनस्सर्वस्तथाहुकः ।  
यथेमां नगरी सर्वां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥५९॥  
तस्मान्द्भवद्भिस्सर्वस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागमः ।  
न स्थेयं द्वारकामध्ये निष्क्रान्ते तत्र पाण्डवे ॥६०॥  
तेनैव सह गन्तव्यं यत्र याति स कौरवः ॥६१॥  
गत्वा च प्रूहि कौन्तेयमर्जुनं वचनान्मम ।  
पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽयं मत्परिग्रहः ॥६२॥  
त्वमर्जुनेन सहितो द्वारवत्यां तथा जनम् ।  
गृहीत्वा याहि वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥६३॥

इस प्रकार बलरामजी का महाप्रमाण देखकर दारुक से श्रीकृष्ण ने  
कहा—तुम यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उग्रसेन जी और वसुदेवजी को जाकर सुनादो  
॥५७॥ बलरामजी का जाना और यादवों का नष्ट होना बता कर यह भी कहना  
कि मैं भी योगस्थ होकर देह त्याग करूँगा ॥५८॥ सब द्वारकावासियों और  
उग्रसेनजी से कहना कि समुद्र इस सम्पूर्ण नगर को अपने में लीन कर लेगा  
॥५९॥ इसलिये जब तक अर्जुन वहाँ न पहुँचे तभी तक द्वारका में रहे और  
जहाँ अर्जुन जाय वही सब चले जाय ॥६०-६१॥ तुम अर्जुन से भी मेरा यह  
संदेश कहना कि अपने सामर्थ्य के अनुसार ही मेरे परिवारी जनों की रक्षा  
करना ॥६२॥ तुम सब द्वारकावासियों के सहित अर्जुन के साथ चले जाना ।  
फिर यदुवश का राजा वज्र होगा ॥६३॥

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।  
प्रदक्षिणं च बहुशः कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥६४॥

स च गत्वा तदा चष्ट द्वारकायां तथार्जुनम् ।  
 शानिनाय महाबुद्धिर्वज्रं चक्रं तथा नृपम् ॥६१॥  
 भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् ।  
 ब्रह्मात्मनि समारोप्य सर्वभूतेष्वधारयत् ॥६२॥  
 निष्प्रपञ्चे महाभाग संयोज्यात्मानमात्मनि ।  
 तुर्यावस्थ सलीलं च शेते स्म पुरुषोत्तमः ॥६३॥  
 सम्मानयन् द्विजवचो दुर्वासा यदुवाच ह ।  
 योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तम ॥६४॥  
 आययी च जरानाम तदा तत्र स लुब्धकः ।  
 मुसलावशेषलोहेकसायकन्यस्ततोमरः ॥६५॥  
 स तत्पादं मृगाकारमवेक्ष्यारादवस्थितः ।  
 तले विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तम ॥७०॥

श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् के वचन सुनकर वासक ने उन्हें चारम्बार प्रणाम करके अनेक परिक्रमाएँ की और उनकी आज्ञानुसार वहाँ से चला गया ॥६४॥ उसने द्वारका में पहुँच कर सब वृत्तान्त मुनाया और अर्जुन को वहाँ लाकर वज्र को राज्यपद में अभिषिक्त किया ॥६५॥ इसर श्रीकृष्ण अपने आत्मा में परब्रह्म को आरोपित कर उनमें निहित लगाते हुए अपने तुरीय-पद में अवस्थित होगये ॥६६-६७॥ हे मुनिवर ! दुर्वासाजी के वचनानुसार उन्होंने अपनी जाँघों पर चरण रख कर योग युक्त समाधि लगाई ॥६८॥ तभी मूसल के अवशिष्ट भाग को अपने बाण पर नोक रूप से लगाये हुए जरा नामक वह व्याध वहाँ आया और भगवान् के चरण को मृगाकार देख कर उसने दूरसे उन पर बाण छोड़ दिया ॥६९-७०॥

ततश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम् ।  
 प्रणिपत्याह चैवं प्रमोदेति पुनः पुनः ॥७१॥  
 अजानता कृत्नमिदं मया हरिणदाङ्गया ।  
 क्षम्यतां मम पापेन दग्धं मा गतुमर्हसि ॥७२॥

ततस्त भगवानाह न तेऽस्तु भयमण्वपि ।  
 गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध स्वर्गं सुरास्पदम् ॥७३॥  
 विमानमागत सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम् ।  
 आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥७४॥  
 मते तस्मिन्स भगवान्सयोज्यात्मानमात्मनि ।  
 ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥७५॥  
 अजन्मन्यमरे विष्णावप्रमेयेऽखिलात्मनि ।  
 तत्याज मानुष देहमतीत्य त्रिविधा गतिम् ॥७६॥

फिर उस व्याघ ने श्रीकृष्ण के पास पहुँच कर जैसे ही एक चतुर्भुजों  
 श्रेष्ठ पुरुष को देखा तो उनके धरणों में गिरपड़ा और बारम्बार 'प्रसन्न होइये,  
 प्रसन्न होइये' कहता हुआ बोला—मैंने भृगु समझ कर ही यह अपराध कर  
 डाला है, आप क्षमा करके मुझ पाप से भस्म होते हुए पापी की रक्षा करिये  
 ॥७१-७२॥ श्री पराशरजी ने कहा—तू भय मत कर, तू अभी मेरी कृपा से  
 स्वर्गलोक को प्राप्त होगा ॥७३॥ उनके ऐसा कहते ही वहाँ एक विमान आगया,  
 जिस पर बठ वह व्याघ स्वर्ग लोक को गया ॥७४॥ उसके जाने के पश्चात्  
 श्रीकृष्ण ने भी अपने आत्मा को अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवस्वरूप, निर्मल, अज,  
 अमर, अप्रमेय, सखलात्मा तथा ब्रह्मरूप भगवान् विष्णु में लीन कर इस मानव  
 देह का त्याग कर दिया ॥७५-७६॥

### अङ्गतीसवाँ अध्याय

अर्जुनोऽपि तदान्विष्य रामकृष्णकलेवरे ।  
 संस्कारं लम्बयामास तथान्येषामनुक्रमात् ॥१॥  
 अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु याः ।  
 उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम् ॥२॥  
 रेवती चापि रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमा ।  
 विवेश ज्वलित वह्निं तत्सङ्गाह्लादगीतनम् ॥३॥



उग्रसेनस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवानवदुन्दुभि ।  
 देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जनिवेदसम् ॥४॥  
 ततोऽर्जुन प्रेतकार्यं कृत्वा तेषा यथाविधि ।  
 निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च ॥५॥  
 द्वारवत्या विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रश ।  
 वज्र जन च कीन्तेय पालयञ्छनकैर्ययौ ॥६॥  
 सभा सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके समुज्जिह्वे ।  
 स्वर्गं जगाम मंत्रेय पारिजातश्च पादप ॥७॥  
 यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिव सन्त्यज्य मेदिनीम् ।  
 तस्मिन्नेवावतीर्णोऽय कालकायो बली कलिः ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—अर्जुन ने बलराम, कृष्ण तथा अन्याय प्रमुख-  
 प्रमुख मादवों के मृत शरीरों को दुँडवा कर उनका मस्तिष्क किया ॥१॥  
 श्रीकृष्ण की रविमणी आदि आठ पटरानियों ने उनके देह का आलिंगन कर  
 अग्नि-प्रवेश किया ॥२॥ रेवतीजी भी बलरामजी के देह का आलिंगन कर  
 उनकी चिता में प्रविष्ट होगई ॥३॥ इस अनिष्ट समाचार को सुनकर उग्रसेन,  
 वसुदेव, शकुनी और रोहिणी ने भी अग्नि प्रवेश द्वारा अपने को नष्ट कर लिया  
 ॥४॥ फिर अर्जुन ने उन सबका छोड़देहिक मङ्कार किया और वज्र तथा  
 अन्य बुद्धिबद्धों के सहित द्वारका से निकल आया ॥५॥ श्रीकृष्ण की हजारा  
 पत्नियों और वज्रादि अन्यान्य बन्धुओं की रक्षा करत हुए अर्जुन धीरे-धीरे  
 चलत लग ॥६॥ हे मैत्रेयजी ! श्रीकृष्ण व पृथिवी लोक का छोड़ते ही सुधर्मा  
 सभा और पारिजात तरु भी स्वर्ग लोक का चले गये ॥७॥ जिस दिन भगवान्  
 न पृथिवी को छोड़, उन्ही दिन स महाबली ननिगुण पृथिवी पर उतर आया ॥८॥

प्लावयामास ता दून्या द्वाग्या च महोदधि ।  
 वासुदेवगृह त्वेन न प्लावयति भागर ॥९॥  
 नातिमानुमन ग्रह्य म्मदद्यापि महोदधि ।  
 नित्य मग्निहिमन्त्र भगवान्नेनायत ॥१०॥

तदतीव महापुण्य सर्वपातकनाशनम् ।

विष्णुश्रियान्वित स्थान दृष्ट्वा पापाद्विमुच्यते ॥११॥

पार्थ पञ्चनदे देशे बहुधान्यघनान्विते ।

चकार वास सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तम ॥१२॥

ततो लोमस्समभवत्पार्थेनकेन धन्विना ।

दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूना निहतेश्वरा ॥१३॥

ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहृतचेतसः ।

आभीरा मन्त्रयामासुस्समेत्यात्यन्तदुर्मदा ॥१४॥

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजन निहतेश्वरम् ।

नयत्यस्मानतिव्रम्य धिगेतद्भ्रवता बलम् ॥१५॥

इस प्रकार जनशून्य हुई उस द्वारका को समुद्र ने डुबा दिया, केवल श्रीविष्णु का भवन ही छेप रह गया ॥१॥ उसमें श्रीविष्णु के सदा निवास करने से समुद्र आज भी उस भवन को नहीं डुबा सकता ॥१०॥ वह ऐश्वर्य-सम्पन्न स्थान अत्यन्त पवित्र और दर्शन मात्र से सब पापी को नष्ट करने वाला है ॥११॥ हे मुनिवर ! उन सब द्वारकावासियों को अर्जुन ने धन धान्य युक्त पञ्चनद प्रदेश में बसा दिया ॥१२॥ उस समय अनाथ अबलान्नों के साथ अर्जुन की प्रकृति देख कर दस्युओं को लोभ ही आया और उन पापी आभीर दस्युओं ने परस्पर में मन्त्रणा की ॥१३-१४॥ देखो यह अर्जुन अकेला ही हमारा तिरस्कार कर इन स्त्रियों को लिये जा रहा है, इससे हमारे बल को धिक्कार है ॥१५॥

हत्वा गर्वसमारूढो भीष्मद्रोणजयद्रथान् ।

कर्णादीश्च न जानाति बल प्रामनिवासिनाम् ॥१६॥

यद्विहस्तानवेक्ष्यास्मान्धनुष्यारिणस्स दुर्मतिः ।

सत्रनिवावजानाति किं वो बाहुभिरुन्नतैः ॥१७॥

ततो यद्विप्रहरणा दस्यवो लोष्टवारिणः ।

सहस्रशोऽभ्यधावन्त त जन निहतेश्वरम् ॥१८॥

ततो निभंतस्य वीन्तेय प्राहाभीरान्हसन्निव ।

निवर्तध्वमघर्मज्ञा यदि न स्य मुमूर्षव ॥१९॥

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम् ।

स्त्रीधन चैव मैत्रेय विष्वक्सेनपरिग्रहम् ॥२०॥

ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजर युधि ।

आग्नेपतितुमारभे न शशाक च वीर्यवान् ॥२१॥

अकार सण्य कृच्छ्राच्च तच्चाभूच्छिथिल पुन ।

न सस्मार ततोऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२॥

भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण आदि का वध करके ही यह इतना गर्वीला होगया है कि हम ग्रामीणों को कुछ नहीं समझता ॥१६॥ हमारे हाथों में लाठी होने पर यह हमें धनुष दिखा रहा है, तो हमारी विशाल भुजाओं से क्या प्रयोजन है ? ॥१७॥ ऐसा विचार करके उन हजारों लुटेरों ने उन अनाथ द्वारकावासियों पर लाठियों और पत्थरों से आक्रमण कर दिया ॥१८॥ तब अर्जुन ने ललकार कर उनसे कहा—भरे पापियों ! अगर जीवित रहना चाहते हो तो यहाँ से तुरन्त लौट जाओ ॥१९॥ परन्तु हे मैत्रेयजी ! दस्युओं ने उनकी बात पर ध्यान न देकर श्रीकृष्ण की स्त्रियों और सम्पूर्ण धन को उन्होंने जीत लिया ॥२०॥ तब अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाह कर भी न चढ़ा सके ॥२१॥ जैसे तैमै करके प्रत्यचा चढ़ा भी ली तो उनके अङ्ग शिथिल होगये और उन्हें अपने अस्त्रों की याद ही न आई ॥२२॥

शरान्मुमोच चैतेषु पार्थो वैरिष्वमपित ।

त्वग्भेद ते पर चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्विना ॥२३॥

वह्निना येऽक्षया दत्ताशशरास्तेऽपि क्षय ययुः ।

युद्धचतस्सह गोपालैरर्जुनस्य भवक्षये ॥२४॥

अचिन्तयच्च कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्वलम् ।

यन्मया शरसङ्घातैस्सकला भूमृतो हता ॥२५॥

मिपत पाण्डुपुत्रस्य ततस्ता प्रमदोत्तमा ।

आभीरैरपकृष्यन्त काम चान्या प्रदुर्बुध ॥२६॥

ततश्शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोट्या धनञ्जय ।

जघान दस्यू स्ते चास्य प्रहाराञ्जहमुर्मुने ॥२७॥

प्रेक्षतस्तस्य पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।

जग्मुरादाय ते भ्लेच्छाः समस्ता मुनिसत्तम ॥२८

ततस्मुदुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ।

अहो भगवत्तानेन वञ्चितोऽस्मि रुरोद ह ॥२९

किर उन्होंने उन शत्रुओं पर रोष पूर्वक बाण-वर्षा की परन्तु वे बाण उन लुटेरों की त्वचा की ही बीघ सके ॥२३॥ अर्जुन के उद्भव के क्षीण होने के कारण अग्नि-प्रवत्त बाण भी इस युद्ध में नष्ट होगये ॥२४॥ तब अर्जुन विचार करने लगा कि अब तक मैंने अनेक राजाओं को परास्त किया था, वह सब श्रीकृष्ण का ही प्रभाव था ॥२५॥ अर्जुन के देखते-देखते ही उन गहीरों ने एक-एक स्त्री को घसीट घसीट कर हरण कर लिया और कोई-कोई अपनी इच्छा से ही इधर-उधर भाग निकली ॥२६॥ बाणों के न रहने पर अर्जुन ने धनुष की भोक से उन्हें मारना प्रारम्भ किया, परन्तु उन लुटेरों ने उनकी ओर भी हँसी उड़ाई ॥२७॥ हे मुनिवर ! उन वृष्णि और अन्धक वंश की सब स्त्रियों को वे लुटेरे अर्जुन के मामने ही उठा ले गये ॥२८॥

तद्वनुस्तानि शस्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ।

सर्वमेकपदे नष्टं दानमधोत्रिये मया ॥३०

अहोऽतिवलबद्धं विना तेन महात्मना ।

यदसामर्थ्ययुक्तंऽपि नीचवर्गे जयप्रदम् ॥३१

तौ बाहू स च मे मुष्टिः स्थान तत्सोऽस्मि चार्जुनः ।

पुण्येनैव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२

ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृते ब्रुवम् ।

विना तेन यदाभीरंजितोऽहं रथिनां वरः ॥३३

इत्य वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।

चकार तत्र राजान वज्रं यादवनन्दनम् ॥३४

स ददर्श ततो व्यास फाल्गुनः काननाथयम् ।

तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादीयत् ॥३५

यह देख कर अर्जुन अपमान से दुःखित होकर रोने लगे कि भगवान् ने ही मुझे ठग लिया । यह बड़ी धनुष, वे शास्त्र, वही रथ तथा वही घोड़े हैं, परन्तु व्यर्थ दान के समान यह सब निष्फल होगये हैं ॥३०॥ दैव की प्रबलता देखो कि उसने इन असमर्थ और नीच अहीरो को जिता दिया । उसी मुष्टिका और उसी भुजा वाला मैं अर्जुन आज श्रीकृष्ण के अभाव में सार-हीन होगया हूँ ॥३१-३२॥ मेरा अर्जुनत्व उन्हीं के प्रभाव से था, अहो मुझ महारथी-श्रेष्ठ को आज तुच्छ अहीरो ने पराजित कर दिया ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा— इस प्रकार चिन्ता करते हुए अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ में आकर वप्य का राज्याभिषेक किया ॥३४॥ फिर उन्होंने वन में जाकर महर्षि व्यासजी से भेंट की और विनीत भाव से उनके चरणों में प्रणाम किया ॥३५॥

त वन्दमान चरणाववलोक्य मुनिश्चिरम् ।

उवाच वाक्य विच्छाद्यः कथमद्य त्वमीदृश ॥३६॥

अवीरजोऽनुगमनं ब्रह्महत्या कृताथ वा ।

दृढाशो भङ्गदुःखीव भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम् ॥३७॥

सान्त्वानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः ।

अगम्यस्त्रीरतिर्वा त्व येनासि विगतप्रभ ॥३८॥

भुङ्क्तेऽप्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकोऽथ वा भवान् ।

किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवतार्जुन ॥३९॥

कञ्चिन्नु द्रुपं वा तस्य गोघरत्नं गतोऽर्जुन ।

दुष्टचक्षुर्हन्तो वाऽसि निश्श्रीकं कथमन्यथा ॥४०॥

स्पृष्टो नखाम्भसा वाथ घटवार्युक्षितोऽपि वा ।

केन त्व वासि विच्छाद्यो न्यूनैर्वा युधि निजित ॥४१॥

अर्जुन को चरणों में झुके हुए देख कर महर्षि ने उससे पूछा कि आज तुम ऐसे निस्तेज क्यों हो रहे हो ? क्या तुम भेड़ों की धूलि के पीछे चले हो, या तुम्हारी आंखा दूट गई है अथवा तुमने ब्रह्महत्या की है, जिससे ऐसे दुःखी हो रहे हो ? ॥३६-३७॥ क्या तुमने किसी सन्तान-वामना वाले की विवाह-याचना पर ध्यान नहीं दिया है अगम्या से समागम किया है या किसी कृपण का धन ?

छीन लिया है अथवा ब्राह्मणों को दिये बिना अकेले ही पक्वान्न भोजन कर लिया है ? ॥३८-३९॥ अथवा तुमने सूप की वायु का सेवन किया है या तुम्हारे नेत्र विकृत हो गये हैं अथवा किसी ने तुम पर प्रहार किया है, जिससे इस प्रकार श्रीहीन हो रहे हो ? ॥४०॥ कही तुमने नख का जल तो नहीं खू लिया, या तुम्हारे ऊपर धड़े से जल के छलकने पर छोट तो नहीं पड़ गये अथवा तुम अपने से निबल पुरुष से तो नहीं हार गये ? ॥४१॥

तत पार्थो विनिश्चस्य श्रूयता भगवन्निति ।

उक्त्वा यथावदाचष्टे व्यासायात्मपराभवम् ॥४२॥

यद्वल यच्च मत्तजो यद्वीर्यं य पराक्रम ।

या श्रीश्छाया च न सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः ॥४३॥

ईश्वरेणापि महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा ।

हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥

अस्त्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम ।

सारता याभवन्मूर्तिस्तस्मिन् गतः पुरुषोत्तमः ॥४५॥

यास्यावलोकनादस्माज्जीर्जंय मम्पदुन्नति ।

न तत्प्राज स गोविन्दस्त्यक्त्वास्मान्भगवान्गतः ॥४६॥

भीष्मद्रोणाङ्गाराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः ।

यत्प्रभावेण निर्दग्धास्म कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७॥

निर्यौवना गतश्रीका नष्टच्छायेव मेदिनी ।

विभाति तात नैकोऽहं विरहे तस्य चक्रिणः ॥४८॥

श्री पराशरजी ने कहा—इस पर अर्जुन ने दीधिति से लेते हुए कहा—  
अपने परास्त होने का सब वृत्तान्त यथावत् सुना दिया ॥४२॥ अर्जुन बोले—  
हमारे एकमात्र बल, तेज, वीर्य पराक्रम, श्री भीर कान्ति स्वरूप श्रीकृष्ण हम  
छाड़ कर प्रस्थान कर गये ॥४३॥ जो समय होकर भी हमसे हँस हँसकर बत-  
राते थे, उन हरि के बिना हम तिनके से निर्मित हुए पुत्रों के समान निर्जीव  
हो गये हैं ॥४४॥ मेरे दिव्यशस्त्रों, दिव्य शस्त्रों और गाण्डीव के साथ मैं श्रीहरि  
हम त्याग कर चले गये ॥४५॥ जिनकी कृपा से जय, ऐश्वर्य और उन्नति सदा

हमारे साथ रही, वे गोविन्द हमें छोड़ गये ॥४६॥ जिनके प्रभाव रूप अग्नि में भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि वीर भस्म होगये, उन श्रीहरि ने इस पृथिवी को छोड़ दिया ॥४७॥ उन श्रीकृष्ण के विरह में यह सम्पूर्ण पृथिवी ही विगत यौवना और कान्तिहीना लग रही है ॥४८॥

यस्य प्रभावाद्भीष्माद्यर्भ्यग्नी दलभायितम् ।  
विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जितः ॥४९॥  
गाण्डीवस्त्रिषु लोकेषु ख्यातिं यदनुभावतः ।  
गतस्तेन विनाभोरलगुडैस्स तिरस्कृतः ॥५०॥  
स्त्रीसहस्राप्यनेकानि मत्तायानि महामुने ।  
यततो मम नीतानि दस्युभिलंगुडायुधैः ॥५१॥  
आनीयमानमाभीरैः कृष्ण कृष्णावरोधनम् ।  
हृत यष्टिप्रहरणं परिभूय वल मम ॥५२॥  
निश्चोक्ता न मे चित्रं यज्ञीवामि तदद्भुतम् ।  
नीचावमानपङ्काङ्की निलंजोऽस्मि पितामह ॥५३॥

जिनके प्रभाव में मुझ अग्नि रूप में पड़कर भीष्मादि महारथी पतंग के समान भस्म होगये थे, आज उन्हीं के न होने पर गोपों ने मुझे जीत लिया ॥४९॥ जिनके प्रभाव से यह गाण्डीव तीनों लोकों में विख्यात था, आज उन्हीं के अभाव में यह अहीरो की लाठियों से व्यर्थ होगया ॥५०॥ हे महामुने ! श्रीकृष्ण की हजारों पलियाँ मेरे संरक्षण में आ रही थी, उन्हें लुटेरों अपना लाठियों के बल पर ही लूट कर ले गये ॥५१॥ लाठियों से सज्जित अहीरो ने मेरे बल को तिरस्कृत कर मेरे साथ के सम्पूर्ण कृष्ण-परिवार का हरण कर लिया ॥५२॥ ऐसी अवस्था में श्रीहीन होने का तो कोई आश्चर्य नहीं है, परन्तु नीच पुरुषों द्वारा अपमानित होकर भी मैं अभी तक जीवित हूँ, यही आश्चर्य है ॥५३॥

अल ते व्रीडया पार्थ न त्वं शोचितुमर्हसि ।  
अवेहि सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५४॥

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव ।  
 कालमूलमिदं ज्ञात्वा भवस्यैवंपरोऽर्जुन ॥५५॥  
 नद्य समुद्रा गिरयस्सकला च वसुधरा ।  
 देवा मनुष्या पशवस्तरवश्च सरीसृपा ॥५६॥  
 सृष्टा कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति सक्षयम् ।  
 कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५७॥  
 कालस्वरूपी भगवान्कृष्ण कमललोचन ।  
 यच्चात्थं कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनजय ॥५८॥  
 भारवतारकार्यार्थं भवतीर्णस्य मेदिनीम् ।  
 भाराक्रान्ता धरा याता देवानां समितिं पुरा ॥५९॥  
 तदर्थं भवतीर्णोऽसौ कालरूपी जनार्दन ।  
 तच्च निष्पादितं कार्यमशेषं भूभुजो हता ॥६०॥

श्री व्यासजी ने कहा—हे पार्थ ! लज्जा और शोक से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि सब भूतो में काल की गति ऐसी ही है ॥५४॥ प्राणियों की उत्पत्ति या अवनतिकाल से ही होती है और जय-पराजय भी उसी के अधीन हैं ॥५५॥ नदी, समुद्र, पर्वत, पृथिवी, देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्पादि जन्तु सब काल से ही रचे जाते और उसी से क्षीण होते हैं। यह सब प्रपञ्च कालात्मक है—यह समझ कर शान्ति धारण करो ॥५६-५७॥ श्रीकृष्ण की जी महिमा तुमने कही है, वह उन भगवान् के साक्षात् कालरूप होने के कारण सत्य ही है ॥५८॥ वे भू-भार-हरण करने के लिये ही भवतीर्ण हुए थे, क्योंकि भार से आक्रान्त हुई पृथिवी एकबार देवताओं की सभा में गई थी ॥५९॥ उसी के निमित्त पृथिवी पर आकार उन्होंने सब राजाओं को भार दिया, इस प्रकार उनका उद्देश्य पूर्ण होगया ॥६०॥

वृष्ण्यन्धककुल सर्वं तथा पार्षोपसहृतम् ।  
 न विचिदन्त्यत्वतव्यं तस्य भूमितले प्रभो ॥६१॥  
 अतो गतस्स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया ।



मृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितौ स्थितिम् ।  
 अन्तेऽन्ताय समर्थोऽयं साम्प्रतं वै यथा गतः ॥६२॥  
 तस्मात्पार्थ न सन्तापस्त्वया मार्थः पराभवे ।  
 भवन्ति भावाः कालेषु पुरुषाणां यतः स्तुतिः ॥६३॥  
 त्वय्येकेन हृता भीष्मद्रोणकर्णदियो रणे ।  
 तेषामर्जुन कानोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६४॥  
 विष्णोस्तस्य प्रभावेण यथा तेषां पराभवः ।  
 कृतस्तथैव भवतो दस्युर्म्यस्त पराभवः ॥६५॥  
 स देवेन्द्रदारीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम् ।  
 करोति सयंभूतानां नाशमन्ते जगत्पतिः ॥६६॥

हे पार्थ ! कृष्ण और अर्जुनदि सब यादवों के नष्ट हो जाने पर तो  
 तुमही पर उनका बोझ रह ही नहीं गया था ॥६२॥ इसीलिये वे त्वेषद्रूपवर्क  
 यहाँ से चले गये । वे ही मृष्टि रखने तथा उगता पानन और बिनात करते हैं  
 ॥६३॥ इसीलिये अर्जुन पराजय गुरु दुःखी नहीं होना चाहिये, क्योंकि अशुभ  
 बात में पुण्यों से प्रगमनीय कर्म बन पाते हैं ॥६४॥ हे अर्जुन ! जब तुम अपने  
 में ही भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे महावीरों को मार खाया था, तब क्या उनका  
 बालश्रम के कारण ही अपने मुण्ड के सामने पराजित होना नहीं था ? ॥६५॥  
 जैसे भगवान् विष्णु के प्रभाव से मृ ने उनका निरन्तर किया था, वैसे ही आत्र  
 तुम्हें निरन्तर होना पड़ा है ॥६६॥ वे ही ब्रह्मर्षि सब देशों में स्थित होकर  
 मंगार का पानन और अन्न में मंत्राण करते हैं ॥६७॥

गृहीता दस्युभिर्याश्च भवाञ्ज्योचति तास्त्रिय ।

एतस्याह यथावृत्त कथयामि तवाजुन ॥७०॥

हे कुन्तीपुत्र ! तेरे भाग्योदय के समय धीकृष्ण की तुझ पर कृपा थी और अब तेरे विपक्षियों पर उनकी कृपा हुई है ॥६७॥ यह कौन मानता था कि तू भीष्म सहित सब वीरवो का सहार कर डालेगा और अब इसे भी कौन मान सकता है कि तू अहीरो से पराजित हो जायगा ? ॥६८॥ हे पार्थ ! यह सब उन्हीं की सीला है कि तुझे भकेले ने वीरवो का सहार कर दिया और अब तू ही अहीरो से हार गया ॥६९॥ हे भर्जुन ! उन लुटेरो द्वारा हरण की गई जिन स्त्रियों के लिये तुझे शोक हो रहा है, उसका रहस्य मैं तुझसे कहता हूँ ॥७०॥

अष्टावक्र पुरा विप्रो जलवासरतोऽभवत् ।

बहून्वपगणान्पार्थ गृणान्ब्रह्म सनातनम् ॥७१॥

जितेष्बसुरसङ्घेषु मेरुपृष्ठे महोत्सव ।

वभूव तन गच्छन्त्यो ददृशुस्त सुरस्त्रिय ॥७२॥

रम्भातिलोत्तमाद्यास्तु शतशोऽथ सहस्रश ।

तुष्टुवुस्त महात्मान प्रशशसुश्च पाण्डव ॥७३॥

आकण्ठमग्न सलिले जटाभारवह मुनिम् ।

विनयावनताश्चैनं प्रणेमु स्तोत्रतत्परा ॥७४॥

यथा यथा प्रसन्नोऽसौ तुष्टुवुस्त तथा तथा ।

सर्वास्ता वीरवश्रेष्ठ त वरिष्ठ द्विजन्मनाम् ॥७५॥

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीना यदिध्यते ।

मत्तस्तद्भ्रियता सर्वं प्रदास्याम्यतिदुलभम् ॥७६॥

रम्भातिलात्तमाद्यास्त वैदिक्योऽप्सरसोऽश्रुवन् ।

प्रसन्ने त्वय्यपर्याप्त विमस्माकमिति द्विजा ॥७७॥

इतरास्त्वश्रुवन्विप्र प्रसन्नो भगवान्यदि ।

तदिच्छाम पतिं प्राप्नु विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम् ॥७८॥

पूय बाल की बात है—आह्वण श्रेष्ठ अष्टावक्रजी भगवान् का चिन्तन

वरते हुए अनेक वर्षों तक जल में स्थित रहे ॥७१॥ तभी दैत्यो को जीतकर देवताओ ने मुमेरु पर्वत पर एक महोत्सव किया, जिसके लिये जाती हुई रम्भा, तिलोत्तमा आदि हजारो देव-नारियो ने अष्टावक्रजी को देख कर उनकी स्तुति की ॥७२-७३॥ उन कठ तक जल में स्थित हुए मुनिवर की देव-नारियाँ अत्यन्त विनय पूर्वक स्तुति और प्रणाम करने लगी ॥७४॥ जिस स्तुति से वे ब्राह्मण श्रेष्ठ प्रसन्न हो सकें, वैसी स्तुति उन्होंने की ॥७५॥ इस पर अष्टावक्रजी ने कहा—हे महाभाग्यो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे वर माँग लो, दुर्लभ वर भी दे आऊँगा ॥७६॥ तब उन रम्भा-तिलोत्तमा आदि अप्सराओ ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपके प्रसन्न होने से ही हम क्या नहीं मिल गया है ? ॥७७॥ परन्तु अन्य अप्सराओ ने कहा कि—यदि आप प्रसन्न हैं तो हम भगवान् विष्णु की पति रूप में कामना करती हैं ॥७८॥

एव भविष्यतीत्युक्त्वा ह्य तत्तार जलान्मुनि ।  
तमुत्तीर्णं च ददृशुर्विरूपं ब्रह्ममष्टवा ॥७९॥  
त दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासं स्फुटोऽभवत् ।  
ताश्शशाप मुनि कोमलवाप्यं कुरुनन्दन ॥८०॥  
यस्माद्विकृतरूपं भा मत्वा हासावमानना ।  
भवतीभि कृता तस्मादत शप ददामि व ॥८१॥  
मत्प्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुरुषोत्तमम् ।  
मच्छापोपहृतास्सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥८२॥  
इत्पुदीरितमावप्य मुनिस्ताभि प्रसादित ।  
पुनस्सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ ॥८३॥  
एव तस्य मुनश्शपादष्टावक्रस्य चक्रिणम् ।  
भर्तारं प्राप्य ता याता दस्युहस्तं सुराङ्गना ॥८४॥  
तत्त्वया नात्र कर्तव्यदशोकाऽऽप्नोऽपि हि पाण्डव ।  
तेनैवापिलनाथेन सर्वं तदुपसहृतम् ॥८५॥  
भवता चोपमहार आसन्नस्तेन पाण्डव ।  
वल तेजस्तया वीर्यं माहात्म्यं चोपसहृतम् ॥८६॥

श्रीव्यामजी ने कहा—महावक्रजी 'ऐसा ही होगा' कहते हुए जल से बाहर निपले, उग समय अप्सराओं ने उनके घाठ स्थानों में टेढ़े शरीर को देखा तो मुग से हँसी छूट पड़ी और छिपाने पर भी छिप न सकी, इससे महर्षि ने श्ट होकर उन्हें क्षाप दे दिया कि तुमने मेरे कुबड की हँसी उड़ाई है, इसलिये तुम भगवान् विष्णु को पति रूप में पाकर भी लुटेरी द्वारा अपहृत होओगी ॥७६-८२॥ श्री व्यामजी बोले—इस पर उन अप्सराओं ने महावक्रजी को पुनः प्रसन्न किया, तब मुनिवर ने उनसे कहा—कि 'उसके बाद तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी' ॥८३॥ इस प्रकार महावक्रजी की कृपा से उन्हें रति रूप भगवद्-प्राप्ति और क्षाप से लुटेरी द्वारा अपहरण रूप कल मिला ॥८४॥ हे पाण्डव ! उन अतिलेश्वर ने स्वयं ही सब यादव-वंश को नष्ट किया है तो तुम्हें शोक करना उचित नहीं है ॥८५॥ फिर तुम्हारा भी अन्तकाल समीप है इसलिये भगवान् ने तुम्हारे बल, वीर्य, तेज और माहात्म्य को क्षीण कर दिया है ॥८६॥

जातस्य नियतो मृत्यु पतन च तथोन्नते ।

विप्रयोगावसानस्तु सयोग सञ्चये क्षय ॥८७॥

विज्ञाय न बुधाश्शोक न हर्षमुपयान्ति ये ।

तेषामेवेतरे चेष्टा शिक्षन्तस्सन्ति तादृशा ॥८८॥

तस्मात्स्वया नरश्रेष्ठ ज्ञातव्यं तद्भ्रातृभिस्सह ।

परित्यज्याखिल तन्त्र गन्तव्यं तपसे वनम् ॥८९॥

तद् गच्छ धर्मराजाय निवेद्य तद्वचो मम ।

परश्वो भ्रातृभिस्साद्य यथा यासि तथा कुरु ॥९०॥

इत्युक्तोऽभ्येत्य पार्थाभ्या यमाम्भ्या च सहाजु नः ।

दृष्ट चैवानुभूत च सर्वमाख्यातवास्तया ॥९१॥

व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वाजु नमुखेरितम् ।

राज्ये परीक्षित कृत्वा ययु पाण्डुसुता वनम् ॥९२॥

इत्येतत्तत्र मन्त्रेण विस्तरेण मयोदितम् ।

जातस्य यद्यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥९३॥

यश्चैतच्चरितं यस्य कृष्णस्य शृणुयात्सदा ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

हे पार्थ ! जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा, उन्नति का पतन भी निश्चित है, सयोग से विरोग और संजय से ही व्यय होता है । ऐसा समझ कर हर्षशोक न करके बुद्धिमान् पुरुष दूसरों के लिये भी अनुकरणीय बन जाते हैं ॥८७-८८॥ तुम भी अब राज-पाट की त्याग कर अपने भाइयों के सहित वन में जाओ ॥८९॥ अब यहाँ से जाकर युधिष्ठिर को सब वृत्तान्त कहकर वन-भ्रमण कर सको वैसी चेष्टा करो ॥९०॥ मुनिवर व्यास के ऐसा कहने पर अर्जुन ने सब भाइयों के पास आकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया, जिससे सब पाण्डु पुत्र परीक्षित को राज्यपद पर अभिषिक्त कर स्वयं वन को चल दिये ॥९१-९२॥ हे मैन्यजी ! भगवान् ने यदुवश मे भवतीरां होकर जो-जो चरित्र किये वह सब मैंने तुम्हें सुना दिये । जो पुरुष इन चरित्रों का सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर अन्त मे विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥९३-९४॥

॥ पंचम अंश समाप्त ॥

## षष्ठ अंश

व्याख्याता भवता सगंवशमन्वन्तर स्थितिः ।

वंशानुचरितं चैव विस्तरेण महामुने ॥१

श्रोतुमिच्छाम्यह त्वत्तो यथावदुपसंहृतम् ।

महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२

मैत्रेय श्रूयतां मत्तो यथावदुपसंहृतिः ।

कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३

अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽब्दस्त्रिदिवोक्तसाम् ।

चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो वै द्विजोत्तम ॥४

कृतं त्रेता द्वापर च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।

दिव्यवंपंसहस्रंस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५

चतुर्युगाण्यशोपाणि सदृशानि स्वरूपतः ।

आद्यं कृतयुगं भुक्त्वा मैत्रेयान्त्यं तथा कलिम् ॥६

आद्ये वृत्तयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यथा ।

क्रियते चोपसंहारस्तथान्ते च कलौ युगे ॥७

श्री मनेश्वरी ने कहा—हे भगवान् ! आपने मृष्टि रचना, मन्वन्ता घोर वशा के प्रतिनिधित्व मृष्टि बने हैं ॥१॥ अब मे मन्वान्त में होने वाले महाप्रलय का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मनेश्वरी ! आर्य्य प्रलय में प्राणिमो का जिन प्रकार उग्रमहार होता है, उसे थपटा करो ॥३॥ मनुष्यों के एक मास का विमर्श का एक दिन-रात, एक वर्ष का देवमासों का एक दिन-रात तथा दो हजार भस्मुरगियों का ब्रह्म का एक दिन रात होता है ॥४॥ सत्ययुग, त्रेता क्षययुग घोर कलियुग—यह चतुर्गुणी है, इगका मान बारह हजार दिव्यवर्ष है ॥५॥ प्रथम के उत्पन्नयुग घोर अन्त न कलियुग के प्रतिष्ठित शेष सत्य चारों युग के मानानुसार एक समान हैं ॥६॥ जैसे प्रारम्भिक युग में ब्रह्माजी मृष्टि रचते हैं, वैसे अन्तिम युग में उग्रका संहार कर देते हैं ॥७॥

कलेस्वरूप भगवन्निस्तारात्कुमहंमि ।

धर्मश्चतुर्पाद्भूगवान्यस्मिन्विप्लव मृच्छति ॥८॥

कलेःस्वरूप ममेय यद्भूवाञ्छ्रोतुमिच्छति ।

तन्निबोध समासेन वर्तते यन्महामुने ॥९॥

वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् ।

न सामञ्जस्यजुर्वर्गमविनिष्पादन हेतुकी ॥१०॥

विवाहो न कलौ धर्म्या न सिष्यगुरसंस्थितिः ।

न दाम्पत्यक्रमो नैव बह्निदेवात्मकः क्रमः ॥११॥

यत्र कुत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ ।

सर्वेभ्य एव वर्णैभ्यो योग्यः कन्यावरोधने ॥१२॥

येन येन न योगेन द्विजातिर्दोषितः कलौ ।

यैव सैव च मन्त्रेय प्रायश्चित्त कलौ क्रिया ॥१३॥

सर्वमेव कलौ शाम्भ्र यस्य यद्वचनं द्विज ।

देवता च कलौ सर्वा सर्वेस्सर्वस्य चाश्रमः ॥१४॥

उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ ।

धर्मो यथाभिरुचिरेरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥१५॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! उस कलियुग के स्वरूप को विस्तार पूर्वक कहिये, जिसमें भगवद्धर्म नुप्त हो जाता है ॥८॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! आप कलियुग का रूप सुनने के इच्छक हैं इसलिये उसे यथावत् संक्षेप में थपटा करिये ॥९॥ कलियुग में मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम धर्म और

वेदत्रयी युक्त नहीं होती ॥१०॥ उस समय धर्म पूर्वक विवाह, गुरु-शिष्य-संबंध, दाम्पत्य-जीवन का क्रम और यज्ञानुष्ठान आदि का भी लोप हो जाता है ॥११॥ चलवान् ही सब का स्वामी और सभी वर्णों से कन्या-ग्रहण करने में समर्थ होता है ॥१२॥ उस समय निकृष्ट उपाय 'दीक्षित' होने में और सरल क्रिया ही प्रायश्चित्त मानने में स्वीकार होगी ॥१३॥ जिसके मुख से जो निकल जाय वही शास्त्र तथा भूतादि देवता और सभी के लिये सब आश्रम चुने होंगे ॥१४॥ उपवास, तीर्थयात्रा, धन-दान और स्वेच्छा पूर्वक अनुष्ठान ही श्रेष्ठ धर्म माने जायेंगे ॥१५॥

वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ ।  
 स्त्रोणां रूपमदश्चर्यं केशरेव भविष्यति ॥१६॥  
 सुवर्णमणिरत्नादो वस्त्रे चोपक्षयं गते ।  
 कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशरलङ्कृताः ॥१७॥  
 परित्यक्ष्यन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः ।  
 भर्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योपिताम् ॥१८॥  
 यो वै ददाति बहुलं स्व स स्वामी मदा नृणाम् ।  
 स्वामित्वहेतुस्तस्म्यन्धो न चाभिजनता तथा ॥१९॥  
 गृहान्ता द्रव्यसङ्घाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।  
 अर्थाश्चात्मोपभोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०॥  
 स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वरिण्यो ललितस्पृहाः ।  
 अन्ययावाप्तवित्तेषु पुरुषः स्प्रृहयानवः ॥२१॥  
 अर्म्ययितापि सुहृदा स्वार्थहानि न मानवाः ।  
 पणार्थार्थार्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ॥२२॥  
 समानपीरपं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ ।  
 क्षीरप्रदानमम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ॥२३॥

घोड़े धन से ही धनवान् होने का अभिमान और बासों से हो नारी-  
 शोन्द्र्य का गर्व होगा । स्वर्ण, सखि और हस्तादि के अलङ्कारों में नन्दन-  
 त्वियों का प्रलम्भ होगा ॥१६-१७॥ गिर्या धन-हीन पति का त्याग करेंगी

और धनवान् को ही अपना पति मानेगी ॥१८॥ अधिक धन देने वाला हूँ स्वामी होगा, उस समय सम्बन्ध या कुलीनता से स्वामित्व को नहीं मान जायगा ॥१९॥ सम्पूर्ण द्रव्य गृह-निर्माण में ही व्यय होता रहेगा धन संचय वाली बुद्धि होगी और सब धन अपने ही उपयोग में लाया जायगा ॥२०॥ कलि युग में स्त्रियाँ स्वेच्छाचार पूर्वक सुन्दर पुरुष को चाहेंगी, तथा पुरुषगण अन्याय पूर्वक धन ग्रहण करने की इच्छा करेंगे ॥२१॥ स्वजनो की प्रार्थना पर भी मोटा एक घाघ दमड़ी की हानि भी स्वीकार न करेगा ॥२२॥ दूध ग्राहणो से समानता करेंगे और दूध देने के कारण ही गोएँ सम्मानित होंगी ॥२३॥

अनावृष्टिभयप्राया प्रजा क्षुब्धभयकातरा ।

भविष्यन्ति तदा सर्वे गगनासक्तदृष्टयः ॥२४॥

कन्दमूलफलाहारास्तापसा इव मानवा ।

आत्मानघातयिष्यन्ति ह्यनावृष्ट्यादिदुःखिता ॥२५॥

दुर्भिक्षमेव सततं तथा वलेशमनोभ्वरा ।

प्राप्स्यन्ति व्याहृतसुखप्रमोदा मानवा कलौ ॥२६॥

अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम् ।

करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥२७॥

लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बहुभ्रादनतत्परा ।

बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८॥

उभाम्यामपि पाणिभ्यां शिरः कण्ठयन स्त्रियः ।

कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञा भेत्यन्त्यनादरा ॥२९॥

स्वपोषणपरा क्षुद्रा देहसंस्कारवर्जिता ।

परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥३०॥

दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यस्तततः स्पृहाम् ।

असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गना ॥३१॥

भूख से व्याकुल हुई प्रजा अनावृष्टि के भय से आकाश को ताकती रहेगी ॥२४॥ मनुष्यों को केवल कन्द, मूल, फल के सहारे रहना होगा और बहुत से अनावृष्टि से दुखित हो कर आत्मघात कर लेंगे ॥२५॥ कलियुग में



मनुष्य इतने असमर्थ होंगे कि सुख के क्षीण होने पर उन्हें दुर्मिश्र और क्लेश की ही प्राप्ति होती रहेगी ॥२६॥ बिना स्नान किये ही भोजन तथा अग्नि, देवता और अतिथि के पूजन का अभाव और पिण्डदान न करने की वृत्ति हो जायगी ॥२७॥ स्त्रियाँ विषयासक्त प्रति भोजन करने वाली, अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली अभागी और छोटे देह में होगी ॥२८॥ वे अपने दोनों हाथों से सिर खुजाती हुई अपने बड़ों तथा पतिया के आदेश को न मानेंगी ॥२९॥ वे क्षुद्र चित्तवाली, अपनी ही उदर पूर्ति में लगी हुई, आचार-विचार में हीन तथा कठोर और मिथ्या वचन कहने वाली होगी ॥३०॥ दुश्चरित्र पुरुषों का सङ्ग चाहने वाली, दुराचारिणी और पुरुषों से धूर्ततापूर्ण व्यवहार करने वाली होगी ॥३१॥

वेवादान करिष्यन्ति वटवश्चाकृतव्रता ।

गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दाम्पत्युचितान्यपि ॥३२॥

वानप्रस्था भविष्यन्ति ग्राम्याहारपरिग्रहा ।

भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसम्बन्धयन्त्रणा ॥३३॥

अरक्षितारो हर्तारश्शुल्कव्याजेन पार्थिवा ।

हारिणो जनवित्ताना सम्प्राप्ते तु कलौ युगे ॥३४॥

यो योऽश्वरथनागादधस्स स राजा भविष्यति ।

यश्च यश्चावलस्सर्वस्स स भृत्य कलौ युगे ॥३५॥

वैश्या कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजवर्मं यत् ।

शूद्रवृत्त्या प्रयत्स्यन्ति वाण्वर्मोपजीविन ॥३६॥

भैक्षव्रतपरा शूद्रा प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमा ।

पापडसश्रया वृत्तिमाश्रयिष्यन्ति सत्कृता ॥३७॥

दुर्मिक्षवरपोढाभिरत्तीघोषद्रुता जना ।

गोधूमाश्रयवाग्नाढयान्देशान्यास्यन्ति दुःखिता ॥३८॥

ग्रहाचारी धृतादि न करते हुए ही वेद पढ़ेंगे और गृहस्थ सत्याग्र को दान न देने वाले और हवन न करने वाले होंगे ॥३२॥ वान प्रस्थ नगर का भोजन पसन्द करेंगे और सन्यासी अपने स्नेहीजनों के प्रेम में पैसे रहेंगे ॥३३॥

कनिष्ठमे राजागणं कर लेने के बहाने प्रजा को लूटेंगे और उसकी रक्षा भी नहीं करेंगे ॥३४॥ बहुत से रथ, हाथी, घोड़े वाता ही राजा हो जायगा तथा घसत पुरुष थोड़े हो कर भी सेवक ही बनेगा ॥३५॥ वैश्य भी कृषि-वाणिज्य को छोड़ कर तिल्यकारी करेंगे या घृद्ध वृत्ति से निर्वाह करेंगे ॥३६॥ प्रथम लोग संन्यासी वेश में भिक्षावृत्ति करेंगे तथा गम्मानित हो कर पातण्ड की वृद्धि करेंगे ॥३७॥ प्रजाजन कर और दुर्भिक्ष के कारण अत्यन्त दुःखित होकर गैह और जो की अधिकता जाने देशों में चले जायेंगे ॥३८॥

वेद मार्गं प्रलीने च पापण्डाद्विधे ततो जने ।

अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥

प्रशास्त्रविहितं धीर तप्यमानेषु वै तप ।

नरेषु नृपदोषेण बाल्ये मृत्युर्भविष्यति ॥४०॥

भविना योपितां सूति पञ्चपट्सप्तवार्षिकी ।

नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥

पलितोद्भवश्च भविता तथा द्वादशवार्षिक ।

नातिजीवति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशति ॥४२॥

अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तं करणा कलौ ।

यतस्ततो विनङ्क्ष्यन्ति कालेनाल्पेन मानवा ॥४३॥

यदा तदा हि मन्त्रेय हानिर्धर्मस्य लक्ष्यते ।

तदा तदा कलेवृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४॥

यदा यदा हि पापण्डवृद्धिर्मन्त्रेय लक्ष्यते ।

तदा तदा कलेवृद्धिरनुमेया महात्मभिः ॥४५॥

यदा यदा सता हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् ।

तदा तदा कलेवृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४६॥

कलिकाल में वेद-धर्म के लुप्त होने, पाण्ड के बढ़ाने और अधर्म की

प्रचुरता होने से प्रजा अल्प आयु वाली होगी ॥३९॥ शास्त्र विरुद्ध तपस्या से और राजा के विपरीत मार्गगामी होने से बाल्यावस्था में ही मृत्यु होने लगेगी ॥४०॥ पाँच, छ या सात वर्ष की स्त्री और आठ, नौ या दस वर्ष के पुरुष की

सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे ॥४१॥ बारह वर्ष की आयु में ही केश पकने लगेंगे और बीस वर्ष से अधिक किसी की भी आयु नहीं होगी ॥४२॥ लोगो की बुद्धि मन्द होगी, दुष्ट चित्त वाले हो कर व्यर्थ के चित्त धारण करेंगे और इसीलिये अल्पायु में ही मर जायेंगे ॥४३॥ हे भैत्रेयजी ! जैसे-जैसे धर्म की हानि होती हुई दिखाई दे, वैसे-वैसे ही कलियुग की बढ़ता हुआ समझे ॥४४॥ जब पाखंड की वृद्धि दिखाई दे, तभी समझले कि कलियुग का बल बढ़ रहा है ॥४५॥ जब वैदिक मार्ग पर चलने वालो की कभी जान पड़े, तभी बुद्धिमान् पुरुष कलियुग को उत्कर्ष पर जान लेवें ॥४६॥

प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मभृतां नृणाम् ।  
तदानुमेय प्राधान्यं कलेर्मैत्रेय पण्डितैः ॥४७॥  
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः ।  
इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्वलम् ॥४८॥  
न प्रीतिर्वेदवादेषु पापण्डेषु यदा रतिः ।  
कलेर्बुद्धिस्तथा प्राज्ञैरनुमेया विचक्षणैः ॥४९॥  
कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वलक्षणमीश्वरम् ।  
नार्चयिष्यन्ति मैत्रेय पापण्डोपहृता जनाः ॥५०॥  
किं देवं किं द्विजैर्वेदैः किं क्षीचेनाम्बुजन्मना ।  
इत्येव विप्र वक्ष्यन्ति पापण्डोपहृता जनाः ॥५१॥  
स्वल्पाम्बुवृष्टिं पर्जन्यः सस्यं स्वल्पफलं तथा ।  
फलं तथाल्पसारं च विप्र प्राप्ते कलौ युगे ॥५२॥  
शाण्डीप्रायाणि वस्त्राणि क्षमीप्राया महीरुहाः ।  
शूद्रप्रायान्तया वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५३॥  
अशुप्रायाणि धान्यानि अजाप्रायं तथा पयः ।  
भविष्यति कलौ प्राप्ते ह्योत्तोरं चानुलेपनम् ॥५४॥

हे भैत्रेयजी ! जब धर्मात्मा पुरुषो द्वारा प्रारम्भ किये हुए कार्य विफल हो जाय, तब कलियुग का आधिक्य समझे ॥४७॥ जब यज्ञो के द्वारा यज्ञेश्वर भगवान् के यजन से लोग विमुक्त हो जाय तब कलियुग की प्रबलता माने ॥४८॥

जय वेदवाद में अरुचि और पाखण्ड में तन्मयता हो तब ही कलियुग की वृद्धि जाने ॥५६॥ कलियुग में पाखण्ड के बसीभूत होकर मनुष्य जगदीश्वर भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करेंगे ॥५७॥ उस समय पाखण्डीजन कहेंगे कि देवता, विप्र, वेद तथा जल से होने वाले कर्मों से क्या लाभ है ? ॥५८॥ कलियुग में वर्षा थोड़ी होगी, खेती थोड़ा अन्न उत्पन्न करेगी और फलादि में न्यून गुण होगा ॥५९॥ सन के बने हुए वस्त्र पहिन जायेंगे, दामी वृक्षों की अधिकता होगी और सब वर्णों का आचरण शूद्र के समान होगा ॥६०॥ कलियुग में धान्य बहुत छोटे होंगे, बकरियों का दूध ही उपलब्ध होगा और खस ही अनुलेपन होगा ॥६१॥

श्वश्रू श्वशुरभूमिष्ठा गुरवश्च नृणा कली ।  
 दयालाद्या हारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तम ॥५५॥  
 कस्य माता पिता कस्य यथा कर्मानुग पुमान् ।  
 इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः ॥५६॥  
 बाडमन कायजैर्दोषैरभिभूता पुनः पुन ।  
 नरा पापान्यनुदिन करिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥५७॥  
 निस्सत्त्वानामशौचाना निर्ह्रींकाणा तथा नृणाम् ।  
 यद्यद्दुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५८॥  
 निस्स्वाध्यायवपट्कारे स्वधास्वाहाविर्वाजिते ।  
 तदा प्रविरलो धर्मः क्वचित्लोके निवत्स्यति ॥५९॥  
 तत्राल्पेनैव यत्नेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम् ।  
 करोति यः कृतयुगे क्रियते तपसा हि स ॥६०॥

कलियुग में सास-ससुर गुरुजन तथा पत्नी और साले ही सुहृदजन होंगे ॥५५॥ मास-ससुर के वंश में पड़े हुए लोग माता-पिता को कुछ नहीं मानेंगे ॥५६॥ मनुष्यों की बुद्धि अल्प होगी और वे मन, वाणी और कर्म के द्वारा बारम्बार पाप कर्म करेंगे ॥५७॥ अशक्त, अपवित्र और लज्जाहीनो को जो दुःख मिल सकते हैं, उन सभी दुःखों की कलियुग में प्राप्ति होगी ॥५८॥ सशर स्वाध्याय, वपट्कार, स्वधा और स्वाहा से हीन हो जायगा और कहीं-

कहीं ही कुछ धर्म रह सकेगा ॥५६॥ परन्तु कलियुग में स्वल्प प्रयत्न में ही जिस महान् पुण्य राशि की प्राप्ति हो सकती है, उसे सत्ययुग में शेर तप करके ही पाया जा सकता है ॥६०॥

## दूसरा अध्याय

व्यासश्चाह महाबुद्धिर्यदनेव हि वस्तुनि ।  
तच्छ्रूयता महाभाग गदतो मम तत्त्वतः ॥१॥  
कस्मिन्कालेऽल्पको घर्मो ददाति सुमहत्फलम् ।  
मुनीनां पुण्यवादोऽभूत्कैश्चासौ क्रियते सुखम् ॥२॥  
सन्देहनिर्णयार्थाय वेदव्यास महामुनिम् ।  
ययुस्ते सशयं प्रष्टुं मैत्रेय मुनिपुङ्गवाः ॥३॥  
ददृशुस्ते मुनिं तत्र जाह्नवीसलिले द्विज ।  
वेदव्यास महाभागमर्द्धस्नात सुत मम ॥४॥  
स्नानावसाने ते तस्य प्रतीक्षन्तो महर्षयः ।  
तस्युस्तीरे महानद्यास्तरुपण्डमुपाश्रिताः ॥५॥  
मग्नोऽयं जाह्नवीतोयादुत्यायाह सुतो मम ।  
शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येव शृण्वता वचः ॥६॥  
तेषां मुनीनां भूयश्च ममञ्ज स नदीजले ।  
साधु साध्विति चोत्थाय शूद्र धन्योऽसि चाग्रवीत् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे महाभाग ! इस विषय में व्यासजी ने जो कहा है, वही ज्यों का त्यों सुनाता हूँ ॥१॥ एकबार मुनियों में परस्पर पुण्य विषयक वार्तालाप हुआ कि किस समय का अल्प पुण्य भी महान् फल वाला होता है तथा उसके अनुष्ठाता बचन हो सकते हैं ? ॥२॥ फिर इस संदेह के समाधान हेतु वे सब महामुनि व्यासजी के पास पहुँचे ॥३॥ हे मैत्रेयजी ! वहाँ जाकर उन्होंने मेरे पुत्र व्यासजी को गङ्गाजी में अर्द्ध स्नान करते हुए पाया ॥४॥ तब वे सब गंगासट स्थित वृक्षों के नीचे बैठकर उनके स्नान करने की

प्रतीक्षा करने लगे ॥१५॥ उस समय गंगाजी ने गोता लगाकर व्यासजी ने ऊपर उठते हुए कहा 'कलियुग श्रेष्ठ, सूद्र श्रेष्ठ' उनसे वचन सबने सुने । उन्होंने पुन गोता लगाया और उठकर कहा—हे सूद्र ! तुम ही श्रेष्ठ और तुम ही धन्य हो ॥१६-७॥

निमग्नश्च समुत्थाय पुनः प्राह महामुनि ।

योपित साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः ॥८॥

ततः स्नात्वा यथान्यायमायान्तं च कृतक्रियम् ।

उपतस्युर्महाभाग मुनयस्ते सुत मम ॥९॥

कृतसर्वदनाश्चाह, कृतासनपरिग्रहान् ।

किमर्थमागता यूयमिति सत्यवतीमुत ॥१०॥

तमूचुः सशय प्रष्टुः भवन्त वयमागता ।

अल तेनास्तु तावन्न कथ्यतामपरं त्वया ॥११॥

कलिस्साध्विति यत्प्रोक्तं सूद्र साध्विति योपित ।

यदाह भगवान् साधु धन्याश्चेति पुनः पुनः ॥१२॥

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामो न चेद् गुह्यं महामुने ।

तत्कथ्यता ततो हृत्स्थं पृच्छामस्त्वा प्रयोजनम् ॥१३॥

इत्युक्तो मुनिभिर्व्यासः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।

श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यदुक्तं साधु साध्विति ॥१४॥

इसके पश्चात् उन्होंने फिर गोता लगाया और उठते हुए कहा—स्त्रियाँ धन्य हैं, वे ही साधु हैं, उनसे बढ़कर कृतकृत्य और कौन हो सकता है ? ॥८॥ फिर जब व्यासजी स्नान तथा नित्य-कर्मादि से निवृत्त हुए तब वे मुनिजन उनके पास गये ॥९॥ वहाँ अभिवादन आदि करके जब वे बैठ गये तब व्यासजी ने उनसे उनके प्रागमन का कारण पूछा ॥१०॥ तब मुनियों ने कहा—वैसे तो हम एक शङ्का के समाधानार्थ यहाँ आये थे, परन्तु इस समय तो आप एक और बात बताने की कृपा करें ॥११॥ आपने स्नान करते समय कलियुग श्रेष्ठ, सूद्र श्रेष्ठ, स्त्रियाँ धन्य, वे ही साधु हैं आदि वाक्य कहे उनका तात्पर्य क्या है, यही हम सुनने को उत्सुक हैं । यदि यह विषय गोपनीय न हो तो बताने की कृपा

करे ॥१२-१३॥ श्री पराशरजी ने कहा—मुनियो के प्रश्न पर व्यासजी हँस पड़े और बोले कि मेरे वचनों का प्रयोजन सुनो ॥१४॥

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेताया हायनेन तत् ।

द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥१५॥

तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फल द्विजाः ।

प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम् ॥१६॥

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञं स्त्रेताया द्वापरेऽर्चयन् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्यं केशवम् ॥१७॥

धर्मोत्कर्षं मतीयात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ ।

अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलेः ॥१८॥

व्रतचर्यापिरंग्राह्या वेदा पूर्वं द्विजातिभिः ।

ततस्स्वधर्मसम्प्राप्तंष्टव्यं विधिवद्भनं ॥१९॥

वृथा कथा वृथा भोज्य वृथेज्या च द्विजन्मनाम् ।

पतनाय ततो भाव्य तैस्तु सयमिभिस्सदा ॥२०॥

असम्यक्करणे दोषस्तेषां सर्वेषु वस्तुषु ।

भोज्यपेयादिकं चंपा नेच्छ्याप्राप्तिकरं द्विजा ॥२१॥

पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्येषु वै यतः ।

जयन्ति ते निर्जाल्लोकान्क्लेशेन महता द्विजा ॥२२॥

श्री व्यासजी बोले—हे द्विजगण ! सत्ययुग में दस वर्ष तब तप, ब्रह्म-

चर्य-पालन और जपादि करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक महीने में तथा कलियुग में तो एक अहोरात्रि में ही प्राप्त किया जा सकता है ॥१५-१६॥ सत्ययुग में ध्यान से जो फल होता है, वह त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में देव-पूजा से तथा कलियुग में केवल श्रीकृष्ण-नाम स्वीकृति से होता है ॥१७॥ हे धर्मज्ञो ! कलियुग में थोड़ा-सा परिश्रम करने पर ही महान् धर्म की प्राप्ति होती है, इसीलिये मैं कलियुग से बहुत प्रसन्न हूँ ॥१८॥ द्विजातियों को ब्रह्मचर्य व्रत के पालन पूर्वक वेदाध्ययन और धर्म से उपाजित धन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञों के अनुष्ठान करने होते हैं ॥१९॥ फिर

भी व्यर्थं वातर्त्नाप व्यर्थं भोजन या निष्फल यज्ञ उनका पतन करने वाले होते हैं, इसीलिये उन्हें समय रखना आवश्यक होता है ॥२०॥ सभी कार्यों की विपरीतता से उन्हें दोष की प्राप्ति होती है, इस भय से वे भोजन तथा पानादि भी अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकते ॥२१॥ वे सभी कार्यों में परतन्त्रता पूर्वक निष्ठावान् रहकर अत्यन्त ब्रह्म से पुण्यलोकों की प्राप्ति होते हैं ॥२२॥

द्विजशुभ्रूयैवंपाकयज्ञाधिकारवान् ।

निजाञ्जयन्ति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्तत ॥२३॥

भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वै यत ।

नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरित ॥२४॥

स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लब्धं धनं सदा ।

प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि ॥२५॥

तस्यार्जने महाबलेशं पालने च द्विजोत्तमा ।

तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम् ॥२६॥

एवमन्यस्तथा बलेशं पुरुषा द्विजसत्तमा ।

निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥२७॥

योपिच्छुभ्रूपाणां द्रुतुं कर्मणा मनसा गिरा ।

तद्विता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजा ॥२८॥

नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।

तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषित ॥२९॥

एतद्वं कथितं विष्णु यन्निमित्तमिहागता ।

तत्पृच्छत यथाकामं सर्वं वक्ष्यामि व स्फुटम् ॥३०॥

श्रुपयस्ते ततः प्रोचुर्यत्प्रष्टव्यं महाभुने ।

अस्मिन्नेव च तत् प्रश्ने यथावत्कथितं त्वया ॥३१॥

केवल पान-यज्ञ का अधिकारी शूद्र द्विजों की सेवा से ही मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ है, इसलिये वह अधिक धन्य है ॥२३॥ हे मुनिवरों ! शूद्र के लिये भक्ष्याभक्ष्य का भी कोई बन्धन नहीं होने से मैं उन्हें श्रेष्ठ कहता हूँ ॥२४॥



मनुष्यों को धर्म से प्राप्त धन से सुपान को दान और विधिवत् यज्ञ करना उचित है ॥२५॥ इस धन के उपार्जन में और रक्षण में अत्यन्त बृष्ट होता है और फिर उसे उचित मार्ग से व्यय न करने पर तो बहुत ही दुःख भोगना होना है ॥२६॥ इस प्रकार के बृष्ट साध्य उपायों के द्वारा ही मनुष्यों को प्राजापत्य आदि लोकों की प्राप्ति होती है ॥२७॥ परन्तु, स्त्रियों को भी वेदों पति-सेवा करने से ही पति के समान लोकों की प्राप्ति हो जाती है, इसलिये मैंने स्त्रियों को साधु कहा है ॥२८-२९॥ हे विप्रो ! यह तो मैंने आपको बता ही दिया, अब आप अपने आने का प्रयोजन चाहिये, जिसे मैं स्पष्टता से समझा सकूँ ॥३०॥ इस पर ऋषि बोले कि हमारे प्रश्न का उत्तर इसी में मिल गया है ॥३१॥

तत प्रहस्य तानाह कृष्णद्वैपायनो मुनि ।

विस्मयोत्फुल्लनयनास्तापसास्तानुपागतान् ॥३२

ययैषा भवता प्रश्नो ज्ञातो दिव्येन चक्षुषा ।

ततो हि व. प्रसङ्गेन साधु साध्विति भाषितम् ॥३३

स्वल्पेन हि प्रयत्नेन धर्मस्सिद्धयति वै कलौ ।

नरेरात्मगुणाम्भोभि क्षालितायिलकिल्बिषं ॥३४

शूद्रश्च द्विजशुश्रूपातत्परैर्द्विजसत्तमा ।

तथा स्त्रोभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि ॥३५

तत्स्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतर मतम् ।

धर्ममम्पादने क्लेशो द्विजतीना कृतादिषु ॥३६

भवद्विषयदभिप्रेत तदेतत्कथित मया ।

अपृष्टेनापि धर्मज्ञा किमन्यत्क्रियता द्विजा ॥३७

श्री पराशरजी ने कहा—यह सुनकर श्री व्यासजी ने उन तपस्वियों से हँसते हुए कहा ॥३२॥ मैंने आपके प्रश्न को दिव्य दृष्टि से जानकर ही प्रसंगवश 'साधु' कहा था ॥३३॥ जिन्होंने गुण रूप जल से अपने सब दोषों को धो दिया है, उन्हें कालियुग में स्वल्प उद्यम से ही धर्म की प्राप्ति हो जाती है ॥३४॥ शूद्र द्विजसेवा से और स्त्रियाँ पति-सेवा से ही धर्म की प्राप्ति कर लेती हैं ॥३५॥ इसीलिये यह तीनों धन्य से भी धन्य हैं, कल्पियुग के अतिरिक्त अन्य युगों में भी

द्विजातियो को ही धर्म की सिद्धि के लिये घोर कष्ट सहन करने होते हैं ॥३६॥  
इस प्रकार भाषकौ खड्ग का समाधान हो चुका अब और मुझे क्या करना चाहिये ? ॥३७॥

ततस्सम्पूज्य ते व्यास प्रशशसु. पुन पुन. ।  
यथागत द्विजा जग्मुर्व्यासोत्तिकृतनिश्चया. ॥३८॥  
भवतोऽपि महाभाग रहस्य कथित मया ॥३९॥  
अत्यन्तबुद्धस्य कलेरयमेको महान्गुणः ।  
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्ध पर व्रजेत् ॥४०॥  
यच्चाह भवता पृष्ठो जगतामुपसहृतिम् ।  
प्राकृतामन्तराला च तामप्येष वदामि ते ॥४१॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर वे श्रृपिण व्यासजी का पूजन और बारम्बार स्तवन करते हुए अपने स्थान को गये ॥३८॥ हे मौनैवजी ! आपने भी मैं यह रहस्य सुना चुका ॥३९॥ इस कलियुग में केवल कृष्ण-नाम सकीर्तन से परमपद की प्राप्ति होती है ॥४०॥ अब मैं उस प्रश्न को भी कहता हूँ जो आपने ससार के उपसंहार के विषय में पूछा था ॥४१॥

### तीसरा अध्याय

सर्वेषामेव भूतानां त्रिविधं प्रतिसत्त्वरः ।  
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ॥१॥  
ग्राह्यो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसत्त्वरः ।  
आत्यन्तिकस्तु मोक्षाख्यः प्राकृतो द्विपराद्धः ॥२॥  
पनाद्धं सरया गगवन्ममाचक्ष्व यया तु सः ।  
द्विगुणीकृतया ज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसत्त्वरः ॥३॥  
स्थानात्स्थानं दक्षगुणमेव तस्माद् गत्यते द्विज ।  
ततोऽष्टदशमे भागे पराद्धं मभिधीयते ॥४॥

पराद्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतस्य लयो द्विज ।  
 तदाव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं स्वहेतौ लयमेति वै ॥५॥  
 निमेषो मानुषो योऽमौ मात्रा मात्राप्रमाणतः ।  
 तैः पञ्चदशभिः काठा त्रिशत्काष्ठा कला स्मृता ॥६॥  
 नाडिका तु प्रमाणेन सा कला दश पञ्च च ।  
 उन्मानेनाम्भसस्ता तु पलान्यद्धं त्रयोदश ॥७॥  
 मागधेन तु मानेन जलप्रस्यस्तु स स्मृतः ।  
 हेममाणः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलः ॥८॥

तेस्तु द्वादशासाहस्रं चतुर्गुणमुदाहृतम् ।

चतुर्गुणसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥११

स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश महामुने ।

तदन्ते चैव मैत्रेय ब्राह्मो नैमित्तिको लय ॥१२

तस्य स्वरूपमत्युग्रं मैत्रेय गदतो मम ।

शृणुष्व प्राकृतं भूयस्तव वक्ष्याम्यहं लयम् ॥१३

ऐसी दो ताड़िकाओं का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र और तीस अहोरात्र का एक मास होता है ॥१६॥ बारह मास का वर्ष होता है, यही देवताओं का एक अहोरात्र है । ऐसे तीन सौ भाठ वर्षों का एक दिव्य वर्ष होता है ॥१७॥ बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्गुणी और एक हजार चतुर्गुणियों का ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥११॥ हे महामुने ! यही कल्प है, इसमें चौदह मनु होते हैं । इस कल्प के अन्त में ही ब्रह्माजी का नैमित्तिक प्रलय होता है ॥१२॥ अब मैं उस नैमित्तिक प्रलय के अग्रदूत रूप को कहता हूँ फिर प्राकृत प्रलय को कहूँगा ॥१३॥

चतुर्गुणसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ।

अनावृष्टिरतीवोष्णं जायते शतवर्षिकी ॥१४

ततो यान्यल्पसाराणि तानि सत्त्वान्यशेषतः ।

क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठ पार्थिवान्यनुपीडनात् ॥१५

ततः स भगवान्विष्णुं रुद्ररूपधरोऽव्यय ।

क्षयाय यतते कर्तुं मात्मस्थास्सकला प्रजा ॥१६

ततस्स भगवान्विष्णुर्भानोस्सप्तसु रश्मिषु ।

स्थितः पितृशेषाणि जलानि मुनिसत्तम ॥१७

पीत्वाम्भासि समस्तानि प्राणिभूमिगतान्यपि ।

शोषं नयति मैत्रेय समस्तं पृथिवीतलम् ॥१८

समुद्रान्सरितः शैलनदीप्रस्रवणानि च ।

पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९

ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपवृ हिता ।

त एव रश्मयस्मम जायन्ते सप्त भास्करा ॥२०॥

अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततस्तप्त दिवाकरा ।

दहन्त्यशेष त्रैलोक्य सपातालतल द्विज ॥२१॥

एक हजार चतुर्गुणियो के व्यतीत होने पर जब पृथिवी क्षीण प्राय होती है, तब सौ वर्ष तर्क वर्षा नहीं होती ॥१४॥ उस समय अल्प शक्ति वाले पार्थिव प्राणी अनावृष्टि से सतप्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥१५॥ फिर रुद्र रूपी भगवान् विष्णु जगत् के सहारायें सब प्रजा को अपने में खीन करने के लिये प्रयत्नवान् होते हैं ॥१६॥ हे मुनि श्रेष्ठ । उस समय सूर्य की सप्तरश्मियों में स्थित हुए भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जल का शोषण कर लेते हैं ॥१७॥ इस प्रकार वे जल का शोषण कर समस्त पृथिवी को सुखा देते हैं ॥१८॥ समुद्र, नदी, पर्वतीय झोत और पातालादि में सर्वत्र जल सूख जाता है ॥१९॥ तब प्रभु-प्रताप से वे सप्त-रश्मियाँ जल-पान से पुष्ट होकर सात सूर्य हो जाते हैं ॥२०॥ उस समय वे सातों सूर्य सभी दिशाओं में प्रकाशित होकर पाताल तक सम्पूर्ण त्रिलोकी को भस्म कर देते हैं ॥२१॥

दह्यमान तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्य द्विज भास्करै ।

साद्रिनद्यर्णवाभोग निस्नेहमभिजायते ॥२२॥

ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिल द्विज ।

भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृथोपमाकृति ॥२३॥

तत कालाग्निरुद्रोऽसी भूत्वा सर्वहरो हरि ।

दोषाहिश्वाससम्भूत पातालानि दहत्यथ ॥२४॥

पातालानि ममस्तानि स दग्ध्या ज्वनन्तो महान् ।

भूमिमभ्येत्य गगनं वभस्ति वसुधातलम् ॥२५॥

भुवर्लोकं ततस्मरं स्वर्लोकं च सुदारुण ।

ज्वालाभालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६॥

अम्बरीषमिवाभाति त्रैलोक्यमपिल तदा ।

ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणनराचम् ॥२७॥

ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः ।

कृताधिकारा गच्छन्ति महर्लोकं महामुने ॥२८

तस्मादपि महातापतप्ता लोकात्ततः परम् ।

गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः ॥२९

हे द्विज ! उन सूर्यों से नदी, पर्वत, समुद्रादि से युक्त सम्पूर्ण त्रिलोकी रस-हीन हो जाती है ॥२२॥ वृक्षों और जलादि के न रहने से यह पृथिवी कछुए की पीठ जैसी पटोर हो जाती है ॥२३॥ फिर कालाग्नि रुद्र रूप से प्रकट हुए भगवान् नोचे से पातालों को भस्मी भूत करने लगते हैं ॥२४॥ सब पातालों को जलावर यह अग्नि पृथिवी पर पहुँच कर उसे भी भस्म कर डालता है ॥२५॥ फिर वह भुवर्लोक और स्वर्गलोक को भस्म करके वही घूमता रहता है ॥२६॥ इस प्रकार अग्नि के धेरे में घिर कर सम्पूर्ण चराचर के नष्ट होने पर यह त्रिलोकी तपे हुए कढाव जैसी हो जाती है ॥२७॥ फिर परलोक की कामना वाले अधिकारीगण भुवर्लोक और स्वर्गलोक में स्थित हुए उस अग्नि से संतप्त होकर महर्लोक में जाते हैं परन्तु वहाँ भी वँसा ही ताप होने के कारण जनलोक में चले जाते हैं ॥२८-२९॥

ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः ।

मुखानि श्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तम ॥३०

ततो गजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तः, ऽतिनादिनः ।

उत्तिष्ठन्ति तथा व्योम्नि घोरास्सवर्तका घनाः ॥३१

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः ।

धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२

केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा ।

केचिद्धूर्ध्वसङ्काशा इन्द्रनीलनिभाः क्वचित् ॥३३

शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्येज्जननिभाः परे ।

इन्द्रगोपनिभाः केचित्ततश्शिखिनिभास्तथा ॥३४

मनश्शिलाभाः केचिद्धे हरितालनिभाः परे ।

चापपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ते महाघनाः ॥३४

जब सम्पूर्ण विश्व अन्धकारमय हो जाता है, तब समस्त स्थावर-जगम प्राणियों के नष्ट होने पर वे महामेघ सौ वर्ष से अधिक समय तक वृष्टि करते रहते हैं ॥४०॥ हे मुनिवर ! भगवान् वासुदेव की महिमा से वरप के अन्त में इसी प्रकार होता है ॥४१॥

## चौथा अध्याय

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि महामुने ।  
 एकाणव भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिल तत ॥१॥  
 मुखनिश्वासजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदाम्स्तत ।  
 नाशयन्वाति भैत्रेय वर्षाणामपरशतम् ॥२॥  
 सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावन ।  
 अनादिरादिविश्वस्य पीत्वा वायुमशेषत ॥३॥  
 एकाणवे ततस्तस्मिञ्छेषशय्यागत प्रभु ।  
 ब्रह्मरूपधरश्चेते भगवानादिकृद्धरि ॥४॥  
 जनलोकगर्तस्त्रिद्वैतसन्नकार्थरभिधुत ।  
 ब्रह्मलोकगर्तश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभि ॥५॥  
 आत्ममायामयी दिव्या योगनिद्रा समास्थितः ।  
 आत्मानं वासुदेवास्य चिन्तयन्मधुसूदन ॥६॥  
 एष नैमित्तको नाम भैत्रेय प्रतिसञ्चरः ।  
 निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरि ॥७॥  
 मदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत् ।  
 निमीलत्येतदखिल मायाशय्या गतेऽच्युते ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामुने ! सप्तर्षियों ने स्थान वा भी अनि-  
 श्रमण करने वाले जल के कारण सम्पूर्ण त्रिलोकी महासागर जैसी प्रतीत होती  
 है ॥१॥ हे भैत्रेयजी ! फिर भगवान् विष्णु के मुख से प्रवृत्त हुआ वायु उा मेघा  
 को नष्ट करके सौ वर्ष तक धरता है ॥२॥ फिर जन- लोका वासी सनकादि

सिद्धो से स्तुत और ब्रह्मलोक-प्राप्त मुमुक्षुओ द्वारा ध्यान किये जाते हुए भूत भावन भगवान् श्रीहरि उस सम्पूर्ण वायु का पान करके वासुदेवात्मक अपने रूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा का अवलम्बन कर महा समुद्र स्थित शेष-शैया पर शयन करते हैं ॥३-६॥ हे भैत्रेयजी ! इसमें ब्रह्मा रूपधारी भगवान् विष्णु का शयन करना ही निमित्त होने से इसे नैमित्तिक प्रलय कहा गया है ॥७॥ भगवान् के जागते रहने पर ससार की चेष्टाएँ चलती रहनी है और उनके शयन करने पर ससार भी उनमें लीन हो जाता है ॥८॥

पद्मयोनेर्दिन यत्तु चतुयुगसहस्रवत् ।  
 एकारांवीकृते लोके तावती रात्रिरिष्यते ॥६॥  
 तत प्रवृद्धो राज्यन्ते पुनस्सृष्टिं करोत्यज ।  
 ब्रह्मस्वरूपधृग्विष्णुर्यथा ते कथितं पुरा ॥१०॥  
 इत्येष कल्पसंहारोऽवान्तरप्रलयो द्विज ।  
 नैमित्तिकस्ते कथितं प्राकृतं शृण्वत परम् ॥११॥  
 अनावृष्ट्यादिसम्पर्कात्कृते सक्षालने मुने ।  
 समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वसिलेषु च ॥१२॥  
 महदादेविकारस्य विशेषान्तस्य सक्षये ।  
 कृशोच्छ्वाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥१३॥  
 आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।  
 आत्तगन्धा ततो भूमिं प्रलयत्वाय कल्पते ॥१४॥  
 प्रणष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका ।  
 आपस्तदा प्रवृद्धास्तु वेगवत्यो महास्वना ॥१५॥  
 सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च ।  
 सलिलेनोर्मिमालेन लोका व्याप्ताः समन्ततः ॥१६॥

ब्रह्मा जी का दिन जिस प्रकार एक हजार चतुयुगी का है, वैसे ही जगत् के एकारांवा रूप होने से उतने ही काल की उनकी रात्रि होती है ॥६॥ रात्रि का अन्त होने पर जब भगवान् जागते हैं तब ब्रह्मा रूप होकर प्रवृद्ध हुए प्रकार से सृष्टि-रचना करते हैं ॥१०॥ हे द्विज ! इस प्रकार नैमित्तिक



अवान्तर प्रलय के विषय में कहा गया, अथ प्राटन प्रलय वा वर्गान् मुनो ॥११॥ अनापृष्टि आदि से सम्पूर्ण सौख्य और पानाशों के नष्ट होने पर महत्तत्त्व से विशेष तब सब विचार क्षीण हो जाते हैं और पहिले पृथिवी के गुण गन्ध को जल अपने में लीन कर लेता है । इस प्रकार गन्ध-हीन होने से पृथिवी का प्रलय होता है ॥१२-१४॥ गन्ध-तन्मात्रा का नाश होने पर पृथिवी जलमयी हो जाती है और घोर शब्द से युक्त जल अभी स्थिर और अभी बहता हुआ रह कर सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लेता है ॥१५-१६॥

अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा पीयते तु सः ।  
 नश्यन्त्यापस्ततस्ताश्च रमतन्मात्रसंख्यात् ॥१७॥  
 ततश्चापो हृत्तरसा ज्योतिष प्राप्नुवन्ति वै ।  
 अन्यवस्थे तु सलिले तेजसा सवतो वृते ॥१८॥  
 स चाग्निं सर्वतो व्याप्य चादत्ते तज्जल तथा ।  
 सर्वमापूर्यतेऽर्चिर्भिस्तदा जगदिदं शनैः ॥१९॥  
 गर्चिर्भिस्संवृते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तदा ।  
 ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरस्ति प्रभाकरम् ॥२०॥  
 प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽसिलात्मनि ।  
 प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसु ॥२१॥  
 प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोध्यते महान् ।  
 निरालोके तथा लोके वाय्ववस्थे च तेजसि ॥२२॥  
 ततस्तु मूलमासाद्य वायुस्मभवमात्मनः ।  
 ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ॥२३॥

इसके पश्चात् जल के गुण रस को अग्नि अपने में लीन कर लेता है और रस तन्मात्रा के अभाव में जल नष्ट हो जाता है ॥१७॥ इस प्रकार अग्नि रूप हुआ जल अग्नि के साथ संयुक्त होकर शेष जल का शोषण कर लेता है और तब सम्पूर्ण विश्व ही अग्निमय हो जाता है ॥१८-१९॥ जब सम्पूर्ण विश्व सब ओर से अग्निमय होता है, तब उस अग्नि के गुण प्रकाश ( रूप ) को वायु अपने में लीन कर लेता है ॥२०॥ उस समय रूप-तन्मात्रा के न रहने पर अग्नि

वा कोई स्वरूप ही नहीं रहता ॥२१॥ तब उस अग्नि के विघ्न होने पर अत्यंत धीरे वायु चलता है ॥२२॥ तब अपने उद्गम स्थल आकाश के माध्यम में रह कर वह वायु सभी दिशाओं में अत्यंत वेग पूर्वक चलता है ॥२३॥

वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रसते तत ।  
प्रशाम्यति ततो वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४॥  
अरूपरसमस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ।  
सर्वमापूर्यच्चैव सुमहत्तत्प्रकाशते ॥२५॥  
परिमण्डलं च सुपिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ।  
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६॥  
ततश्शब्दगुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुन ।  
भूनेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु च ॥२७॥  
अभिमानात्मको ह्येष भूनादिस्तामसस्मृतः ।  
भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षण ॥२८॥

तदनन्तर वायु का गुण स्पर्श भी आकाश में लीन हो जाता है और वायु के अभाव में आकाश वा कोई आधार नहीं रहता ॥२४॥ उस समय रूप, रस, गंध और आकार से हीन हुआ आकाश ही सब को व्याप्त करता हुआ प्रकाशित होता है ॥२५॥ उस समय जब ओर से गोल, छिद्र रूप, शब्द लक्षण आकाश ही सबको अच्छादिन किये रहता है ॥२६॥ फिर भूनादि उस आकाश के गुण शब्द का ग्रस कर लेता है । इसी भूतादि में पंचभूत और इन्द्रियों के भी लीन हो जाने पर यह अहंकारात्मक तामस कहा जाता है । फिर बुद्धि रूप महत्त्वं इस भूतादि का ग्रस कर लेता है ॥२७-२८॥

उर्वी महाश्च जगत् प्राप्तेऽस्तर्वाहृतस्तथा ॥२९॥  
एव सप्त महाबुद्धे क्रमात्प्रकृतयस्स्मृतः ।  
प्रत्याहारे तु तास्सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् ॥३०॥  
येनेदमावृत सर्वमण्डलमप्सु प्रलीयते ।  
मत्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोक सपर्वतम् ॥३१॥

उदकावरणं यत्तु ज्योतिषा पीयते तु तत् ।  
 ज्योतिर्वायौ लय याति यात्याकाशे समीरणे ॥३२॥  
 आकाशं चैव भूतातिर्ग्रसते त तथा महान् ।  
 महान्तमेभिस्सहित प्रकृतिर्ग्रसते द्विज ॥३३॥  
 गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यून च महामुने ।  
 प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतु प्रधान कारण परम् ॥३४॥  
 इत्थेया प्रकृतिस्सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।  
 व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्मान्मन्त्रेय लीयते ॥३५॥

पृथिवी और महत्त्व ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जगत् और ब्रह्म जगत् दोनों की सीमाएँ हैं ॥३२॥ इसी प्रकार जो सात आवरण कहे हैं, वे सभी प्रलयकाल में अपने कारण में लीन हो जाते हैं ॥३०॥ सप्त द्वीप, सप्त समुद्र, सप्त लोक और सप्त रजत श्रेणिपत्र के सहित वह सम्पूर्ण रूपरञ्जित जल में विलीन हो जाता है ॥३१॥ फिर जल के आवरण का पान करने वाला अग्नि वायु में और वायु आकाश में लीन हो जाता है ॥३२॥ वह आकाश भूतादि में और भूतादि महत्त्व में तथा महत्त्व मूल प्रकृति में लीन होता है ॥३३॥ हे महामुने ! सत्त्वादि गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है, इसी को प्रधान कहते हैं । इसी प्रधान से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है ॥३४॥ प्रकृति के व्यक्त और अव्यक्त रूप से सर्वमयी होने के कारण व्यक्त रूप अव्यक्त में विलीन हो जाता है ॥३५॥

एकशुद्धोऽक्षरो नित्यस्सर्वव्यापी तथा पुमान् ।  
 सोऽयं शस्सर्वभूतस्य मन्त्रेय परमात्मनः ॥३६॥  
 न सन्ति यत्र सर्वशे नामजात्यादिकल्पनाः ।  
 सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥३७॥  
 तद्ब्रह्म परमं धाम परमात्मा स चेश्वरः ।  
 स विष्णुस्सर्वमेवेद यतौ नावर्तते यतिः ॥३८॥  
 प्रकृतिर्या मयारयाता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।  
 पुरुषश्चाप्युभावेतौ तीयेते परमात्मनि ॥३९॥

परमात्मा च सर्वोपामाधारः परमेश्वरः ।

विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥४०॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।

ताम्यामुभाम्या पुरुषेस्सर्वभूतिस्स इज्यते ॥४१॥

ऋग्यजुस्सामभिर्मर्गैः प्रवृत्तेरिज्यते ह्यसौ ।

यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्पुरुषैः पुरुषोत्तमः ॥४२॥

ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानभूतिः स चेज्यते ।

निवृत्ते योगिभिर्मर्गै विष्णुमुक्तिफलप्रदः ॥४३॥

हे मंत्रेयजी ! इससे भिन्न एक शुद्ध, अक्षर, नित्य और सर्वव्यापी पुरुष भी परमात्मा का ही अंश है ॥३६॥ जिस ज्ञानात्मा एव ज्ञातव्य मे नाम-जाति की कल्पना नहीं है, वही सर्वेश्वर परमधाम परब्रह्म परमात्मा है । वही विश्व रूप ईश्वर है । उसे प्राप्त होकर योगी पुरुष पुनः ससार मे नहीं आते ॥३७-३८॥ मेरे द्वारा कही हुई व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति तथा पुरुष भी उसी परमात्मा मे लीन होते है ॥३९॥ उसी सर्वाधार, परमेश्वर को वेद-वेदान्तो मे 'विष्णु' नाम से कहा है ॥४०॥ कर्म और सात्य रूप दोनो प्रकार के वैदिक कर्मों से उसी परमेश्वर का यजन होता है ॥४१॥ ऋक्, यजुः और साम द्वारा कहे गये प्रवृत्ति मार्ग से भी उन्ही यज्ञेश्वर भगवान् का पूजन होता है ॥४२॥ तथा निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करने वाले योगी भी उन्ही भगवान् विष्णु का ज्ञान योग से यजन करते हैं ॥४३॥

ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्यत्तु किञ्चिद्वस्त्वभिधीयते ।

यच्च वाचामविषय तत्सर्वं विष्णुरव्ययः ॥४४॥

व्यक्तस्स एव चाव्यक्तस्स एव पुरुषोऽव्ययः ।

परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः ॥४५॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन्प्रकृतिस्सम्प्रलीयते ।

पुरुषश्चापि मंत्रेय व्यापिन्यन्याहृतात्मनि ॥४६॥

द्विपराद्धात्मिकः कालः कथितो यो मया तव ।

तदहस्तस्य मंत्रेय विष्णोरीशस्य कथ्यते ॥४७॥

व्यक्ते च प्रकृतौ लीने प्रकृत्यां पुरुषे तथा ।  
 तत्र स्थिते निशा चास्य तत्प्रमाणा महामुने ॥४८॥  
 नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः ।  
 उपचारस्तथाप्येव तस्येशस्य द्विजोच्यते ॥४९॥  
 इत्येव तव मेत्रेय कथितः प्राकृतो लय ।  
 आत्यन्तिकमथो ब्रह्मविबोध प्रतिसत्त्वरम् ॥५०॥

तीनों प्रकार के स्वरो से जो कहा जाता है और जो वाणी से परे हैं, वह सब अव्ययारमा विष्णु ही है ॥४४॥ यह विश्व रूप परमात्मा अव्यक्त और अविनाशी हैं ॥४५॥ उन्हीं सर्वव्याप्त एवं अविश्रुत रूप परमात्मा से व्यक्त और अव्यक्त रूप वाली प्रकृति और पुरुष लीन हो जाते हैं ॥४६॥ हे मीत्रेयजी ! मैंने जो द्विपराब्ध काल तुम्हें बताया है, वह विष्णु भगवान् का एक दिन सम्भो ॥४७॥ जब व्यक्त जगत् प्रकृति में और प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है, तब इतने समय की विष्णु की रात्रि होती है ॥४८॥ यथार्थ में तो उस परमात्मा का न कोई दिन है, न रात्रि है, उपचार से ही इस प्रकार कहा गया है ॥४९॥ हे मीत्रेयजी ! इस प्रकार प्राकृत प्रलय का यह वर्णन किया गया है, अब आत्यन्तिक प्रलय के विषय में सुनो ॥५०॥

### पांचवां अध्याय

आध्यात्मिकादि मेत्रेय ज्ञात्वा तावन्नय मुधः ।  
 उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिक लयम् ॥१॥  
 आध्यात्मिकोऽपि द्विविधदशारीरो मानसस्तथा ।  
 दशारीरो बहुभिर्मेदंभिद्यते श्रूयता च सः ॥२॥  
 क्षीररोगप्रतिक्षयायज्वरक्षूलभगन्दरैः ।  
 गुरुमार्शः स्वययुद्धासच्छर्मादिभिरनेकधा ॥३॥

तथाक्षिरोगातीसारकुशङ्गामयनञ्जितं ।  
 भिद्यते देहजस्तापो मानस थोतुमहंसि ॥४  
 कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविपादज ।  
 शोकासूयावमानेर्ष्यामात्मर्यादिमयस्तथा ॥५  
 मानसोर्जप द्विजश्रेष्ठ तापो भवति नैकधा ।  
 इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिक स्मृतः ॥६  
 मृगयक्षिमनुष्याद्यं पिशाचोरगराक्षसं ।  
 सरीसृपाद्यंश्च नृणां जायते चाधिभौतिक ॥७  
 क्षीतवातोष्णवर्षाम्बुदैद्युतादिममुद्भूत ।  
 ततो द्विजवर श्रेष्ठे कथ्यते चाधिदैविकः ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—इ मैत्रयजी । आध्यात्मिक आदि तीनों ताप का ज्ञान प्राप्त करने और वैराग्य के उत्पन्न होने पर आत्यन्तिक प्रलय की प्राप्ति होती है ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के शारीरिक और मानसिक दो भेद हैं, उनमें शारीरिक के भी अनन्त भेद हैं, उन्हें सुनो ॥२॥ शिरोरोग, प्रतिश्याय, ज्वर, घूँस, भगन्दर, गुल्म, अर्श, शोथ, श्वास, छर्दि, नेत्र रोग, अतिसार, घृष्ठ आदि के भेद से शारीरिक ताप अनन्त प्रकार का है । अथ मानसिक ताप सुनो ॥३-४॥ काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विपाद, शोक, असूया, अपमान, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि के भेद से मानसिक ताप भी बहुत प्रकार का है । ऐस ही अनन्त भेद बान ताप को आध्यात्मिक कहा है ॥५-६॥ मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, राक्षस, सरीसृप आदि से प्राप्त होने वाले दुष्ट को आधिभौतिक कहा है ॥७॥ क्षीत, वात, उष्ण, वर्षा, जल, विद्युत् आदि से मिलन वाला दुष्ट आधिदैविक है ॥८॥

गर्भजन्मजरानानमृत्युनारयज तथा ।  
 दुष्ट सहस्रशो भेदैर्भियत मुनिसत्तम ॥९  
 सुकुमारतनुगर्भे जन्तुर्गुह्यमलावृते ।  
 उत्तमवेष्टितो भुग्नपृष्ठशोवास्थिमहनि ॥१०

अत्यन्तादुर्गोष्णोष्णानयनैर्मनृभोजनैः ।

अत्यन्ततापैर्यथैव घृष्टं गानातिवेदनः ॥११

प्रमारणात्पुष्पादीनां नानाणां प्रभुगर्भमनः ।

सदृन्मूत्रमहापक्वनायो मवंत्र पीडितः ॥१२

निरुच्छ्वाम गर्भेन्यम्भश्चान्मशतान्यथ ।

घास्ते गर्भेऽतिदुर्गेन निजगर्भं निबन्धन ॥१३

जायमानः पुरीषानृद्धमूत्रमुवाचिताननः ।

प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिवन्धनः ॥१४

अधोमुखो ये नियते प्रयत्नेऽस्मृतिमागतैः ।

यत्नेऽन्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरासुरः ॥१५

हे मुनिवर ! इन दुःखों के अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु तथा नरक में उत्पन्न दुःख भी सह्यो प्रसार के हैं ॥१६॥ गर्भ की भिन्नी से तिस्र गुप्फुमार वासा जीव मन-मूत्र रूप धार कीचड़ में पड़ा हुआ माता के लट्ट बटुके, घरपरे, प्यारे और गर्भ पदार्थों के सेवन से और पीठ तथा ग्रीवा का हड्डियों के पुण्डलाकार मुड़ी रहने से अत्यन्त पीड़ा को प्राप्त हो कर और चेतना भय होते हुए भी आस लेने में असमर्थ रह कर अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करता हुआ गर्भ-वास के दुःखों को भोगता है ॥१७-१८॥ जन्म के समय भी उसका मुख मल, मूत्र, रक्त, शीर्ष आदि में सना रहता तथा सम्पूर्ण अस्थिवन्धन प्राजापत्य वायु से संतप्त होते हैं ॥१९॥ सूतिकावात उसके मुख को नीचे कर देता है श्रीः जीव अत्यन्त क्लेश पूर्वक माता के गर्भ में निकलने में समर्थ होता है ॥२०॥

सूच्छामवाप्य महती सस्पृष्टो बाह्यवायुना ।

विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातश्च मुनिसत्तम ॥२१

कण्टकैरिव तुम्हाङ्गः क्रकचैरिव दारितः ।

पूतिप्रणाम्निपतितो धरण्या कृमिको यथा ॥२२

कण्डूमनेऽपि चासक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः ।

स्नानपानादिकाहारमप्याप्नोति परेच्छया ॥२३

अशुचिप्रस्तरे सुप्त कीटदशादिभिस्तथा ।

भक्ष्यमाणोऽपि नैवंपा समर्थो विनिवारणे ॥१६

जन्मदुःखान्यनेकानि जन्मनोजन्मन्तराणि च ।

बालभावे यदाप्नोति ह्याधिभौतादिकानि च ॥२०

अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्तं करणो नर ।

न जानाति कुत कोऽहं क्वाहं गन्ताकिमात्मकः ॥२१

केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् ।

किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते ॥२२

यो धर्मं कश्च वाधर्मं, कस्मिन्वर्ततेऽथ वा कथम् ।

किंकर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३

एव पशुसमैर्मूर्खैरज्ञानप्रभव महत् ।

अवाप्यते नरैर्दुःखं श्लिष्टनोदरपरायणं ॥२४

हे मुनिर्धृष्ट ! उत्पन्न होने पर बाहरी वायु के स्पर्श से अत्यन्त मूर्ख

को प्राप्त होता है ॥१६॥ उस समय जीव दुर्गन्धिग्न्यण से गिरे या आरे से

धीरे हुए पीडे के समान ही गर्भाशय से पृथिवी पर गिरता है ॥१७॥ वह स्वयं

कुछ भी कर सक्ने में असमर्थ रहता तथा स्नान और दुग्धाहार के लिये भी

पराधीन रहता है ॥१८॥ अपवित्र विद्यीने पर पडे रहने पर मच्छर आदि उसे

काटते हैं, उन्हें भी वह नहीं हटा सकता ॥१९॥ हम प्रकार उत्पत्ति के समय

घोर धाद में जीव आधिभौतिक दुःखों को भोगता है ॥२०॥ अज्ञान के अन्धेरे

में पडा हुआ जीव यह भी भूल जाता है कि मैं वहाँ से आया ? वहाँ जाऊँगा ?

मैं कौन हूँ ? मेरा रूप क्या है ? ॥२१॥ मैं कौन से बन्धन से बिग धारण

बैधा हूँ ? मैं क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? ॥२२॥ धर्म

क्या है, अधर्म क्या है ? निग धवस्या में मैंसे रहूँ ? कर्तव्य या अधर्तव्य क्या

है ? तथा गुण या दोष क्या है ? ॥२३॥ हम प्रकार विवेक रहित पशु के

गमान यह जीव अज्ञान से उत्पन्न दुःखों को भोगते हैं ॥२४॥

अज्ञान तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः ।

अज्ञानिना प्रवर्तते कर्मलोपास्तनो द्विज ॥२५



नरककर्मणा लोपात्फलमाहूर्मनीपिण ।  
 तस्मादज्ञानिना दुःखमिह चामुन'चोत्तमम् ॥१६॥  
 पुराजजरुदेहश्च शिथिलावयव पुमान् ।  
 विगलच्छीरादशनो वलिस्नायुशिरावृत ॥१७॥  
 दूरप्रयाधनयनो व्योमान्तर्गतसारक ।  
 तासमिवरुनिर्यातिलोमपुञ्जश्चलद्वपु ॥१८॥  
 प्रकटोभूतसर्वास्थिर्नेतपृष्ठास्थिसंहति ।  
 उत्सन्नजठराग्निर्त्वादल्पहारोऽल्पचेष्टित ॥१९॥

हे द्विज ! अज्ञान के तामसिक हाने से अज्ञानी पुरुषों की प्रवृत्ति ताम-  
 सिक कर्मों में होती है इसके कारण वैदिक कर्म छुप्त हो जाते हैं ॥१६॥ कम  
 लोप का फल मनीषियों ने नरक कहा है, इस लिये अज्ञानियों को इहलोक-पर-  
 लोक दोनों में ही दुःखों की भोगना होता है ॥१७॥ जब बुढ़ापा आता है तब  
 अङ्ग शिथिल होते दाँत उखल जाते पौर देह पर भुर्रियाँ तथा नस-नाडियाँ  
 उभल आती हैं ॥१८॥ नेत्र दूर तक नहीं देख पाते और उनमें गड़े पड़ जाते हैं,  
 नासिका-छिद्रों से रोम बाहर निकलते और देह कापता रहता है ॥१९॥ रीढ़  
 ढुङ्गी झुक जाती और सभी अस्थियाँ दिखाई देने लगती हैं जठराग्नि मन्द  
 हो कर प्राचन शक्ति और पुरपाथ में न्यूनता आ जाती है ॥२०॥

कृच्छ्राच्चवङ्क्रमणोत्थानशयनासनचेष्टित ।  
 मन्दीभवृच्छ्रोत्रनेत्रस्तवल्लालाविलानन ॥२०॥  
 अनायत्तस्समस्तंश्च करणैर्मरणोन्मुख ।  
 तल्लक्षणोऽप्यनुभूतानामस्मर्त्ताखिलवस्तुनाम् ॥२१॥  
 सकृदुच्चारित वाक्ये समुद्भूतमहाश्रम ।  
 श्वासकाशसमुद्भूतमहायासप्रजागर ॥२२॥  
 अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा सवेद्यते जरी ।  
 भूत्वात्मपुत्रदारा गामवमानास्पदीकृत ॥२३॥  
 प्रक्षीणालिनशौचश्च विहाराहारसस्पृह ।  
 हास्य परिजनम्यापि निर्विण्णाशेषबान्धव ॥२४॥

अनुभूतिमिवान्यस्मिञ्जलमन्यात्मपट्टिचेष्टितम् ।

सस्मरन्वीवने दीर्घं नि श्वसत्यमितापित ॥३५॥

एवमादीनि दु खानि जरायामनुभूय वै ।

मरणे यानि दु खानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६॥

बुझने, फिरने, उठने-बैठने आदि में भी कठिनाई होती है, वान और नेत्र भ्रष्ट हो जाते हैं, और तार मिकलन से मुख भी मलीन हो जाता है ॥३०॥ इन्द्रियाँ अपने अधीन नहीं रहती और मरणासन्न अवस्था की प्राप्ति होती है तथा अपने ऐसे-मुने पदार्थों की भी याद नहीं रहती ॥३१॥ एव यावय कहने में भी कष्ट होता तथा श्राम-काम के प्रकोप से जागता रहता है ॥३२॥ दूसरों के द्वारा उठाया-बैठाया जाता है, स्वयं कुछ बर नहीं सकता, इसीलिये अपने भृत्य, पुत्र, स्त्री आदि स भी तिरस्कृत होता रहता है ॥३३॥ उसका पवित्राचरण नष्ट होता और भोग भोजन की इच्छा बंद जाती है, उसके बहुजन उससे उदामीनता का व्यवहार करते और परिजन हँसी उड़ाते हैं ॥३४॥ उसे अपनी यौवनावस्था की चेष्टाएँ किमी अन्य जन्म में की हुई सी याद आती हैं और वह दु ख के कारण दीप श्वास लेता रहता है ॥३५॥ इस प्रकार बुढ़ापे के बट भोगते हुए मरणकाल में उसकी जो अवस्था होती है उसे भी सुनो ॥३६॥

श्लथदग्नीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ व्याप्तो वेपथुना भृशम् ।

मुहुर्लानिपरवशो मुहुर्जनिलवान्वित ॥३७॥

हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु ।

एतै वथ भविष्यन्तीत्यतीव ममताकुल ॥३८॥

मर्मभिर्द्भिर्महारोगं कञ्चरिव दारणं ।

शरैरिवान्तवम्योर्ग्रन्थिद्यमानासुवन्धन ॥३९॥

परिवर्तितनाराशो हस्तपाद मुहु क्षिपन् ।

सगुप्यमाणतात्त्वोष्ठपुटो धुरधुरायते ॥४०॥

निरदकण्ठो दोषोघेरुदानश्वासपीडित ।

तापेन महता व्याप्तस्तृपा चातंस्तया शुषा ॥४१॥

धनोपाजन तथा धन की रक्षा और उससे व्यय में भगवान् इष्टमित्रों की विपत्ति में कारण भी जीव को अनेक दुःख भोगने होते हैं ॥५४॥

यद्यत्प्रीतिवर पुसा वस्तु मैत्रेय जायते ।

तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति ॥५५॥

बलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकं ।

क्रियते न तथा भूरि सुख पुसा यथाऽमुलम् ॥५६॥

इति ससारदुःखावन्तापतापितचेतसाम् ।

विमुक्तिपादपच्छायाभृते पुत्र सुख नृणाम् ॥५७॥

तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य वै मम ।

गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविव्यत ॥५८॥

निरस्तातिशयाह्लादमुखभावंकलक्षणा ।

भेषज भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ॥५९॥

तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नं कर्तव्यं पण्डितैर्नरे ।

तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्ते महामुने ॥६०॥

आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तदुच्यते ।

शब्दब्रह्मणागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ॥६१॥

अन्धं तमं इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम् ।

यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्विप्रर्षे विवेकजम् ॥६२॥

हे मैत्रेयजी ! मनुष्यों की प्रिय वस्तुएँ उनके लिये दुःख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती हैं ॥५५॥ स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, घर, खेत तथा धान्यादि से जितने दुःख की प्राप्ति होती है, उतना सुख नहीं मिलता ॥५६॥ इस प्रकार ससार के दुःख रूपी सूर्य के ताप से सतसत हुए पुरुषों को मोक्षरूपी वृक्ष की छाया के अतिरिक्त अन्य किस स्थान पर सुख की प्राप्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिये गर्भ, जन्म और बुढ़ापा आदि रोग-समूहों की एकमात्र औषधि भगवान् की प्राप्ति ही है, जिसका लक्षण आनन्द रूप सुख का प्राप्त होना ही है ॥५८-५९॥ इसलिये भगवत्प्राप्ति का प्रयत्न ही ज्ञानियों का कर्तव्य है, और उसके ज्ञान और कर्म ये दो ही मार्ग हैं ॥६०॥ ज्ञान भी दो प्रकार का है—शास्त्र जन्य और विवेकजन्य ।

शब्द ब्रह्म विषयक ज्ञान शास्त्र से उत्पन्न होना है और परब्रह्म विषयक ज्ञान की उत्पत्ति विवेक से होती है ॥६१॥ हे ब्रह्मर्षे ! घञान और घञ्पञ्चान जैसा है, उसे दूर करने के लिये इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान दीपक के समान और विवेक से उत्पन्न ज्ञान सूर्य के समान है ॥६२॥

मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तम ।  
तदेतच्छ्रयतामत्र सम्प्रत्ये गदतो मम ॥६३॥  
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत् ।  
शब्दब्रह्मणि निष्पन्नातः पर ब्रह्माधिगच्छति ॥६४॥  
द्वे वै विद्ये वेदितव्ये इति चायवंगी श्रुतिः ।  
परया त्वक्षरप्राप्तिच्छ्रुत्वेदादिमयापरा ॥६५॥  
यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।  
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम् ॥६६॥  
विभुं सर्वगत नित्यं भूतयोनिरकारणम् ।  
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥६७॥  
तद्ब्रह्म तत्पर धाम तद्वर्धेयं मोक्षवाङ्क्षिभिः ।  
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्म तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६८॥  
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।  
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥६९॥

हे मुनिवर ! वेदार्थ के स्मरण पूर्वक मनुजी ने जो कुछ कहा है, मर्षा में कहता हूँ, मुनी ॥६३॥ ब्रह्म के दो भेद हैं—और परब्रह्म जो शब्द ब्रह्म में निष्पन्न होता है उसे परब्रह्म की प्राप्ति होजाती है ॥६४॥ अयनं श्रुति है कि परा और अपरा भेद से विद्या दो प्रकार की है । परा से अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है तथा अपरा ऋगादि वेदात्मिका है ॥६५॥ अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अक्षय, अनिर्देश्य, अरूप, हाय—पाँव ने शून्य, विभु, सर्वगत, नित्य, भूतयोनि, अकारण-रहित, जिससे व्याप्य, व्यापक प्रकट हुआ और जिसे ज्ञानीजन ही देख पाते हैं, वही परमप्राप्त ब्रह्म है । वही मुमुक्षुओं द्वारा चिन्तनीय भगवान् विष्णु का अत्यन्त सूक्ष्म परम-

पद है । परमात्मा का वही रूप 'भगवत्' कहा जाता है तथा 'भगवत्' शब्द उसी आदि एव अक्षय रूप के लिये प्रयुक्त होता है ॥६६॥

एव निगदितार्थस्य तत्त्व तस्य तत्त्वतः ।

शायते येन तज्ज्ञानं परमन्यत्रयोमयम् ॥७०

अशब्दगोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज ।

पूजाया भगच्छब्दः क्रियते ह्य पचारतः ॥७१

शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते ।

मंत्रेय भगवच्छब्दस्सर्वकारणकारणे ॥७२

सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽथंद्वयान्वित ।

नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥७३

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्चिश्चयः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा ॥७४

वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।

स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥७५

एवमेव महाच्छब्दो मंत्रेय भगवानिति ।

परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः ॥७६

जिसका ऐसा रूप कहा है उस ब्रह्म शब्द का जिससे यथार्थ ज्ञान होता है, वही परमज्ञान है और त्रयोमय ज्ञान इससे भिन्न है ॥७०॥ हे द्विज ! ब्रह्म के शब्द का विषय न होने पर भी 'भगवत्' शब्द उपासना के लिये उपचार से ही कहा जाता है ॥७१॥ हे मैत्रेयजी ! सब कारणों के कारण, महाविभूति रूप परब्रह्म को ही 'भगवत्' कहा है ॥७२॥ इस शब्द में भकार के दो अर्थ लिये गये हैं—भरण करने वाला तथा सबका आधार और गकार के अर्थ कर्म-फल की प्राप्ति कराने वाला, सय करने और रचने वाला है ॥७३॥ ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छ को भग कहते हैं ॥७४॥ उस सर्व-भूतात्मा में सब भूतों का निवास है तथा वह स्वयं भी सब भूतों में स्थित है, इसलिये वह अव्यय ही वकार है ॥७५॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार यह भगवान् शब्द परब्रह्म रूप वासुदेव का ही वाचक है ॥७६

तत्र पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वित ।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥७८

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजास्यशेषतः ।

भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥७९

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।

भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥८०

खाण्डिक्यजनकायाह पृष्ट केशिध्वज पुरा ।

नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः ॥८१

भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसत्यत्र च तानि यत् ।

धाता विधाता जगता वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥८२

स सर्वंभूतप्रकृतिं विकारान् गुणादिदोषाश्च मुने व्यतीतः ।

अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले ॥८३

समस्तकल्याणगुणात्मकोऽमो स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्गः ।

इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः ससाधिताशेषजगद्धितो यः ॥८४

तेजोबलैश्वर्यमहाबोध सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।

परः पराङ्गा सकला न यत्र बलेशादयस्सन्ति परावरेशे ॥८५

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः ।

सर्वेश्वरस्सर्वदृक् सर्वविच्च समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥८६

स ज्ञायते येन तदस्तदोष शुद्धः परः निर्मलमेकरूपम् ।

सदृश्यते वाप्यवगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥८७

पूजनीय सूचक इस भगवान् शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से परमात्मा के लिये ही है, अन्यो के प्रति गौण रूप से होता है ॥७७॥ क्योंकि भगवान् वही कहा जा सकता है जो सब जीवों के उत्पत्ति, विनाश, आवागमन और विद्या-अविद्या का शाता हो ॥७८॥ त्यागने योग्य गुणादि को छोड़कर ज्ञान, शक्ति बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज आदि गुण ही 'भगवत्' कहे जा सकते हैं ॥७९॥ उन्ही परमात्मा में सब भूतों का निवास है तथा वे भी आत्मा रूप से सब में रहते हैं

इसलिये उन्हें 'वासुदेव' कहा जाता है ॥८०॥ प्राचीनकाल में स्तारिडव्य जनक के प्रश्न पर केशिध्वज ने 'वासुदेव' नाम की इस प्रकार व्याख्या की थी ॥८१॥ सब भूतो में व्याप्त और सब भूतो के निवास म्यान तथा ससार के रचयिता और रक्षक होने से वे 'वासुदेव' कहे जाते हैं ॥८२॥ वे सर्वभूतो की प्रकृति-प्रकृति के विकार, गुण और उनके दोषों से विलक्षण तथा सब आवरणों से अतीत सर्वात्मा हैं। पृथिवी-आकाश के मध्य में जो कुछ स्थित है, वह सब उन्हीं के द्वारा व्याप्त है ॥८३॥ वे सभी कल्याण-गुणात्मक हैं, उन्होंने अपनी माया से ही सबको व्याप्त किया हुआ है और वे अपने इच्छित स्वरूपों के धारण पूर्वक विश्व का कल्याण करते हैं ॥८४॥ तेज, बल, ऐश्वर्य, बोध, दीर्घ और शक्ति आदि गुणों के समूह तथा प्रकृति आदि से भिन्न और सम्पूर्ण केशो से नितान्त परे हैं ॥८५॥ वे ही समष्टि और व्यष्टि रूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्त हैं, वे ही सर्वसाक्षी, सर्वज्ञाता और सबके स्वामी हैं तथा वे ही सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर सज्जक हैं ॥८६॥ वे दोष-रहित, मल-रहित, विशुद्ध और एक रूप परमात्मा जिसके द्वारा देखे या जाने जाते हैं, वही ज्ञान है और इसके विपरीत को अज्ञान ममको ॥८७॥

### छठवां अध्याय

स्वाध्यायसयमाभ्या स दृश्यते पुरुषोत्तम ।  
 तत्प्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतदिति पठ्यते ॥१॥  
 स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायभावसेत् ।  
 स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥२॥  
 तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षुर्योगस्तथा परम् ।  
 न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतस्स शक्यते ॥३॥  
 भगवस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद ।  
 ज्ञाते यत्राखिलाधारं पश्येय परमेश्वरम् ॥४॥

यथा केशिध्वजः प्राह स्वाण्डिक्याय महात्मने ।  
जनकाय पुरा योग तमहं कथयामि ते ॥१॥  
स्वाण्डिक्य कोऽभवद् ब्रह्मन्को वा केशिध्वज कृती ।  
कथं तयोश्च सवादो योगसम्बन्धवानभूत् ॥६॥

श्री पराशरजी ने कहा—स्वाध्याय और सयम के द्वारा ही उन पुरुषो-  
त्तम के दर्शन होते हैं तथा ब्रह्म की प्राप्ति के कारण होने से इन्हें भी ब्रह्म ही  
कहा है ॥१॥ स्वाध्याय से योग का आश्रय प्राप्त करे और योग से स्वाध्याय का  
आश्रय ले । इस प्रकार स्वाध्याय और योग रूप सम्पत्ति ही परमात्मा को  
प्रकाशित करने वाली है ॥२॥ उस ब्रह्मरूप ब्रह्म को चर्म-नेत्रों से नहीं, स्वा-  
ध्याय और योग रूपी नेत्रों से ही देखा जा सकता है ॥३॥ श्री भीमैयजी ने  
कहा—हे भगवन् ! जिसे जानने पर परमेश्वर को देखा जा सकता है, उस योग  
को जानने का मैं इच्छुक हूँ, उसे आप मेरे प्रति कहिये ॥४॥ श्री पराशरजी ने  
कहा—पूर्वकाल में स्वाण्डिक्य जनक से केशिध्वज न इम योग का जो वर्णन  
किया था, वह तुम से कहता हूँ ॥५॥ श्री भीमैयजी ने कहा—यह स्वाण्डिक्य  
और केशिध्वज कौन थे और उनका योग विषयक मन्वाद किसलिये हुआ  
था ? ॥६॥

धर्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रोऽमितध्वज ।  
कुलध्वजश्च नाम्नासीत्सदाध्यात्मरतिनृपः ॥७॥  
कृतध्वजस्य पुत्रोऽभूत् रयात केशिध्वजो नृप ।  
पुत्रोऽमितध्वजस्यापि स्वाण्डिक्यजनकोऽभूत् ॥८॥  
वर्ममार्गेण स्वाण्डिक्य पृथिव्यामभवत्कृती ।  
केशिध्वजोऽप्यतीवामीदात्मविद्याविशारदः ॥९॥  
तावुभावपि चैवाम्ता विजिगीषू परम्परम् ।  
केशिध्वजेन स्वाण्डिक्यस्वराज्यादवरोपितः ॥१०॥  
पुरोपसा मन्त्रिभिश्च नमवेतोऽप्युपसाधनः ।  
राज्याद्विराट् तस्मिंश्च दुर्गारण्यचरोऽभवत् ॥११॥



इयाज सोऽपि सुबहून्यज्ञाञ्ज्ञानव्यपाश्रय ।

ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तत्तुं मृत्यमविद्यया ॥१२

श्री पराशरजी ने कहा—पूर्वकाल में धर्मध्वज जनक नामक एक राजा होगये हैं । उनके दो पुत्र अमितध्वज और वृत्तध्वज नाम से हुए । इनमें से कृतध्वज अध्यात्म में ही लगा रहता था ॥७॥ कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज और अमितध्वज का पुत्र खारिडक्य जनक हुआ ॥८॥ खारिडक्य कर्म-मार्ग में और केशिध्वज अध्यात्म शास्त्र में निपुण था । ६॥ वे दोनों परस्पर में एक दूसरे को हराने का यत्न करते रहते थे और अन्त में केशिध्वज ने खारिडक्य को राज्य से हटा दिया ॥१०॥ राज्य से भ्रष्ट हुआ खारिडक्य पुरोहित और मन्त्रियो तथा अल्प सामान सहित वन में चला गया ॥११॥ ज्ञानी होते हुए भी केशिध्वज ने कर्म द्वारा मृत्यु को जीतने के लिये अनेकों यज्ञ किये ॥१२॥

एकदा वर्तमानस्य यागे योगविदा वर ।

धर्मधेनु जघानोग्रशादूलो विजने वने ॥१३

ततो राजा हता श्रुत्वा धेनु व्याघ्रेण चर्त्विज ।

प्रायश्चित्तं स पप्रच्छ किमत्रेति विधीयताम् ॥१४

तेऽप्युचुर्न वयं विद्य कशेरु पृच्छयतामिति ।

कशेरुरपि तेनोक्तस्तथैव प्राह भार्गवम् ॥१५

शुनक पृच्छ राजेन्द्र नाह वेत्ति स वेत्स्यति ।

स गत्वा तमपृच्छन्न सोऽप्याह शृणु यन्मुने ॥१६

न कशेरुर्न चैवाह न चान्य साम्प्रत भुवि ।

वेत्स्येक एव त्वच्छत्रु खारिडक्यो यो जितस्त्वया ॥१७

स चाह तं व्रजाम्येष प्रष्टुमात्मरिपु मुने ।

प्राप्त एव महायज्ञो यदि मां स हनिष्यति ॥१८

प्रायश्चित्तमशेण चेत्पृष्टो वदिष्यति ।

ततश्चाविकलो यागो मुनिश्रेष्ठ भविष्यति ॥१९

एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठान में लगे थे तब ऊँची धर्म-  
गो को जनहीन वन में एक भयानक व्याघ्र ने मार डाला ॥१३॥ जब राजा न

गो का इस प्रकार मारे जाना गुना तो उमने ऋत्विजो से उसका प्रायश्चित्त पूछा ॥१४॥ ऋत्विजो ने कहा—जि इस विषय में मैं नहीं जानता, वशेर मे पूछिये । वशेर मे पूछने पर उन्होंने भी यही कहा कि मैं तो नहीं जानता, परंतु धुनक अवश्य जानते होंगे । तब राजा ने धुनक से पूछा और उन्होंने उमका उत्तर इस प्रकार दिया—इस बात का वशेर, मैं अथवा अथ कोई भी नहीं जानता, केवल आपके द्वारा परास्त त्राण्डिक्य ही जानता है ॥१५-१६-१७॥ यह सुनकर राजा ने कहा—हे मुने ! तो मैं करने शत्रु त्राण्डिक्य के पान जाकर ही पूछता हूँ । यदि उसने मरा वध कर दिया तो भी महायज्ञ का फल तो प्राप्त हो ही जायगा और वही प्रायश्चित्त वत्ता दिया, तो यज्ञ की निविद्या समाप्ति निश्चित है ॥१८-१९॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरा नृप ।  
 धन जगाम यन्मान्ते स त्राण्डिक्यो महामतिः ॥२०॥  
 तमापतन्तमालोक्य त्राण्डिक्यो रिपुमात्मन ।  
 प्रोवाच क्रोधताम्रक्षस्ममारोपितकामुं क ॥२१॥  
 कृष्णाजिन त्व वञ्चमावध्यास्मान्हनिष्यसि ।  
 कृष्णाजिनधरे वत्ति न मयि प्रहरिष्यति ॥२२॥  
 मृगाणां वद पृष्ठेषु मूढ कृष्णाजिन न किम् ।  
 येषां मया त्वया चोग्रा प्रहृितादिशतसायरा ॥२३॥  
 स त्वामहं हनिष्यामि न मे जीवन्विमोक्षये ।  
 श्रातताम्यमि दुर्वृद्धे मम राज्यहरो रिपु ॥२४॥  
 त्राण्डिक्य सशय प्रष्टुं भवन्नमहमागत ।  
 न त्वा हन्तुं विचार्येतत्त्वान् वारणं विमुञ्च या ॥२५॥

तूने उन कृष्ण भृगो पर कभी बाण नहीं बरसाये हैं ? ॥२३॥ इसलिये, मैं अवश्य ही तेरा वध कर दूँगा, तू मेरे राज्य का अपहरण करने वाला शत्रु है ॥२४॥ केशिध्वज ने कहा—हे खाण्डिक्य ! मैं आपका वध करने के लिये नहीं, केवल एक सन्देह का समाधान करने के लिये आया हूँ । यह जानकर आप क्रोध का त्याग करें यद्यपि मुझ पर बाण छोड़ दे ॥२५॥

ततस्त मन्त्रिभिस्साद्धं मेकान्ते सपुरोहितः ।

मन्त्रयामास खाण्डिक्यस्सर्वैरेव महामतिः ॥२६॥

तमूचुर्मन्त्रिणो वध्यो रिपूरेप वशं गतः ।

हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा तव वश्या भविष्यति ॥२७॥

खाण्डिक्यश्चाह तान्सर्वानेवमेतन्न सशयः ।

हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा मम वश्या भविष्यति ॥२८॥

परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम ।

न हन्मि चेल्लोकजयो मम तस्य वसुन्धरा ॥२९॥

नाह्म मन्ये लोकजयादधिका स्याद्वसुन्धरा ।

परलोकजयोऽनन्तस्त्वल्पकालो महीजयः ॥३०॥

तस्मान्नून हनिष्यामि यत्पृच्छति वदामि तत् ॥३१॥

ततस्तमभ्युपेत्याह खाण्डिक्यजनको रिपुम् ।

प्रष्टव्य यत्त्वया सर्वं तत्पृच्छस्व वदाम्यहम् ॥३२॥

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा सुन कर खाण्डिक्य ने अपने पुरोहिता और मन्त्रियों से परामर्श किया ॥२६॥ तब मन्त्रियों ने कहा—इस समय शत्रु आपकी पकड़ में है, इसे मार डालना ही उचित है । ऐसा करने से इस सम्पूर्ण पृथिवी पर आपका अधिकार हो जायगा ॥२७॥ खाण्डिक्य बोले—आप सब का वचन यथायं है, परन्तु इसे मार देने पर यह पार्श्वलौकिक विजय प्राप्त कर लेगा और मुझे पृथिवी ही मिलेगी । यदि इसका वध नहीं करेगा तो इसे पृथिवी और मुझे पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होगी ॥२८-२९॥ परलोक से बढ़ कर पृथिवी नहीं है, क्योंकि पार्श्वलौकिक विजय विरकालिक और पृथिवी अल्प कालिक होती है । इसीलिये मैं इसका वध न करके इससे प्रश्न का समाधान करूँगा

वाढमित्येव तेनोक्तः खाण्डिक्यस्तमथान्नवीत् ।

भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षण ॥४९

यदि चेद्दीयते मह्य भवता गुरुनिष्क्य ।

तत्कलेशप्रशमायल यत्कम तदुदोरय ॥५०

तब खाण्डिक्य ने हँसते हुए कहा—राज्य तो कुछ दिन टिकने वाला है, मेरे जैसे व्यक्ति को क्या माँगना चाहिये ? ॥४९॥ यह सत्य है कि स्वार्थ सिद्धि के लिये आपका परामश उचित हो सकता है परन्तु परमार्थ का आपको ज्ञान नहीं ॥४७॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर खाण्डिक्य ने केशिध्वज के पास आ कर कहा—क्या तुम मुझे अवश्य गुरु दक्षिणा देना चाहत हो ? केशिध्वज बोले—अवश्य । तब खाण्डिक्य ने कहा—आप आध्यात्मरूपिणी परमार्थ विद्या में पारङ्गत है, इसलिये गुरुदक्षिणा स्वरूप मुझे यह बताइये, जिससे सभी ऋतसो का क्षमन हो सके ॥५०॥

### मातृवो अध्याय

न प्राथित त्वया कस्मादस्मद्वाज्यमकष्टकम् ।

राज्यलाभाद्विना नान्यत्क्षत्रियाणामतिप्रियम् ॥१

केशिध्वज निबोध त्व मया न प्राथित यत् ।

राज्यमेतदशेष ते तत्र गृह्णन्त्यपण्डिता ॥२

क्षत्रियाणामय धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।

वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्विनाम् ॥३

तत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपहृते त्वया ।

वन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमोज्झिता ॥४

जन्मोपभोगलिप्सायमिय राज्यस्पृहा मम ।

अन्येषा दोषजा सैव धर्मं वै नानुरुध्यते ॥५

न याश्चा क्षत्रवन्धूना धर्मयितस्तता मतम् ।

अतो न याचित राज्यमविद्यान्तर्गतं तव ॥६

राज्ये गृध्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः ।

अहंमानमहापानमदमत्ता न मादृशाः ॥७॥

केशिध्वज ने कहा—क्षत्रिय तो राज्य से अधिक प्रिय और किसी भी वस्तु को नहीं मानते, फिर आपके निष्कटक राज्य न मागने का क्या कारण है ? ॥१॥ खाण्डिक्य ने कहा—हे केशिध्वज ! राज्यादि की कामना तो मूल्य किया करते हैं, इसी लिये मैंने राज्य नहीं मागा है ॥२॥ क्षत्रियों का धर्म प्रजापालन तथा अपने विरोधियों का धर्म पूर्वक दमन करना है ॥३॥ अशक्त होने के कारण तुमने मेरे राज्य का अपहरण कर लिया तो वैसा न करने में मुझे कोई दोष नहीं है । यद्यपि यह अविद्या ही है, फिर भी इसका अनियमित रूप से त्याग करना भी बन्धन का कारण हो जाता है ॥४॥ राज्य की आकांक्षा तो जन्मान्तर का सुख भोगने को निमित्त है और मन्त्री आदि में भी उसकी उत्पत्ति रागादि के कारण होती है ॥५॥ सज्जनों का मत है कि याचना करना श्रेष्ठ मनियों का धर्म नहीं है, इसीलिये मैंने अविद्या वाले राज्य की याचना नहीं की है ॥६॥ अहंकार रूपी मद से उन्मत्त और ममतामय चित्त वाले मूल्य पुरुष ही राज्य की इच्छा करते हैं, मेरे जैसे को उसकी कोई कामना नहीं ॥७॥

प्रहृष्टसाध्विति प्राह तत केशिध्वजो नृप. ।

खाण्डिक्यजनक प्रीत्या श्रूयता वचनं मम ॥८॥

अहं मविद्या मृत्युं च तर्तुं कामं करोमि वै ।

राज्यं यागांश्च विविधान्भोगैः पुण्यक्षयं यथा ॥९॥

तदिदं ते मनो दिष्ट्या विवेकैश्चर्यता गतम् ।

तच्छ्रूयतामविद्यायास्स्वरूप कुलनन्दन ॥१०॥

अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः ।

संसारतरुसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम् ॥११॥

पञ्चभूतात्मके देहे देहो मोहतमोवृतः ।

अहं ममेतदित्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥१२॥

आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीमयः पृथक् स्थिते ।

आत्मन्यात्ममय भाव कः करोति कलेवरे ॥१३॥

कलेवरोपभोग्य हि गृहक्षेत्रादिक च कः ।

अदेहे ह्यात्मनि प्राज्ञो ममेदमिति मन्यते ॥१४

श्री पराशरजी ने कहा—इस पर राजा वेशिष्ठजी ने उन्हें साधुवाद देकर प्रेम सहित यह कहा ॥८॥ मैं अविद्या के द्वारा मृत्यु की जीतना चाह कर राज्य और यज्ञों के अनुष्ठान में लगा हूँ, जिससे विविध प्रकार के भोगों से मेरे पुण्य क्षीण हो सकें ॥९॥ यह प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारी बुद्धि विवेक से सम्पन्न हुई है, इसलिये अब तुम अविद्या के रूप का श्रवण करो ॥१०॥ अनात्मा को आत्मा और अपना नहीं है, उसे अपना मानना—इस प्रकार अविद्या के दो भेद हैं ॥११॥ यह बुद्धिहीन प्राणी मोहान्धकार में पड़ कर पञ्चभूतात्मक इस शरीर 'मैं' या 'मेरा' का भाव रखता है ॥१२॥ परन्तु आकाश, वायु, घनि, जल और पृथिवी आदि से आत्मा के नितान्त पृथक् होने के कारण कौन विवेकी पुरुष शरीर को आत्मा मानेगा ? ॥१३॥ और जब शरीर से आत्मा भिन्न है तो शरीर के उपभोग की धर आदि वस्तुओं को कौन जानी पुरुष अपना कह सकता है ॥१४॥

इत्थ च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पादितेषु क ।

करोति पण्डितस्स्वाम्यमनात्मनि कलेवरे ॥१५

सर्वं देहोपभोगाय कुरुते कर्म मानव ।

देहश्चान्यो यदा नु सस्तदा यन्धाय तत्परम् ॥१६

मृन्मय हि यथा गेह लिप्यते वै मृदम्भमा ।

पायिवोऽथ तथा देहो मृदम्बालेपनस्थित ॥१७

पञ्चभूतात्मकं भगिं पञ्चभूतात्मक वपु ।

आप्यायते यदि तत पु सो भोगोऽथ किं कृतः ॥१८

अने राजन्मगाह्यो मसारपद्मी व्रजन् ।

मोहन्म प्रायतोऽग्री वागनारेणुमुच्छ्रितः ॥१९

प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्गोनाधुनारिणा ।

तदा ससारपान्यस्य नाति मोहश्चमदगमम् ॥२०

मोहधमे शम याते स्वस्थान्त करणः पुमान् ।

अनन्यातिशयाबाध पर निर्वाणमृच्छति ॥२१॥

इस प्रकार देह के आत्मा न होने में उत्पन्न हुए पुत्र पौत्र आदि को भी कोन अपना मानेगा ? ॥१५॥ इस देह के उपभोगार्थ सब कर्म किये जाते हैं, परन्तु देह के अपने से अलग होन के कारण वे सभी कर्म बन्धनकारी ही होजाते हैं ॥१६॥ जैसे घर को मिट्टी और जल से लीपा जाता है, वैसे ही यह धारीर मिट्टी और जल के द्वारा ही स्थिर रहता है ॥१७॥ यदि पञ्चभूतात्मक इस देह का पोषण पाश्चभीतिक पदार्थों से ही होता है तो पुरुष इससे क्या भोग कर सका ? ॥१८॥ यह प्राणी हजारों जन्म तक सांसारिक भोगों में रहने के कारण उन्ही भोगों की वासना रूपी धूलि से पट कर मोह रूपी धम को पाता है ॥१९॥ जब वह धूलि ज्ञान रूपी उष्ण जल से धुल जाती है तभी इस विश्वपथ के पथिक का मोह-ध्रम मिट पाता है ॥२०॥ तब वह स्वस्थ-चित्त हुआ पुरुष निरतिशय और अबाध परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है ॥२१॥

निर्वाणमथ एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ।

दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः ॥२२॥

जलस्य नाग्निससर्गः स्थालीसगात्तथापि हि ।

शब्दोद्रेकादिकान्धर्मास्तत्करोति यथा नृप ॥२३॥

तथात्मा प्रकृतेस्सङ्गादहम्मानादिवृत्तः ।

भजते प्राकृतान्धर्मानिप्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः ॥२४॥

तदेतत्कथितं बीजमविद्याया मया तव ।

क्लेशानां च क्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते ॥२५॥

तु ब्रूहि महाभाग योग योगविदुत्तम ।

विज्ञातयोगशास्त्रार्थस्त्वमम्या निमिसन्तती ॥२६॥

योगस्वरूपं खाण्डिक्य श्रूयतां गदतो मम ।

यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्म लयं मुनि ॥२७॥

यह मल-रहित और ज्ञानमय आत्मा निर्वाण रूप है और दुःखादि अज्ञानमय धर्म आत्मा के नहीं, प्रकृति के हैं ॥२२॥ जैसे स्थाली में भरे हुए जल

का संयोग अग्नि से न होने पर भी स्थायी के संसर्ग से ही वह जल खोलने लगता है, वैसे ही प्रकृति के संसर्ग से अहंकार आदि से दूषित हुआ आत्मा प्रकृति के धर्मों को अपना लेता है । नहीं तो अव्यय स्वरूप आत्मा उन धर्मों से नितान्त पृथक् है ॥२३-२४॥ इस प्रकार यह अविद्या का बीज मने कहा है । इस अविद्या-जन्य क्लेशों का दूर करने का उपाय योग ही है ॥२५॥ लाण्डिक्य ने कहा—हं केशिध्वज । तुम योग के जानन वालों में श्रेष्ठ तथा योगशास्त्र के मर्मज्ञ हो, इसलिये उस योग का स्वरूप भी कहा ॥२६॥ केशिध्वज ने कहा—अब तुम मुझमें उस योग को सुनो जिसमें अवस्थित मुनिजन ब्रह्म स्वरूप होकर फिर उससे पतित नहीं होते ॥२७॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो ।

बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषय मन ॥२८॥

विषयेभ्यस्समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनि ।

चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूत परेश्वरम् ॥२९॥

आत्मभाव नयत्येन तद्ब्रह्म ध्यायिन मुनिम् ।

विकार्यमात्मनश्शक्त्या लोहमाकपको यथा ॥३०॥

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगति ।

तस्या ब्रह्मणि संयोगो याग इत्यभिधीयते ॥३१॥

एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तधर्मोपलक्षण ।

यस्य योगः स वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते ॥३२॥

योगयुक् प्रथम योगी युञ्जाना ह्यभिधीयते ।

विनिष्पन्नसमाधिस्तु परं ब्रह्मोपलब्धिमात्रम् ॥३३॥

मनुष्या का बन्ध-मोक्ष का कारण मन ही है । विषयों में आसक्त होकर वह बन्धन करने वाला तथा विषयों का त्यागन से मोक्ष प्राप्त कराने वाला होता है ॥२८॥ इसलिये विज्ञान-सम्पन्न मुनिजनों का ध्यान मन का विषयों से निवृत्त कर, मोक्ष की प्राप्ति के लिये परमात्मा का ही चिन्तन करना चाहिये ॥२९॥ जैन पुण्डरीक प्राप्ति के लिये सत्ताह की ध्यानी धार रखी जाती है, वैसे ही इस-चिन्तन वाला मुनि की परमात्मा स्वभाव से ही ध्यान में मिला जाता है ॥३०॥



आत्मज्ञान के यत्न रूप यम, नियमादि की अपेक्षा वाली विशिष्ट मनोगति का ब्रह्म से संयोग होना ही 'योग' कहा गया है ॥३१॥ जो इस प्रकार के विशिष्ट धर्म वाले योग में रत रहता है, वह मुमुक्षु योगी कहलाता है ॥३२॥ प्रथम योगाभ्यास करने वाला 'योग युक्त योगी' कहा जाता है और जब वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, तब उसे 'विनिष्पन्न समाधि' कहते हैं ॥३३॥

यद्यन्तरायदोषेण दूष्यते चास्य मानसम् ।

जन्मान्तरैरम्यसतो मुक्तिः पूर्वस्य जायते ॥३४॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्ति तत्रैव जन्मनि ।

प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मचयोऽचिरात् ॥३५॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।

सेवेत योगी निष्कामो योग्यता स्वमनो नयन् ॥३६॥

स्वाध्यायशौचसन्तोषतपासि नियतात्मवान् ।

कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन्प्रवण मनः ॥३७॥

एते यमास्सनियमाः पञ्च पञ्च च कीर्तिताः ।

विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः ॥३८॥

एकं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणयुतः ।

यमाख्यनियमाख्यश्च युञ्जीत नियतो यतिः ॥३९॥

प्राणायाममनल वक्ष्यमभ्यासात्कुस्ते तु यत् ।

प्राणायामस्स विज्ञेयस्सवीजोऽवीज एव च ॥४०॥

यदि उस योगी का चित्त किसी विघ्न के कारण दूषित हो जाता है तो

दूसरे जन्म में अभ्यास करने पर उसकी मुक्ति हो जाती है ॥३४॥ विनिष्पन्न

समाधि योगी के कर्म योगाग्नि से भस्म हो जाते हैं और इसीलिये उस स्वल्प

काल में ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ॥३५॥ योगी को ब्रह्म-चिन्तन के योग्य

होने के लिये ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह आदि का पालन

करना उचित है ॥३६॥ स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तप के आचरण पूर्वक

अपने मन को परब्रह्म में लगावे ॥३७॥ यम और नियम दोनों पाँच-पाँच हैं,

किसी कामनावश इतना पालन करने से शृङ्खल-शृङ्खल फल की प्राप्ति होती है,

परन्तु निष्काम पालन से मोक्ष मिल जाता है ॥३८॥ इसलिये यति को भद्रासन आदि में से किसी एक आसन के अवलम्बन में यम, नियम आदि के सेवन पूर्वक योगाभ्यास करना चाहिये ॥३९॥ अभ्यास द्वारा प्राण वायु का वश में किया जाना प्राणायाम है । उसके सबीज और निर्बीज—यह दो प्रकार हैं ॥४०॥

परस्परेणाभिभवं प्राणापानी यथानिलौ ।  
 कुस्तस्सद्विधानेन तृतीयस्सयमात्तयोः ॥४१॥  
 तस्य चालम्बनवतः स्थूलरूप द्विजोत्तम ।  
 आलम्बनमनन्तस्य योगिनोऽभ्यसतः स्मृतम् ॥४२॥  
 शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् ।  
 कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥४३॥  
 वश्यता परमा तेन जायतेऽतिचलात्मनाम् ।  
 इन्द्रियाणामवश्यंस्तेन योगी योगसाधकः ॥४४॥  
 प्राणायामेन पवने प्रत्याहारेण चेन्द्रिये ।  
 वशीकृते ततः कुर्यात्स्थित चेतश्शुभाश्रये ॥४५॥

प्राण और अपान के द्वारा विरोध करने से दो प्राणायाम होते हैं तथा इन दोनों को एक ही समय रोकने से तीसरा कुम्भक प्राणायाम होता है ॥४१॥ सबीज प्राणायाम के अभ्यासी का आलम्बन अनन्त भगवान् का स्थूल रूप होता है ॥४२॥ फिर वह प्रत्याहार के अभ्यास पूर्वक अपनी विषयासक्त इन्द्रियो को संयमित करके अपने चित्त के अनुसार चलने वाली बना लेता है ॥४३॥ इससे चंचल इन्द्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं, जिनको वशीभूत किये बिना योग-साधन सम्भव नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार प्राणायाम से वायु को और प्रत्याहार से इन्द्रियो को वश में करके चित्त को शुभाश्रय में स्थित करना चाहिये ॥४५॥

कथ्यता मे महाभाग चेतसो यश्शुभाश्रयः ।  
 यदाधारमशेष तद्वन्ति दोषमलोद्भवम् ॥४६॥  
 आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः ।  
 भूप मूर्तममूर्तं च पर चापरमेव च ॥४७॥

त्रिविधा भावना भूप विश्वमेतन्निबोधताम् ।  
 ब्रह्माख्या कर्मसज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका ॥४८॥  
 कर्मभावात्मिका ह्येका ब्रह्मभावात्मिका परा ।  
 उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना ॥४९॥  
 सनन्दनादयो ये तु ब्रह्मभावनया युताः ।  
 कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्यावराश्वराः ॥५०॥  
 हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्मात्मिका द्विधा ।  
 बोधाधिकारयुक्तेषु विद्यते भावभावना ॥५१॥  
 अक्षीणेषु ममस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु ।  
 विश्वमेतत्पर चान्यद्भेदभिन्नदृशा नृणाम् ॥५२॥  
 प्रत्यस्तमितभेद यत्सत्तामात्रमगोचरम् ।  
 वचसामात्मसवेद्य तज्ज्ञान ब्रह्मसंज्ञितम् ॥५३॥  
 तच्च विष्णोः पर रूपमरूपाख्यमनुत्तमम् ।  
 विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षण परमात्मनः ॥५४॥

खण्डिबय ने कहा—हे महाभागो ! जिसके आश्रय में चित्त के सब दोष नाश को प्राप्त होते हैं, वह चित्त का शुभाश्रय कौन-सा है ? ॥४६॥ केशि-  
 च्वज ने कहा—चित्त का आश्रय ब्रह्म है, जो मूर्त-अमूर्त अथवा पर-अपर रूप  
 से दो प्रकार का है ॥४७॥ हे राजन् ! इस विश्व में कर्म, ब्रह्म और उभया-  
 त्मिका नाम की तीन प्रकार की भावनाएँ कही हैं ॥४८॥ इनमें कर्मभावना  
 पहिली, ब्रह्मभावना दूसरी और उभयात्मिका तीसरी है ॥४९॥ सनन्दन आदि  
 मुनिगण ब्रह्म भावना वाले तथा देवताओं से स्थावर जगम तक जितने भी जीव  
 हैं, वे सब कर्म भावना वाले हैं ॥५०॥ तथा बोध और अधिकार वाली ब्रह्म  
 और कर्म दोनों से युक्त उभयात्मिका भावना समझो ॥५१॥ जब तक विशेष  
 ज्ञान के कारण रूप कर्मों का क्षय नहीं होता, तभी तक अहङ्कारादि के कारण  
 त्रिनकी भेद दृष्टि हो रही है, उन्हें ब्रह्म और जगत् भिन्न प्रतीत होते हैं ॥५२॥  
 जिसमें सब भेद नष्ट होते, जो सत्तामात्र वाणी का विषय नहीं है तथा जो  
 अनुभव से जानने योग्य है, वही ब्रह्मज्ञान है ॥५३॥ वही विष्णु अरूप ब्रह्म जाने

याना परम स्वरूप है, जो उनके मित रूप में नितान्त विरक्षण है ॥५४॥

न तद्योगयुजा यत्नं नृप चिन्तयितुं यतः ।

ततः स्थूल हरे रूपं चिन्तयेद्विश्वगोचरम् ॥५५॥

हिरण्यगर्भो भगवान्वासुदेवः प्रजापतिः ।

मरुतो यमवो रुद्रा भास्करास्तारका ग्रहाः ॥५६॥

गन्धर्वयक्षदेवताद्यास्तकला देवयोनय ।

मनुष्याः पद्मवद्गतास्ममुद्रास्मरितो द्रुमाः ॥५७॥

भूय भूतान्यशेषाणि भूतानां ये च हेतवः ।

प्रधानादिविशेषान्तं चेतनाचेतनात्मकम् ॥५८॥

एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम् ।

मूर्तमेतद्वरे रूपं भावनात्रितयात्मकम् ॥५९॥

एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतत्तराचरम् ।

परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोश्चक्षुःशक्तिसमन्वितम् ॥६०॥

हे नृप ! योगाम्बागो प्रारम्भ में उनके उन परम रूप का चिन्तन करने में असमर्थ होते हैं, इसलिये उन्हें उनके विद्यमय स्थूल रूप का ही ध्यान करना चाहिये ॥५५॥ हिरण्यगर्भ, वामुदेव, प्रजापति, मरुद्गण, यमुगण, रुद्र, आदित्य, तारागण, ग्रहगण, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य देवता, मनुष्य, पद्म पर्वत, ममुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत तथा प्रधान में विशेष पर्यन्त उनके कारण तथा चेतन, अचेतन, एकपाद, दो पाद अथवा अनेक पाद या बिना पाद के प्राणी—यह सभी भगवान् के तीन भावना वाले मूर्त स्वरूप हैं ॥५६-५७-५८-५९॥ यह सम्पूर्ण विश्व ही उन परब्रह्म रूप भगवान् विष्णु की शक्ति से सम्पन्न उन्हीं का 'विश्व' नामक स्वरूप है ॥६०॥

विष्णुशक्ति परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।

अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥६१॥

यया क्षेत्रज्ञशक्तिस्सा वेष्टिता नृप सर्वगा ।

ससारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान् ॥६२॥

तया तिरोहितत्वाच्च शक्ति क्षेत्रज्ञसंज्ञिता ।  
 सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते ॥६३॥  
 अप्राणवत्सु स्वल्पा सा स्थावरेषु ततोऽधिका ।  
 सरीसृपेषु तेभ्योऽपि ह्यतिशक्त्या पतत्रिणु ॥६४॥  
 पतत्रिभ्यो भृगास्तेभ्यस्तच्छक्त्या पशवोऽधिका ।  
 पशुभ्यो मनुजाश्चातिशक्त्या पुंषु प्रभाविता ॥६५॥  
 तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप ॥६६॥  
 शक्रस्ससस्तदेवेभ्यस्ततश्चाति प्रजापति ।  
 हिरण्यगर्भोऽपि तत पुंषु शक्त्युपलक्षित ॥६७॥  
 एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव ।  
 यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा ॥६८॥

विष्णु नामक शक्ति परा और क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति अपरा है तथा कर्म  
 सञ्ज्ञक तृतीय शक्ति अविद्या कही जाती है ॥६१॥ हे नृप ! इसी अविद्या से  
 आवृत्त हुई क्षेत्रज्ञ शक्ति सब प्रकार के सासारिक कष्टों को भोगती है ॥६२॥  
 अविद्या से तिरोहित हुई क्षेत्रज्ञ शक्ति सब जीवों में तारतम्य से दिखाई पड़ती  
 है ॥६३॥ जड़ पदार्थों में यह स्वल्प प्रमाण में, उनसे अधिक स्थावरो में और  
 उनसे अधिक सरीसृपादि में तथा उनसे भी अधिक पक्षियों में है ॥६४॥ पक्षियों  
 से अधिक भृगों में, उनसे अधिक पशुओं में तथा पशुओं से अधिक शक्ति मनुष्यों  
 में है ॥६५॥ मनुष्यों से अधिक नाग, गन्धर्व, यक्षादि सब देवताओं में, उनसे  
 अधिक इन्द्र में, इन्द्र से अधिक प्रजापति में, उनसे अधिक हिरण्यगर्भ में दिखाई  
 देती है ॥६६-६७॥ यह सभी रूप उस परमेश्वर के ही देह हैं, क्योंकि आकाश  
 के समान ही उनकी शक्ति से यह सभी व्याप्त हो रहे हैं ॥६८॥

द्वितीय विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येय महामते ।  
 अमूर्त्तं ब्रह्माणो रूप यत्सदित्युच्यते बुधैः ॥६९॥  
 समस्ता शक्तयश्चेता नृप यत्र प्रतिष्ठिता ।  
 तद्विश्वरूपवैरूप्य रूपमन्यद्वरेर्महत् ॥७०॥

समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर ।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिचेष्टावन्ति स्वतीलया ॥७१॥

जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा ।

चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यव्याहतात्मिका ॥७२॥

तद्रूप विश्वरूपस्य तस्य योगयुजा नृप ।

चिन्त्यमात्मविशुद्धयर्थं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥७३॥

यथाग्निरुद्धतस्त्रिंश कक्ष दहति सानिल ।

तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिना सर्वकिल्बिषम् ॥७४॥

तस्मात्समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतसः ।

कुर्वति सस्थितिं सा तु विज्ञेया शुद्धधारणा ॥७५॥

हे महामते । ब्रह्म का द्वितीय अमूर्त रूप 'विष्णु' सज्ञक है, जिसे ज्ञानीजन 'सत्' कहते और मुनिजन जिसका ध्यान करते हैं ॥६६॥ जिसमें यह सभी शक्तियाँ स्थित हैं वही विश्व रूप से विलक्षण भगवान् का दूसरा रूप है ॥७७॥ अपनी लीला में देव, तिर्यक तथा मनुष्यादि की चेष्टाओं वाला सर्व शक्तिमय स्वरूप भी भगवान् का वही रूप धारण करता है ॥७१॥ इन रूपों में उनकी व्यापक और अव्याहृत चेष्टा जगत् के उपकारार्थ है कम से उत्पन्न नहीं होती ॥७२॥ हे नृप । योगाभ्यास करने वाले को आत्म शुद्धि के लिये उसी सर्व पाप हर स्वरूप का ध्यान करना चाहिये ॥७३॥ जैसे वायु से मिलकर अग्नि अपनी ऊँची ज्वालाओं से तिनकों को भस्म कर देता है, वैसे ही चित्त में स्थित हुए भगवान् विष्णु योगियों के सभी पापों को भस्म कर देते हैं ॥७४॥ इसलिये सर्वशक्तियों के आधार भगवान् विष्णु में चित्त का लगाना ही शुद्ध धारणा है ॥७५॥

शुभाश्रय स चित्तस्य सर्वगस्याचलात्मन ।

निभावभावनातीतो मुक्तये योगिनो नृप ॥७६॥

अन्ये तु पुरुषव्याघ्र चेतसो ये व्यपाश्रया ।

अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनिम् ॥७७॥

मूर्त भगवतो रूप सर्वाश्रयानि स्पृहम् ।

एषा वै धारणा प्रोक्ता यच्चित्तं तत्र धार्यते ॥७८॥

यच्च मूर्त्तं हरे रूपं यादृक्चिन्त्य नराधिप ।  
 तच्छ्रूयतामनाधारा धारणा नोपपद्यते ॥७६॥  
 प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम् ।  
 सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम् ॥७७॥  
 समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम् ।  
 कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥७८॥  
 वलित्रिभङ्गिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च ।  
 प्रलम्बाष्टभुज विष्णुमयवापि चतुर्भुजम् ॥७९॥  
 समस्थितोरुजङ्घं च सुस्थिताङ्घ्रिवराम्बुजम् ।  
 चिन्तयेद् ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम् ॥८०॥

हे राजन् ! तीनों भावनाओं से परे भगवान् विष्णु ही योगियो को मोक्ष प्राप्त कराने के लिये उनके चञ्चल और स्थिर चित्त के शुभाश्रय हैं ॥७६॥ इसके प्रतिरिक्त मन को आश्रय देने वाले देवादि कर्म योनियो को अशुद्धाश्रय समझो ॥७७॥ भगवान् के इस मूर्त्त रूप से चित्त अन्य आश्रयो से हट जाता है, इस प्रकार चित्त के उन्हीं में स्थिर होने को 'धारणा' कहते हैं ॥७८॥ हे राजन् ! बिना किसी आधार के धारणा नहीं होती, इसलिये प्रभु का जो मूर्त्त रूप है, उसे सुनो ॥७९॥ जो भगवान् प्रसन्न मुख और सुन्दर पद्मदल जैसे लौचन वाले, श्रेष्ठ कपोल, विशाल ललाट, कानों में कुण्डल धारण किये हुए, शङ्ख जैसी ग्रीवा वाले, विस्तृत एवं श्रीवत्साङ्कित युक्त वक्षःस्थल वाले, तरंगाकार दिवली और गभीर नाभि वाले उदर से शोभित, घाठ लम्बी-लम्बी भुजाओं वाले, जिनके जंघा और ऊरु समान रूप से स्थित हैं, सुधड़ और मनोहर चरण कमलों से बँडे हुए श्री विष्णु का ध्यान करना चाहिये ॥८०॥ से ८३॥

किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् ॥८४॥  
 शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम् ।  
 वरदाभयहस्त च मुद्रिकारत्न भूषितम् ॥८५॥  
 चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम् ।  
 तावद्यावद्दृढीभूता तत्रैव नृप धारणा ॥८६॥

व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।  
 नापयाति यदा चित्तात्सिद्धां मन्येत ता तदा ॥८७॥  
 ततः सङ्ख्यगदाचक्रशाङ्गिर्दिरहितं बुधः ।  
 चिन्तयेद्भूगवद्रूप प्रशान्त साक्षसूत्रकम् ॥८८॥  
 सा यदा धारणा तद्वदवस्थानवती ततः ।  
 किरीटकेयूरमुखैर्भूषणं रहितं स्मरेत् ॥८९॥  
 तदेकावयवं देव चेतसा हि पुनर्वुधः ।  
 कुर्यात्ततोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत् ॥९०॥

हे राजन् ! किरीट, हार, केयूर, कटक आदि धारण किये शाङ्गधनु, शाङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और अक्ष-अवलि युक्त वरद और अभय मुद्रा वाले कर-कमय, जिनमें रत्नमयी मुद्रिका सुशोभित हैं, ऐसे भगवान् के दिव्य रूप का एकाग्र मन से धारण करके दृढ न होने तक चिन्तन करते रहना चाहिये ॥८४-८५-८६॥ जब चलते, उठते, बैठते या अन्य कोई कार्य करने में भी वह रूप अपने चित्त से विस्मृत न हो, तब सिद्धि की प्राप्ति हुई समझे ॥८७॥ जब धारणा में इतनी दृढता आजाय, तब शख, चक्र, गदा और शाङ्ग धनुष आदि के बिना जो उनका अक्षमाला और यज्ञोपवीत धारण किये हुए शान्त स्वरूप है, उसका ध्यान करना चाहिये ॥८८॥ जब यह धारणा भी दृढ हो जाय तब किरीट-केयूरदि प्राभूषणों से रहित उनके स्वरूप का चिन्तन करे ॥८९॥ फिर एक अवयव विशिष्ट भगवान् का ध्यान करे और जब यह भी सिद्ध होजाय तब अवयव रहित रूप का चिन्तन करना चाहिये ॥९०॥

तद्रूपप्रत्यया चैका सन्ततिश्चान्यनिःस्पृहा ।  
 तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गं पङ्क्तिर्निष्पाद्यते नृप ॥९१॥  
 तस्यैव कल्पनाहीन स्वरूपग्रहणं हि यत् ।  
 मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते ॥९२॥  
 विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव ।  
 प्रापणीयस्तथैवात्मा प्रक्षीणाशेषभावनः ॥९३॥



क्षेत्रज्ञः करणी ज्ञानं करणं तस्य तेन तत् ।

निष्पाद्य मुक्तिकार्यं वै कृतकृत्यो निवर्तते ॥६४

तद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना ।

भवत्यभेदी भेदस्य तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥६५

विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ।

आत्मनो ब्रह्माणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥६६

इत्युक्तस्ते मया योगः स्नाण्डिक्य परिपृच्छतः ।

सक्षेपविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्रियता तव ॥६७

हे नृप ! जिसमे प्रभु रूप की प्रतीति हो, वह निस्पृह एवं धनवरत धारा ही ध्यान है, यह अपने से पहले छः अंगों द्वारा निष्पन्न होता है ॥६१॥ ध्यान द्वारा सिद्धि के योग्य उस ध्येय का जो स्वरूप मन के द्वारा ग्रहण होता है, वही समाधि कही जाती है ॥६२॥ विज्ञान ही प्राप्त होने योग्य परब्रह्म तक पहुँचाने वाला तथा सब भावनाओं से हीन आत्मा ही वहाँ तक पहुँचने वाला है ॥६३॥ मोक्ष-लाभ में क्षेत्रज्ञ कर्ता और ज्ञान करण है, मोक्ष रूपी कार्य को सिद्ध करने से धन्य हुआ वह विज्ञान निवृत्ति को प्राप्त होता है ॥६४॥ उस समय भगवाद् के भाव से परिपूर्ण हुआ विज्ञान परमात्मा से अभिन्न होता है, इसको भिन्न माना जाने का कारण अज्ञान ही है ॥६५॥ भेदोत्पादक अज्ञान के नष्ट होजाने पर ब्रह्म और आत्मा में न होने वाले भेद को कौन कर सकता है ? ॥६६॥ हे स्नाण्डिक्य ! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने सक्षिप्त रूप से और विस्तार पूर्वक भी योग का वर्णन कर दिया है, अब तुम्हारा और क्या कार्य मुझे करना है ? ॥६७॥

कथिते योगसद्भावे सर्वमेव कृतं मम ।

तवोपदेशेनाक्षेपो नष्टश्चित्तमलो यतः ॥६८

ममेति यन्मया चोक्तमसदेतन्न चान्यथा ।

नरेन्द्र गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः ॥६९

अहं ममेत्यविद्येय व्यवहारस्तथानयोः ।

परमार्थस्त्वसलापो गोचरे वचसा न यः ॥१००

तद्गच्छ श्रेयसे सर्वं ममैतद्भवता कृतम् ।

यद्विमुक्तिप्रदो योगः प्रोक्त केशिध्वजाव्ययः ॥१०१॥

खाण्डिक्य ने कहा—इस योग का वर्णन करके तुमने मेरे सभी कार्यों को सिद्ध कर दिया । अब तुम्हारे उपदेश से मेरे चित्त का सब मल दूर होगया है ॥६८॥ मैं जो 'मेरा' कहा, वह भी मिथ्या ही है, क्योंकि जानने योग्य पदार्थ ज्ञाता ऐसा कदापि नहीं कह सकते ॥६९॥ मैं, मेरा की भावना और इनका व्यवहार भी अविद्या है और पदार्थ वाणी का विषय न होने से कहा या सुना नहीं जा सकता ॥१००॥ हे केशिध्वज ! आपने मोक्षदायक योग को बहकर मेरी मुक्ति के निमित्त सब कुछ कर दिया, अब आप सुख से जाइये ॥१०१॥

यथाहं पूजया तेन खाण्डिक्येन स पूजितः ।

आजगाम पुर ब्रह्म स्ततः केशिध्वजो नृप ॥१०२॥

खाण्डिक्योऽपि सुत कृत्वा राजान योगसिद्धये ।

वन जगाम गोविन्दे विनिवेशितमानसः ॥१०३॥

तत्रैकान्तमतिभूत्वा यमादिगुणसयुत ।

विष्ण्वास्थे निर्मले ब्रह्माण्यवाप नृपतिर्लयम् ॥१०४॥

केशिध्वजो विमुक्त्यर्थं स्वकर्मक्षपणोन्मुखः ।

युभुजे विषयान्कर्म चक्रे चानभिसहितम् ॥१०५॥

सकल्याणोपभोगैश्च क्षीणपापोऽमलस्तथा ।

अवाप सिद्धिमत्यन्ता तापक्षयफला द्विज ॥१०६॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे प्रह्लाद ! इनके पश्चात् खाण्डिक्य द्वारा पूजित हुआ राजा केशिध्वज अपने नगर को गव और अपने पुत्र को स्वामित्व सौंपकर भगवान् म चित्त लगा कर निर्जन वन म योग-निद्रा करने लगे ॥१०२॥ १०३॥ यम-नियमादि से युक्त हुए राजा खाण्डिक्य एकाग्र चित्त म चिन्तन करते हुए निर्मल प्रज्ञा मे लय को प्राप्त हुए ॥१०४॥ ऊपर राजा केशिध्वज अपने कर्मों को क्षय करते हुए सब विषयों को भोगत रहे और अपनेको निष्काम कर्म करते रहे ॥१०५॥ हे द्विज ! अपनेको कल्याणकारी भोगों को भोगते हुए उन्हें

ताप और मत् के क्षीण होने पर तापयय को मिटाने वाली आत्यन्तिक मिट्टि प्राप्त होगई है ॥१०६॥

## आठवां अध्याय

इत्येष कथितः सम्यक् तृतीयः प्रतिसत्त्वरः ।  
 आत्यन्तिको विमुक्तिर्या लयो ब्रह्मणि शाश्वते ॥१॥  
 संगंश्च प्रतिसंगंश्च वशमन्वन्तराणि च ।  
 वंशानुचरितं चैव भवतो गदितं मया ॥२॥  
 पुराणं वंणव चैतत्सर्वकिल्बिषनाशनम् ।  
 विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥३॥  
 तुभ्यं यथावन्मंत्रेयं प्रोक्तं शुभ्रूपवेज्जयम् ।  
 यदन्यदपि वक्तव्यं तत्पृच्छाद्य वदामि ते ॥४॥  
 भगवन्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया मुने ।  
 श्रुतचैतन्मया भक्त्या नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥५॥  
 विच्छिन्ना सर्वसन्देहा नैर्मल्य मनसः कृतम् ।  
 त्वत्प्रसादान्मया ज्ञाता उत्पत्तिस्थितिसक्षया ॥६॥  
 ज्ञातश्चतुर्विधो राशिः शक्तिश्च त्रिविधा गुरो ।  
 विज्ञाता सा च कात्स्न्येन त्रिविधा भावभावना ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मनेयजी । इस प्रकार तीसरे आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन भी मैंने तुमसे कर दिया, जिसे तुम ब्रह्म में लीन होने रूपी ब्रह्म ही समझो ॥१॥ मैंने सृष्टि, प्रलय, वश, मन्वन्तर और वशों के चरित्र भी कह दिये ॥२॥ तुम्हें अवलोक्य देखकर इस सर्वश्रेष्ठ, सर्व पापाहारी तथा पुरुषार्थ के प्रतिपादक विष्णु पुराण को मैंने सुना दिया । अब यदि कुछ और पूछना चाहो तो उसे भी पूछ लो ॥३-४॥ श्री मनेयजी ने कहा—हे भगवन् !

आपने मेरा पूछा हुआ सभी कुछ कह दिया और मैंने भी उसे भक्तिपूर्वक सुना है, अब मुझे कुछ नहीं पूछना है ॥५॥ आपकी कृपा से मेरी शङ्काओं का समाधान होगया तथा चित्त निर्मल हुआ और सृष्टि, स्थिति और प्रलय का ज्ञान भी मुझे होगया ॥६॥ हे गुरो ! चार प्रकार की राशि, तीन प्रकार की शक्ति और तीन प्रकार की ही भाव-भावनाओं का मुझे ज्ञान होगया ॥७॥

त्वत्प्रसादान्मया ज्ञात ज्ञेयमन्यैरल द्विज ।

यदेतदखिल विष्णोर्जगन्न व्यतिरिच्यते ॥८॥

कृतार्थोऽहमसन्देहस्त्वत्प्रसादान्महामुने ।

वर्णधर्मादयो धर्मा विदिता यदशेषत ॥९॥

प्रवृत्त च निवृत्त च ज्ञात कर्म मयाखिलम् ।

प्रसीद विप्रप्रवर नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥१०॥

यदस्य कथनायासैर्योजितोऽसि मया गुरो ।

तत्क्षम्यता त्रिशेपोऽस्ति न सता पुनर्शिष्ययो ॥११॥

एतत्त यन्मयाख्यात पुराण वेदसम्मतम् ।

श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थ पापराशि प्रणश्यति ॥१२॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशमन्वतराणि च ।

वशानुचरित कृत्स्न मयात्र तव कीर्तितम् ॥१३॥

अत्र देवास्तथा दैत्या गन्धर्वोरगराक्षसा ।

यक्षविद्याधरास्सिद्धा कथ्यन्ते ऽप्सरसस्तथा ॥१४॥

हे द्विज ! आपकी कृपा से मैं इस जानने योग्य बात को भले प्रकार जान गया कि यह ससार विष्णु से भिन्न नहीं है, इतलिय अन्य बातों का जानना से क्या प्रयोजन है ? ॥८॥ आपकी कृपा से मैं कृतार्थ होगया हूँ, क्योंकि मैं वर्ण-धर्मादि सब धर्मों तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप सब कर्मों को जान गया । हे ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न हो, अब कुछ भी पूछना शेष नहीं है ॥९-१०॥ हे गुरो ! मैंने इस सम्पूर्ण पुराण के कहने का जो वट आपकी दिया है, उसके लिये मुझे क्षमा कीजिय । सन्तजन तो पुत्र और शिष्य में कोई भेद नहीं मानते ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—मैंने तुम्हें जो यह वद सम्मत पुराण सुनाया है, उसके

मुनने से ही सब दोषों से उत्पन्न हुए पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ इसमें सृष्टि-रचना, प्रलय, वश, मन्वन्तर और वशो के चरित्र—इन सबका वशान तुमसे किया है ॥१३॥ इसमें देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और अप्सरोग्रों का वर्णन हुआ है ॥१४॥

मुनयो भावितात्मान कथ्यन्ते. तपसान्विता ।  
 चातुर्वर्ण्यं तथा पु सा विशिष्टचरितानि च ॥१५॥  
 पुण्या प्रदेशा मेदिन्या पुण्या नद्योऽथ सागरा ।  
 पर्वताश्च महापुण्याश्चरितानि च धीमताम् ॥१६॥  
 वर्णाधर्मादयो धर्मा वेदशास्त्राणि कृत्स्नश ।  
 येना सस्मरणात्सद्य सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१७॥  
 उत्पत्तिस्थितिनाशाना हेतुर्यो जगतोऽव्यय ।  
 स सर्वभूतस्सर्वात्मा कथ्यते भगवान्ह्रि ॥१८॥  
 अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकै ।  
 पुमान्विमुच्यते सद्य सिंहवस्तैर्धृकरिव ॥१९॥  
 यन्नामकीर्तन भक्त्या विलायनमनुत्तमम् ।  
 मैत्रेयाशेषपापाना धातूनामिव पावक ॥२०॥  
 कलिकल्मषमत्युग्र नरकातिप्रद नृणाम् ।  
 प्रयाति निलय सद्य सकृद्यत्र च सस्मृते ॥२१॥

तपोनिष्ठ मुनिजन, चार वर्णों का विभाग, महापुरुषों के चरित्र, पृथिवी के पवित्र क्षेत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, बुद्धिमानों के चरित्र, वर्ण धर्मादि धर्म और वेद शास्त्रों का भी इसमें भले प्रकार से वर्णन हुआ है, जिनके स्मरण करने से ही मनुष्य सब पापों छूट जाता है ॥१५-१६-१७॥ विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के एकमात्र कारण रूप भगवान् विष्णु का भी इसमें कीर्तन हुआ है ॥१८॥ यदि विवश होकर भी उन भगवान् का कीर्तन करे तो सिंह से भयभीत हुए भेड़िये के समान मुक्त हो जाता है ॥१९॥ हे मैत्रेयजी ! भक्तिभाव पर्वक जिनका हत्या नाश—कीर्तन सभी पापों का सर्वश्रेष्ठ विलयन है ॥२०॥

जिनका एकवार भी स्मरण करने से नरक की यातनाएँ प्राप्त कराने वाला कलि-कल्मष उसी समय धोए हो जाता है ॥२१॥

हिरण्यगर्भं देवेन्द्र रुद्रादित्याश्च वायुभिः ।

पावकैर्वसुभिः साध्यैर्विश्वे देवादिभिः सुरैः ॥२२॥

यक्षरक्षोरगं सिद्धैर्दैत्यगन्धर्वंदानवैः ।

अप्सरोभिस्तथा तारानक्षरैः सकलैर्ग्रहैः ॥२३॥

सप्तर्षिभिस्तथा धिष्ण्यैर्धिष्ण्याधिपतिभिस्तथा ।

ब्राह्मणार्थं मनुष्यैश्च तथैव पशुभिर्मृगैः ॥२४॥

सरीसृपैर्विहङ्गैश्च पलाशार्थं महीरुहैः ।

वनाग्निसागरसरित्पातालैः सधरादिभिः ॥२५॥

शब्दादिभिश्च सहितं ब्रह्माण्डमखिलं द्विज ।

मेरोरिवाणुर्यस्यैतद्यन्मयं च द्विजोत्तम ॥२६॥

स सर्वं सर्ववित्सर्वस्वरूपो रूपवर्जितः ।

भगवान्कीर्तितो विष्णुरत्र पापप्रणाशन ॥२७॥

यदश्वमेधावभृथे स्नातः प्राप्नोति वै फलम् ।

माघ्नवस्तदवाप्नोति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥२८॥

प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथाणवे ।

कृतोपवासः प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः ॥२९॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! हिरण्यगर्भ, देवेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विद्वय, वायु, अग्नि,

वसु, साध्य, विश्वदेवा, यक्ष, राक्षस, उरग, सिद्ध, दैत्य, गन्धर्व, दानव, अप्सरा, तारे, नक्षत्र, ग्रह, सप्तर्षि, लोक, लोकोपाल, मनुष्य, पशु, मृग, सरीसृप, विहग, वृक्ष, वन, अग्नि, समुद्र, नदी, पाताल और पृथिवी आदि और शब्दादि विषयों के सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिन प्रभु के सामने अत्यन्त तुच्छ है और जो उसके उपादान-धारण भी है, उस सर्वरूप, सर्वज्ञ, रूपहीन तथा पापों के नाश करने वाला भगवान् विष्णु का चरित्र इनमें कहा गया है ॥२२ से २७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अश्वमेध यज्ञ में भक्तृन्ध स्नान का जो फल है, वही इन पुराणों के गुनने से प्राप्त हो जाता है ॥२८॥ प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र अथवा समुद्र के किनारे रहकर

उपवास करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस पुराण के श्रवण से ही प्राप्त होजाता है ॥२६॥

यदग्निहोत्रे सुदुते वर्षेणाप्नोति मानवः ।

महापुरुषफलं विप्रं तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥३०॥

यज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा च यमुनाजले ।

मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोतिः पुरुषः फलम् ॥३१॥

तदाप्नोत्यखिलं सम्यग्ध्यायं यः शृणोति यः ।

पुराणस्यास्य विप्रर्षे केशवार्पितमानसः ॥३२॥

यमुनासलिलस्नातः पुरुषो मुनिसत्तम ।

ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्या समुपोषितः ॥३३॥

समम्यच्युतं सम्यङ् मथुरायां समाहितः ।

अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥३४॥

ब्रालोक्यद्विमथान्येषामुन्नीतानां स्ववशजैः ।

एतत्किलोचुरन्येषां पितरः सपितामहाः ॥३५॥

नियमानुसार एक वर्ष तक अग्निहोत्र करने से जिस महापुरुष फल की प्राप्ति होती है, यह फल इसके एकवार श्रवण से ही मिल जाता है ॥३०॥ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को मथुरा में यमुना स्नान करके श्रीकृष्ण का दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल भगवान् श्रीकृष्ण में तन्मय चित्त होकर इस पुराण के एक अध्याय के श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है ॥३१-३२॥ हे मुनिवर ! ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन मथुरापुरी में उपवास पूर्वक यमुना स्नान करके श्री प्रच्युत भगवान् में चित्त लगा कर उनका पूजन करने से अश्व-मेध यज्ञ जैसा ही फल प्राप्त होता है ॥३३-३४॥ अपने वंशजों द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त हुए पितरों ने अन्य पितरों को समृद्धि-लाभ करते हुए देखकर इस प्रकार कहा था ॥३५॥

कच्चिदस्मत्कुले जातः कालिन्दोसलिलाप्लुतः ।

अर्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥३६॥

ज्येष्ठामूले सिते पक्षे येनैवं वयमप्युत ।  
 परामृद्धिमवाप्स्यामस्तारिताः स्वकुलोद्भवैः ॥३७  
 ज्येष्ठामूले सिते पक्षे समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।  
 धन्यानां कुलजः पिण्डान्यमुनाया प्रदास्यति ॥३८  
 तस्मिन्काले समभ्यर्च्य तत्र कृष्ण समाहितः ।  
 दत्त्वा पिण्डं पितृभ्यश्च यमुनासलिलाप्लुतः ॥३९  
 यदाप्नोति नरः पुण्यं तारयन्स्वपितामहान् ।  
 श्रुत्वाध्याय तदाप्नोति पुराणस्यास्य भक्तिः ॥४०  
 एतत्ससारभीरूणां परित्राणमनुत्तमम् ।  
 श्राव्याणां परमं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम् ॥४१  
 तु स्वप्ननाशनं नृणां सर्वदुष्टनिवर्हणम् ।  
 मङ्गलं मङ्गलानां च पुत्रसम्प्रदायकम् ॥४२

हमारे कुल में उत्पन्न कोई पुरुष क्या ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन उप-  
 वास करके परम पवित्र मथुरा नगरी में यमुना-स्नान करके गोविन्द का पूजन  
 करेगा ? जिससे हमभी अपने वंशजों द्वारा उद्धार किये जाकर परम ऐश्वर्य  
 को प्राप्त करेंगे । क्योंकि किन्हीं भाग्यवान् व्यक्तियों के वंशज ही ज्येष्ठ मास  
 के शुक्ल पक्ष में यमुना में पितृ को पिण्डदान का पुण्य करते हैं ॥३६-३८॥  
 जल में इस प्रकार स्नान करके पितरों को पिण्डदान करके उनको तारने  
 वाला पुरुष जिस पुण्य का भागी होता है, वही पुण्य इस विष्णु पुराण का  
 एक अध्याय भक्तिपूर्वक सुनने से प्राप्त होता है ॥३९-४०॥ यह पुराण ससार  
 सागर में भयभीत जनो का बहुत बड़ा रक्षक, श्रवण योग्य तथा पवित्रों में भी  
 बहुत पवित्र है ॥४१॥ बुरे स्वभावों का नाशक संपूर्ण दोषों को दूर करने वाला,  
 मागलिक वस्तुओं में परम मागलिक और मतान तथा मर्त्यसि का देने वाला  
 है ॥४२॥

इदमार्पं पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः ।  
 ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेज्जवीत् ॥४३



भागुरिः स्तम्भमित्राय दधीचाय स चोक्तवान् ।  
 सारस्वताय तेनोक्तं भृगुस्सारस्वतेन च ॥४४  
 भृगुणा पुरुकुत्साय नमंदाय स चोक्तवान् ।  
 नमंदा धृतराष्ट्राय नागायापूरणाय च ॥४५  
 ताम्यां च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज ।  
 वासुकिः प्राह वत्साय वत्सश्चाश्वतराय वं ॥४६  
 कम्बलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वं ।  
 पाताल समनुप्राप्तस्ततो वेदशिरा मुनिः ॥४७  
 प्राप्तवानेतदक्षिलं स च प्रमत्तये ददौ ।  
 वरा प्रमत्तिना चैतज्जातुकर्णाय धीमते ॥४८

इस धार्ष-पुराण के प्रथम वक्ता ब्रह्माजी ने जिनसे श्रुभु ने इसे श्रवण किया । श्रुभु से प्रियव्रत और प्रियव्रत से भागुरि ने सुना । भागुरि ने स्तम्भ-मित्र को, स्तम्भमित्र ने दधीचि को, दधीचि ने सारस्वत को, सारस्वत ने भृगु को सुनाया ॥४३-४४॥ इसके पश्चात् इसे भृगु से पुरुकुत्स ने, पुरुकुत्स ने नमंदा ने, नमंदा से धृतराष्ट्र और पूरण नाग ने सुना ॥४५॥ इन दोनों ने यह पुराण नागराज वासुकि को सुनाया । वासुकि ने वत्स को, वत्स ने अश्वतर को, अश्वतर ने कम्बल को, कम्बल ने इला पुत्र को सुनाया । उसी अक्षर पर वेदशिरा मुनि पाताल लोक में धाये हुए थे, उन्होंने इस पुराण को नागों से प्राप्त करके प्रमत्ति को सुनाया और उससे परम विद्वान् जातुकर्ण ने इसे प्राप्त किया ॥४६-४८॥

जातुकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यकर्मणाम् ।  
 पुलस्त्यवरदानेन ममाप्येतत्स्मृतिं गतम् ॥४९  
 मयापि तुभ्यं मंत्रेय यथावत्कथितं त्विदम् ।  
 त्वमप्येतच्छिनीकाय कलेरन्ते वदिष्यसि ॥५०  
 इत्येतत्परमं गुह्यं कलिकल्मषनाशनम् ।  
 यः शृणोति नरो भवत्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५१

समस्तनीर्थस्नानानि समस्तामरसस्तुतिः ।

कृता तेन भवेदेतद्यः शृणोति दिने दिने ॥५२

कपिलादानजनित पुण्यमत्यन्तदुर्लभम् ।

श्रुत्वेतस्य दशाध्यायानवाप्नोति न संशयः ॥५३

यस्त्वेतत्सकल शृणोति पुरुषः कृत्वा मनस्यच्युत ।

सर्वं सर्वमयं समस्तजगता माधारमात्माश्रयम् ।

ज्ञानज्ञेयमनादिमन्तरहितं सर्वमिराणां हितं ।

स प्राप्नोति न सशयोऽस्त्यविकलं यद्वाजिमधे फलम् ॥५४

यत्रादौ भगवांश्चराचरगुरुर्मध्ये तथान्ते च सः ।

ब्रह्मज्ञानमयोऽच्युतोऽखिलजगन्मध्यान्तसर्गप्रभुः ।

तत्सर्वं पुरुषः पवित्रममलं शृण्वन्पठन्वाचयन् ।

प्राप्नोत्यस्ति न तत्फलं त्रिभुवनेष्वेकान्तसिद्धिर्हरिः ॥५५

तत्पश्चात् जातुकर्णं ने इसे महात्माप्रो को सुनाया और उनमें से पुलस्त्य जी के वरदान से मुझे भी यह ज्ञात हो गया । वही मैंने तुमको यथावत् सुना दिया और तुम कलियुग के अन्त में इसे क्षितीक को सुनाओगे ॥५६-५०॥ जो व्यक्ति इस परम गुह्य और कलियुग के दोषों को नाश करने वाले पुराण की भक्ति के साथ श्रवण करता है वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है । और जो कोई इसको प्रति दिन सुनता रहता है तो मानो तमाम तीर्थों के स्नान तथा सभी देवों की स्तुति का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया ॥५१-५२॥ जो कोई इस पुराण के दस अध्यायों को श्रवण कर सेता है उसे कपिला जी के दान का अत्यन्त दुर्लभ पुण्य प्राप्त होता है । जो मनुष्य जगदाधार, धारमा के आश्रय सर्व स्वरूप, सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेय रूप, प्रादि अन्त रहित और सब देवताओं के हितंपी विष्णु भगवान् का ध्यान करते हुए इस सम्पूर्ण पुराण का श्रवण करता है उसे निस्तन्देह अभ्यमेध-यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥५३-५४॥ इस पुराण के प्रादि, अन्त, मध्य में सर्वत्र विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय में समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर गुरु भगवान् अच्युत का वीर्यन बिया गया है । इस लिए इस सर्वधेष्ठ और निर्मल पुराण को सुनने, पढ़ने और धारण करने

से जो फल प्राप्त होता है वह तीनों लोक में अन्य किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि मुक्तिदाता भगवान् विष्णु की ही इसके द्वारा प्राप्ति होती है ॥५५॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरक स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने ।  
 विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।  
 मुक्तिं चेत्तसि यः स्थितोऽमलधिया पुंसा ददात्यव्ययः ।  
 किं चित्रं यदद्य प्रयाति विलय तत्राच्युते कीर्तिते ॥५६॥  
 यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वर कर्मणो ।  
 य वै ब्रह्ममय परावरमय ध्यायन्ति च ज्ञानिनः ।  
 य सच्चिन्त्य न जायते न म्रियते नो वद्धंते होयते ।  
 नैवाभङ्ग च सद्भूवत्यति ततः किं वा हरे श्रूयताम् ॥५७॥  
 कव्य यः पितृरूपधृग्विधिहुत हव्य च भुङ्क्ते विभु  
 देवत्वे भगवाननादिनिघ्नः स्वाहास्वधासक्षिते ।  
 यस्मिन्ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां  
 निष्ठायां प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्र स यातो हरिः ॥५८॥

जिन विष्णु भगवान् में चित्त लगाने से नर्क का भय दूर हो जाता है, जिनके स्मरण में स्वर्ग भी निस्सार है, ब्रह्म लोक भी तुच्छ प्रतीत होता है, और जो बुद्ध चित्त वाले सज्जनों के हृदय में स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन्हीं भगवान् अच्युत का कीर्तन करने यदि सब पाप नष्ट हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ॥५६॥ कर्मनिष्ठ यज्ञवेत्ता जिन भगवान् का यज्ञेश्वर रूप से भजन करते हैं, ज्ञानी जन जिनका ब्रह्म रूप से ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करने से न पुरुष जन्म लेता है, न मरता है, न क्षीण होता है, एवं जो न सत् है न असत्, उन श्रीहरि के अतिरिक्त सुनने का विषय और क्या हो सकता है ? ॥५७॥ जो अनादिनिघ्न प्रभु पितृरूप से स्वधासज्ञक कव्य को और देव रूप से अग्नि में हवन किये गये हव्य को ग्रहण करते हैं, तथा जिन समस्त शक्तियों के आश्रयभूत भगवान् के विषय में प्रमाण कुशल विद्वान् भी प्रमाण

नहीं दे सकत वे श्रीहरि धवगु पथ म जाते हो समस्त पापों को नष्ट कर देत हैं ॥५८॥

नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भूतोऽस्ति  
वृद्धिर्न यस्य परिणामविर्जितस्य ।  
नापक्षय च नमुपेत्यविकारि वस्तु  
यस्त नतोऽस्मि पुरुषोत्तममोक्षमोक्ष्यम् ॥५९॥  
तस्यैव योऽनु गुणभुग्वहृधैक एव  
शुद्धोऽप्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदः ।  
ज्ञानान्वित सकलसत्त्वविभूतिकर्ता  
तस्मै नमास्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ॥६०॥  
ज्ञानप्रवृत्तिनियमवयवमयाय पु सो  
भोगप्रदानपटवे त्रिगुणात्मकाय ।  
अध्याकृताय भवभावनकारणाय  
यन्दे स्वरूपभवनाय सदाजराय ॥६१॥  
व्यामानिलाग्निजलभूरचनामयाय  
शब्दादिभोग्यविषयोपनवक्षामाय ।  
पु स समस्तकरणैरुपकारकाय  
व्यक्ताय सूक्ष्मवृहदात्मवते नतोऽस्मि ॥६२॥  
इति विविधमजस्य यस्य रूप ।  
प्रकृतिपरात्ममय मनातनस्य ।  
प्रदिशतु भगवानशेषपु सा ।  
हरिरपजन्मजरादिव्या स निद्रिम् ॥६३॥

समस्त वैभवो का कर्त्ता है उस अव्यय परमपुरुष को नमस्कार है ॥६०॥ जो ज्ञान-प्रवृत्ति और नियमन का सम्मिलित रूप है, जो मनुष्यों को समस्त भोग प्रदान करता है, तीनों गुणों से युक्त और अव्याकृत है, जो संसार की उत्पत्ति का कारण है, उस स्वतः सिद्ध और अजर भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥६१॥ जो भगवान् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी रूप है, शब्दादि भोग्य विषयों को प्राप्त कराने वाला है और मनुष्यों का उनकी इन्द्रियो द्वारा उपकार करने वाला है उस सूक्ष्म और विराट् स्वरूप को नमस्कार है ॥६२॥ इस प्रकार जिन निश्चय तथा सनातन परमात्मा के प्रकृति-पुरुष भेद से अनेक रूप हैं वे भगवान् हरि मनुष्य मात्र को जन्म और जरा से विहीन मुक्ति प्रदान करे ॥६३॥

॥ विष्णु महापुराण समाप्त ॥

# विष्णुपुराण का निष्पक्ष नैतिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक अध्ययन

विष्णुपुराण विविध विषयों का भण्डार है, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी उपयोगी तथ्यों का इसमें खनन किया गया है। पुराणकार न परिस्थितियों का केवल एक पहलू ही प्रस्तुत नहीं किया है, अच्छे और बुरे दोनों पहलुओं पर विचार किया है। विष्णु पुराण कालीन भारत की सामाजिक दुर्दशा का भी विस्तृत वर्णन किया गया है और उसका गुस्सा, व्यावहारिक समाधान दिया गया है, पतन के लक्षणों के चित्रण के साथ उत्थान के सूत्र भी दिए हैं। भारत के गौरवमय इतिहास के बलकों का भी खुले रूप में वर्णन है और भारत के मस्तक को ऊँचा उठाने वाली विभूतियों का भी उल्लेख है। मानव मन की कमजोरियों का विवेचन कराते हुए उनका हल भी दूँ इन का प्रयत्न किया गया है। दोषा, दुर्गुणों और पुरीतियों के दुष्परिणामों की धार विनाश प्रसार में ध्यान दिलाया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। मानव जीवन के उत्थान के सिद्धान्तों का वर्णन है ही। उन्हें दिया रूप देने वाली साधनाओं को भी दिया गया है। ब्रह्मा को आध्यम्य में जीवन जीने की ब्रह्मा सिखाई गई है। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विशेष स्वभाव के प्रभावशाली व्यक्तित्वों को उभारा गया है, उनके बर्तनों के परिणामों में ही पाठक निर्गुण कर सकते हैं कि उस किस मार्ग पर चलना उचित रहेगा। पुराणकार न साम्प्रदायिक एकाग्रता भी ज्ञान का प्रयत्न किया है। विग नरक में बड़े पुण्यों में पुराण से सम्बन्धित देवी देवता का नाम सबसे बड़ा और श्रेष्ठ बताया गया है और दूसरों को दोषापूर्वक उनकी उपासना करने हुए दिखाया गया है ऐसा विष्णु पुराण में नहीं है। इसमें धर्म देवी देवताओं के साथ उचित श्रद्धा दिया गया है। मार यह है कि मानव जीवन के सामाजिक, नैतिक और

माध्यात्मिक उत्थान के लिये जिन तथ्यों और विचारों की आवश्यकता रहती है। वह सभी इनमें प्रस्तुत हैं।

हम अब विष्णुपुराण का निम्नलिखित अध्ययन करेंगे।

## सामाजिक दुर्दशा—

पुराणों की परम्परागत शैली में विष्णु पुराण में भी पाँचों लक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र उपलब्ध होते हैं। विष्णुपुराण का निर्माण लोकाहित की दृष्टि से किया गया है। राष्ट्र का हित इसी में होता है कि जनता के समक्ष देश में फैल रहे सामाजिक रोगों, उत्पातों और कुतियों को रखा जाए और स्पष्ट रूप से बताया जाए कि किस प्रकार राष्ट्र पतन की ओर जा रहा है। लेखक लोकनायकों का आह्वान करता है कि वह उन्हें और अपने तप त्याग द्वारा देश का उत्थान करें। विष्णु पुराण के लेखक ने ऐतिहासिक वंशान्तों के साथ (कही २ प्रतीक रूप में और कही २ अतिशयोक्ति शैली में) उस समय की सामाजिक दुर्दशा का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे विदित होगा कि पतन की राहें केवल कलयुग में ही नहीं बनी हैं हर युग में समाज का एक वर्ग दूषित रहा है जिसे सन्मार्ग पर लाने की आवश्यकता रही है। विष्णुकालीन भारत का चित्र पुराणकार ने बड़ी ही सरलता से खींचा है। विष्णु पुराण से ही कुछ उदाहरण देकर हम इसे स्पष्ट करेंगे।

## राजाओं का अन्याय और अत्याचार—

राजा वेन के राज्यकाल का वर्णन करते हुए ( १।१२।११।२४ ) में कहा गया है जब वह वेन राजपद पर अभिषिक्त हुआ था तभी उसने विश्व भर में यह घोषित कर दिया था कि मैं भगवान् हूँ, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता एवं स्वामी मैं ही हूँ। इसलिये अब कभी कोई भी मनुष्य दान और यज्ञादि न करे। हे मनेयजी ! उस समय वे महर्षिगण उस राजा वेन के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा करके स्वान्त्वनामयी मीठी वाणी से कहा “हम तुम्हारे राज्य, प्रजा तथा शरीर के हितार्थ जो कहते हैं, उसे श्रवण करो।

तुम्हारा कल्याण हो, हम यज्ञेश्वर देवदेव भगवान् विष्णु का पूजन करेंगे, उसका फल के छठे अक्ष का भाग तुम्हें भी प्राप्त होगा। यज्ञों के द्वारा भगवान् यज्ञ पुरुष सन्तुष्ट होकर हमारे साथ ही तुम्हारी भी अभिलाषाएँ पूरी करेंगे। जिन राजाओं के राज्यकाल में यज्ञेश्वर भगवान् का यज्ञानुष्ठानों द्वारा पूजन होता है, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।” यह सुनकर वेन ने कहा—“मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो। तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है? ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा अथवा अन्य जो भी देवता क्षाप या वर देने में समर्थ हैं, उन सभी का निवास राजा में होने से राजा ही सर्वदेवमय होता है। हे द्विजगण ! यह जानकर मेरे आदेश का पालन करो, किसी को भी धान यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणों ! जैसे स्त्री का परम धर्म पतिसेवा है, वैसे ही आपका परमधर्म मेरी आज्ञा का पालन है।”

इससे उस समयमें राजाओं की नाशिरक्षाही का परिचय मिलता है। वह राज्य सत्ता का दुरुपयोग किसी भी तरह कर सकते थे। जनता को कोई आवाज न थी। राजा जनता को इतना दबाकर रखते थे कि भले ही उन पर हजारों जुल्म ढाये जाएँ, वह तू भी नहीं कर सकती थी, जनता की कोई विचार-धारा और बल नहीं था, वह राजा के नेतृत्व को ही सौभाग्य मानती थी। इसीलिए उस समय के राजाओं में यह साहस उत्पन्न हो जाता था कि वह अपने को भगवान् घोषित कर देते थे और जनता से भगवान् की तरह पूजा और सम्मान के आकांक्षी रहते थे। जिस देश की जनता की आत्मा मर चुकी हो, वह अपने नेता का अग्रधानुकरण करती है भले ही उनके आत्म विवेक का गना घुट रहा हो। जो जनता राजा के इंगारों पर नाचती है, उसका उत्थान कैसे हो सकता है? यह प्राकृतिक नियम है कि कमजोर को हर कोई दबाता है। इसलिए निर्वलता को पाप माना गया है। वेन के समय में जनता निर्बल थी। उनकी निर्धनता ने ही वेन को अग्न्याय और अत्याचार करने के लिये उत्साहित किया। यदि उस समय के लोग कुछ भी विरोध करते तो उनके अत्याचार इस सीमा तक न बढ़ पाते।



इसी अध्याय में लूट पाट का वर्णन करते हुए कहा गया है "किं महर्षिषो ने सर्वत्र बड़ी धूल उड़ती हुई देखकर अपने पास खड़े लागो से पूछा कि यह क्या है ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि इस समय राष्ट्र राजा रहित हो गया है इसलिये दोन दुखी मनुष्यो ने धनवानों को लूटना प्रारम्भ कर दिया है । हे मुनिवरो ! उन अत्यन्त बेगवान लुटेरो के उत्थात से ही यह धूल उड़ रही है ।" (१।१३।३०-३२)

अध्याय स्वयं में एक निर्बलता है, उसकी भी एक सीमा होती है । वह स्थिर नहीं रह सकता । अध्यायी अपने अध्याय से ही अपने अस्तित्व को नष्ट करता है । वेन की भी यही दुःखा हुई । जब राष्ट्र में भुखमरी फैलती है और शासन कुछ भी सहायक सिद्ध नहीं होता तो भूखी जनता साधार होकर जमा-खोरो को ढूँढती है । परिस्थितियाँ उन्हें बाध्य करती हैं कि वह क्षुधा वृत्ति के लिये धनवानों को लूटने का साहस करे, यही उस समय होने लगा था ।

राजाओं की तानाशाही का बड़ा ही मार्मिक उल्लेख पुराणकार ने किया है । ऐसा लगता कि राज्य शासन के संचालन के लिये उन्होंने मानवता के सिद्धान्तों को तिलाजलि दे दी थी । हिरण्यकशिपु काल में वेन के कुशासन के सभी लक्षण तो देखने को मिलते ही हैं, इसके अतिरिक्त ऐसे हृदय विदारक दृश्य दिखाई देते हैं जो पशुता, क्षुद्रता और विवेकहीनता की सीमाओं का उल्लंघन कर गये हैं । जनता पर तो इतिहास में सैकड़ों राजाओं ने अन्याय किया है परन्तु यह केवल एक ही उदाहरण है कि यदि उसकी अपनी सत्ता विवेक सगत बात करती है तो उसको मृत्यु तुल्य दण्ड दिये जाएँ । वह किसी का भी विरोध सहन नहीं करते थे चाहे वह विरोध करने वाला उनका अपना ही पुत्र क्यों न हो । हल्का-सा विरोध उनके क्रोध के सतुलन को अव्यवस्थित कर देता है और वह बड़े से बड़ा दण्ड देने के लिये तैयार हो जाते हैं । (१।१६।१-१०) के अनुसार जब प्रह्लाद ने भगवान् विष्णु को अपना इष्ट बताया तो उसे अग्नि में भस्म करने का प्रयत्न किया गया, सास्त्रियों से अपाधात पहुँचाये गये, बांध कर समुद्र के जल में डाला गया, पत्थरों की बाँधार से उसका

शरीरात करने का प्रयास किया गया। पर्वतो में गिराया गया, सर्पों से ढसवाया गया, दिग्गजों के दाँतों से रूँधवाया गया, दैत्य गुरुग्रो ने उस पर कृत्या चलाई। शम्बासुर ने अपनी मायाओं को प्रयुक्त किया, रसोदयो ने विष दिया।”

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जो अपने पुत्र पर इतने अत्याचार कर सकता है, वह जनता को कितने कष्ट पहुँचाता होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसके राज्य में कोई भी व्यक्ति अपने जान व माल को सुरक्षित नहीं समझता होगा क्योंकि क्या पता ऐसे कुशासक के कुविचारों का वेग किधर को प्रवाहित होने लगे और उधर ही उत्पातों के समूह लग जाएँ। जब उनकी मात्र आज्ञा ही नियम है तो क्षणभर में हजारों सर धड़ से अलग किए जा सकते हैं। ऐसे अत्याचारी राजा की प्रजा कभी भी अपने को सुरक्षित नहीं मान सकती है। वह समझते होंगे, कभी भी बिना कारण क्षण मिल सकता है। ऐसा कुशासन तो विश्व के इतिहास में कभी नहीं देखा गया।

ब्राह्मण राष्ट्र निर्माता होते हैं। वह सामाजिक रोगों की चिकित्सा करके राष्ट्र को स्वस्थ शासन देते हैं, परन्तु उस समय के ब्राह्मण भी अन्याय का पक्षपात करते देखे जाते हैं। ब्राह्मण को प्राचीन काल में निष्पक्ष और साहसी नेता माना जाता था। क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों के परामर्श से शासन का संचालन किया करते थे, उन्हें ब्राह्मणों की अवज्ञा करने का साहस नहीं होता था। परन्तु इस समय के ब्राह्मणों का साहस भी विलुप्त हो गया था। वह अपने राजा को विवेक की शिक्षा नहीं दे पाए, उसके अत्याचारों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कह सके। आश्चर्य तो यह है कि देवताओं ने अपना देवत्व छोड़ कर दैत्यपन स्वीकार कर लिया, आसुरी कार्यों का अनुमोदन ही नहीं किया वरन् उसमें भाग लेकर ब्राह्मणत्व पर कलक का टीका लगा लिया। विष्णु पुराण (१।१७।५१-५२) में वह राजा से कहते हैं कि ‘यदि प्रह्लाद हमारे कहने से भी विपक्षी के पक्ष का त्याग न करेगा, तो हम इसे नष्ट करने के लिए किसी प्रकार भी व्यर्थ न होने वाली कृत्या का प्रयोग करेंगे।’

कंस के अत्याचारों का भी विस्तृत वर्णन इस पुराण में है। अपने पिता को कैद में डाल कर स्वयं राज्यसत्ता हथियाने का विश्व के इतिहास में श्रीरामजी का उदाहरण मिलता है। इस कुप्रवृत्ति का प्रारम्भ शायद कंस से ही होता है। भारतीय संस्कृति का अनुयायी होकर जब वह अपने जन्मदाता को जेल की काल कोठरी में सड़ने के लिए बाध्य कर सकता है तो जनता को निर्भय रूप से दबाने में उसे क्यों दरं होगा ? स्वाभाविक है कि पापी का मन आशंकाओं से भोत भोत रहता है, वह हर क्षण किसी भी दुर्घटना के लिए भयभीत रहता है। भले ही वह ईश्वरीय सत्ता को न स्वीकार करता हो परन्तु उसके कुकृत्य भय के जन्मदाता बनते हैं और बुरे भविष्य के सूचक होते हैं। कंस को भी निरन्तर यही आशंका रहती थी कि उसे कोई अज्ञात शक्ति अवश्य नष्ट कर देगी। आकाश वाणी के माध्यम से बताया गया है कि देवकी के उदर से जन्मा बालक तो उसका काल सिद्धि होगा। वह अपनी सुरक्षा के लिए निर्मम हत्याओं पर उतारू होगया। अनेकों क्षत्रियों का अन्त करके पर भी उसकी प्यास न बुझी। माता-पिता और पत्नी के बाद बहिन का सम्बन्ध प्रिय होता है। भाई बहिन की सुरक्षा का सकल रक्षाबन्धन पर करता है। उसके बच्चों को अपने बच्चों के तुल्य मानता है। जो व्यक्ति अपनी बहिन के बच्चों को मौत के घाट उतार सकता है, वह अपने प्रजाजनों का क्या मूल्यार्जन कर सकता है ? ऐसा निर्दयी राजा तो मच्छरों और मक्खियों की तरह लोगों को मरवाता होगा। ऐसे शासक के राज्यकाल में प्रजा सदैव अपने सर की तलवार नीचे ही रखा समझती है।

कंस के अत्याचारों का वर्णन पंचम अंश के कई अध्यायों में है। (५। ३। २३-२५) में है कि जब वसुदेव कृष्ण को नन्द के यहाँ छोड़ आये और उनके स्थान पर एक कन्या ले आए तो कंस ने उसे मार दिया। “इपर कन्या को लेकर आये हुए वसुदेवजी ने उसे देवकी के शयनागार में शयन करा दिया और फिर पहिले के समान ही स्थित हो गये और उन्होंने तुरन्त ही देवकी के सन्तान उत्पन्न होने की सूचना दी। यह सुनते ही कंस ने शीघ्रता

पूर्वक वहाँ जाकर उस कन्या को पकड़ लिया और देवकी के रोकने पर भी उसे शिला पर पछाड़ दिया ।”

इसके बाद उसने यह राजाज्ञा प्रसारित की पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हो, उन्हें देवताओं के अहित के निमित्त मार डालना चाहिये । देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि तेरी मृत्यु कहीं अन्यत्र उत्पन्न हो चुकी है । इसलिये पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालकों पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक बलवान बालक प्रतीत हो, उनका वध कर देना चाहिये । (५।४।११-१३)

कंस ने नवजात शिशुओं के वध के लिये ऐसी स्त्रियों की नियुक्ति की थी जो अपने स्तनो पर विष लगा लेती थी और स्तनपान करते ही बालक मर जाता था । कृष्ण के वध के लिये पूतना ने प्रयत्न किया । (५।१।७) कृष्ण को गोद में उठाया और उन्हें अपना स्तन-पान कराने लगी । ऐसा लगता है कि कंस ने शिशु वध का राष्ट्र व्यापी अभियान चलाया था और उसकी सफलता के लिये हर सम्भव उपाय अपनाये गये थे । शिशु वध को व्यापक योजना का संचालन केवल कंस ने ही किया था । इस स्थिति में माता-पिता अपने बच्चों को घर की कैद में ही बन्द रखते होंगे । घर की चारदीवारी उनके लिये जेल के समान ही बन जाती होगी क्योंकि राज्यकर्मचारियों को पता चलने पर किसी भी क्षण उन पर मुनीबल आ सकती थी । कंस अपने इस हत्याकाण्ड के लिए जगद्विख्यात होगये, क्योंकि शिशुओं की निर्मम हत्याओं का श्रेय केवल उसे ही प्राप्त हुआ है । ऐसे जालिम शासकों का आज नाम निशान भी नहीं है । इस दृष्टि से तो आज का बुरा शासन भी उस समय के शासन से सैकड़ों गुना अधिक स्वच्छ, स्वस्थ व श्रेष्ठ है ।

**हत्याएँ—**

छोटी छोटी बातों पर हत्याएँ अब भी होती हैं और पहले भी होनी थी । हत्या से मानव मन की क्रूरता का परिचय मिलता है । यह मूल्यवान मानव शरीर जो आत्म-विकास के लिये प्राप्त हुआ है, उसे क्षण भर में नष्ट कर देना

महान पाप है । विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश के १३ वें अध्याय में स्वयन्तक मणि पर अनेको हत्याएँ होने का वर्णन है । सत्राजित के पास मणि थी, शतधन्वा ने मोते हुए उसकी हत्या कर दी । (४।१३।७१) पिता की हत्या से अत्यन्त रोष में भरकर सत्यभामा ने कृष्ण को शतधन्वा का वध करने के लिये प्रेरित किया । कृष्ण ने बलराम से कहा “अब आप यहाँ से उठकर रथ पर बैठिए और शतधन्वा का वध करने के प्रयत्न में लग जाइये ।” (४।१३।८०) ।

माताओं द्वारा पुत्रों की हत्या करने का भी अनोखा उदाहरण है । “भरत की तीन पत्नियाँ थी । उन्होंने नौ पुत्र उत्पन्न किये । भरत ने जब उन्हें अपने अनुरूप न बताया तो उनकी माताओं ने अपने परित्याग किये जाने की आशंका से, उन पुत्रों की हत्या कर दी ।” (४।२२।१४-१५) पिता जैसे योग्य पुत्र उत्पन्न न हो, तो कोई उन्हें मार नहीं देता । माता का कोमल हृदय तो कभी सहन नहीं कर सकता । यह निर्दयता की सीमाओं का उल्लंघन है ।

### नरमांस का भत्ता—

पशुओं का मांस खाकर लोग अपनी पशुता का परिचय देते तो हैं । दानवता की चरम सीमा तक पहुँचने वाले गो कृत्य उस समय होते थे—वह दुष्कृत्य है नरमांस का भत्ता । यह एक कथात्मक उदाहरण से स्पष्ट है । सीशम ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया । जब यज्ञ के समाप्त होने पर आचार्य वसिष्ठ जी वहाँ से चले गये तब एक राक्षस वसिष्ठ जी का रूप धारण कर वहाँ आकर कहने लगा—यज्ञ की समाप्ति पर मुझे मनुष्य-मांस युक्त भोजन कराया जाना चाहिये, इसलिए तुम वैसा भोजन बनवाओ, मैं अणु भर में लौट कर आता हूँ । यह कहता हुआ वह वहाँ से चला गया । फिर वह रसोइये का रूप धारण कर राजाज्ञा से मनुष्य मांसमय भोजन बना कर राजा के समक्ष लाया । राजा ने उसे स्वर्णपात्र में रखा और वसिष्ठजी के आने पर उसने उन्हें वह नरमांस निवेदन किया । तब वसिष्ठ जी ने मन में विचार किया, यह राजा कितना कुटिल है जो जानते हुए भी मुझे यह मांस दे रहा है । फिर यह जानने के लिये कि यह किस जीव का मांस है, उन्होंने समाधि का आश्रय लिया और

ध्यानावस्था में उन्होंने जान लिया कि मनुष्य का मांस है। तब तो वसिष्ठजी अत्यन्त क्रोधित और क्षुब्ध मन हुए और उन्होंने तत्काल ही राजा को शाप दे डाला कि तूने इस अत्यन्त अभक्ष्य नर मांस को मेरे जैसे तपस्वी को जान-बूझ कर आहार हेतु दिया है, इसलिये तेरी सोलुपता नरमास में ही होगी।  
( ४।४।४५५३ )

नरभक्षी राक्षसों के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। विष्णु पुराण (४।४।५६-६३) के अनुसार “एक दिन उस राक्षसत्व प्राप्त राजा ने एक मुनि को श्रुतुकाल में अपनी पत्नी से रमण करते हुए देखा। उस अत्यन्त भीषण राक्षस रूप वाले राजा को देखकर भय से भागते हुये उन दम्पति में से उसने मुनि को पकड़ लिया। उस समय मुनि पत्नी ने उससे अनेक प्रकार मनुष्य वित्त करतें हुये कहा—हे राजन् ! प्रसन्न होइये। आप राक्षस नहीं, इक्ष्वाकु-वंश के तिलक रूप महाराज मित्रसह हैं। आप सयोग सुख के ज्ञाता हैं, मुझ भृत्या के पति की हत्या करना आपके लिये उचित नहीं है। इस प्रकार उस ब्राह्मणी द्वारा अनेक प्रकार से विज्ञाप किये जाने पर भी जैसे व्याघ्र अपने इच्छित पशु को जंगल में पकड़ कर भक्षण कर लेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण को पकड़ कर उसने खा लिया।”

### मांस, मदिरा का सेवन और जुए की कुप्रवृत्ति—

राजवंशों में मांस का सेवन होता था। पुराणकार ने लिखा है। “राजा इक्ष्वाकु ने भृष्टका श्राद्ध का आरम्भ किया और अपने पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध योग्य भक्षण लाने की आज्ञा दी। उसने उनकी आज्ञा मानकर धनुषबाण को ग्रहण किया और वन में आकर मृगों को मारने लगा। उस समय अत्यन्त क्षुधात् होने के कारण विकुक्षि ने उनमें से एक चरमोक्ष भक्षण कर लिया और दोष मांस पिता के समक्ष लाकर रखा।” (४।२।१५-१६)

मदिरापान के भी अनेकों उदाहरण पुराण में दिये गये हैं जिनसे विदित है कि उस समय मदिरा का प्रचलन था और उसे राजवंश में बुरा नहीं माना जाता था।

शतधन्वा से प्राप्त एक म्यमन्तक मणि अक्रूरजी के पास थी, उस पर काफी विवाद हुआ, उसे सभी हथियाना चाहते थे, बलरामजी की दृष्टि उस पर थी परन्तु उसे सुरक्षित रखने के लिये पवित्रता का जीवन व्यतीत करना आवश्यक था । इसलिये विवाद का निराकरण करते हुए कृष्ण ने कहा “यदि भार्य बलरामजी इसे अपने पास रखते हैं तो उन्हें अपने मदिरा पान आदि सभी भोगों को छोड़ना पड़ेगा ।” (४।१३।१५७) ।

“जब मनोहर मुख वाले बलरामजी वन में घूम रहे थे, तब मदिरा की गन्ध पाकर उन्होंने उसके पान करने की इच्छा की ।” (५।२५।५) “एक दिन बलरामजी रैवतीछान में रैवती और अन्य सुन्दरियों के साथ बैठे हुए मद्य पी रहे थे ।” (५।३६।११) ‘फिर कृष्ण बलरामादि सब यादव रथों पर चढ़कर प्रभास क्षेत्र गये । वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सभी यादवों ने महापान किया ।” (५।३७।३८-३९) ।

यथा राजा, तथा प्रजा । जब राजा मदिरा का सेवन करते थे तो प्रजा भी अवश्य करती होगी ।

कृष्ण और बलराम को जुआ खेलने वाला भी बताया गया है । यथा “प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध का विवाह सत्कार पूर्ण हो चुकने पर कलिगराज आदि प्रमुख नरेशों ने स्वामी से कहा—यह बलराम जी छूतक्रीडा में चतुर न होते हुए भी उसके बड़े इच्छुक रहते हैं ।” (५।१८।१०-११) ‘तब बल-मद से उत्पन्न हुआ स्वामी उन राजाओं से बहुत अच्छा’ कहकर सभा में गया और बलरामजी के साथ छूतक्रीडा करने लगा ।” (५।१८।१५) (५।३४-३५) में श्रीकृष्ण को जुआ खेलते हुए दिखाया गया है ।

### अवैध सन्तान—

काम के वशीभूत होकर अवैध सन्तानों को उत्पन्न करने की भी घटनाओं का पता चलता है । “जब उर्वशी ने पुरुखा को देखा तो उसके सुन्दर रूप को देखकर वह आवर्षित हुई । अन्य अप्सराओं ने भी उसके साथ पिहार करने की इच्छा प्रकट की । एक वर्ष की समाप्ति पर जब राजा पुरुखा पुनः वहाँ

पहुँचे तो उर्वशी ने उन्हें 'प्रायु' नामक एक शिशु प्रदान किया। फिर उसने उनके साथ एक रात्रि रहकर पाँच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए गर्भ धारण किया।" (४।६।६८-७४)।

ब्रह्मा के पुत्र और अग्नि के पुत्र चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण किया और अनुचित रूप से व्यभिचार किया। इस पर घोर युद्ध हुआ और तारा बृहस्पति को मिल गई। तारा को गर्भ रह गया था। इस पर बृहस्पति ने तारा से कहा कि मेरे क्षेत्र में दूसरे के पुत्र को धारण करना अनुचित है। इस प्रकार की घृष्टता ठीक नहीं है। इसे निकाल कर फेंक दो। तारा ने उस गर्भ को सीको की भाँडों में फेंक दिया। तारा ने स्वीकार किया कि यह गर्भ चन्द्रमा से है।" (४।६।२-२२)।

प्रबंध संतान की उत्पत्ति चरित्रहीनता का लक्षण है।

### कामासक्ति और भोगलिप्सा—

कामासक्ति और भोग की कुछ विचित्र घटनाएँ विष्णु पुराण में दी गई हैं। 'एक बार सत्यधृति (महिल्या के परपोत्र) ने अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी को देखा तो उसके प्रति कामासक्त होने से उनका बीर्य स्थलित होगया और सरसण्डे पर जा गिरा।' (४।१०।६५)।

विश्वामित्र की तरह वरुण नामक ऋषि का एक अप्सरा के जाल में फँसकर लम्बे समय तक भोगासक्त होने का वर्णन है। विवरण इस प्रकार है। (१।१५।११-२१) "प्राचीन काल में वेदज्ञ ऋषियों में श्रेष्ठ वरुण नामक एक ऋषि हुए, जिन्होंने गोमती के सुप्रसन्न तट पर घोर तपस्या की। तब इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिये प्रमत्तोत्था नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा नियुक्त की, जिसने उन महर्षि का चित्त चञ्चल कर दिया। उनका मोह ज्ञान में पड़ कर वे महर्षि सौ वर्ष में भी प्रायिक काल तक मदगन्धन में भागामत्त पड़े रहे। इसके पदचान् एक दिन उन अप्सरा ने उन महर्षि में बहा—हे प्रह्वान ! अब मैं स्वर्ग लौक तो प्रस्थान करूँगी, आप प्रमत्त होकर मुझे जाने की अनुमति दीजिये। उसको बात सुनकर उगम प्राप्तियान ऋषि ने कहा कि



अभी कुछ दिन और ठहरो । उनके अनुरोध पर वह अप्सरा सौ वर्ष तक और उनके साथ रहती हुई विविध भोगों को भोगती रही । तब उसने पुनः उनसे कहा कि अब मुझे स्वर्ग जाने की अनुमति दीजिये । इस पर ऋषि ने उससे कहा कि अभी कुछ दिन और ठहरो । इस प्रकार फिर सौ वर्ष व्यतीत हो गये । तब उसने मुसका कर मुनि से कहा—“भगवन् ! अब मैं स्वर्गलोक को जा रही हूँ ।” यह सुन कर मुनि ने उसे अपने हृदय में लगा लिया और बोले कि वहाँ तो तुम्हें बहुत समय लगेगा, इसलिये अभी धूल भर तो रक्को । तब वह श्रेष्ठ कटि बाली अप्सरा उन ऋषि के साथ दो सौ वर्ष से कुछ कम समय तक और क्रीड़ा करती रही ।

वह अप्सरा जब-जब ऋषि से स्वर्ग लोक को जाने की बात कहती, तब-तब कण्डु ऋषि उससे ठहरने का आग्रह करते ।

जब काम तपस्वी ऋषियों को भी पतित करने में समर्थ है तो साधारण व्यक्तियों की क्या विनाश है । अतः इसे काम के प्रति सावधान रहने के लिये चेतावनी समझना चाहिये ।

भोगों में लिप्त होने का राजा ययाति का उदाहरण अपने ढंग का एक ही है । वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी उसने एक हजार वर्ष तक भोग करने की इच्छा व्यक्त की । दो पुत्रों ने तो उसे अपना यौवन देने से इन्कार कर दिया परन्तु पुत्र ने ययाति की वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था दे दी यौवन प्राप्त कर के ययाति ने एक हजार वर्ष तक विश्वाची और देवयानी अपनी पत्नियों के साथ अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग किया । ( ४।१०—१।२२ )

सम्बन्धे समय तक भोगों में लिप्त होना एक दोष है और पुत्र का यौवन छीन कर वासना की तृप्ति करना दूसरा दोष है । पुत्र की सुलियों को छीनने वाले पिता इस घोर कलियुग में भी नहीं मिलते हैं ।

चन्द्रमा ने देवगुरु पत्नी तांग में व्यभिचार किया । गुरु पत्नी शिष्य के लिये पूज्य होती है । उस पर आसक्त होना घोर पतित अवस्था का

परिचायक है। इन्द्र ने छत्र से महित्या को दूषित किया। कामासक्त पुरुष किसी भी अनुचित उपाय को अपनाने में सकोच नहीं करता।

### अश्लीलता का प्रदर्शन—

कृष्ण की रास लीला में कुछ अश्लीलता की भी गन्ध आती है। “एक चतुर गोपी श्रीकृष्ण के गीत की प्रशंसा करते हुये अपने बाहुओं को पसार कर उन से लिपट गई।” “गोपियों के कपोलों को स्पर्श करती हुई श्री कृष्ण की भुजाएँ उनमें पुलकावलि रूपी धान्य को उत्पन्न करने के निमित्त स्वेद रूपी मेघ हो गई।” ( ५।१३।५५ )। “वे रास रम की रसिका गोपियाँ अपने पति, पिता, माता, भ्राता आदि के द्वारा रोकी जाने पर भी न रुकती और रात्रि में कृष्ण के साथ रास विहार करती थी।” ( ५।१३।५६ ) “शत्रुओं के मारने वाले मधुसूदन भी अपनी कँशोरवस्या के भाव में रात्रिवाल में उन गोपियों के साथ विहार करते थे।” ( ५।१३।५७ )।

### बहुपत्नी-प्रथा—

भ्राज तो किसी की एक से अधिक पत्नी नहीं होती है। यदि कोई विरला उदाहरण मिल भी जाए तो उसे असम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और समाज भी उस हेय दृष्टि से देखता है। परन्तु विष्णुपुराण कालीन भारत ऐसा नहीं था। राजा प्रायः विलासी और कामी होते थे, एक पत्नी से उनकी यासना की भूय नहीं मिटती थी इसलिए वह अपने को विवाह करते थे। इस पर उस समय कोई रोक नहीं थी और न बहु-विवाह ही बुरी दृष्टि से देखा जाता था। उदाहरण के लिए “ब्रह्मा जी ने अपनी दस कन्याएँ धर्म के और तेरह कश्यप के साथ व्याह दी। फिर बाल-परिघटन में नियुक्त हुई अश्विनी आदि २७ कन्याएँ चन्द्रमा को दी।” ( १।१५—७७।७८ ) ( ४।६।६ ) में चन्द्रमा को ब्रह्मा का पौत्र कहा गया है परन्तु यहाँ उन्हें दामाद बना दिया गया है।

“दश प्रजापति ने साठ कन्याएँ उत्पन्न भी, उनमें से दस धर्म को, १३ कश्यप की, २७ चन्द्रमा की और चार अरिष्टनमि को व्याह दी।” ( १।१५—१०३।४७ )।

महर्षि सोमरि ने राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह किया ( अंश ४, अध्याय २ )

“राजा सशिविन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थी जिन के दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए ” ( ४।१२—४।५ ) ।

सात बहिनो का विवाह वसुदेव जी के साथ हुआ था । ( ४।१४।१४ )

भानन्द दुर्धुभि नाम वाले वसुदेव जी की पौरवी, रीहणी, मदिरा, भद्रा, देवकी, नाम की अनेक पत्नियाँ थी । ( ४।१५।१८ )

इस मृत्युलोक में प्रकट हुए भगवान् वसुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुई । उन सब रानियों के उदर से भगवान् के एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न हुए । ( ४।१५—३४।३५ ) ।

‘भरत की तीन पत्नियाँ थी । उन्होंने ६ पुत्र उत्पन्न किये ।’ ( ४।१४।१४ )

‘कालिय की सैंकड़ो नाग पत्नियाँ थी ।’ ( ५।६।१६ ) ( स्मरण रहे कालिय नाग जाति के नेता थे ) ।

“हविमणी के अतिरिक्त भी कृष्ण की सात रानिया थी । इनके अतिरिक्त कृष्ण की १६००० रानिया और थी ।” ( ५।२८—३।५ )

सम्भव है उस समय स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की सख्या कम हो और एक से अधिक स्त्रियाँ रखने की स्वतन्त्रता हो ।

### बहु संतान प्रवृत्ति—

आज देश की आबादी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है । आबादी का तीव्र गति से बढ़ना राष्ट्र की सब से गम्भीर समस्या होगई है । आबादी से सम्बन्धित ख़ास सफ़ट ने जनको क्षेत्रों में अकाल की सी स्थिति उत्पन्न कर दी है । विदेशों से काफी तादाद में ख़ास सामग्री भगवान पर भी पूर्ति नहीं हो पा रही है । इसलिये आज अधिक संतान अभिवाप सिद्ध हो रही है क्योंकि इस महगाई के युग में अधिक बच्चों का ठीक तरह से पालन पोषण सम्भव नहीं है ।

प्राचीनकाल में स्थिति इसके विपरीत थी । आबादी कम थी । कृषि प्रधान देश होने के कारण खाद्य सामग्री आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होती थी, इसलिये लोग अधिक संतान उत्पन्न करने के आकांक्षी रहते हैं । यह विष्णु पुराण के कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा —

“दक्ष प्रजापति के प्रसूति से २४ कन्याएँ उत्पन्न हुईं ।” ( १।७।२२ ) । “सुना जाता है कि फिर दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याएँ उत्पन्न की ।” ( १।१५।१०३ ) । “वन्दवानर के वे दोनो कन्याएँ मरीचि पुत्र कश्यप जी की पत्नियाँ हुईं जिनके साठ हजार पुत्र हुए ।” ( १।२१।८ ) । “रैवत का पुत्र रैवत ककुषी हुमा जो अत्यन्त धार्मिक और अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ था ।” ( ४।१।६५ ) । “शतबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्वाता ने विवाह किया जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ उत्पन्न हुईं ।” ( ४।२।६६ ) । “कालान्तर में उन राजकुमारियों के द्वारा सौभरि मुनि ने डेढ़ सौ पुत्र उत्पन्न किए ।” ( ४।२।११२ ) । भगवान् श्रीर्व ने सगर पत्नियों को वरदान देते हुए कहा । “तुम में से एक से वंश वृद्धि करने वाला एक पुत्र उत्पन्न होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी ।” ( ४।४।३ ) ।

“रजि के अत्यन्त बली और पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।” ( ४।६।१ ) । “राजा शशिविन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थी जिनसे दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे ।” ( ४।१२।४।५ ) । “भगवान् वसुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुईं जिनके उदर में भगवान् ने एक लाख अम्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये थे ।” ( ४।१५—३४।३५ ) । “महर्षि ब्यवन के वंशज सोमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।” ( ४।१६।७२ ) । धृतराष्ट्र द्वारा गान्धारी से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए । ‘श्री कृष्ण ने मुर के सात सहस्र पुत्रों का अपने चक्र की धार रूप ज्वाला में पतंग के समान जला दिया ।” ( ५।१८—

“अत्यन्त बली भगवान् ने नरकामुर के अन्तपुर में जाकर सोलह हजार कन्याओं को देखा ।” ( ५।१८।३१ ) । “इसी प्रकार भगवान् की

अन्य पत्नियो से भी अठाईस हजार आठ सौ पुत्रों का जन्म हुआ ।”  
( ५।३।५ ) ।

सख्या के सम्बन्ध में अतिशयोक्तियाँ इसमें अवश्य हैं परन्तु अधिक सतान उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का इससे पता चलता ही है । अधिक सतान भी उस समय गौरव का कारण मानी जाती होगी ।

### विवाह सम्बन्धी अनियमितताएँ—

विवाह सम्बन्ध से विकृतियाँ आज में पनपी हो, ऐसी बात नहीं है । पहले भी यह विद्यमान थी । युग की परिस्थितियों के अनुसार उनका रूप भले ही कुछ बदल गया हो । आज मस्तील फिल्म्स को देख कर युवक युवतियाँ वासना की भूख से प्रेरित होकर प्रेम का नाटक करते हैं और अपने जीवन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं । इस उत्तेजना में वह अपने धर्म सस्कृति और मान्यताओं को भी तिलाजलि देते हैं । अनेकों हिन्दू युवक और युवतियों ने इस अन्धे प्रेम के बशीभूत होकर अपनी सस्कृति को छोड़ने का निश्चय किया । प्राचीनकाल में भी इस प्रकार के विवाह होते थे ।

राजा पुरुरवा—स्वर्ग की प्रधान अप्सरा उर्वशी पर आसक्त हो गये और उससे विवाह का, प्रस्ताव किया । ( ४।६-३६।४० ) । उर्वशी ने अपनी कुछ शर्तें रखी जो राजा ने स्वीकार कर ली और विवाह हो गया ।

उषा और अनिरुद्ध का उदाहरण भी इसका साक्षी है । उषा स्वप्न में एक युवक की देख कर उसे अपना जीवन साथी बनाने को उद्यत हो गई । इसके लिये उसने काफी प्रयत्न किया । देश-विदेश में अपने दूतों को भेजा होगा । जब युवक का पता चल गया तो उसे वहाँ मगवाया गया और विवाह हो गया । यह गन्धर्व विवाह का अनोखा उदाहरण है ।

अनमेल विवाह की भी ऐसी घटना दी गई है जिसकी पुनरावृत्ति आज जैसे घोर कलयुग में भी सम्भव नहीं है । राजा ज्यामघ की रानी सैव्या से कोई सन्तान नहीं थी परन्तु वह उसके भय से दूसरा विवाह नहीं कर सकता था । एक बार युद्ध में उसे एक सुन्दर राजकुमारी मिल गई । वह उस पर आसक्त

होगया और उससे विवाह की योजना बनाई ताकि उसको कोई सन्तान हो जाये। इसी दृष्टि से राजा ने राजकुमारी को अपने रथ पर बिठा लिया और बोचा कि शैव्या की अनुमति से इसमें विवाह कर लूँगा। जब राजधानी पहुँचा तो शैव्या ने राजकुमारी के सम्बन्ध में पूछा तो राजा ने भय से कहा कि यह मेरी पुत्रवधू है। इस पर शैव्या ने कहा कि मेरा तो कोई पुत्र नहीं है फिर आपकी पुत्रवधू कैसे हुई। राजा न डरते हुये कहा “मैं ने तुम्हारे होने वाले पुत्र के लिये अभी से यह पत्नी निश्चित कर दी है। रानी इस पर सहमत होगई। कुछ समय व्यतीत होने पर शैव्या के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ उसी से उस राजकन्या विवाह हुआ। ( ४।१२—२३।३७ )।

लड़का अभी इस सनार में आया नहीं और युवती कन्या से उसका विवाह निश्चित हो गया। नियमानुसार तो लड़के की आयु लड़की से ६-७ वर्ष अधिक होनी चाहिये। उस युवती की आयु यदि कम से कम १५ वर्ष मानी जाये तो भी वह पति से १६ वर्ष बड़ी हो गई क्योंकि उसके भाने के बाद शैव्या ने गर्भ धारण किया था। बृद्धों के साथ तो छोटी आयु की कन्याओं के विवाह होते देखे गये हैं परन्तु बड़ी आयु की लड़कियों के साथ छोटी आयु के लड़कों के विवाह कम ही सुनने में आते हैं। यह घटना सामाजिक पतन की ही सूचक है।

हिन्दू संस्कृति में सपिण्ड विवाहों का निषेध है परन्तु कृष्ण की भाना से वह सम्पन्न हुए हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने हस्मी की कन्या की कामना की और उस कन्या ने भी प्रद्युम्न का स्वयंवर में उरण किया। ( ५।१८।६ ) हस्मी—कृष्ण-पत्नी रुक्मिणी का भाई था। इसका भयं हुआ प्रद्युम्न ने अपने मामा की कन्या से विवाह किया जो आज वही भी सम्भव नहीं है। प्रद्युम्न ने उस हस्मी सुता में धनिष्ठ नामक पुत्र उत्पन्न किया। श्री कृष्ण ने हस्मी की पौत्री के साथ उसका विवाह किया। श्रीकृष्ण से दूँव होते हुये भी हस्मी ने अपने दोहित को अपनी पौत्री देने का निश्चय कर लिया। हिन्दुसंस्कृति में यह विवाह वैध नहीं है परन्तु हुए हैं और वह भी श्रीकृष्ण के संरक्षण में।

## ऊँच नीच भेद-भाव—

ऊँच-नीच के भेदभाव मानव के अपने ही बनाये हुये हैं। भगवान् ने सब को समान अधिकार देकर पृथ्वी पर अवतरित किया है। ईश्वर द्वारा बनाई हुई जितनी वस्तुएँ हैं, सभी प्राणी उनका समान रूप से उपभोग करते हैं। सूर्य की किरणों, वायु, जल आदि किसी जाति या प्राणी विशेष के साथ किसी बात का भी पक्षपात नहीं करते। प्राकृतिक वस्तुओं का समवितरण प्रेरित करता है कि हमें हर प्राणी के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये। जातियों और वर्गों के भेदभाव आपसी संघर्षों की उत्पत्ति के ही कारण बनते हैं। हिन्दू संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र-चार वर्णों कार्य की सुविधा की दृष्टि से बनाये गये हैं। बड़े-छोटे की दृष्टि से नहीं। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हैं। महाभारतकार का कहना है कि पहले यहाँ केवल एक ब्राह्मण वर्ण ही था। शान्ति पर्व अ० १८८ के श्लोक १० में भृगु ने कहा है 'वर्णों की कोई विशेषता नहीं। इस समस्त ससार का ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणमय ही बनाया है पश्चात् कर्मों के अनुसार वर्ण बने।' भागवतकार का भी यही कथन है। "सर्वं प्रथम एक ही सर्ववाङ्मय प्रणव, एक ही ब्रह्मैव नारायण, एक ही अग्नि और एक ही वर्ण था।" (६।१४) भगवान् ने गीता (४।१३) में भी कहा है कि मैंने गुण कर्म के विभाग के अनुसार ही चार वर्ण उत्पन्न किये हैं। हर वर्ण को अपने धर्म और कर्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करना चाहिये। यही भगवान् ने आदेश किया।

जिन जातियों ने समानता के सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप दिया, वह तीव्र गति से बढ़ती गई और अब भी बढ़ रही हैं। परन्तु जहाँ ऊँच-नीच के रोग ने जन्म लिया, उसका ह्रास होता चला गया। दुर्भाग्य से हिन्दू जाति का एक यह विशेष अवगुण रहा है। कुछ कुण्ठित बुद्धि के शास्त्रकारों ने भी इसका समर्थन किया और उसके आधार पर यह रोग व्यापक रूप से फैला। शूद्रों को छोटा व घृणित ममभ्र कर उनकी घोर उपेक्षा की गई, उनसे अधिकार छीन लिये गए, समाज में उनको अपने साथ बैठने तक नहीं दिया गया, जहाँ तक हो सका, उन्हें दबाया गया। अन्य सम्प्रदायों ने इस कमजोरी का लाभ

उठाया । उन्हें गले लगाया गया और सभी प्रकार की सुविधाएँ दी गईं । भारत में सर्व प्रथम १७०० मुसलमान आये परन्तु आज उनकी सन्ख्या करोड़ों में है । उपेक्षित जातियों का धर्म परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है । सारे दक्षिण पूर्व एशिया में हिन्दुओं का राज्य था, परन्तु कुण्ठित विचारधारा से धीरे-धीरे सभी राज्य समाप्त हो गये, आज उनके भवशेषों को देख कर ही सन्तुष्ट होना पड़ता है ।

वर्णों में भेद होने के कारण खानपान में भी भेद हो गया । अपने को ऊँचा समझने वाला वर्ण दूसरे के हाथ का बनाया भोजन नहीं करता । दूसरे वर्णों का क्या एक वर्ण में ही विभिन्न प्रकार के भेदों ने जन्म लिया और खानपान के नियम बन गये । इन विषयों का उल्लेख होने पर विवाद उठ खड़े होते हैं । विष्णु पुराण ( ५।३७।४१।४५ ) के अनुसार यादवों में भी यह मतभेद थे और उनका नाश इसी कारण से हुआ । पुराणकार ने कहा है— 'मेरा पदार्थ शुद्ध है, तेरा भोजन ठीक नहीं । इसी प्रकार विवाद करते हुए उन यादवों में सघर्ष होने लगा । तब वह दैवी प्रेरणा से परस्पर शस्त्र प्रहार करने लगे और जब शत्रु भी समाप्त हो गये, तो उन्होंने निकटवर्ती क्षेत्र से सरकण्डे ग्रहण किये । वह सरकण्डे बच्च जैसे लग रहे थे, उन्हीं के द्वारा वे परस्पर में आघात-प्रत्याघात करने लगे ।'

यह कुप्रवृत्ति आज भी विद्यमान है, हिन्दू सस्कृति के उत्थान के लिये इसका जड़ से उन्मूलन होना आवश्यक है ।

## बड़ों का अनादर—

यदुवश के नाश का कारण बड़ों के प्रति घनिष्टता का प्रदर्शन बताया गया है । वर्णों इस प्रकार है—

“एक बार यादवों के बानकी ने त्रिगडारक क्षेत्र में विश्वामित्र, कश्यप और नारदादि महर्षियों को देखा । तब उन्होंने आश्रयार्थी के पुत्र साम्ब को खो वेष्ट में सजा कर उन मुनियों से प्रणाम करके पूछा कि—‘इसे पुत्र की दृष्टि में तो बताइये इससे क्या उत्पन्न होगा ?



यादव बालको की हँसी को ताड कर उन महर्षियों ने क्रोध पूर्वक कहा—इसके मूल उत्पन्न होगा जो सब भ्रोर से यादवों के नाश का कारण हो जायगा। मुनियों के ऐसा कहने पर उन बालको ने राजा उग्रसेन को आकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया। उग्रसेन ने उस मूल का चूर्ण करा कर समुद्र में फिँका दिया, जिससे बहुत से सरकड़े उत्पन्न हो गये। उस मूल का भाले की नोक जैसा एक भाग चूर्ण करने से रह गया, उसे भी समुद्र में डलवा दिया था, उस भाग को एक मछली ने निगल लिया। मछिरो द्वारा पकड़ी गई उस मछली के चीरने पर निकला हुआ मूल का वह टुकड़ा जरा नामक व्याध ने उठा लिया। ( ५।३७।६।१४ )

यही श्री कृष्ण के पञ्चभौतिक शरीर को नष्ट करने का कारण बना। जब यादव घापस में लड़ने-झगड़ने लगे तो इन्हीं सरकड़ों से एक दूसरे को मारा और यदुवंश का नाश हुआ।

इस उदाहरण से यह शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया है कि जब समाज इतना पतित हो जाता है कि वह सामान्य शिक्षाचारों का भी पालन नहीं कर सकता, तो इसे उसके भावी नाश का ही लक्षण समझना चाहिए। साम्ब के पैट से ऋषियों के घाप से मूल निकला या नहीं, इस विवाद में पड़ने से कोई लाभ नहीं। हमें तो यह देखना है कि जिन बच्चों को इतनी भी नैतिक शिक्षा न दी जाती हो कि उन्हें अपने बड़ों के साथ किस नम्रता और सम्मान का व्यवहार करना चाहिए, वह अपना भौतिक विकास कुछ भी करलें आत्मिक प्रगति की ओर वह एक पग भी नहीं बढ़ सकते। पुराणकार की दृष्टि से जब समाज में भ्रष्ट विचारधारा का व्यापक प्रसार हो जाता है, तो उस समाज को नष्ट हुआ हो समझना चाहिए।

**अपहरण—**

वलपूर्वक अपहरण अन्यायपूर्ण कार्य है, आज भी हम नित्य गमावार पत्रों में इसे पढ़ते रहते हैं। परन्तु प्राचीन काल में भी ऐसी घटनाएँ होती थी। यह राज्य तानन की प्रव्यवस्था की गूँक है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

“उर्वशी और पुरुरवा के मध्य हुई प्रतिज्ञा को जानने वाले विश्ववसु ने एक रात्रि में गन्धर्वों के साथ पुरुरवा के शयनगार में जाकर उसके एक भय का अपहरण कर लिया। तब उर्वशी ने कहा कि मुझ अनाथ के पुत्र का अपहरण करके कौन लिये जा रहा है ?” ( ४।६५।५३ )। “जब विवाह होने में एक दिन शेष था तब श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया।” ( ४।२७।६ )। “अर्जुन के देखते-देखते ही उन महीरो ने एक एक स्त्री को घसीट-घसीट कर हरण कर लिया।” ( ५।३८।२६ )। “एक बार जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयंवर से बलपूर्वक हर लिया था।” ( ५।३५।४ )

### लोभ के दुष्परिणाम—

लोभ के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालने वाली घटनाओं का भी यदा-कदा वर्णन है। राजा सनजित के पास एक स्पष्टमस्तक मणि थी। अक्रूर कुलवर्मा और दत्तधन्वा ने पद्म्यन्त्र रचा और मणि को प्राप्त करने के लिये दत्तधन्वा ने सोते हुए सनजित की हत्या कर दी ( ४।१३।७१ )। सनजित सत्यभामा का पिता था। उसने श्री कृष्ण को प्रेरित किया कि वह उसके पिता की हत्या का बदला लें। दत्तधन्वा श्रीकृष्ण के भय से घर से भाग निकला। कृष्ण बलदेव ने उसका पीछा किया। कृष्ण ने चक्र से दत्तधन्वा का मस्तक काट दिया। एक मणि के लिये दो हत्याएँ हुईं। इन हत्याओं के पीछे मणि को प्राप्त करने का लोभ ही था।

संक्षिप्त में यह विष्णु कालीन भारत की सामाजिक दुर्दशा का पुराण के ही काण्डों में चित्राकृत किया गया है। इस से उस समय की सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

## सुधार और आसुरी शक्तियों का विनाश

पिछले अध्याय में विष्णु पुराण में भारत की सामाजिक दुर्दशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस दुर्दशा को ऐसे ही बने रहने दिया गया है, ऐसी बात भी नहीं है। अनेको प्रकार के सुधार किये गये, आसुरी शक्तियों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया गया और देवस्व पूष्ट किया गया, निरकुश राजाओं का विरोध किया गया, उनके शासन को बदला गया और राष्ट्र में हर प्रकार की शान्ति बनाए रखने का प्रयत्न किया गया। जहाँ पतन के लक्षण मिलते हैं। वहाँ उत्थान की व्यावहारिक रूप रेखा भी देखने की उपलब्ध होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है —

ऐसा लगता है कि कृषि का विकास राजा पृथु के काल में ही हुआ और नगरो की बसाने की व्यवस्था का समय भी वही है। विष्णु के पुराण (१।१३। ८३ ८८) में कहा है " राजा पृथु ने अपने धनुष की कोटि से हजारों पर्वतों को उखाड़-उखाड़ कर एक ही स्थान पर एकत्र कर दिया। इस से पहले पृथ्वी समतल नहीं थी तथा पुर, ग्राम आदि का विभाग भी नहीं हुआ था। उस समय अन्न, कृषि, व्यापार आदि का कोई क्रम नहीं था। इसका आरम्भ पृथु के शासन काल में ही हुआ। जहाँ-जहाँ पृथ्वी समतल हुई, वही-वही प्रजा जा बसी। उस समय तक केवल फल मूलादि का आहार किया जाता था। उस समय राजा पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया और अपने हाथ से पृथ्वी रूपिणी गौ से सब शस्यो का दोहन किया। उमी अन्न के आधार पर सब प्रजा जीवन यापन करती है। "

इससे पूर्व पृथ्वी और पृथु का सवाद है। पृथु जनता के हित के लिये पृथ्वी का बध करना चाहते हैं। पृथ्वी भयभीत होकर कहती है मैंने जिन औपधियों को अपने में लीन कर लिया है, यदि आप चाहे तो मैं उन्हें दूध रूप में दे सकती हूँ। (१।१३।६७)। इससे भूमि सुधार की वृहद् सफल योजनाओं का परिचय मिलता है।

जब राजा वेन के समय में शासन में घोर अव्यवस्था फैली और दीन दुःखी मनुष्या ने धनवानों को लूटना आरम्भ कर दिया (१।१३।३१) तो मह-

पियो ने परामर्श किया और वेन को दाँवे हाथ को मथकर पृथु की उत्पत्ति किया (१।१३।३१) । जब ब्राह्मणों ने देखा कि वेन जुलम डाल रहा है तो वेन के स्थान पर योग्य शासक को नियुक्त किया गया ।

पृथु की सुव्यवस्था का प्रतीकात्मक रूप में वर्णन करते हुये कहा गया है “ उनका समुद्र में जल स्थिर होकर रहता था, और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे । इसमें उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ । पृथु बिना जोते बोजे ही धान्य उतार करती और पकाती थी, विन्तन मात्र से भन्न पक जाता था । गाएँ कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थी तथा पुष्प-पुष्प में मधु भरा रहता था ” (१।१३।८-५०) ।

कृष्ण ने राष्ट्र में अशान्ति उत्पन्न करने वाली आसुरी शक्तियों का दमन किया । कालिय नाग से उन्होंने युद्ध किया और उसे परास्त कर यमुना क्षेत्र से हटाने के लिए बाध्य किया । नाग उस समय एक जानि थी और कालिय उस जाति का नेता था । वह जाति छूट मार कर जनता को परेशान करती थी । कृष्ण ने उन लोगों को अन्धन बसाने के लिए बाध्य किया (पञ्चम अर्ध-अ० ८) ।

कृष्ण बलराम ने धेनुकासुर का वध किया ( ५।८।६ ) । बलराम जी ने प्रलम्बासुर को यमपुर पहुँचाया ( ५।६।३६ ) । कृष्ण ने बेशी दैत्य को समाप्त किया (५।१६।६-१०) । चाण्डूर मुष्टिक का अन्त किया (५।२०।७१) । कुवलिया पीड को परास्त किया (५।२०।३६) । फिर कस को पछाड़ कर उम के भी प्राण निकाल लिए (५।२०।८७) । कृष्ण और बलराम ने जरासंध की सेना को पराजित किया (५।२१।८) और नंद से हजारों कन्याओं को छुड़ाया ।

जब हिरण्यकशिपु के मस्तिष्क में विकृति आई और वह भयन की ईश्वर मानने लगा तो भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर उसका वध किया ( १।२०।३२ ) । कोई-नर-निह-मानवों म निह ही ऐसे कुमार्गियों का अन्त कर सकता है ।

पुराणकार प्रेरित करते हैं कि जब-जब धर्म की हानि हो, धर्म का योलवाला हो, घोर सामाजिक अध्यवस्था फैल रही हो तो महान् आत्माएँ अवतरित होकर सुधार करती हैं ।

## भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा

भारतीय संस्कृति आदश संस्कृति है। सारे विश्व की सम्म्यता और शिक्षाचार की शिक्षा और प्रेरणा देने का श्रेय इसे ही प्राप्त है। इसकी उत्कृष्टता और आदर्शवादिता के कुछ उदाहरण विष्णु पुराण से चुनकर नीचे दे रहे हैं :—

### राष्ट्रीय नेता-ब्राह्मण की कर्तव्य-निष्ठा—

प्राचीन वरुण व्यवस्था में ब्राह्मण देश का नेता, कर्णधार और उद्गायक होता था, क्षत्रिय शासक इनके निर्देशन में ही शासन चलाते थे। वह तपस्वी त्यागी व निःस्वार्थी होते थे। राष्ट्र के रोगों का निरीक्षण करके उनका उपचार करना ही उनका कार्य होता था। वह ज्ञान के धनी देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाए रखते थे, अपने यजमान का चरित्र निर्दोष रखना तो वह अपना आवश्यक कर्तव्य मानते थे। जब-जब भी देश पर सङ्कट आया, उन्होंने वैसे दूर करने के नये प्रयत्न किये।

विष्णु-पुराण के अनुसार वेद एक निरंकुश, अहङ्कारी, नास्तिक राजा हुआ था। हिरण्यकश्यप को ही तरह भगवान् की अपेक्षा अपने सम्मान पर अधिक बल देता था। उसकी पोषणा थी—“मेरे आदेश का पूर्ण रूप से पालन करो, किन्हीं को भी दान, यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणों ! जैसे स्त्री का परम धर्म पति सेना है, वैसे ही आपका परम धर्म मेरी आज्ञा का पालन है” (१।१३।२३-२४)। ब्राह्मणों ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह न माना और उमरी अनियमिततायें बढ़ती ही गई, तब उन्होंने उग्र मार डालने का निश्चय लिया। ऐसा लिखा है कि “पहिले से ही मृत दुष्ट उग्र राजा का मत्तपुन कुशों के आघात से बच कर दिया” (१।१३।२४)।

वेद की मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने वेद के दाँव हाथ को मधा, जिनम वेद पुन पृथु की उत्पत्ति हुई (१।१३।३८-३९) जिन्हें विधि पूर्वक राजा-शिकार देकर अनियमित किया गया (१।१३।४०)। उससे प्राप्त नया प्रजा को प्रथमत्र दिया था, उन्ही प्रजा को उग्रम प्रथमत्र दिया (१।१३।४८)। पृथु

के उन्नत राज्य के सम्बन्ध में वर्णन है कि “उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे, इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ। पृथ्वी जोते-बोये बिना ही अन्न उत्पन्न करती और पकाती थी, चिन्नन मात्र से ही अन्न पक जाता था, गोएँ कामधेनु के समान सर्व काम-प्रद थी तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था” (१।१३।४६-५०)।

राज्य में सुशासन, सुधार और सुव्यवस्था स्थापित होने का अर्थ उन ब्राह्मणों को है जिन्होंने शासन में से अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले तत्त्वों को निकास फेंका और ऐसे हाथों में सत्ता सौंपी जो प्रजा के हितों का सच्चे प्रयत्न में संरक्षण करने वाले थे। इससे राज्य में सुधार हुए और प्रजा प्रसन्न हुई और उसे एक भादर्य राज्य की सजा दी गई। आज ऐसे ब्राह्मणों का प्रभाव है। जब-जब देश ब्राह्मणहीन हो जाता है, सभी उस पर सड्डूट आता है, तभी सुशासन कुशासन में परिवर्तित हो जाता है। आज यह परम्परा प्रायः नष्ट हो गई है। मानस में स्वार्थपरता का बोलबाला होने के कारण यह प्रजा के हित की नहीं मोक्ष मकता। ऐसे ब्राह्मण भी नहीं हैं, जो वेद को हटाकर पृथुर्जने शासकों का नियुक्त करें। जब तक इस देश का ब्राह्मण पुनः नहीं जायेगा, उसका उत्थान असंभव ही है।

## धार्मिक उदारता-

वैष्णव धर्म एक उदार धर्म है। इसमें ऊँच-नीच के कोई भेद नहीं है। इसमें किसी वर्ग को नीचा समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं की जाती वरन् सबको गले से लगाया जाता है। सबको वैष्णव भक्ति का समान अधिकार है। भक्ति के क्षेत्र में अधिकारों की कोई दीवार खड़ी नहीं की गई है। यही इसकी महान् विशेषता है। विष्णु पुराण इसका साक्ष्य है। जम्बू द्वीप के वनों और जातिधों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि “उत्त द्वीप में आर्यक, कुरर, विदिश्य और भाभी सत्रक जानियाँ हैं, बड़ी क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। वहाँ अर्यक आदि जानिस ही सर्वेश्वर श्रीहरि का सोम हार से यजन करती हैं।” (२।१।१७, १८)

शात्मल द्वीप में क्षत्रिय, ब्राह्मण, पीत और कृष्ण यह जातियाँ रहती हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । यह यज्ञ करने वाले व्यक्ति सर्वात्मा, अथवा और यज्ञात्मा वायु रूप विष्णु का श्रेष्ठ यज्ञों से यजन पूजन करते हैं ।" (२।४।३०-३२)

"घषने-घषने कर्मों में लगी हुई चार जातियाँ दम्भी, दुष्मी, स्नेह और मन्देह संज्ञक हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । घषने प्रारब्ध को क्षीण करने के निमित्त शास्त्र सम्मत कर्म करते हुए बह्य रूप जनार्दन की उपासना से घषने प्रारब्ध फल के दाता उस घष्यन्ते उग्र महद्भार को क्षीण करते हैं ।" (२।४।३८, ४०) ।

"पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य संज्ञक वर्ण ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । वे वहाँ रुद्र रूपी भगवान् विष्णु का यज्ञादि से पूजन करते हैं ।" (२।४।५५, ५६) ।

"वहाँ वग, मागध, मानस और मदग नामक चार वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । उस शाक द्वीप में शास्त्र सम्मत कर्म करने वाले उन चतुर्वर्णों द्वारा सूर्य रूपी भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है ।" (२।४।७०, ७१) ।

इस धार्मिक उदारता के कारण वैष्णव धर्म का देश-विदेश में विस्तार हुआ । सभी वर्णों समान रूप से यज्ञों में सम्मिलित होते थे परन्तु खेद है कि आज उन अधिकारों को सीमित कर दिया गया है और एक विशेष वर्ग को ही यज्ञ करने का अधिकार दिया गया है । यह वैष्णव धर्म के मूलभूत निदानों का हनन है । यदि यही स्थिति बनी रहती तो यह धर्म भी सकुचित होता चला जायगा ।

**श्रद्धा-कृतज्ञता-विश्व बन्धुत्व की उच्चतम भावना—**

श्रद्धा भारतीय सस्कृति का प्राण है । इसे निकाल देने पर वह प्राणहीन सी ही हो जायेगी । भगवत्प्राप्ति की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिये भी यह आवश्यक है । इसीलिये इसे जाग्रत रखने और बढ़ाने के लिये अनेकों विधि-विधान

और उपाय बताये गये है ताकि इसके सहारे साधक निरन्तर ग्रामे बढता चला जाये । विष्णु पुराण (३।१।१।२६, ३६) में कहा है “स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता, ऋषि और पितरो का उन-उनके तीर्थों से तर्पण करे । देवताओं और ऋषियों के तर्पण में तीन-तीन बार और प्रजापति के लिये एक ही बार पृथ्वी में जल छोड़े । पितरो और पितामहों की तृप्ति के लिये भी तीन बार ही जल छोड़ना चाहिये, इसी प्रकार प्रपितामहों की तृप्ति करे, मातामह और उनके पिता और पितामह को यत्नपूर्वक तीर्थ जल से प्रसन्न करे । माता को, प्रमाता को, उसकी माता को, गुरु पत्नी को, गुरु को, मामा को, प्रिय मित्र को भयवा राजा को मेरा दिया हुआ यह जल प्राप्त हो । इस प्रकार कहता हुआ, सब भूतो के लिये देवादि का तर्पण करके अपने इच्छित सम्बन्धी को जल दे । देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गृह्यक, सिद्ध, ब्रह्माड, पशु पक्षी, जलचर, भूमिचर, वायु का आहार करने वाले सब जीव मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हो—ऐसा देवादि के तर्पण में बहे । सम्पूर्ण भरकों में स्थित हुए जो-जो जीव विभिन्न प्रकार की यंत्रणाएँ प्राप्त कर रहे हैं, उनकी तृप्ति के लिये जल देना है । जो मेरे बन्धु हैं भयवा भयन्धु हैं या पहिले किसी जन्म में बन्धु थे या जो मुझसे जल-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हो—धुर-पिपासा से अशक्त कोई भी प्राणी जहाँ कहीं भी हो वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस तिल-जल से तृप्त हो जाय ।”

बड़ा का सम्मान करना हिन्दू संस्कृति की एक महान् विशेषता है । यह सामान्य शिष्टाचार में सम्मिलित है । माता-पिता, गुरु व वृद्धजनों की आज्ञा पालन यहाँ साधारण नियम था, जिसका हर कोई पालन करता था । इस नियम में इतनी दृढ़ता आ गई थी कि वृद्धजनों का मृत्यु हो जाने पर भी उनके प्रति सम्मान बना रहता था । उस सम्मान के प्रतीक रूप में उन्हें जल से तर्पण आदि किया जान लगा । त्रिन पूजेका के नारण आज हमारा इतना उत्पन्न हो पाया है, उनसे उस कृपा के प्रति इतना प्रकट करना हमारा कर्तव्य हो जाता है । उनका व प्रदर्शन व लिये हो यह विधान बनाए गये हैं ।



कृतज्ञता का गुण मानवता का लक्षण है। जो इससे हीन है उसमें मानवता का अभाव समझना चाहिये।

यह कृतज्ञता, श्रद्धा और सहयोग की भावना केवल अपने सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं है। इसमें सभी प्राणियों को श्रद्धावलि प्रति की गई है। विश्व के सभी अभावग्रस्तों और दुःस्थियों के प्रति सद्भावना व्यक्त की गई है, शत्रुओं के प्रति भी सहानुभूति प्रकट की गई है। इससे विश्व बन्धुत्व की भावना जागृत होती है और हम समस्त विश्व के प्राणियों को अपना सम्बन्धी मानने लगते हैं। माता-पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री आदि के सीमित पारिवारिक सम्बन्धों से ऊँचा उठकर हम अपने दृष्टिकोण को विस्तृत करने की प्रेरणा मिलती है और हम सारे ससार को अपना परिवार मानने की प्रेरित होते हैं। यह भावना जब परिपक्व हो जाती है, उस उन्नत अवस्था को ही आत्म विस्तार, आराम बल्यार्ण, आत्मोन्नति आदि कहा जाता है।

### राम राज्य-आदर्श शासन-

शाक द्वीप में रामराज्य की सी स्थिति का वर्णन है। "उन सातों वर्षों में कहीं भी धर्म का क्षय, पारस्परिक कलह अथवा मर्यादा का नाश कभी नहीं होता।" (२।४।६८, ६९)। "वहाँ के निवासी रोग, शोक, राग-द्वेषादि से परे रहकर दस हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं। उनमें ऊँच-नीच, मने-मारने आदि जैसे भाव नहीं हैं और ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष तथा लोभादि का भी अभाव है" (२।४।७६, ८०)।

इससे स्पष्ट है कि शाक द्वीप में धर्म संस्कृति और आस्तिकता का व्यापक विस्तार था और प्रजा बुद्धिमान् व विवेकी थी। उनके विचार शुद्ध व पवित्र थे सभी वह सम्वी प्रायु और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करते थे। विवाहों में स्थिरता, दृढ़ता और स्वभाव में शान्ति होने के कारण ही छोटी छोटी बातों पर कलह कलेश और सपनों से बचा जा सकता है। यह आदर्श शाक द्वीप म था। इसे राम राज्य में सम्शोधित किया जा सकता है। आज यह स्थिति हास्य जैसी ही है।

विष्णु पुराण में जहाँ कस, हिरण्यरुक्षिपु आदि जैसे भन्यायो राजाघो के कुशासन का वर्णन है जिससे प्रजा ग्राहि ग्राहि कर सठी थी, वहाँ न्याय-मूर्ति, कर्तव्य परायण और अपने को प्रजा का सेवक मानने वाले आदर्श राजाओं के सुशासन का भी उल्लेख है जो अपने अहं की पुष्टि के लिये जनता पर अनुचित आदेश लादना आत्मा का हनन मानते थे । आदर्श शासक जनता के जानमाल की सामूहिक आपत्तियों से सुरक्षा अपना नैतिक कर्तव्य मानता है । प्रजा-राजा का अनुकरण करती है । इसलिये राजा की नैतिक व धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी ऐसी उच्च होनी चाहिए जिससे जनता प्रेरणा प्राप्त करे और अपना उद्देश्य निर्धारित करते हुए उसे आपदर्श मानें ।

वेन पुत्र पृथु की प्रजा इतनी सुखी और समृद्ध थी कि उसके राज्यकाल के सम्बन्ध में कहा गया है—“पृथ्वी जोते-बोए बिना ही धान्य उत्पन्न करती और पकाती थी” ( १।१३।५० ) । अनिष्टयोक्ति की शैली में यहाँ तक कहा गया है कि—चिन्तन मात्र में ही अन्न पक जाता था, गायें कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थीं तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था ।” प्रजा की अनुकूलता का वर्णन करते हुए कहा गया है—“उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे, इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ ” ( १।१३।५६ ) । इसमें जड़ पदार्थों को राजा की आज्ञा का पालन करते बताया गया है । इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रजा उनसे कितनी प्रसन्न होगी ।

राजा कातंवीर्य के राज्यशासन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि—“उसने बल, पराक्रम, आरोग्य सुरक्षा, और व्यवस्थापूर्वक पिशाचों हजार वर्ष तक इस पृथ्वी पर राज्य किया था ।” ( ४।१२।१८ ) राजा को आदर्श शासक बनने के लिये सद्गुणी होना चाहिए । कातंवीर्य के सम्बन्ध में लिखा है कि—“यज्ञ, दान, विनम्रता और विद्या में कोई भी राजा कातंवीर्य के समान नहीं हो सकता । उसके राज्यकाल में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं हुआ ।” ( ४।१२।१७ ) यज्ञ और दान से अभिप्राय लेने का ही नहीं देने का भी है अथवा नि स्वार्थता की प्रवृत्ति की ओर संकेत है । राजा को आराम नहीं

घोर परिश्रम करना चाहिए, आलस्य नही, क्रियाशीलता उसका आदर्श होना चाहिए, उसे सदैव चारों ओर से सजग रहना चाहिए। वह अपने को बड़ा नहीं जनता का सेवक समझे, अहंकार से फूलने का रोग उसे न लगने पाये। वह विनम्रता की मूर्ति होना चाहिए, वह केवल धन सम्पत्ति का ही नहीं गुणों का भी भण्डार होना चाहिए। ऐसे शासन में सुव्यवस्था स्थिर रहती है। वर्तमान शासकों को भी इन से घेरना ग्रहण करनी चाहिए।

### गुरुजनों के प्रति शिष्टाचार का पालन-आदर्श विद्यार्थी जीवन--

आजकल विद्यार्थी वर्ग से सभी विचारशील चिन्तित हैं। आज्ञा नहीं अवज्ञा ही उनकी एक मात्र विशेषता हो गई है। गुरुजनों का सम्मान तो स्वप्नवत हो गया है। उन्हें अपमानित करने में भी तनिक लज्जा नहीं आती। कभी-कभी तो मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। विद्यार्थी अपने निर्माताओं को गुरुजन नहीं केवल वेतन भोगी अध्यापक मानते हैं जिन्हें अपने अनुकूल मोड़ना वह अपना अधिकार समझते हैं। यह उच्छ्रद्धा नताएँ स्कूल कालेज तक ही सीमित नहीं रहती, शासन के विरुद्ध भी कड़ी से कड़ी कायबाही करने में सकोच नहीं करते। उनके लिये तोड़ फोड़, मार पीट माधारण सी बात हो गई है। शिष्टाचार के नाते गुरुजनों का सम्मान आवश्यक नहीं मानते। भ्रष्टाचार, उद्दालक, एकलव्य आदि के देश में इतना अन्तर दुष्ट का विषय है। प्राचीन काल का विद्यार्थी आज्ञा पालक, सवाभावो, अनुशासित और आवश्यक शिष्टाचार का पालन करने वाला होता था। विष्णु पुराण (३।६।१।७) के अनुसार—'बालक को उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन परायण होकर और गृह्यवेद्य पावन पूर्वक गुरु गृह में निवास करना चाहिए। वहाँ रह कर शीघ्र और आचार-व्रत का पालन तथा गुरु-सेवा करे एवं व्रतादि के पालनपूर्वक स्थिर चित्त से वेदाध्ययन करे। दोनों सध्याओं में एवाग्र मन से सूर्य और अग्नि की उरासना करे तथा गुरुदेव का अभिवादन करे। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चले तब पीछे पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय। इन प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिए। गुरु जी रहे तभी उनके सामने बैठ

कर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त भोजन का भोजन करे । जब आचार्य जल में स्नान करलें तब स्नान करे और नित्य उनके लिये समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करें । इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो ।

प्राचीन काल के विद्यार्थी जीवन की यही व्यवहारिक रूप रेखा थी जिसे आज भी आदर्श माना जाता है । यदि आज का विद्यार्थी वर्ग इस शिक्षाचार का पालन करने लगे तो विद्यार्थी समाज से सम्बन्धित उसभी गुलियरी सहज में ही सुलभ जायें । यह भारतीय सामाजिक सुव्यवस्था का ही चमत्कार था कि विद्यार्थी अपने आचार्य के दृढ़ अनुयायन में रहते थे । आज विदेशी शिक्षा प्रणाली के कारण वह अनुशासन भङ्ग हो गया । प्राचीनता की मरणाग्रे बिना समस्या का समाधान असम्भव है ।

### अतिथि सत्कार-प्रेम विकास की साधना—

प्राचीन काल में अतिथि सत्कार को गृहस्थ का एक आवश्यक गुण माना जाता था । अतिथि की उपेक्षा करने वाले या उसका स्वागत न करने वाले को हीन दृष्टि से देखा जाता था । उत्तम गृहस्थ अतिथि को खिला कर ही स्वयं भोजन करते थे । भोजन का समय होने पर वह अपने द्वार पर जाकर अतिथि की प्रतीक्षा करते थे । विष्णु पुराण ( २।१।५।१० ) में निवाय का वर्णन है कि — वह बलिर्बभ्रुदेव के पश्चात् अपने द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा में खड़ा था तभी महर्षि ऋभु उसे दिखाई दिये और वह उन्हें धर्ष्य देकर अपने घर में ले गया ।”

अतिथि का सत्कार न करने वाले की भर्त्सना की गई है । “जिसके घर पर आया हुआ अतिथि निराश होकर लौटना है, वह अपने सब पाप कर्म उस गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्यकर्मों को साथ ले जाता है । अतिथि का भ्रमण उसके प्रति गर्व और दम्भ का व्यवहार, उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चात्ताप, कटु भाषण अथवा उस पर प्रहार करना निन्दित अनुचित है । ( ३।१।१५।१६ )

विष्णु पुराण ( ३।१।१६६।५१ ) में भी कहे शब्दों का प्रयोग किया गया गया है—“जिसके घर से अतिथि विमुख झूटता है, उसे वह अपने समस्त पाप देकर उसके सभी शुभ कर्मों को चाय ले जाता है। धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अयंमा—यह सभी देवता अतिथि के शरीर में बँठ कर उसके साथ भोजन करते हैं। इसलिये अतिथि सत्कार के लिये गृहस्थ पुरुष को यत्नशील रहना चाहिए। जो मनुष्य अतिथि को भोजन कराये बिना स्वयं ही भोजन कर लेता है, वह तो केवल पाप का ही शरण करता है।”

कैसे अतिथि का स्वागत करना चाहिए, इसका विश्लेषण करते हुए कहा गया है। “यदि अतिथि मिल जाय तो उसे स्वागत पूर्वक आसन दे और परण धोकर सत्कार करे और श्रद्धा पूर्वक उसे भोजन कराता हुआ मधुर वाणी से बातचीत करता हुआ उसके गमनकाल में पीछे-पीछे जाकर उसे प्रसन्न करना चाहिए। जिस व्यक्ति के नाम और निवास स्थान आदि का पता न हो, उसी अतिथि का सत्कार करे। अपने ही ग्राम में निवास करने वाला पुरुष आतिथ्य का पात्र नहीं होता। जिसके पास कोई सामान न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके वशादि का ज्ञान न हो और जो भोजन करने के लिये इच्छुक हो, ऐसे अतिथि का सत्कार न करना या भोजन न कराना अधोगति को प्राप्त कराने वाला है। आगत अतिथि का अध्ययन गोत्र, आचरण, कुल आदि कुछ न पूछे और हिरण्यगर्भ वृद्धि से उसका पूजन करें।”

( ३।१।५७।६१ )

अतिथि सत्कार मानव मात्र के प्रति प्रेम के विकास की राधना है जो आत्मोत्थान में सहायक सिद्ध होती है।

तप द्वारा ही कठिनाइयों का अन्त सम्भव है—

ध्रुव का जीवन जीने की कला का मार्गदर्शक है। ध्रुव से पितृ स्नेह का अपिकार छीना जाता है। वह उद्विग्न हो उठते हैं। वह उसे अपने बल पर प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, घोर तर करते हैं। इसी तप को सृष्टि रचना का मूल बताया गया है। भगवान् मनु का कहना है कि—“समस्त लोकों में जो कुछ भी श्रेष्ठ दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके मूल, मध्य और अन्त में तपस्या

विद्यमान है । निकालदर्शी ऋषियो ने यह शक्ति तप के बल पर ही प्राप्त की है । दुस्तर, दुष्प्राण, दुग्ध और दुष्कर सभी कार्यों का प्रतिकार तप ही है । स्वर्ग का साधन तप ही है । तप के फलस्वरूप ही पवित्र हृदय वाले ऋषियो के अंतःकरण में बड़े ज्ञान का अवतरण हुआ है भौतिक जीवन में ध्रुव को कठिनाइयाँ आई । उसने डटकर भुकाविला किया वह उनसे डरा नहीं, धवराया नहीं, खोया नहीं, निराश नहीं हुआ । उसने उसके समाधान का उपाय सोचा । हमारा जीवन भी कठिनाइयों से भ्रोल प्रोत है । यदि हम उनसे डर गये तो जीवन काटना भी असम्भव हो जायगा । दुखों को धैर्य पूर्वक सहन करना चाहिए । राम जैसे अवतारी पुरुषों को और कृष्ण के सजा पाण्डवों को जब घोर सकटों का सामना करना पड़ा है तो साधारण जीव उनसे कैसे बच सकते हैं ? दुख तो सधप की प्रेरणा देने आते हैं । यदि व्यक्ति को सधप करने का अवसर न मिले तो इस ओर मन से निरुत्साह हो जाता है । सधप व्यक्ति को शिवाशीन और शक्तिशाली बनाने आता है । उसमें कितनी प्रसन्न होगी ।

ध्रुव ने तप को विफल करने को अनेकों प्रयत्न किये गये । माया रूपी सुनीति ने विलाप किये ( ११२।१४।१५ ) । भयकर राक्षसों ने डराया धमकाया ( १।१२।१२, १८ ) । परन्तु ध्रुव अपने निश्चय पर घटल रहे । हमारा भी यही जीवन आदर्श होना चाहिए तभी प्रगति पथ पर आरुढ़ हो सकेंगे । कठिनाइयों का अन्त तप द्वारा ही सम्भव है ।

### देवता से माननी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन—

विष्णु पुराण ५।३०।४३-५१ के अनुसार वृष्ण पत्नी सत्यभामा को जब इंद्राणी का पारिजात वृक्ष पसन्द आया जिसके सुगन्धित पुष्पों से वह अपने केशों को सजाती थी तो उसने कर्ण से इसे द्वारका तक जान प लिये प्रेरित किया । वह जानती थी कि इससे इंद्र व ममस्त देवताओं के साथ सधप आवश्यकता है । परन्तु वह इसमें नयनी । गङ्गी होती सचो को सन्देश भेजते हुए मयपूर्वक चुनौती देती है कि—यदि तुम्हारे पति तुम्हें साथ त प्रेम करते हैं और तुम्हारे बगैर मैं तो भरे पति को पारिजात तक जान में रोको । मैं तुम्हारे पति को जानती हूँ कि वे देवतामा व भवीश्वर हैं, फिर भी मैं

मानुषी होकर तुम्हारे पारिजात को लिये जाती हूँ ।" ( ५।३०।५६।५१ ) ।

इस पर कृष्ण और इन्द्र सहित देवताओं में संघर्ष हुआ जिसमें देवताओं को पराजित होना पड़ा । इस कथा से यह ध्वनि निकलती है कि मानव देवताओं से श्रेष्ठ हैं । देवता भोग करते हैं, मानव भोग और कर्म दोनों करता है । मानव अपने बल, पौरुष और पराक्रम से उच्चतम स्थिति तक पहुँचने में समर्थ है । इसमें मानव का गौरव झलकता है ।

### स्वर्ग से भी आगे बढ़ने की आशा—

सारा विष्णुपुराण पाप और पुण्य के सघर्ष से भरा हुआ है । इसमें पापी व्यक्तियों का भी वर्णन है जो महच्छार के वशीभूत होकर अपने मह का प्रदर्शन करने के लिये दूसरों का दमन करते हैं परन्तु अन्त में उन्हें अपने दुष्कर्मों पर पछताना पड़ता है । इसमें ऐसी भी पुण्य आत्माओं की कथाओं का उल्लेख है जो स-कर्मों को ही अपने जीवन का आलम्बन बनाती रही हैं और समस्त प्राणियों में अपने इष्टदेव के दर्शन करती रही हैं । विष्णु पुराण ( ३।७।४४ ) ने इसी पाप को नरक और पुण्य को स्वर्ग की सजा दी है । तभी पापात्माओं के चरित्रों का वर्णन करके वैसे कर्मों से बचने की प्रेरणा दी है । साथ ही साथ पुण्य के सचय की शिक्षा भी दी गई है ताकि साधक ऊपर उठ सकें क्योंकि ऊपर उठना ही स्वर्ग है । भागवत के अनुसार सात्त्विक गुणों का विकास ही मनुष्य के लिये स्वर्ग है ।

पुराणकार अपने साधक को स्वर्ग तक ही सीमित नहीं रखना चाहते । स्पष्ट रूप में कहते हैं कि केवल नरक में ही दुःख नहीं है, स्वर्ग में भी है, क्योंकि वहाँ से नीचे गिरने की आशङ्का से जीव को सदा अशान्ति ही रहती है ( ५।५।५० ) । स्वर्ग के सुख भोग कर पुनः पृथ्वी पर आना पड़ता है । अतः यह अन्तिम लक्ष्य नहीं है । इससे आगे बढ़ना होगा । इस प्रगति पर सन्तोष नहीं करना चाहिए । स्वर्ग से भी आगे के लोकों की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

### भविष्य वाणी—एक वैज्ञानिक प्रक्रिया—

भारतवर्ष तपस्वी और वैज्ञानिक ऋषियों की भूमि रहा है । ऋषि

निकाल जाते थे, वह भूत, भविष्य का ज्ञान रखते थे । वह जो भविष्य वाणियाँ करते थे, वह प्रायः सत्य निकलती थीं । विष्णु पुराण में भी कुछ भविष्य वाणियों का वर्णन है । (४।२।३, ८) के अनुसार “इस काल में राज्य करने वाले महाराज परीक्षित के चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन होंगे । जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र होगा, जो याज्ञवल्क्य मुनि से वेद-शिक्षा प्राप्त कर और कृप से शस्त्रास्त्र विद्या प्राप्त करके महर्षि शौनक द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेगा । शतानीक का अश्वमेघदत्त नामक पुत्र होगा । अश्वमेघदत्त का पुन मधिसीम कृष्ण और मधिसीम कृष्ण का पुन निचकनु होगा । निचकनु गंगाजी द्वारा हस्तिनापुर बहा ले जाने पर कौशाम्बी में निवास करेगा ।”

चौथे अक्ष के २४ वें अध्याय के श्लोक ७०—६३ में भी कुछ भविष्य की बातें कही गई हैं—यह सभी राजा एक ही काल में पृथ्वी पर होंगे, यह अल्प प्रसन्नता वाले, अधिक क्रोध वाले, अधर्म और असत्य भाषण में रचि वाले स्त्री, बालक और गोमो का वध करने वाले, पर-धन-हारी, न्यून शक्ति वाले, समयुक्त, विकसित होते ही पतन को प्राप्त होने वाले, अल्पायु, अल्प पुत्र्य, बड़ी अभिलाषा वाले और महान् लोभी होंगे । यह सब देशों को परस्पर में एक कर देने वाले होंगे । इन राजाओं के आश्रय में रहने वाले बलवान् भलेच्छ और अनार्य व्यक्ति, उनके स्वभाव के अनुसार प्राचरण करते हुए सम्पूर्ण प्रजा को ही नष्ट कर डालेंगे । इससे दिनो-दिन धर्म और अर्थ की धीरे धीरे करके हानि होती जायगी और जब यह क्षीण हो जायेंगे तो सम्पूर्ण विश्व ही नष्ट हो जायगा । उस समय धन ही कुलीनता का सूचक होगा, बल ही सब धर्मों का चिह्न होगा, परस्पर की चाहना ही दाम्पत्य-सम्बन्ध की करने वाली होगी, स्त्रीत्व ही भोग का साधन होगा । भूत ही व्यवहार में जीत कराने वाला होगा, जलवायु की श्रेष्ठता ही पृथ्वी की श्रेष्ठता का लक्षण होगा, यतो रयित ही राज्य-एतत्त्व का कारण होगा, रत्नादि पारण ही श्लाघा का हेतु होगा, वायु चिह्न ही आश्रमों के सूचक होंगे, अन्याय ही कृति का साधन होगा, निर्भयता और धृष्टतापूर्वक भाषण ही पांडित्य होगा, निर्भयता ही साधुत्व का कारण समझा



जायगा । स्नान साधन का हेतु, दान धर्म का हेतु और स्वीकृति ही विवाह का हेतु होगा । सज धज कर रहना ही सुपानता का श्रोतक होगा, दूर देश का जल ही तीर्थ जल होगा, छद्मवेश ही गौरव होगा । इस प्रकार सम्पूर्ण भूमंडल में नाना प्रकार के दोषों के फैलने से सब वर्णों में जो-जो बली होंगे वही वही राजा राज्य को हथिया लेंगे ।”

भविष्य को जाने जानने में भारत इतना दक्ष था कि प्रलय से एक भविष्य पुराण का ही निर्माण हो गया । भविष्य कथन एक विश्वसनीय सिद्धांत है, यह एक विज्ञान है, साधना है । महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में इसका समर्थन किया है और साधना का संकेत किया है । उन्होंने लिखा है “तीनों परिणामों ( धर्म, लक्षण, अवस्था ) में सयम करने से अतीत और अनागत ( भूत, भविष्यत् ) का ज्ञान होता है (३।१६) । ससार के समस्त पदार्थ इन तीन परिणामों के अन्तर्गत आ जाते हैं । इसमें सयम करने से समोगुण और रजोगुण का निवारण होता है और तमोगुण का विकास होता है । इसी से भूत और भविष्यत् का ज्ञान होता है ।

यह भारत की एक गौरवमय उपलब्धि है जिस पर हमें गर्व है ।

## दोषों, दुर्गुणों और कुरीतियों से चेतावनी

दुर्गुण मानव के महान शत्रु हैं । वह शक्तियों का ह्रास करते हैं । शक्ति के विकास से ही सुख शान्ति की प्राप्ति सम्भव है । इसलिए इसको नष्ट करने वाले शत्रुओं से सावधान किया गया है—

### बड़ों के अनादर के दुष्परिणाम—

शिष्टाचार भारतीय संस्कृति की नींव है । जो इसका व्यवहार नहीं करता, वह उद्दण्ड और अशिष्ट माना जाता है । आचारों में माता, पिता, गुरु और वृद्धजनों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना सर्वोपरि है । सम्मान न करने जो श्रृंगि, ब्राह्मणों और अपने से बड़ों की हँसी, भजाक और अनादर करते हैं, उनके घोर दुष्परिणाम विष्णुपुराण में वर्णित किए गये हैं ।

पंचम अक्ष के दसवें अध्याय में वर्णित कथा के अनुसार यादव बालकों ने ऋषियों के साथ मनोरंजन का प्रोग्राम बनाया। उन्होंने जाम्बवती पुत्र साम्बर को स्त्री वेष में सजा कर ऋषियों से कहा “इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये, इसके क्या उत्पन्न होगा ?” (६-८) ऋषि यादव बालकों की चाल को ताड़ गये और क्रोधपूर्वक कहा—“इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवों के नाश का कारण हो जायगा।” (६-१०) और अन्त में यही हुआ।

एक बार अक्षरामो ने अष्टावक्र के घाठ स्थानों से टेढ़े शरीर को देखा तो स्वभावतः हँसी छूट पड़ी और छिपाने पर भी न छिप सकी। महर्षि ने उन्हे साप दिया कि तुमने मेरे कुबड़ की हँसी उड़ाई है, इसलिये तुम भगवान् विष्णु को पति रूप में पाकर भी लुटेरों द्वारा अपहृत होगी।” (६।३८।७६-८२)

इन कथामो से बड़ों के अनादर करने से सावधान करते हुए सम्मान की प्रेरणा दी गई है।

### अविवेक-अज्ञानता का लक्षण है—

विवेक कहते हैं—साथ अमृत्य के निरुप्य करने की शक्ति है। जो व्यक्ति इस शक्ति से च्युत है, वह अन्धकार में भटकता रहता है और गोरवमयी मानव योनि पाकर के भी अमानवी के गे वाम करता है। मानवता की सिद्धि के लिये विवेक का जागरण आवश्यक है। विष्णुपुराण में अविवेक को नष्ट करने के लिये अनेकों स्थलों पर महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। एक स्थान पर कडे शब्दों में कहा है “अज्ञान के अंधेरे में पड़ा हुआ जीव यह भी भूल जाता है कि मैं कहाँ से आया ? कहाँ जाऊँगा ? मैं कौन हूँ ? मेरा रूप क्या है ? मैं कौन से वस्त्र में किस वाण्यें धँसा हूँ ? मैं क्या करूँ, क्या न करूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? धर्म क्या है अधर्म क्या ? किस अस्त्य में रहूँ ? कर्तव्य या अकर्तव्य क्या है ? इन प्रारंभ विवेक रहित पशु के समान यह जो अज्ञान से उत्पन्न दुर्गो को भोगते हैं।” (६।५।२१-२४)

### अहंकार एक महारोग —

आत्मिक पतन में बड़ी अनेक अशुक्तियों का हाथ रहता है, वही अहंकार

को भी एक ऊँचा स्थान प्राप्त है। भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में कोई विरला ही ऐसा व्यक्ति बचा होगा, जो इसके कुप्रभावों से पीड़ित न हुआ हो। इसके प्रहार व्यापक रूप से काम करते हैं। इसीलिये तो गीताकार (१८।१६) ने कहा कि “जो संस्कृत बुद्धि न होने के कारण यह समझे कि मैं ही भकेला कर्ता हूँ, समझना चाहिए कि वह दुर्मति कुछ नहीं जानता।” महद्भार के प्रदर्शन के लिये पुराण में अनेकों कथाओं का चयन किया गया है जिनमें वेन और हिरण्यकशिपु के चरित्र प्रमुख हैं। वेन ने तो कहा था। “मुझमें अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो। तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है?” (१।१३।२०) उसने प्रजा को अपनी पूजा करने का आदेश दिया था। हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद से विष्णु की भवेष्टा अपना सम्मान चाहते थे। प्रह्लाद ने इसका विरोध किया तो हिरण्यकशिपु का महद्भार भड़का, इसी अग्नि में उसने प्रह्लाद को जलाना चाहा, परन्तु महद्भारी व्यक्ति तो स्वयं उससे जलता है, वह क्या दूसरे को जलायेगा? महद्भार की उत्पत्ति का अर्थ है शक्ति की ह्रास का आरम्भ। इसीलिये महद्भारी का सर सदैव नीचा होने वाली कल्पित कही जाती है। पुराणकार इसे भी व्यवहारिक रूप में बताते हैं। विश्व विख्यात हजारों महान् योद्धाओं पर विजय प्राप्त करने वाले भर्जुन अनाथ बालाओं को ले जाते हुए अपार दस्युओं से उनकी रक्षा करने से अपने में असमर्थ पाते हैं और लूट लिये जाते हैं (५।३७।१२-१५)।

केवल भौतिकवादी राजा लोग इस रोग के रोगी रहे हो, ऐसा नहीं है। तपस्वी ऋषि भी इससे हार मान चुके हैं। इन्द्र ऐरावत पर चढ़े जा रहे थे। दुर्वास ने एक पुण्यमाला इन्द्र की दी। इन्द्र ने हाथी के मस्तक पर डाल दी। हाथी ने उसे पृथ्वी पर फेंक दिया। महर्षि का महद्भार इससे उत्तेजित होगया। उनके क्रोध की ज्वाला भड़क उठी और उन्होंने इन्द्र को शाप दिया कि “तेरा यह त्रिभुवन भी अब शीघ्र ही हीनता को प्राप्त होगा।” (१।६।१६)

इस छोटी सी मलती के लिये इतना बड़ा दण्ड अनुचित ही है। वह क्या न देते, महद्भार ने जो उनके मस्तिष्क पर नियन्त्रण कर लिया था।

पुराणकार ने इस महारोग से सावधान रहने की प्रेरणा दी है।

## क्रोध से शक्ति नाश—

क्रोध ऐसी अग्नि है जिसमें हमारा शरीर, मन और बुद्धि सब जलते रहते हैं। शास्त्रों ने इसे नरक का द्वार, पाप का मूल और महा घनू कहा है क्योंकि यह आत्मिक बल को नष्ट करता है। गांधी जी ने कहा कि “क्रोध के लक्षण शराव और अफीम दोनों से मिलते हैं।” गीता (१।६३) में कहा कि “क्रोध से अविवेक होता है, प्रविचेक से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धि नाश और बुद्धि नाश से सर्वनाश हो जाता है।”

इस क्रोध से पुराणकार ने बार-बार विभिन्न कथाओं द्वारा सावधान किया है। एकबार वसिष्ठ ने जब देखा कि राजा निमि ने उसके स्थान पर गौतम को होता नियुक्त कर लिया है तो घाप दे डाला कि तुम देह रहित हो जाओ। (४।५।७-८) जब राजा सोकर उठे तो उन्हें भी क्रोध आया। उन्होंने गुरु को घाप दिया कि वह भी देह रहित हो जाएँ (६-१०)।

इन्द्र न जब महर्षि दुर्वासा द्वारा पुण्यमाला का अनादर किया तो क्रोधपूर्वक घाप दिया कि तुम भीहीन हो जाओ (१।६।१६)। महर्षि पाराशर ने एक बार क्रोध में आकर राक्षसों के विनाशार्थ यज्ञ रिया जिन में प्रतिदिन सैकड़ों राजाओं राक्षस भस्म होत सगे (१।१।१३-१४)। तब यमिष्ठ ने उन्हें रोता कि “इस घाउ करो। मूर्ख व्यक्ति ही क्रोध किया करते हैं, शान्तिजन ऐसा नहीं करते हैं। (१।१।१७) प्राण के भण्डार श्रुतिवर्ण स्वर्ग और मोक्ष में बाधा स्वर्ण की है का परित्याग कर दो है। इनिय तुम क्रोध के यत्नीभूत मत हो।” (१५-१६)

निर्मल और असदिग्ध रहेगी।" (२५-२७) जिस शान्त मन में क्रोध की ज्वाला नहीं भटकती, उसी मन में ऐसे परिणामों की सम्भावना हो सकती है।

**मोह से बन्धनों की दृढ़ता—**

प्रेम अमृत है। इसे प्राणीमात्र पर छिड़कना चाहिये। यह मानव का परम धर्म है। इससे वचित व्यक्ति जड़ गिना जाता है। परन्तु प्रेमी के प्रति लगाव और लिप्तता हानिकारक है। यह लगाव ही कुमति है जो बन्धन और दुःख का कारण है। इससे निवृत्ति की माधना बड़ी तत्परतापूर्वक करनी चाहिये क्योंकि विष्णुपुराणकार ने ऋषि और तपस्वियों को भी इसमें फँसते हुए बताया है।

भरत तपस्वी और ज्ञानी थे परन्तु एक हरिणी से उनका मोह हो गया। भयभीता हरिणी का गर्भ नदी में गिरा और उन्होंने पकड़ कर उसका पालन किया। इससे तो उनके प्राणीमात्र के ऊपर अपार प्रेम की झलक मिलती है (२।१३।१६)। परन्तु भरते हुए भी उसका स्मरण करते रहना उनके लिये हानिकारक हो गया और उन्हें हरिणी की योगिनी में चाना पडा।

महर्षि सौभरि अत्यन्त तपस्वी थे। एक बार उन्हें विवाह की सूझी। एक नही राजा मानधाता की ५० कन्याओं से विवाह कर लिया और १५० पुत्र उत्पन्न किए। वह मोचने लगे "क्या यह मेरे पुत्र मधुर बोली बोलेंगे ? अपने पैरों से चलेंगे ? युवावस्था को प्राप्त होंगे ? क्या मैं इन सबको पत्नी सहित देख सकूँगा ? फिर इनके भी पुत्र होंगे, तब क्या मैं अपने को पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न देख पाऊँगा ?" (४।२।११४)।

इस तरह हमारे मोह की कोई सीमा नहीं है। जिनसे मोह करते हैं, उन्हें एक दिन नष्ट होना है फिर इन अनिवार्यक लगावों से क्या लाभ है ? इससे निवृत्त होना ही ज्ञान और विवेक का लक्षण है।

**धन का अपव्यय—**

धन मानव के ज्ञान-अज्ञान को महान कसीटी है। शरीर आत्मिक

उत्थान की साधना के लिए मिला है। अतः उसे भगवान का मन्दिर समझ कर स्वस्थ व हृष्ट पुष्ट रखना कर्त्तव्य है परन्तु हर समय उमी के लालन-पालन में लगे रहना अज्ञानता है। इसीलिये ईसा को कहना पड़ा कि सुई की नोक में से एक ऊँट को निकलना सम्भव है परन्तु एक धनवान का स्वर्ग में जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह धन की तृष्णा से हर समय ग्रस्त रहता है और उसे प्राप्त करने के लिए अनुचित उपाय अपनाता है। विष्णुपुराण ने प्रेरणा दी है कि धन का उपार्जन किया जाये अवश्य परन्तु उसका आधार धर्म होना चाहिये (६।२।२४) बिना धर्म के प्राप्त धन नरक का द्वार सिद्ध होता है। ईमानदारी से कमाया धन ही स्वर्गीय सुख और धान्ति का प्रदाता है। पुराणकार ने वास्तविकता का वर्णन करते हुए लिखा है। 'धन के उपार्जन और रक्षण में अत्यन्त कष्ट होता है और फिर उसे अनुचित मार्ग से व्यय करने पर भी बहुत ही दुःख भोगना पड़ता है।' (२६) उपार्जन और संरक्षण दोनों में सावधानी बरतनी पड़ती है। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु का सदुपयोग करता है, वह उसे अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है क्योंकि वह उसके लिये अपने को अधिकारी सिद्ध करता है। इसके विपरीत दुरुपयोग करने वाले से धीन ली जाती है। इसलिये चेतावनी दी गई है कि धन के व्यय में ध्यान रखना चाहिये।

लोग अनुचित उपायों से कमाये धन को यश और कीर्ति के लिये दान में देते रहते हैं। विष्णुपुराण ने इसका भी विरोध किया है और कहा है कि जो धन धर्म से कमाया गया हो, उसे ही दान और यज्ञों में देना उचित है (६।२।२४)।

### वन्धन का कारण तृष्णा—

धन, वैभव और अन्य भौतिक ऐश्वर्यों की तपस्या जीव को बन्धन में डालकर आवागमन के चक्र में घुमाती रहती है। इसका वर्णन राजा ययाति के अनुभव के माध्यम से दिया गया है। उसने अपने पुत्र प्रासू का यौवन लेकर

हजार वर्ष तक भोगों को भोगा । इतने लम्बे सम्पत्त तब अनुभव के बाद अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा—

“भोगों के भोगते रहने से उनकी तृप्णा कभी शान्त नहीं होती किन्तु प्राज्यावृत्ति से प्रवृद्ध होने वाले अग्नि के समान निरन्तर बढ़ती जाती है । भूमण्डल पर जितने भी धान्य, जौ, स्वर्ण, पशु, और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्य के लिये भी तृप्त नहीं कर सकते, इसलिये इस तृप्णा का सर्वथा त्याग करना चाहिए । जो तृप्णा खोटी बुद्धि वालों द्वारा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक त्यागी जा सकती है और जो वृद्धावस्था में भी शिथिलता को प्राप्त नहीं होती, उसी तृप्णा को त्याग कर युद्धिमान पुरुष पूर्ण रूप से सुखी हो जाता है । जीर्णावस्था प्राप्त होने पर बाल और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु उनके जीर्ण होने पर भी घन और जीवन की आशा जीर्ण नहीं हो पाती । इन विषयों में आसक्त रहते हुए मेरे एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये, फिर भी उनके प्रति निश्चय ही इच्छा रहती है । इसलिये, धर्म में इनको त्याग कर अपने वित्त को ब्रह्मा में लगाऊँगा, निर्द्वन्द्व तथा निर्मम होकर मृगों के साथ विचरण करूँगा ।” (४।१०।२२, २४, २६-२६) ।

यथाति के अनुभव से लाभ उठा कर हमें भी अपने जीवन में मोड़ लाना चाहिए ।

## पापों का परिणाम नरक—

शास्त्रों में अनेकों प्रकार के नरकों वर्णित हैं । विष्णुपुराण में भी यह नाम आये हैं । “तामिल, अम्बतामिल, महारौरव, रौरव, अक्षिपन्नवन, घोर, काल सूत्र, अवीचिक, यह सब नरक लोक हैं । वेदों की निंदा करने वाले, यज्ञों में बाधा डालने वाले और अपने धर्म को त्याग का आचरण करने वाले का यही स्थान कहा गया है ।” ( १।१६—४०।४२ ) नारकीय दातलयों का वर्णन गरुड पुराण आदि में है । विष्णु पुराण में भी उनका सक्षिप्त वर्णन

“पहले तो यमदूत उसे अपने पाश में बाँध लेते और फिर इन पर दण्ड प्रहार करते हैं । तब अत्यन्त दुर्गम मार्गों को पार करने पर यमराज का दर्शन हो पाता है । फिर तपे हुए बालू अग्नियन्त्र, शस्त्रादि से भीषण एवं असह्य नरक-यातनाएँ भोगनी हाती हैं । नरकवासी को गाढन मूली पर चढ़ाने सिंह के मुख में डालने गिद्धों द्वारा नुचवाने, हाथियों से कुचलवाने, तेल में पकाने, दलदल में फँसाने ऊपर से नीचे गिराने तथा क्षेपण्यत्रय से दूर फिकवाने रूप जिन-जिन कष्टों की प्राप्ति होती है, उनकी गणना असम्भव है । ( ६।५-४४।४६ ) ।”

इन यातनाओं से जो वचना चाह, उसे उन कर्मों से दूर रहना चाहिये जिनका परिणाम नरका में प्राप्त होता है ।

“नरक प्राप्ति के कारणों पर चर्चा करते हुए कहा गया है । अज्ञान के तामसिक होने से अज्ञानी पुरुषों की प्रवृत्ति तामसिक कर्मों में होती है, इसके कारण वैदिक कर्म लुप्त हो जाते हैं । कर्म तोष का फल मनीषिया न नरक कहा है । ( ६।५—२५।२६ ) एक कारण और बताया है । “जो व्यक्ति अपने पापों का प्रायश्चित्त नहीं करता, उन्हें नरक की ही प्राप्ति हानी है ।” ( २।५।३४ ) आत्मनिरीक्षण करने वाला व्यक्ति ही दुष्टकों को छोड़ कर सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है । तभी उनकी निवृत्ति नरक में हो सकती है । पुराणकार चाहते हैं कि हम पूरे पापों का प्रायश्चित्त करके स्वर्ग के पथ पर प्रारुढ़ हो ।

पशुपति हिन्दू धर्म पर महान् कलंक



जाता है। यज्ञ पवित्रतम कार्य है। इससे सारे विश्व के प्राणियों का कल्याण होता है। इसके साथ पशुजति जैसे जपन्य कार्य को मिलाना पशुता से भी गिरने के समान है। विष्णु पुराण ने इस बात का विरोध करते हुए कहा है "यदि यज्ञ में बलि होने वाले पशु को स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने मित्र का बलिदान कर के ही उसे स्वर्ग क्यों नहीं प्राप्त करा देता।" ? (३।१।१७)

इस बुद्धिवादी युग में भी बलि का प्रचलन है। यह हिन्दू धर्म पर कलक है।



## आचार दर्शन

सभ्य और असभ्य की पहचान की यदि कोई कसौटी है तो वह आचार ही है। यही पतन और उत्थान की सीमा रेखाएँ खींचने वाले हैं। आचारहीन मनुष्य पशु तुल्य ही माना जाता है। आचार की शिक्षा ग्रहण व्यक्ति ही सभ्य कहा जाता है। भारतीय आचार दर्शन शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य के लिये दिनकर है नागरिकता की उत्तम शिक्षाओं से भी यह मोत-प्रोत है। प्रातः व सायं के जलग-मलग आचार हैं। लोकाचार के सामान्य नियमों की भी प्रेरणा दी गई है। सदाचार तो भारतीय सस्कृति की आपार शिला ही है। विष्णु पुराण के आचार पर यहाँ उनका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

### सदाचार—

सदाचार की प्रेरणा भारतीय सस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। विष्णु पुराण भी उससे अछूता नहीं है। सदाचार की परिभाषा का वर्णन करते हुए कहा गया है 'सत्तम गी का अर्थ साधु होता है और दय रहित को भी साधु कहते हैं। उस साधु पुरुष का आचरण ही सदाचार कहा गया है। (३।१।१३)।

विष्णु भक्ति की श्रेष्ठता का आधार सदाचार ही है। (३।७।२२) में कहा है "जो निर्जन स्थान में पराए स्वर्ण को भी पड़ा देखकर उसे तिनके के समान मानता है, उसे भगवान् वा भक्त समझो।" भगवान् के निवास की

कभीटो वह पुरुष है जो 'स्वच्छ चित्त, मत्सरताहीन, प्रशान्त, पुनीत चरित्र, सब प्राणियों का प्रेमी, सहृदय तथा हिन की बात कहने वाला, निरभिमान तथा माया से अलग रहता है" ( ३।७।२४ ) ।

पर नारी में आसक्ति रखने वाले को इहलोक व परलोक दोनों के विगड़ने का भय दिखाया गया है ( १।१२।१२४ ) क्योंकि इस लोक में प्रायु का ह्रास और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है । इसलिये पुराणकार ने प्रेरित किया है कि "पर नारी से तो वाणी या मन से भी सङ्ग न करे" ( ३।११।१२३ ) केवल अपनी ही स्त्री से ऋतुकाल में सङ्ग करे ( १२५ ) ।

पुष्ट व्यावहारिक उपयोग के आचारों की भी शिक्षा दी गई है । जैसे "हृदय रूप में भी अप्रिय भाषण न करे । मिथ्या वचन प्रिय हो तो भी न बोले और परदोषों को किसी से न कहे ।" ( ३।१२।४ ) "किसी के साथ बँर आदि रखने में रुचि न रखे " ( ५ ) । "लोक निन्दित, पतित, उन्मत्त, बहुतो के वीर, मिथ्याभाषी, अत्यन्त ध्वज करने वाले, परनिन्दा में रुचि रखने वाले और दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे ।" ( ३।११।६।७ ) । 'जो कुटिल पुरुषों से भी प्रिय भाषण करता है, मोक्ष सदा उसके हाथ में स्थित रहता है" ३।१३।४२ "ज्ञानी पुरुषों का वर्तव्य है कि वह उसी प्रकार का उत्पन्न बोलें जिससे दूसरों को सुख मिले । यदि किसी सत्य वाक्य से दूसरों का अहित होता हो तो मौन रहना ही उचित है " ( ३।१३।४३ ) ।

यह सब-आचार साधक को दिन-दिन ऊँचा उठाते हैं । मानवता के लिये इनका आचरण आवश्यक है ।

## प्रातःकाल के आचार—

भारतीय संस्कृति एक आदर्श संस्कृति है । मानवता का विकास इसका प्रमुख उद्देश्य है । आत्म विकास मानव का अन्तिम लक्ष्य है । प्रारम्भिक पाठ तो शिष्ट आचार हैं जिनके आचरण से हम समाज में उत्तम नागरिक के रूप में रह सकें । यदि नागरिकता के माधारण नियमों का पालन सम्भव न हो तो आत्म-विकास की भी सम्भावना नहीं हो सकती । भारतीय ऋषियों ने प्रातः-

काल उठने से लेकर रात्रि काल तक ऐसे नियमों का चयन किया जो व्यक्तिगत और सामाजिक-दोनों दृष्टियों से लाभदायक हैं। वह केवल नियम ही नहीं हैं। यदि उन पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उनके महत्त्व रहस्यों का पता चलेगा। यह निश्चय है कि बिना उपयोगिता के किसी भी नियम को इन आचारों में स्थान नहीं दिया गया है।

विष्णु पुराण ( ३।१।१।५-२१ ) में मल मूत्र सबधी स्वास्थ्योपयोगी नियमों का दिग्दर्शन कराया गया है "ब्रह्म मुहूर्तं न उठने के पश्चात् ग्राम के नैऋत्य कोण वाली दिशा में जितनी दूर छोटा घुघ्रा बाण जा सकता है, उतनी दूर से भी भागे बह कर मल-मूत्र का त्याग करें और अपने घर के अग्नि में पाँव धोने का जल प्रयत्न जूठा जल न डालें। अपनी छाया पर या वृक्ष की छाया पर प्रपवा गो, सूर्य, अग्नि, वायु, शुक्र और द्विजाति वाले किसी पुरुष के सामने जाकर कभी मलमूत्र न करें। इसी प्रकार जोते हुए खेत, अनाज युक्त भूमि, गोओं के गोष्ठ, जन-सभा, मार्ग के मध्य, नदी, आदि तीर्थ, जल या जलाशय के किनारे और स्मृष्टानादि में कभी मल मूत्र विसर्जन न करें। सम्भव हो तो दिन में उत्तर की ओर मुख करके और रात में दक्षिण की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करें। मल त्याग के समय पृथिवी को तिनको से ढक ले और सिर पर वस्त्र लपेट ले और उस स्थान पर अधिक समय तक न रहे तथा मुख से भी कुछ न बोले।"

"बाँबी को मिट्टी, चूहों द्वारा बिल से निकाली हुई, जल के भीतर की, घर लीपने की, चीटी आदि जीवों द्वारा निकाली हुई, हल द्वारा उखाड़ी हुई तथा शीघ्र वर्षों से बची हुई मिट्टी को शीघ्र कम से काम न लें। हे राजन! उपस्थ में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँये हाथ में दस बार और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है। फिर निगंध, फेनहीन जल से आचमन करे और यत्न पूर्वक अधिक मिट्टी ग्रहण करे। उसमें पाँवों को धुद करे। पाँव धोने के उपरांत तीन बार कुल्हा और फिर दो बार मुख का धोवे। फिर जल ग्रहण करके उससे इन्द्रियरन्ध्र, मूर्धा, बाहू, नाभि और हृदय को स्पृश करे। फिर सभी प्रकार स्नान करके बाँजों को धोवे और आवश्यकता-

नुसार तर्पण, अन्न दूर्वा आदि मागलिक द्रव्यों का विधिपूर्वक प्रयोग करें ।

मल मूत्रोत्सर्ग के बाद स्नान करना चाहिए ( ३।१।१२४-२५ ) । स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता ऋषि और पितरों का तर्पण करने का आदेश है ( २६ ) । श्लोक २४-३६ में तर्पण के विस्तृत नियम दिये गये हैं । तर्पण को केवल अपने सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं रखा गया वरन् प्राणी मान को, चाहे वह मनुष्य, पक्षी, पशु जलचर, थलचर या अप्रपन्ना विरोधी ही क्यों न हो, उसे जलाजलि देने का नियम है ( ३५-३६ ) क्योंकि मूल रूप में सभी प्राणी एक हैं । जो इस एकता को अनुभव करता है, उसी का आत्मविकास हुआ समझना चाहिए ।

तर्पण के बाद आचमन, सूर्य भगवान् को अर्घ्यदान, गृहदेवता और दृष्ट देवता की पूजा और अग्निहोत्र का विधान है ( ३।१।३३-४२ ) । फिर पृथ्वी पर बलि भाग रखने और अतिथि की प्रतीक्षा करने का आदेश है ( ४५-४६ ) ।

जो कुछ भी हम खाते हैं, उससे हमारे मन और बुद्धि का निर्माण होता है, मुख दुःख के कर्मों का यही आश्रय है, इसलिये भोजन सम्बन्धी नियमों को बहुत ही पनी दृष्टि से बनाया गया है । सारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से तो वह लाभदायक है ही, मानसिक व बौद्धिक पवित्रता के लिये भी वह आवश्यक है । भावना योग का भी इसमें समावेश है । आधुनिक भौतिक विज्ञान के यह अनुकूल हैं । मनोविज्ञान में इन्हें उपयोगी पाया है । विष्णु पुराण ( ३।१।६१-६६ ) में भोजन सम्बन्धी नियम इस प्रकार वर्णित हैं—जो मनुष्य स्नान के बिना ही भोजन कर लेता है, उसे मल भक्षण करने वाला समझो । जप किये बिना भोजन कर लेना रुधिर और मूत्र पान करना है । असंस्कृत अन्न का भोजन करने वाला कीड़ों का और बिना दान किये खा लेने वाला विष का भोजन करता है । इसलिये गृहस्थ जिस प्रकार भोजन करे उस विधि को श्रवण करो । स्नान के अनन्तर देवताओं ऋषियों और पितरों का तर्पण कर हाथ में श्रेष्ठ रत्न धारण पूर्वक पवित्रता से भोजन करे । जप और अग्निहोत्र के बाद शुद्ध वस्त्र पहिरे तथा अतिथि, ग्राहण, गुरुजन और

अपने आश्रितों के भोजन करने के पश्चात् श्रेष्ठ गुष्पमालादि धारण और हाथ पाँव प्रक्षालन आदि से शुद्ध होकर भोजन करे और भोजन करते समय इधर-उधर दृष्टिपात न करे ।”

“अन्यमनस्क भाव को त्याग कर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पण्य अन्न को मन्त्रपूत जल के छोटे देकर उसका आहार करे । किसी दुराचारी पुरुष से प्राप्त, घृणोत्पादक या बलि वंशदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न को त्याग दे तथा अपने भोजन योग्य अन्न में से कुछ अंश अपने शिष्य अथवा अन्य क्षुधातं व्यक्तियों को देकर शुद्ध पान में अन्न रख कर उसका भक्षण करें । किसी वेत आदि के आसन पर स्थित पात्र में, अयोग्य या सकुचित स्थान में अथवा असमय में भोजन न करे । प्रथम अग्नि को अन्न का अग्रभाग देकर ही भोजन करें । मन्त्रपूत, प्रशस्त तथा ताजा अन्न का भोजन करे । परन्तु, मूल और सूखी शालाग्रो के और चटनी में गुड़ के पदार्थों के प्रति यह नियम लागू नहीं है । सारहीन पदार्थों का भोजन न करना ही इस कथन का उद्देश्य है । मधु, जल, घृत, दही, सत्तू आदि के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पूरा ही भक्षण न करे ।”

“एकान्न मन से भोजन करना चाहिये । पहिले मीठे, फिर नमकीन, फिर खट्टे और अन्त में कड़वे तीक्ष्ण पदार्थों का भोजन करे । जो मनुष्य प्रथम द्रव पदार्थ, मध्य में कठिन पदार्थ और अन्त में पुनः द्रव पदार्थ भक्षण करता है, उसके बल और आरोग्य का कभी क्षय नहीं होता । इस प्रकार अनिपिद्ध पदार्थों का वाणी के संयमपूर्वक भोजन करे । अन्न का कभी तिरस्कार न करे । पहिले पाँच आस मोन रह कर खाय, वह पाँच प्राणों की तृप्ति करने वाले हैं । भोजन के पश्चात् भले प्रकार आचमन करे और पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके हाथों को उनके मूल-देश तक धोकर पुनः विधिवत आचमन करे । फिर स्वस्थ और शान्त मन से आसन पर स्थित हो और अपने इष्ट देवताओं का ध्यान करे । “प्राणवायु से प्रदीप्त हुमा जठराग्नि आकाश से आकाशमय अन्न का परिपाक करता हुआ मेरी देहगत पार्थिव घातुओं का पोषण करें, जिससे मैं सुखी रहूँ, यह अन्न मेरे देह में स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि



किया गया है। सुश्रुत संहिता—सूत्रस्थान १६।६ ने इस तथ्य का समर्थन किया है। इसका वैज्ञानिक कारण बताते हुए एक विद्वान् ने लिखा है—“समस्त ब्रह्माण्ड की गति ध्रुव की ओर होती है और ध्रुव की स्थिति उत्तर दिशा में होती है। इस कारण ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत पृथ्वी के भीतर की विद्युन्धारार भी दक्षिण दिशा से उत्तराभिमुख प्रवाहित होती है। यदि हम उत्तराभिमुख सिर करके सोवें तो वह पार्थिव-विद्युत् हमारे पैरों से होकर सिर की ओर प्रवाहित होगी, जिससे सिर में कई रोग हो जायेंगे और स्नायुपुंज में अस्वाभाविक उत्तेजना की वृद्धि होने से प्रवृत्ति अस्वस्थ रहा करेगी।”

समागम सम्बन्धी वैज्ञानिक निवेधात्मक नियमों का उल्लेख करते हुए पुराणकार ने ( ३।१।१।१२-१८ ) लिखा है—“श्रुतिकाल को प्राप्त हुई अपनी ही भार्या से समागम करे। पुंलिंग नक्षत्र में, युग्म रानियों में बहुत रात गये तथा श्रेष्ठ समय देखकर ही नारी से सगति करे। अप्रसन्न मन वाली, रोगिणी, रजस्वला, अभिलाषा-हीन, क्रोधमयी, दुःखिनी या गर्भवती के साथ सगति न करे। जो सरल स्वभाव की न हो, अभिलाषा हीन या दूसरे पुरुष की कामना वाली हो, भूख से व्याकुल या अधिक भोजन किये हुए हो ऐसी पत्नी, स्त्री गमन योग्य नहीं हैं। यदि अपने में भी इन दोषों की स्थिति हो तो उस दशा में भी सगति नहीं करनी चाहिए। स्नान करके पुष्प-माला तथा गन्ध लेपनादि से युक्त होकर काम और अनुराग के सहित स्त्री के पास जाय और प्रतिभोजन करके पथवा भूखा रहने की अवस्था में सगति न करे। चोदक, मृष्टमी, अमावस, पूर्णिमा तथा सूर्य की सक्रान्ति—यह सब पर्व-दिवस हैं। इनमें तैल मर्दन, नारी-सयोग मृत्यु के अनन्तर मल-मूत्र युक्त नरक की प्राप्ति कराने वाला है। विद्वान् पुरुषों को इन सभी पर्व-दिनों में समय पूर्वक सत्-शास्त्रों का अध्ययन, देववन्दन, जप और ध्यानादि कार्य करने चाहिए।”

यह स्वास्थ्य रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी सूत्र है।

**लोकाचार—**

विष्णु पुराण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का प्राचीन ग्रन्थ ही नहीं है,

इनमें मनेको लोकोपयोगी तथ्यों का सकलन है जो लोकाचार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है । स्वास्थ्य, शिष्टाचार और सामान्य ज्ञान व उपयोगिता पर वह आधारित है । ( ३।१२।६--२१ ) में इस प्रकार दिए गए हैं:—

जन प्रवाह के वेग के सामने से कभी स्नान न करे, जलते हुए घर में कभी न घुसे तथा वृक्ष के शिखर पर भी न चढ़े । दाँतो का मापस में पर्यण न करे, नासिका को न कुरेदे । बन्व मुँह में जमुहाई लेना, खासना या इवास छोड़ना वर्जित है । जोर से न हँसे, अधोवायु का शब्द सहित त्याग न करे, नखों को न चबावे, तिनका न सोड़े तथा भूमि पर न लिखे । मूँछ-दाढ़ी के बालों को भी न चबावे, दो देतों को परस्पर में न बिसे तथा निन्दित और मधुद्र नक्षत्रों का दर्शन न करे । नग्नावस्था वाली परनारी को न देखे, उदय या अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन न करें । दाव या दाव की गन्ध से पूणा न करे, क्योंकि दाव गन्ध चन्द्रमा का अंश है । चौराहा, चैत्यवृक्ष, इनकाल, उपवन तथा दुष्ट स्त्री की निरुद्धता—इन सबको रात्रिकाल में त्याग दे । अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और ज्योतियों की छाया को कभी भी न लापे तथा सूने जङ्गल या सूने घर में भी भ्रमेता न रहे । केश, घस्त्रि, कटि, मधुद्र वातु बलि, भस्म, तुष और स्नान में गीली हुई भूमि को दूर से ही त्याग दे । मनापं पुरुष का सङ्ग और कुटिल मनुष्य में आसक्ति न करे, सर्प के समीप न जाय और नींद खुलने पर देर तक न लेटे । जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, राध्या पर लेटने और ध्यायाम करने में अधिक देर न लगावे । दाँत और सींग वाले पशुओं को, घोस को, सामने की वायु को और धूप को सर्वथा छोड़ दे । नङ्गा होकर स्नान, शयन और आचमन न करे और बालों को खोलकर आचमन या देवपूजन ही करे । हवन, देव-पूजन, आचमन, पुण्याहवाचन और जप में एक वस्त्र धारण पूर्वक ही प्रवृत्त न हो । सजय हृदय पुरुषों का कभी साय न करे । सशकारी पुरुषों का सश साय करे, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के साय तो प्राप्ति पात्र रहना भी प्रशंसनीय है ।”

गुरुजनों के सामने बंद न पगारे और उपासन पर न बैठने का आदेश है ( ३।१२।२६ ) । गुरु ब्राह्मण-देवता और माता-पिता की पूजा में योग्य-



धारियों के जीवन की सफलता मानी गई है (५।२१।४) । चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियों के समक्ष श्रुक्ने और मल मूत्र विसर्जन करने का निषेध है (३।१२।२७) । भोजन, हवन, देव-पूजन के समय श्रुके व स्त्री के नही (२६) । पूज्य पुरुषों का अभिवादन किए बिना घर से बाहर न जाए (३१) ।

यह लोकाचार की उपयोगी बातें हैं जो प्रत्येक उत्तम नागरिक को जाननी आवश्यक हैं । अध्यात्म का आरम्भ आचार से होता है । जो आचार में दक्ष नहीं है, उसके आत्म-साधना में सफलता प्राप्त करने में सन्देह ही है ।

## जीवन निर्माण के अमूल्य सूत्र

विष्णुपुराण जीवन निर्माण का साधना विधान प्रस्तुत करता है, जिन पर चलकर मानव का पूर्ण उत्थान सम्भव है । यह सिद्धान्त अनुभव गम्य और वेद शास्त्र अनुमोदित हैं । उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

### मोक्ष प्राप्ति का साधन-निष्काम कर्मयोग—

शास्त्रकारों की धोपणा है कि मन को निष्काम कर देने से मोक्ष की प्राप्ति होती है (मनु ६।३४, अमृत विन्दु २) । “जिसका मन एक बार शुद्ध और निष्काम हो जाता है, उस स्थितप्रज्ञ पुरुष से फिर कभी पाप होना संभव नहीं अर्थात् सब कुछ करके भी वह पाप पुण्य से अलिप्त रहता है” (बोद्ध प्रथ) गीताकार (२।५१) ने भी कहा है “समत्वं बुद्धिं से जो जानी पुरुष कर्म-फल का त्याग करते हैं, वे जन्म के बन्ध से मुक्त होकर परमेश्वर के हुए विरहित पद को जा पहुँचते हैं ।” इसीलिए भगवान् ने स्वयं कहा कि “मुझे कर्म का लेप अर्थात् बाधा नहीं होगी क्योंकि कर्म के फल में मेरी इच्छा नहीं है । जो मुझे इस प्रकार जानता है, उसे कर्म की बाधा नहीं होती ।”

प्रह्लाद को जब भगवान् के दर्शन हुए और भगवान् ने वर मांगने को कहा तो इती पवित्र भावना से प्रेरित होकर उसने कहा “हजारों योनियों में से

में जिस-जिस योनि को प्राप्त होऊँ, उस उसमें ही मेरी भक्ति आप में सदैव अधुण्य रूप से बनी रहे। जैसे प्रविवेकी जन विषयो में अविवल प्रीति रखते हैं, वैसे ही आप मेरे हृदय से कभी भी प्रयक न हों।” (१।२०।१८, १९)

ऐसी निष्काम बुद्धि से जो भी भगवान् की भक्ति करता है। वह चिन्ता-मुक्त जीवन व्यतीत करता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है।

## ईश्वर प्राप्ति का साधन ज्ञान साधना—

ज्ञान की परिभाषा करते हुए विष्णुपुराण (६।५।८६-८७) में कहा गया है। “वे ही समष्टि और व्यष्टि रूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्त हैं, वे ही सर्वसाक्षी, सर्वज्ञाता और सबके स्वामी हैं और वे ही सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर सत्तक हैं। वे दोष रहित, मन रहित, विशुद्ध और एक रूप परमात्मा जिसके द्वारा देखे या जाने जाते हैं, वही ज्ञान है और इसके निपरीत प्रज्ञान है।” साधना में ज्ञान को उच्चतम स्थान प्राप्त है तभी गीता ४।३८ में कहा गया है। “इस लोक में ज्ञान के समान पवित्र सचमुच और कुछ भी नहीं है।” “पापी से पापी हो, तब भी वह इस ज्ञान नौका से तर जाती है (गीता ४।३६) यह ज्ञान रूपी अग्नि शुभ-अशुभ बन्धनों को जला डालती है (गीता ४।३७)। ज्ञान से मोह का नाश होता है और साधन समस्त प्राणियों को अपने में भगवान् दीखने लगता है (गीता ४।३५)। ज्ञान से ही परमेश्वर की प्राप्ति कही गई है (महा भारत का० ३८०।३)। ज्ञानी को कर्म दूषित नहीं कर सकते (छांदोग्य ४।१४।३)। इसी आधार पर विष्णुपुराण (२।६।४८) में ज्ञान को परब्रह्म कहा गया है। इसी के माध्यम से वह ईश्वर से मिल सकता है।

## आत्म-विकास की कसौटी साम्यभाव—

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हर प्राणी में आत्मा का निवास है। वह आत्मा एकरस अविनाशी, अवध्य है। गनना, सटना अथवा नष्ट होना उसकी प्रकृति में नहीं है। नाश तो पंचभौतिक शरीर का होता है। अतः ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि बाह्य प्राकृति से भले ही जीवधारियों में अन्तर

प्रतीत होता हो, वस्तुतः उनका कोई अन्तर नहीं है। सर्वत्र एक आत्मतत्त्व ही बिखरा हुआ है। ऐसा जानना और अनुभव करना ही ज्ञान है। जो व्यक्ति अपने को किन्हीं भौतिक विशेषताओं के कारण दूसरे से बड़ा समझता है, वह इसकी अज्ञानता है। इस अज्ञानता से शक्ति क्षीण होती है क्योंकि वह अपने को एक साधारण प्राणी मानने लगता है और ज्ञान से शक्ति का विकास होता है, क्योंकि वह अपने को महान् आत्मा अनुभव करता है। प्रह्लाद की सफलता का रहस्य समान भाव में ही था। वह किसी को अपना शत्रु व बैरी नहीं समझता था। तभी किसी भी आपत्ति का उस पर प्रभाव न पड़ा। उसने स्वयं दैत्य पुत्रों को शिक्षा देते हुए कहा था। “तुम सबके प्रति समान दृष्टि रखो क्योंकि सर्व समानता ही भगवान् अच्युत की परम आराधना है।” ( १।१७।६० ) ।

### साधना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचने का सरल मार्ग--भक्ति—

भक्ति का अर्थ है प्रेम। नारद भक्ति सूत्र में कहा है कि परमात्मा में परम प्रेम ही भक्ति का स्वरूप है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में परम अनुराग का नाम ही भक्ति है। गरुड मुनि का मत है कि भगवान् की कथा अर्थात् नाम, रूप, गुण और लीला के कीर्तन में अनुराग का नाम ही भक्ति है। भागवत में लिखा है “भगवान् की महिमा और गुणगान ध्वज करते ही समुद्र की ओर प्रस्थान करती हुई गंगाजी की अविच्छिन्न धारा की तरह चित्त की जब निष्काम अविच्छिन्न गति हो जाती है, उसी को भक्तियोग कहते हैं।” वास्तव में अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त द्वारा अनुभव करने की साधन प्रणाली को ही भक्ति मार्ग कहा गया है।

विष्णुपुराण में भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं “जिस तरह विषय भोगों में लीन लोगों में विषयो के प्रति एक-चित्त प्रीति होती है, उसी तरह भगवान् के प्रति अद्भुत और अविच्छिन्न प्रेम ही भक्ति का लक्षण है।”

इसी भक्ति भावना को विकसित करने के लिये विष्णुपुराण (१।१७। ८६।८६) में कहा गया है “जो शान्ति, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, वरुण,

सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्येन्द्र, किन्नर, मनुष्यो और पशुओं के अपने मन से उत्पन्न दोषों से, ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा और गुल्मादि रोगों से; तथा द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ और किसी भी अन्य भाव से नष्ट नहीं हो सकती, वह अत्यन्त निर्मल परम शान्ति भगवान् केदाव मे मन लगाने से ही प्राप्त हो सकती है ।" भगवान् ने गीता मे भक्तों को स्वयं आश्वासन देते हुए कहा है—  
“वह भक्ति से मेरा तात्त्विक ज्ञान पायेगा और तात्त्विक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह मुझमे प्रवेश पा जायेगा (१८।५५) ।

इससे स्पष्ट है कि भक्ति से साधना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचना सम्भव है ।

### शक्ति-संचय का साधन-सद्गुण—

सद्गुण मानव की सच्ची सम्पत्ति है । धन वैभव ही पूरा दुःख की तरह क्षीण हो जाता है परन्तु सद्गुण सदैव साथ रहते हैं और मानव को अपने परम लक्ष्य तक पहुँचाने मे सहायक सिद्ध होते हैं । दुर्गुण इस प्रगति मे बाधा उपस्थित करते हैं, इसलिये वह मानव के सबसे बड़े शत्रु माने गये हैं । इसलिए विष्णुपुराण ने सद्गुणों के विकास पर बल दिया है ।

गुणों के अभाव की चर्चा करते हुए कहा गया है “जय गुण नहीं तो पुण्य मे बल, शीर्षादि भी नहीं रहता और जियमे बल शीर्षादि नहीं, उमे कही भी आदर प्राप्त नहीं होता ।” (१।६।३१) इसका अभिप्राय यह है कि दुर्गुण दारोक्त, मानसिक और बौद्धिक सभी शक्तियों पर कुटाराघात करते हैं और उन्हें नष्ट करते रहते हैं । दुर्गुणी शक्तिहीन होता है और सद्गुणी शक्तिशाली, पुराणकार की प्रेरणा है कि जिसे शक्ति मन्थ्य के पथ पर चलना हो, वह सद्गुणों को अपने लिये । इसलिये कहा गया है कि “सद्गुणों मे ही मनुष्य प्रशान्त होता है ” (१।१३।५७) शक्ति का ही संयंघा पूजा और सम्मान होता है और शक्तिहीन का विस्मय ।

गुणों के आधार पर ही मनुष्य के जीवन का निर्माण होता है क्योंकि “गुणों की प्रेरणा से प्राणियों की प्रगति होती है ।” (२।१।४८) यही गुण

उसे चोर, डाकू या महात्मा बनाते हैं, यही महान पुरुष या दर-दर का भिसारी बनाते हैं, यही क्षुद्र या उच्च बनाते हैं, यही कलंकित करते हैं और यही प्रशंसित । अतः दुर्गुणों से सावधान रहकर सद्गुणों के विकास में लग जाना चाहिए ।

कथाम्रो के माध्यम से भी सद्गुणों की प्रशंसा की गई है । अक्षरजो को सद्गुणी घोषित करते हुए कहा गया है कि जब उन्होंने नगर का त्याग किया तो यहाँ दुर्भिक्ष और महामारी आदि उभरव होने लगे (८।१३।१२७-१२८) जब उन्हें वापिस लाया गया तो सभी उपद्रवों की दान्ति होगई (१३०) ।

पौरुङ्गकवश में वासुदेव नामक एक राजा हुआ था, जिसे अज्ञान से भ्रमे हुए मनुष्य वासुदेव रूप से अवतीर्ण हुआ कह कर उसकी स्तुति करते थे । इससे वह भी यह मान बैठा कि मैंने ही वासुदेव रूप से भूतल पर अवतार लिया है । इस प्रकार अपने को भूल जान के कारण उसने भगवान् विष्णु के सभी चिह्नों को धारण कर लिया । फिर उसने भगवान् श्रीकृष्ण के पास दूत के द्वारा यह सदेशा भेजा कि अरे मूढ़ ! तू वासुदेव नाम और चक्रादि सब चिह्नों को अभी त्याग कर दे और यदि अपना जीवन चाहता है तो मेरी शरण में उपस्थित हो (५।३४।४-७) ।

भगवान् कृष्ण ने स्वयं उपस्थित होकर उसका गर्व मर्दन किया । पौरुङ्गक ने विष्णु के बाह्य चिह्न धारण करके ही विष्णु का अवतार बनना चाहा । वेपभूषा को धारण करने से कोई बँसा नहीं बन जाता, यह निर्माण गुणों के आधार पर ही होता है । यह गुण ही क्षुद्र से महान बनाते हैं । बाह्य आकार आकर्षक हो या न हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । इसलिए पुराणकार ने नाशवान शरीर की सजावट की ओर ध्यान न देकर सद्गुणों के विकास पर बल दिया है ।

### धर्म पालन का अभिप्राय विवेकयुक्त व्यवहार—

धर्म का अर्थ केवल पूजा, पाठ और मन्दिर में जाकर भगवान् की साकार मूर्ति के समक्ष सर झुकाना ही नहीं है । धर्म के बड़े व्यापक अर्थ हैं ।

प्रायः इसके प्रति गलत धारणा बनाई जाती है। हमारे शास्त्रकारों ने इसका सुन्दर स्पष्टीकरण किया है।

“जो व्यवहार अपने विरुद्ध हो, उसको दूसरे के साथ मत करो। यही धर्म का तत्त्व है” (विष्णुधर्मोत्तर ३।२५१।४४) “जिस व्यवहार से इस लोक में आनन्द भोगते हुए परलोक में कल्याण प्राप्त हो, वही धर्म है” (वंशेषिक)। ‘न्याययुक्त कार्य धर्म और अन्याययुक्त कार्य अधर्म है, यही श्रेष्ठ पुत्रों का मत है’ (महाभारत, वनपर्व २०७।६७)। “सत्य बोले और प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न कहे, मिथ्या प्रिय न कहे, यह सनातन धर्म है” (मनु० ४।१३८)। यही पारिडाय है, यही चतुरता है, परम धर्म है कि आय से अधिक खर्च न हो” (पद्म पु० सृष्टि पटल अ० ५०)। धर्म के तीन स्कन्ध हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान” (छान्दोग्य) समग्र मानव जाति का—प्राणीमान का—जिससे हित होता हो, वही धर्म है” (तिलक)। “दया धर्म का मूल है” (तुलसी)। “सत्य बोलना, सब प्राणियों को एक जैसा समझना, इन्द्रियों को वश में रखना, ईर्ष्या द्वेष से बचना, क्षमा, क्षील, सज्जा, दूसरों को कष्ट न देना, दुष्कर्मों से अलग रहना, ईश्वर भक्ति, मन की पावनता, साहस, विद्या, यह १३ धर्म के लक्षण हैं। इनका पालन सबसे उत्तम धर्म है” (भोष्म)।

इसी धर्म को विष्णुपुराण में अपनी स्वाभाविक शैली में अभिव्यक्त किया है। १।७।२३ में कहा है “अढा, सक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, सज्जा, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति और वपु ये तेरह ब्रह्मण्ये भाषा रूप में धर्म ने ग्रहण की।’ अर्थात् यह गुण धर्म के जीवन साथी रहते हैं। आगे २६।३१ श्लोको में कहा गया है “इभी प्रकार मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड, नद और विनय, बुद्धि ने बोध, सज्जा न विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख और कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया। धर्म के यही सब पुत्र हैं। धर्म पुत्र काम ने रति से हर्ष को प्रकट किया। धर्म के जो पुत्र घोषित किये गये हैं, वह धर्म पालन के सहज परिणाम हैं। यह धर्म की सुन्दर व्याख्या है।

धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिए कथा का भी सहारा लिया गया है। एक बार दैत्य “धर्म के पालक, वेदमार्ग पर चलने वाले तथा तपोनिष्ठ होगये” (३।१८।३६)। देवता धरवाये। विष्णु के पास गये। विष्णु ने अपनी देह से माया-मोह को उ-पन्न किया जो दैत्यों के पास गया। उसने घनेको युक्तियों से दैत्यों को वैदिक मार्ग से हटा दिया, धर्म से विमुख कर दिया (३।१८।७-११) तब देवता दैत्यों पर विजय प्राप्त करने में सफल होगये। इससे स्पष्ट है कि धर्म पालन में शक्ति, सिद्धि और सफलता है और अधर्म में विफलता है। इस प्रकार से पुराण ने धर्म पालन की प्रेरणा दी है।

### ईश्वरीय शक्ति के सहवास से निर्भयता प्राप्ति—

प्रह्लाद का चरित्र निर्भयता का प्रतीक है। विष्णु के प्रति उसकी एक निरविवत धारणा वन चुकी थी जिसे उसके पिता नहीं चाहते थे परन्तु प्रह्लाद ने उसे अपने मन से हराने से मना कर दिया। हिरण्यकशिपु ने इसे अपनी अवज्ञा समझा और पुत्र को डाँटा, फटकारा और घोर बरख का भय दिया परन्तु जिसको विश्व की महानतम शक्ति का सहारा प्राप्त हो, वह सासारिक शक्तियों से क्यों भयभीत हो? कथा के अनुसार पिता ने पुत्र को वह मृग्य तुल्य वण्ड दिए जो एक सहृदय पिता अपने पुत्र के लिए कभी कलना भी नहीं कर सकता। सर्पों से डसवाया गया (१।१६।३७) जिनका उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सर्पों ने कहा इसके काटने से हमारी दाढ़ें विदीर्ण हो गईं, मलिन्यो में दरारें पड़ गईं, फणों में दर्द होने लगा (१।१७।४०)। पर्वत की शिखर के समान विशाल देह वाले दिग्गजों ने उस बालक को पृथ्वी पर डालकर अपने दाँतों से रौंदने की चेष्टा की (१।१७।४२)। अग्नि ने उसे भस्म करने की चेष्टा की (१।१७।४६) परन्तु प्रह्लाद न बह्रा ‘मुझे सभी दिशाएँ ऐसी घीतल लग रही हैं जैसे मेरे चांगे और कमल के पुष्प बिछ रहे हैं’ (१।१७।४७)। रसोईयो ने उसे हलाहल विष दिया (१।१८।४) वह भगवन्नाम के प्रभाव से तेजहीन हो गया। उसे वह बिना

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो कार्य भी हम करते हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तर्मान में हो जाता है। इस चित्रण को आध्यात्मिक भाषा में रेखाएँ कहा जाता है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० फ्राइड। अन्तर्मान पर हुए चित्रण को ही भाग्य रेखाएँ कहा जाता है। वैज्ञानिकों ने इन रेखाओं का मनन अध्ययन किया है। डा० ईवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसंधान के फल-स्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि जय मस्तिष्क के भूरे चर्बीदार पदार्थों को सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों से देखा गया तो उसके एक-एक परमाणु पर असंख्य रेखाएँ अंकित हुई मिली। यह रेखाएँ क्रियाशील प्राणियों में अधिक और क्रिया धूम्य प्राणियों में कम देखी गई। विशेषज्ञों का कहना है कि यही रेखाएँ उपयुक्त समय पर कर्मों का साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

कर्मों का सूक्ष्म रेखाकन स्वचालित यन्त्र द्वारा ही अपने आप होता रहता है। इस प्रतिक्रिया को समझने के लिए चित्रगुप्त रूपी देवता का नाम रखा गया है कि वह प्राणियों के सभी कर्मों को निरन्तर अपनी वही में लिखता रहता है और मृत्यु के पश्चात् जब प्राणी को यमराज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्यों का लेना-जोना बताते हैं, उन्हीं के अनुसार उसे फल मिलता है। यह चित्रगुप्त वास्तव में हमारा अन्तर्मानगुप्त मन ही है जो निरन्तर हमारे कार्यों के चित्र लेता रहता है और उन्हें सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आने पर उन्हें प्रकट कर देता है।

विष्णु पुराण में कर्म सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। (१।१।१७) में कहा है “कोई किसी का बंध नहीं करता है क्योंकि सब अपने-अपने कृतकर्मों का फल भोग किया करते हैं।” कर्म की अमिट रेखाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है (१।१।१७) “पूर्व जन्म के कर्म का फल कोई नहीं मिटा सकता और जो तूने नहीं किया, उसे कोई दे नहीं सकता।”



बड़े विश्वास के साथ कहा गया है (१।१६।५-६) “जो मनुष्य दूसरो का बुरा नहीं करना चाहता, उसका अकारण ही कभी अनिष्ट नहीं होता। जो मनुष्य मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट देता है, उसे उस परपीडा रूप कर्म के द्वारा उत्पन्न हुआ अत्यन्त अशुभफल प्राप्त होता है।”

कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करने वाले जब श्रेष्ठ कर्म करते हैं तो वह अपने निश्चित उज्ज्वल भविष्य की भाशा रखते हैं। इसीलिए कहा गया गया है “श्रेष्ठ चित्त वाला होने से मुझे दैविक, मानसिक अथवा भौतिक दुःख कैसे मिल सकता ?” (१।१६।८)।

यह सिद्धान्त निश्चित भविष्य की भाशा का प्रेरक है।

## साफलता की कुञ्जी—पुरुषार्थ

बैसे तो उत्थान के लिये पुराणकार ने अनेको मार्ग और साधनाओं का मार्ग-दर्शन किया है परन्तु ध्रुव चरित्र के माध्यम से जो पुरुषार्थ का वर्णन किया गया है, वह सब से श्रेष्ठ माना जायेगा क्योंकि वही सब साधनाओं के मूल में है। इसी के बल पर सभी साधनाएँ सफल होती हैं।

ध्रुव को अपने अधिकारों से वंचित होना पड़ा। वह पवराय नहीं। अपने अधिकार के लिये पान्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यह पान्त्रता प्राप्त करने के लिये उसने पुरुषार्थ का सहारा लिया। उस ने स्वयं कहा “किसी दूसरे के द्वारा दिये हुये पद की अभिलाषा नहीं करता, मैं तो अपने पुरुषार्थ से ही उस पद को पाना चाहता हूँ जिसे पिता जी भी नहीं प्राप्त कर सके हैं।”

उन्नति की कोई सीमा नहीं है। इस से असीम उन्नति की आशा की जाती है। जिस तरह ध्रुव ने पुरुषार्थ से अमर पद पाया, उस तरह पुराणकार विश्वास दिलाते हैं, कि हर कोई ऐसा कर सकता है।

## संघर्ष का उद्देश्य अधिकार नहीं कर्तव्य हो

हर युग में हर तरह के व्यक्ति हुए हैं। कोई न्याय या अन्यायपूर्वक, स्वार्थ या लोभवश संघर्ष करके अपने अधिकार प्राप्त करते हैं और किन्हीं

ने न्याय और कर्तव्य के लिये अपने जीवन खपा दिये, कोई अपने क्षेत्र के विस्तार में लगा रहा है, कोई उनकी सुव्यवस्था में। कस, रावण और हिरण्य-कशिपु जैसे राजा अन्याय के लिये प्रसिद्ध हैं और राम, कृष्ण जैसे राजा अपने न्याय के लिये। जब राम ने रावण पर विजय प्राप्त करली तो वह सुविधापूर्वक लका के शासक बन सकते थे परन्तु उन्होंने इसे अपना अधिकार नहीं समझा, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इसे विभीषण को दे दिया। यही उचित था।

यही आदर्श विष्णु पुराण ( पञ्चम अंश के २१ वें अध्याय में ) में कृष्ण द्वारा उपस्थित किया गया है। कस के उत्पात बहुत बढ़ रहे थे, वह दमन की नीति का अनुयायी था। प्रजा अत्यन्त दुःखी थी, जिसने शासन के विरुद्ध सर उठाया, उसे दबा दिया गया। कृष्ण ने भी विरोध किया। कस ने कृष्ण को मारने के अनेको प्रयत्न किये परन्तु वह सफल नहीं हुआ। कृष्ण की योजना सफल हुई, क्योंकि कस की दमन नीति से उसके सहायक भी उसके विरोधी हो गये थे और गुप्त रूप से कृष्ण का साथ दे रहे थे। कृष्ण ने कस को मार कर सत्ता हथियाने का प्रयत्न नहीं किया। कस अन्याय की प्रतिमा थे। उसे नष्ट करना ही उनका उद्देश्य था। वह चाहते तो स्वयं शासन की बागडोर सम्भाल सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कस के पिता उग्रसेन को उन्होंने शासक नियुक्त किया। उन्होंने अधिकार के लिये नहीं कर्तव्य के लिए सघर्ष किया और कर्तव्य की पूर्ति होने पर स्वयं भलग हो गये। यही आदर्श है जिस के पालन की आज आवश्यकता है।

अनधिकार चेष्टाओं से दूर रहने के कुछ और उदाहरण भी विष्णु-पुराण में दिये गए हैं। एक बार कृष्ण और सत्यभामा इन्द्रपुरी गये। सत्य-भामा को राक्षी के पारिजात वृक्ष के पुष्प पसन्द आये और कृष्ण को पारिजात ले जाने के लिये प्रेरित किया। जब वह वृक्ष को ले जाने लगे तो द्वारपालो ने रोका, इन्द्र व अन्य देवता भी वहाँ आगये और उस वृक्ष पर घोर सग्राम हुआ। अन्त में इन्द्र की पराजय हुई और इन्द्र कृष्ण को पारिजात ले जाने से रोक न सके। सत्यभामा ने कहा "मुझे इस पारिजात रूप पराई सम्पत्ति

को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। ( १।३०।७६ ) मैं ने तो शची का गर्व नर्दन करने के लिये यह युद्ध कराया था ।”

राजा शान्तनु का उदाहरण प्रेरणाप्रद है। विष्णु पुराण ( ४।१०—१४।२१ ) में इस प्रकार कथा वर्णित की गई है। शान्तनु के शासन काल में एक समय बारह साल पर्वन्त बरसात नहीं हुई। तब अपने समस्त राज्य को समाप्त होता देख कर नृप शान्तनु ने विप्रों से पूछा “मेरे देश में वर्षा का अभाव क्यों है ? इसमें मेरी क्या त्रुटि है। ब्राह्मण बोले—“जिस राज्य को आप भोग रहे हैं, वह आपके ज्येष्ठ भ्राता का है, इसलिये आप तो केवल सरक्षक मात्र हैं।” यह सुन कर शान्तनु ने पुनः पूछा—“इस परिस्थिति में अब मुझे क्या करना अभीष्ट है ?” ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—“आपके ज्येष्ठ भ्राता देवापि किसी प्रकार पतित या अनाचारी होकर राज्य में पदच्युत होने योग्य न हो, तब तक इस राज्य के अधिकारी वही हैं। इसलिये आप इस राज्य को अपने भाई को ही सोप दें, आपका इससे कोई सम्बन्ध नहीं।”

शान्तनु ने अपने अधिकार को स्वीकार किया। पुराणकार के अनुसार ब्राह्मणों के वचन सुन कर दुःखित एवं शोकाकुल राजा शान्तनु ब्राह्मणों को सग लेकर ज्येष्ठ भ्राता को राज्य सोपने वन की गये। वे सभी सरलमति विनीत व्यवहारी राजकुमार देवापि के आश्रम पर पहुँचे। जहाँ ब्राह्मण उन्हें समझाते रहे और “ज्येष्ठ भ्राता को ही राज्य करना चाहिये।” आदि वेदों के अनुसार नीति एवं उपदेशपूर्ण वचन कहते लगे। लेकिन देवापि ने वेद नीति के विरुद्ध उनसे अनेक प्रकार से दूषित वचन बहे। जिन्हें सुनकर शान्तनु से उन ब्राह्मणों ने कहा—हे नृप ! चलिये, अब अधिक आश्रु कराने की आवश्यकता नहीं है। आदि काल से भाराध्य वेद वाच्यों के विरुद्ध दूषित वचन कहने से देवापि पतित हो गये हैं। अब आप चले अनावृष्टि का दोष समाप्त होकर आपके राज्य में वर्षा प्राप्ति हो गई है। चूँकि वडा भाई इस प्रकार पतित हो चुका है, हम कारण अब आप सरक्षक या परिवेत्ता मात्र नहीं हैं। फिर शान्तनु अपने राज्य की ओट पाय और शासन करने लगे।” ( ४।२०—२३।२४ )

शान्तनु को जब यह पता चला कि राज्य पर उसका अधिकार नहीं है तो वह उसे छोड़ने के लिये तैयार हो गये । अनधिकार पूर्वक राज्य करने से वर्षा का अभाव हो गया था परन्तु जब बड़े भाई को ब्राह्मणों ने भयोम्य पाया और शान्तनु को राज्याधिकार मिल गया तो वर्षा आरम्भ होगई । अनधिकार चेष्टा से दैवी प्रकोप होता है और अधिकार पूर्वक कार्य करने पर दैवी सहायता मिलती है । कथा का अभिप्राय यह है कि हमें अविवेक के वश में हो कर अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन नहीं करना चाहिये । इस सीमा रेखा के प्रति सदैव सतर्क रहना चाहिए क्योंकि अनधिकार की सीमा में प्रवेश करके कलह, क्लेश, सघर्ष, कठिनाई और घोर विरोधों का सामना करना पड़ेगा जिससे मन हर समय अशान्त रहेगा और यह भी सम्भव नहीं कि वह अनधिकार का प्रयत्न सफल हो जाये ।

## आत्म निरीक्षण

मानव अपूर्ण है । यह अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिए पूर्ण की ओर प्रवृत्त होता है । ईश्वर पूर्ण है, दोष रहित है । उससे अनुकूलता प्राप्त करने के लिए अपने दोषों का परिमार्जन करना पड़ेगा । विवेक की जाग्रति बिना यह सम्भव न होगा । कौन-सा कार्य करने योग्य है और कौन-सा न करने योग्य, ग्रहण और त्याग योग्य कर्मों का निरीक्षण करना होगा । उचित और अनुचित को परखना होगा और उचित को स्वीकार करना होगा । अपने गरेवान में झाँक कर देखना होगा कि मुझ में कौन-कौन से दोष हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है, जिन से आत्म विकास में बाधा उपस्थित हो रही है । चार पुरुषार्थों पर विचार करना चाहिए । अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम को सन्तुलित रखना आवश्यक है ताकि सुविधापूर्वक आगे बढ़ा जा सके । विष्णु पुराण ( ३।११—१।७ ) में इन तीनों पुरुषार्थों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है “गतिमान् पुरुष को स्वस्थ चित्त से ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर अपने धर्म तथा धर्म कार्य में बाधक विषयों पर विचार करना चाहिये और उस कार्य का

भी विचार करे जिससे धर्म और अर्थ की हानि न हो। इस प्रकार दृष्टदृष्ट अनिष्ट की छान्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम इन तीनों के प्रति समभावी हो। धर्म के विरुद्ध जो अर्थ और काम हैं, उनका त्याग करे और ऐसे धर्म को छोड़ दे जो आये चल कर दुःखमय हो जाय अथवा समाज के विरुद्ध हो।”

इस प्रकार का आत्मनिरीक्षण ही एक ऐसा उपाय है जिसमें दोषों को अनुभव करके उनका परिमार्जन किया जा सकता है।

### सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार—प्रेममय व्यवहार—

महर्षि सीमरि ने राजा मान्धाता की ५० कन्याओं के साथ विवाह किया। यह विस्तृत चरित्र धनुष्यंश के दूसरे अध्याय में वर्णित है। एक बार मान्धाता यह जानने के लिये महर्षि के आश्रम में गए कि उनकी कन्याएँ किस परिस्थिति में रह रही हैं। राजा सभी कन्याओं से मिले। सभी हर प्रकार से सुखी थी, किसी तरह का उन्हें प्रभाव न था परन्तु हर कन्या ने अपने इस दुःख का वर्णन किया कि “हमारे पति यह महर्षि मेरे भवन से कभी निकलते ही नहीं, मुझ पर ही अत्यधिक स्नेह रहने के कारण यह हर समय मेरे ही पास रहते हैं, मेरी अन्य बहिनो के पास कभी नहीं जाते” (४।२।१०६-७)। सभी पत्नियाँ यह अनुभव करती हैं कि उनके पति उनसे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। यही दाम्पत्य जीवन की सफलता का चिह्न है। महर्षि भले ही योग बल से सभी पत्नियों के साथ एक ही समय में रह पाते हों परन्तु वास्तविकता यह है कि वह अपनी पत्नियों को सन्तुष्ट करने में सफल रहे। गृहस्थ जीवन उसी का सफल माना जाना चाहिये जिसकी पत्नी यह अनुभव करे कि जहाँ तक उसकी जानकारी है, अन्य पतियों की अपेक्षा उसके पति उससे अधिक प्रेम करते हैं। यह सन्तोष ही गृहस्थ जीवन के सुखी होने की नींव है। यही उत्तम कसौटी है।

### गृहस्थ योग है—

गृहस्थ की बन्धन नहीं, योग की सजा दी गई। भ्रजानियों के लिये तो यह बन्धन ही है क्योंकि इसमें संशयो तरह के भ्रमट पग-पग पर उपस्थित

होते रहते हैं, परन्तु विवेकी पुरुष इस संघर्षमय जीवन को ही अपने उत्थान का माध्यम मानते हैं। इसमें जो दुःख आते हैं, वह विकास के भविष्य की आशा लेकर आते हैं। गृहस्थ में क्रियाशीलता, चेतना और जागरूकता बनी रहती है, जो आत्मिक साधना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गृहस्थ किसी पर निर्भर नहीं रहता, ग्रन्थ आश्रमों का यह आश्रय स्थल है, यह किसी की सहायता नहीं चाहता, यह औरों की सहायता करता है। इसलिए इस आश्रम में आत्मविकास की काफी सम्भावना निहित है। तभी विष्णुपुराण (३।१।२। ११) में गृहस्थ के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है "पितरों की पिण्डदानादि से, देवताओं की यज्ञादि के अनुष्ठान से, अतिथियों की अन्न-दान से, ऋषियों की स्वाध्याय से, प्रजापति की पुत्रीस्पादन से, भूतो की बलि से और सम्पूर्ण विश्व की वात्सल्य भाव से सन्तुष्टि करे। अपने इन कर्मों के द्वारा वह पुरुष श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर लेता है। भिक्षावृत्ति पर निर्भर रहने वाले परित्राजको और ब्रह्मचारियों आदि का आश्रय भी यह गृहस्थाश्रम ही है, इसीलिये इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।"

गृहस्थ को प्रेरणा देते हुए कहा गया है (३।१२।१-७) कि "वह प्रति-दिन देवता, गौ, ब्राह्मण, मिश्रण, गुरुजन और आचार्य का पूजन करे तथा दोनों समय सन्ध्योपासन और अग्निहोम करे। सयम पूर्वक रहे। किसी के किञ्चित् मात्र धन का भी अपहरण न करे, अप्रिय भाषण न करे, परनारी से प्रीति न करे, दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे"। आज इन आदर्शों और कर्तव्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता, इसलिए इस परम पवित्र गृहस्थ आश्रम का बोझ अनुभव किया जाता है।

### गुरुजनों का सम्मान-एक सामान्य शिष्टाचार—

'अद्वयतारक' उपनिषद् के अनुसार गुरु ही परब्रह्म है, गुरु ही परम गति है, गुरु ही परम विद्या है, गुरु ही परापरण योग्य है, गुरु ही पराकाष्ठा है, गुरु ही परम धन है। वह उपदेष्टा होने के कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है। यही भारतीय सस्कृति की धारणा है। प्राचीनकाल में गुरु निःस्वार्थी, निर्लोभी,

तपस्वी होते थे और निरन्तर अपने शिष्यों के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहते थे, तभी तो महर्षि ऋषु अपने पुराने शिष्य निदाघ के निवास स्थान पर मद्रंत और आत्मबुद्धि की शिक्षा देने जाते हैं ( विष्णु पुराण २।१६।१८ ) और निदाघ उनकी सेवा करते हैं, प्राजा का पालन करते हैं और गुरु क मादश का अनुसार साधना में लग जाते हैं ।

प्राचीन व्यवस्था में गुरु को काफी सम्मान दिया जाता था । बालक को गुरु गृह में रहकर गुरु सेवा का आदेश दिया गया है ( ३।६।१-२ ) । गुरु के प्रति शिष्टाचार का पालन करते हुए ( ३।६।२-६ ) में कहा गया है, गुरुशय का अभिवादन करे । जब गुरुजी खड़े हो, तब खड़ा हो जाय, जब चले तब पीछे-पीछे चले और जब बैठे तब नीचे बैठ जाय । इस प्रकार करते हुए सभी भी गुरु क विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिये । गुरुजी यह सभी उनके सामने बैठकर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा स प्राप्त भक्ष का भोजन करे । जब आचार्य जन में स्नान कर लें तब स्नान करे और नित्य प्रति उनके लिये समिधा, जल, कुत, पुष्पादि लाकर एकत्र करे । इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करने मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो । ”

गुरुजनो की आज्ञा व पालन स सिद्धियों की प्राप्ति का यथान सम्मान म पाया है । गुरु ग्रन्थकार व मन्त्रिवेक को यह वरत है मत शिष्टनाश्रुत उनका सम्मान करना चाहिये ।

**पितृ सेवा—युग का परम धर्म—**

पूर्वक वर्तता है, वह जीता हुआ भी मृतक के समान है और मरने पर नरक को जाता है" अध्यात्म रामायण ( ६।३। ) । पिता की प्रसन्नता के लिए भीष्म प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है । श्रवणकुमार की सेवा को कौन भुला सकता है ? इसीलिए पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए विष्णु पुराण ने भी कहा है, "पिता सर्वत्र प्रदासनीय है, वही गुरुओं के परम गुरु हैं, इसीलिए उन्हीं की स्तुति करनी चाहिये" ( १।१८।१३ ) । पुराणकार ने भगवान् कृष्ण के मुख से कहल-  
वाया है "माता-पिता की सेवा किए बिना व्यतीत हुआ आयु भाग प्रसाधुत्व को प्राप्त कराता हुआ व्यर्थ हो चला जाता है" ( ५।२१।३ ) ।

राजा ययाति छुकाचार्य के शाप से असमय में ही वृद्ध हो गये । फिर यह छूट मिली कि वह अपने किसी पुत्र का यौवन लेकर अपनी वृद्धावस्था उसे दे सकते हैं और यौवन के भोगों को भोग सकते हैं । ययाति पुत्र पुत्र ने अपना यौवन पिता को अर्पित करते हुए कहा, "यह तो आपका मरु पर परम अनुग्रह है । इस प्रकार कहकर पुत्र ने उनकी वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था उन्हें दे दी" ( ४।१०।१६-१७ ) । पितृ सेवा का यह भी एक अनोखा उदाहरण है—अपना यौवन पिता को अर्पित करना । यही भीष्म पुराणकार देना चाहते हैं कि पिता की सेवा हमारा परम धर्म होना चाहिए ।

## समय का सदुपयोग—

समय को एक मूल्यवान् सम्पत्ति माना जाता है । जो इसका सदुपयोग करता है, सफलता उसके पैर चूमती है, दुरुपयोग करने वाले को रोते-झीकते और भाग्य को कोसते ही देखा गया है । जीण परिस्थितियों में पले व्यक्तियों ने उसकी सिद्धि से महान् सफलताएँ प्राप्त की हैं और उत्तम अवसर प्राप्त व्यक्तियों का जीवन उसके अभिशाप से नष्ट हो गया ।

माता-पिता अपने बच्चों को वही शिक्षा देते हैं जो माया रूपी सुनीति ने ध्रुव को अपने साधना-पथ से विचलित होने के लिए दी थी कि "क्योंकि अभी तो तेरी आयु खेलने-हूदने की ही है, फिर अध्ययन करने योग्य होगी, उसके बाद भोगों को भोगने का समय होगा और अन्त में तप करने की अवस्था



प्राप्त होगी। हे पुत्र ! तुझ सुकुमार की जो बाल्य वस्था है, उस खेलने की अवस्था में तू तपस्या का अभिलाषी हुआ है, अरे, तू क्यों इससे अपना सर्वनाश करने को तत्पर है ? मुझे प्रसन्न करना ही तेरा परम धर्म है, इसलिये तू अपनी आयु के अनुकूल ही कर्मों को कर, मोह का अनुव्रतन कर और इस तपस्या रूढ़ी धर्म से भव विमुक्त होजा" (१।१२।१८-२०)।

तभी तो पुराणकार ने प्रेरणा दी है, "मूर्ख मनुष्य बाल्यावस्था में खेलते-कूदते, यौवनावस्था में विषयो में फँसे रहते और वृद्धावस्था में प्रसमय हो जाते हैं। इसलिए विवेकी मनुष्य को बाल, युवा या वृद्धावस्था का विचार न करके, बाल्यावस्था से ही अपने कल्याण में लग जाना चाहिये" (१।१७। ७५।७६)। बाल्यावस्था और यौवन में इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं। वह कठोर से कठोर साधना करने में समर्थ होता है। वृद्ध होने पर तो वह शिथिल हो जाती है, फिर उनसे कुछ भी नहीं बन पाना। इसलिए यह अवस्था पहुँचने से पूर्व ही समय का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी गई है।

राजा सट्वांग ने भी आयु से पूर्व एक मुहूर्त के समय का अच्छा उप-योग किया। उसने देवागुर सग्राम में देवताओं की सहायता की थी। इसलिये देवताओं ने उससे घर मंगने को कहा (४।४७५-७६)। उस समय उनकी एक मुहूर्त की आयु रह गई थी। राजा एक अशाय गति वाले पान पर चँठकर मृत्यु लोक में पहुँचा और बोला, "यदि मैंने कभी अपने धर्म से नहीं छोड़ा, यदि सब देवता, मनुष्य, यक्ष पक्षी और वृक्षादि में भगवान् के प्रतिरिक्त कुछ और नहीं देता तो मुझे निर्वाण रूप से भगवान् थी विष्णु की प्राप्ति हो" (४।४।८०)। यह कड़कर सट्वांग अपना चित्त परमात्मा में लगाकर सोन हो गये। तभी ऋषि प्रजापति कहते हैं कि 'सट्वांग जंगल कोई भी राजा पृथ्वी पर नहीं होना है जिसने केवल एक मुहूर्त जीवन के समय रहते हुए स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर अपनी बुद्धि से सोनो सोनो को पार किया और भगवान् की प्राप्ति कर लिया" (४।४।८१-८२)।

पुराणकार की प्रेरणा है कि हमें एक क्षण भी नष्ट किए बिना अपने

लक्ष्य की ओर निर्बाध गति से चलते जाना चाहिए और समय जैसी मूल्यवान् सम्पत्ति को नष्ट न करके उसका सदुपयोग करना चाहिये ।

### साधना का भूषण—क्षमा—

विष्णु पुराण ( १।१।२० ) में क्षमा को साधुना का भूषण कहा गया है । यह निर्दलता का चिन्ह नहीं, शक्ति का द्योतक है । अपराधी को दण्ड देना तो साधारण नियम है । आधुनिक मनोविज्ञान ने भी लम्बे समय के अनुभव के बाद निश्चित किया है कि अपराध वृत्ति को दण्ड के भय से सुधारा जाना संभव नहीं है, उसके लिये अन्य उपाय अपनाने चाहिए । अपराधी को दण्ड दिला कर मन को कुछ सन्तोष अवश्य हो जाता है परन्तु उससे किसी का भी भला नहीं होता । अपराधी की अपराध वृत्ति उत्तेजित होती है और दण्ड दिलाने वाले के मन में शत्रुता के भाव दृढ होते हैं । पुराणकार प्रह्लाद की कथा के माध्यम से अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हैं । प्रह्लाद के पिता ने उसे अपने को प्रकार के मृत्यु दण्ड दिये जिनसे वह बच निकला । विष्णु भगवान के जब उसे दर्शन हुए और उन्होंने वर मांगने के लिये कहा तो प्रह्लाद ने साधुना का परिचय देते हुए कहा—“मेरे देह पर शस्त्राघात करने, अग्नि में जलाने, सर्पों से कटवाने, भोजन में विष देने, पाशबद्ध कर समुद्र में डालने, शिलामो से दबाने तथा अन्यान्य दुर्व्यवहार मेरे साथ करने के कारण जो पाप मेरे पिता को लगे हैं, उन पापों से वह शीघ्र छूट जायें ” ( १।२०।२२-२४ ) । यह है सच्ची क्षमा । पिता ने पुत्र को अपना विरोधी समझकर उसे यमपुर पहुँचाने के सभी सम्भव प्रयत्न किये तो पुत्र भी वैसा कोई वर माँग सकता था जिससे अपना बदला लिया जा सके परन्तु उसने अज्ञानी जान कर क्षमा कर दिया । यह महानता का लक्षण है ।

### स्पष्टवादिता—साहसी जीवन का परिचायक गुण—

मन और व्यवहार में अन्तर होना एक अवगुण है । ऐसे व्यक्ति पर कोई भी विश्वास नहीं करता । इससे अन्ततः हानि ही होती है । जो मन में है, वह क्रिया में होना एक विशेषता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों का विश्वासपात्र

बनता है और उसे हर तरह का सहयोग मिलता है । विष्णु पुराण ऐसी स्पष्ट-वादिता का समर्थक है । एक बार देवताओं और दैत्यो में युद्ध होने को था । दोनों ब्रह्मा के पास अपना भविष्य पूछने गये । ब्रह्मा ने उन्हें कहा कि जिस पक्ष के साथ राजा रजि अस्त्र धारणपूर्वक युद्ध करेगा, वही पक्ष जीतेगा ( ४।६।४-५ ) । दैत्य उसके पास गये । रजि ने यह शर्त रखी कि यदि विजयी होने पर मैं दैत्यो का इन्द्र बन सकूँ तो मैं तुम्हारी ओर से युद्ध करने को तैयार हूँ । इस पर दैत्यो ने स्पष्ट रूप से कहा—‘ हम जो कह देते हैं, उससे विपरीत आचरण कभी नहीं करते । हमारे इन्द्र ब्रह्माद हैं और उन्हीं के लिये हम इस संग्राम में तत्पर हुए हैं ’ ( ४।६।८ ) । दैत्य हार गये परन्तु उन्होंने कपट नहीं किया, स्पष्ट रूप से रजि को वास्तविकता से परिचय कराया ।



## प्रभावशाली व्यक्तियों का चित्रण

विष्णु पुराण में प्रभावशाली व्यक्तियों को उभारने का प्रयत्न किया गया है । शिक्षाओं और प्रेरणाओं का व्यक्ति के मस्तिष्क पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि मध्यममन्य व्यक्तियों की सच्ची पटनाओं से । इसीलिये पुराणकारों ने जीवन उत्थान के सूत्रों की कथाओं के माध्यम से या की दाँती प्रपनाई । अपने उद्देश्य की प्रति के लिये उन्हें दो प्रकार के व्यक्तियों में लाना पड़ा—एक अच्छे और दूसरे बुरे । अच्छे के गुणों को ग्रहण किया जा सके और बुरे की गुराइयों के प्रति सजग रहा जाय ।

पहली श्रेणी में अनेकों महान् और आदर्श आत्माओं को लिया गया है । जनक ( ४।५।१२ ) आदर्श कर्मयोगी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं । राजा होकर भी वह सभी भोगों में अलिप्त रहते हैं । धर्मिय होकर ब्राह्मणों और संन्यासियों तक की निष्ठा देते हैं । हर व्यक्ति पुरुषार्थ के रत्न पर महान्तम पद प्राप्त कर सकता है ।

ध्रुव ने बाल्यकाल में भगवत्प्राप्ति की साधना पारम्भ की । यह पावन-कल के भौतिकवादिश्यों को चेतावनी है, जो अपने बगों को स्नान की पुस्तक

के प्रतिरिक्त और कुछ पढ़ने की भाज्ञा और प्रेरणा नहीं देते । ध्रुव को अपने अधिकारों से वञ्चित किया गया । वह किसी के पास रोया नहीं, गिड़गिड़ाया नहीं । पुरुषार्थ के बल पर उसने अपना अधिकार प्राप्त किया । विश्व की हर शक्ति पुरुषार्थ के सामने घुटने टेक देती है । जो व्यक्ति परिस्थितियों का रोगा रोकर भाग्य और ईश्वर को कोसा करते हैं, उन्हें ध्रुव के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए कि वह अपनी बुरी से बुरी परिस्थितियों को पुरुषार्थ से सुधार सकते हैं ।

प्रज्ञाद निर्भयता के प्रतीक हैं । जो साधक शरीर-भाव से ऊँचा उठ कर आत्म-भाव में स्थित हो जाता है, उसे ससार की महानतम शक्तियों से भी भय नहीं लगता, क्योंकि वह समझता है कि उसका यह पंचतत्वों का शरीर तो भ्राज नहीं कर नष्ट हो ही जायगा । इसके नष्ट होने पर भी मेरा नाश सम्भव नहीं है, मैं तो अविनाशी तत्व हूँ । यह छाप जिसके मन पर स्थायी रूप से पड़ जाती है, वह विष, अग्नि से क्यों मरेगा ? पर्वतों से गिरने और समुद्र में डूबने से उसका क्या होगा ? वह तो सदैव एक जैसी स्थिति में रहेगा । जीवन की सफलता इसी में है न कि भौतिक ऐश्वर्यों के संचय में ।

“सगर का जन्म तपोवन में हुआ था । उनका राज्य छिन गया था । जब वह बड़ा हुआ तो अपने सभी शत्रुओं को परास्त करके सात द्वीपों वाली सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य किया ” ( ४।४।४६ ) । अपने छीने हुए अधिकारों को पराक्रम से वापिस लिया जा सकता है ।

भागीरथ भी पुरुषार्थ के प्रतीक ही है जो गया को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने में सफल हुए और पृथ्वी को स्वर्ग बना दिया । स्वर्ग से अवतरित होने की कथा को बुद्धिवादी न भी मानें तो यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उसने बाध बनवाकर गयाजल को एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करने की योजना बनाई और सफल हुए ।

शृणु बलराम ने तो मिलकर कम, जरासघ जैसे अजेय शक्तियों को पराजित किया और धेनुबामुर, प्रलम्बाबामुर जैसे अनिष्टकारी तत्वों का विध्वन

किया । यह उच्चकोटि की परमार्थ साधना है । इसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर कोई भ्रपना सकता है ।

वसुदेव देवकी भ्रपने धुन के पक्के थे । वह जानते थे कि उनके हर शिशु का वध कर दिया जायगा । साधारण बुद्धि तो यह निर्णय करती कि भ्रपने बंधो को आँखों के सामने मरते देखने की अपेक्षा यही उचित था कि उन्हें उत्पन्न ही न किया जाय परन्तु उनका निश्चय था कि उनकी सत्तान कस का भ्रन्त करेगी । वह भ्रपने हृदय को कटना देखते रहे परन्तु हठ निश्चय और सत्त्व एक दिन सफल होता ही है । वह कृष्ण को बचाने में सफल हुए जिसने कस को यमपुरी पहुँचाकर देस में क्षान्ति और व्यवस्था की स्थापना की ।

नन्द का बलिदान भी कम महत्त्व का नहीं है । उसने दूमरे के शिशु को बचाने के लिये अपनी कन्या को बलिवेदी पर चढ़ा दिया । उस त्याग का ही यह फल हुआ कि कस जैसी महान् शक्ति को तोड़-फोड़ दिया गया । त्याग ही बड़े-बड़े कार्य होते देखे गये हैं ।

विरोधी व्यक्तित्व भी कम प्रभावशाली नहीं हैं । रावण ( ४।१५ ) ने लका को स्थानमय बना दिया था । वह महान् पंडित और भौतिक विज्ञानी था, वह स्वयं तक सीढ़ी बनाने के प्रयत्न में था परन्तु सीताजी के प्रति आसक्त होने से वह कलङ्कित हो गया । विद्वान् और ऐश्वर्यशाली होना ही पर्याप्त नहीं है, चरित्रवान् होना महानता की प्रथम कसौटी है । वह सब तरह से प्रभावशाली था परन्तु एक प्रवगुण, दुश्चरित्र ने धुन का काम किया ।

कस का विस्तृत चरित्र विष्णु पुराण में उपलब्ध है ( पंचम अंश, अध्याय १६-२१ ) । उसकी निर्दयता का विशिष्ट उदाहरण है । जनता पर भ्रन्याय और जुन्म दाना तो प्राचीन राजाओं के लिये एक साधारण बात रही है परन्तु भ्रपनी बहिन की सत्तानो का बध वही नहीं सुना गया । जो वही न सुना गया, न देखा गया, वह कस ने किया । जो राजा भ्रपने सगे सम्बन्धियों के साथ ऐसा दुष्प्रवहार कर सकता है, उससे कल्पना की जा सकती है कि जनता के लिये वह कितना जातिम होगा । कस के चरित्र से स्पष्ट है कि भ्रन्याय

और निर्दयता से शक्ति का ह्रास होता है । इतने शक्तिशाली सम्राट् को एक बालक कृष्ण ने परास्त कर दिया । न्याय का पक्ष लेने वाली छोटी शक्तियाँ मन्याओं की शक्तियों पर सहज ही विजय प्राप्त कर सकती हैं ।

जरासंध' के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है । यह कस का समुर था । जब कृष्ण ने कस का बध किया तो वह असह्य सेना लेकर मथुरा पर चढ़ाई करने आ गया । यादवों की योद्धा-सी सेना ने उसकी विशाल सेना को एक नहीं गठारह बार परास्त किया । अन्याय और अत्याचार उसका भी एक अवगुण था । उसने दूसरे राजाओं की हजारों कन्यायें अपने यहाँ कैद कर ली थी । अन्याय शक्ति को विध्वंस करने वाला है ।

वेन ने राजपद पर अभिषिक्त होते ही यह घोषित कर दिया था कि— "मैं भगवान् हूँ, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ । इसलिये अब कोई पुरुष दान और यज्ञादि न करे " (१) १३ (१३-१४) । राज्य के लिये इस अहितकर मनोभावना को देखकर महर्षियों ने पहिले से ही मृत उस राजा का मन्त्रपूत कुशो के आघात से बध कर दिया ( १।१३।२६ ) । महत्कार शक्तिशाली को भी शक्तियुक्त कर देता है । ऋषियों ने उसके बाये हाथ को मला और पृथु की उत्पत्ति की, उसे ही राज्य शासन सौंपा । महत्कार का सर्वदा सर नीचा होता है ।

हिरण्यकशिपु को धोपणा भी वेन से मिलती-जुलती है । उसने भी प्रह्लाद से कहा था, "मेरे प्रतिरिक्त और कौन परमेश्वर हो सकता है ?" (१।१७।२३) । राज्य और शक्ति के महत्कार ने उसे अन्धा कर दिया था । वह अपने को विश्व की समस्त शक्तियों का सिरमौर मानता था । उसका बध स्वयं भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर किया । यह निश्चित है कि विश्व के सभी ऐश्वर्य और भौतिक शक्तियाँ प्राप्ता होने पर भी जिसके मन में महत्कार घुसा हुआ है, उसका अन्त बुरा ही होता है, उसे दुर्दिन देखने ही पड़ते हैं ।

कृष्ण के नेतृत्व में यादवों ने प्रथमनीय विकास किया परन्तु जब विलासिता और मद्यपान आदि की कुप्रवृत्तियाँ उनमें पनपने लगीं और ऊँच नीच के भेद-भावों ने जन्म लिया (१।३७।४२) । तब उनमें आपसी सघर्ष होने

सगे और कृष्ण स्वयं उन्हें ज्वस्त करने की सोचने लगे । इन कुरीतियों और कुप्रवृत्तियों ने मनोमालिन्य का रूप लिया, फिर सघर्ष, युद्ध और समाप्ति । भवगुण व्यक्ति के ऊँचे व्यक्तित्व को भी नष्ट कर देते हैं ।

वैदिक युग में इन्द्र का एक सर्वोच्च, सम्मानित पद था । इन्द्र से सम्बन्धित लगभग साढ़े तीन हजार मन्त्र वेदों में आते हैं । इतने मन्त्र और किसी देवता को समर्पित नहीं हुए हैं । परन्तु विष्णु पुराण में उसे सत्ता लोलुप, द्वेषी कामी और ईर्ष्यालु दिखाया गया है । (१।२२।३२-३८) के अनुसार कश्यप पत्नी दिति के गर्भ में इन्द्र ने सात खण्ड कर दिये । पञ्चम अंश के दसवें अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र यज्ञ की उपेक्षा की और गोवर्धन की पूजा की, (५।१०।४४) । पञ्चम अंश के तीसरे अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र को पारिजात वृक्ष ले जाने पर नीचा दिखाया । नरकासुर वध के लिये इन्द्र कृष्ण से प्रार्थना करते हैं (५।२५।१०-१२) । इन्द्र को तपस्वियों का तप भ्रष्ट करते हुए दिखाया गया है और वह भी सुन्दर स्त्रियाँ भेजकर उन्हें काम-बाल में फँसा कर (१।१५।११-१३) । कण्व ऋषि का तप एक अप्सरस के सहयोग से भ्रष्ट किया गया । महान्तम व्यक्तित्वों के भी गिरने की सम्भावना रहती है । अतः सर्वत्र जागरूक रहना ही बुद्धिमानी है । आत्म निरीक्षण द्वारा अपने दोषों पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए और उन्हें पनपने के अवसर न देने चाहिये क्योंकि जीवन के अन्तिम क्षणों में भी पतन की अवस्था आ सकती है ।

कस अध्याय का प्रतीक था । वह नष्ट हुआ । अन्याय को जो भी सहयोग देगा वह नष्ट होगा, यह निश्चित है । पूतना ने कस की आज्ञा से कृष्ण का बंध करना चाहा परन्तु उसका वही अन्त हुआ जो अध्याय के पक्षपातियों का होता है ।

अहिल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी, इन्द्र ने गौतम का वेप बदल कर अहिल्या से सम्भोग किया । वह शपथ पर तयार हो गई । उसने अपना दोष स्वीकार किया, अपनी गलती पर वह पछताई । गौतम ने उसे स्वीकार कर लिया । मोह धारण करने वाली अहिल्या ने राम के समक्ष अपना दोष

माना होगा । इसीलिए कहा गया कि वह उनके दर्शन करने से पाप-मुक्त हो गई (४।४।६१) ।

इसी तरह चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा से सम्भोग किया, उसके गर्भ में रह गया । इस पर दानवी और दैत्यो में युद्ध हुआ । ब्रह्माजी बीच में पड़े और तारा को बृहस्पति को दिलवा दिया । बृहस्पति ने उन गर्भ को निकाल फेंकने के लिए कहा । आदेश का पालन किया गया । तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ । जब यह पूछा गया कि यह किसका बालक है तो तारा ने इसे चन्द्रमा का स्वीकार किया (४।६।३२) । दोष बहुत बड़ा है परन्तु स्वीकार किया गया बृहस्पति ने उसे छपनाया ।

इन दो उदाहरणों से दोषी स्त्रियों के प्रति अपन ई जाने वाली नीति स्पष्ट हो जाती है । दोष सबसे होते हैं और जब वह दोष को स्वीकार कर लेते हैं तो दोष को समाप्त हुआ माना जाता है ।

इन दो प्रकार के विरोधी व्यक्तित्वों से अपने जीवन का मार्ग चुनने में सहायता मिलती है ।

## साम्प्रदायिक एकता-अनेकता का प्रतिपादन

विष्णु-पुराण विष्णु-प्रधान पुराण है । यह स्वाभाविक ही है कि इनमें अनेक देवताओं की अपेक्षा विष्णु को महान् स्थिति दिया जाए, जिस तरह से शिव सम्बन्धी पुराणों में शिव को प्रधान और अन्यो को गौण माना गया है । विष्णु धर्म उदार धर्म है । इसमें ऊँच-नीच का कोई भेद भाव नहीं है, जो भी इधर झुका उसे गले लगाया गया, चाहे वह कोई भी हो, वह भागवत और विष्णु पुराण आदि विष्णु-प्रधान-पुराणों से स्पष्ट है । फिर भी पुराणकार की श्रद्धा अपने इष्टदेव की ओर विशेष होती है और वह त्रिदेव को एक मानते हुये भी अनेक स्थानों पर दोनों में विवाद करा कर उस पुराण से सम्बन्धित देव को प्रधान और दूसरो को गौण बना ही देता है । उदाहरण के लिए कृष्ण और शङ्कर युद्ध का वर्णन है—जिसमें शङ्कर, कृष्ण से पराजित होते हुए दिखाए गये हैं । ( १।३३-२१।२६ )



एक घोर स्थान पर शङ्कर को कृष्ण से नीचा दिखाया गया है । पंचम अंश के ३४ वें अध्याय में वर्णन है कि पौण्ड्रक के वसुदेव राजा ने विष्णु का वेश बना कर सारे चिन्ह धारण लिये घोर कृष्ण को चुनौती दी । कृष्ण ने उस स्त्रीकार किया । वसुदेव पराजित हुए । कृष्ण ने उसके सहायक काशी नरेश का भी सर काट दिया । काशी नरेश के पुत्र ने शङ्कर को प्रसन्न करके कृत्या उत्पन्न की जो अपनी गिराल ज्वालामुखी के साथ द्वारका में भाई । कृष्ण ने चक्र छोड़ा तो वह भागी । शङ्कर की प्रदान की हुई कृत्या-कृष्ण के चक्र के सामने न रुक सकी ( ५।३४—२८।४३ ) ।

ब्रह्मा को भी गौण मानने के कई उदाहरण इस पुराण में हैं । जब देवासुर संग्राम में देवता पराजित हुए तो ब्रह्मा ने उनकी समस्या का स्वयं समाधान न करके भगवान् विष्णु की शरण में जान के लिये प्रेरित किया । ( १।६—३।४ )

ब्रह्मा देवताओं का लेकर भगवान् विष्णु के पास पहुँचे । ब्रह्मा से विष्णु की ऐसी प्रार्थना कराई गई है जैसे भ्रातृ स्वर से कोई भक्त अपने इष्टदेव के प्रति करता है ( १।६—४०।५० ) । इसका उद्देश्य ब्रह्मा की हीनता और विष्णु की महानता का प्रतिपादन करना है ।

इसी तरह से ध्रुव अध्याय ( १।१२।६६ ) में ध्रुव भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं—“ हे देव । ब्रह्मा आदि वेशों को जाना भी त्रिनकी गति का ज्ञान नहीं रखते, उनका स्तवन मैं प्रबोध बालक कैसे कर सकता हूँ । ”

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि विष्णु को शिव और ब्रह्मा से बड़ा सिद्ध किया गया है । वैसे पुराणकार ने तीनों को एक शक्ति, एक शक्ति के विभिन्न रूप भी माना है और तीनों के साम्य से स्थापना की है, जिनमें उनकी निष्पक्षता और उदारता का परिचय मिलता है ।

विष्णु पुराण ( १।३—६।६६ ) में कहा है । “एक मात्र भगवान् जनार्दन ही नृष्टि, स्थिति और प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के नामों को ग्रहण करते हैं ।” १।४।१६ में पृथ्वी ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा है ।

“हे प्रभो ! सृष्टि आदि के लिए प्रार हो ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, का स्वरूप धारण करते हो, तुम ही सर्व भूतों के कर्ता हो, तुम ही रक्षने वाले और तुम ही विनाश करने वाले हो ।” ( १।१।२३ ) में विष्णु और शिव की एकता स्थापित करते हुए कहा गया है ‘यदि विष्णु शिव हैं तो लक्ष्मी पावती हैं ।’

‘ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप में जिन अभूतपूर्व देव की शक्तियाँ हैं, वही भगवान् श्री हरि का परम पद है ।’ ( १।१।५६ ) । “देवताओं ने कहा— हे नाथ ! आपको नमस्कार है । आप ब्रह्मा, शिव, रुद्र, अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य, यमराज होते हुए भी निर्विशेष हैं ।” ( १।१—६८।६४ ) ।

ब्रह्मा ने भगवान् की स्तुति करने हुए कहा “ब्रह्मा का से विश्व के सृष्टा, विष्णु रूप से पालक और रुद्र का से संहारक त्रिमूर्तिधारी भगवान् को नमस्कार है ।” ( १।१।६६ ) ।

विष्णु की तीनों शक्तियों का समन्वय रूप धोषित करते हुये कहा गया है । “जिस जीव द्वारा जो कुछ भी उत्पत्ति होती है, उस सब में भगवान् विष्णु का हेतु ही एकमात्र कारण है । इसी प्रकार स्थावर जगत् प्राणियों में से यदि कोई किसी का घन्त करता है, तो वह अन्त करने वाला भी भगवान् का घन्त करने वाला रौद्र रूप होना है । इस प्रकार से वह भगवान् ही समस्त विश्व के सृजन, पालन और संहारकर्ता हैं, तथा वह स्वयं ही जगद्रूप हैं ।” ( १।२२-३८।४० ) ।

“ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं ।” ( १।२३।५८ ) ।

भगवान् के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है—“आपका जो स्वरूप कल्प के घन्त में सभी भूतों का घनिवार्य रूप से भक्षण कर लेता है, उस काल रूप को नमस्कार है । प्रलयकाल में देवादि सब प्राणियों को सामान्य रूप से भक्षण करके नृत्य करने वाले आपके रुद्र रूप को नमस्कार है ।” ( ३।१७-२५।२६ ) ।

रचना का विस्तृत वर्णन है। वैसे तो सारा विष्णु पुराण ही ईश्वर की सत्ता और महत्ता की पुष्टि करता है परन्तु सिद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन १।२।१०, १५, २१, १।१२।५७, ६७, ७४, १।१४।२६, १।१७।१५, २४, ६।४।३७-३८, में विशेष रूप से किया गया है।

१।६।१३ में मन की शुद्धि को परमात्म प्राप्ति का साधन बताया गया है। भगवान् उसी पर प्रसन्न होते हैं जो किसी की निन्दा और मिथ्या भाषण नहीं करता और खेदजनक वचन नहीं कहता (३।८।१३)। ईर्ष्यालु, निन्दक, सन्तो का तिरस्कार करने वाला और दान न देने वाला भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता (२।७।२६)

१।२।१६, ५०-५३, और ६।४।३४ में प्रकृति का चित्राकन किया गया है। १।२।२५, १।७।४२, ४३, ३।३।१, ६।४।१५-१६, ५।५।१ में विभिन्न प्रकार के प्रलयों का वर्णन है। इससे यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रलय ही स्वभाविक रूप से आती है और आती रहेगी। उत्तम साधक को सदैव अपने सामने प्रलय के दशन करते रहने चाहिए और निर्भय रूप से विचरना चाहिए। जो प्रलय से निर्भय हो गया, वह ससार की किसी भी विपत्ति से नहीं घबड़ा सकता।

तृतीय अक्ष के १८ वें अध्याय में एक कथा द्वारा भारतीय मनोविज्ञान को सुन्दर रूप से उभारा गया है जिससे निराश से निराश व्यक्तियों में भी आशा की उमंगें उछलने लगती हैं। २।१२।६६ में वेदान्त विज्ञान का सार दिया गया है।

१।१।१७, १।११।१७-१८, १।१६।५, ८ में कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और यह साहस पूर्वक कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरों का दुःख नहीं करना चाहता, उसको अकारण भी कभी कष्ट नहीं होता। इसी सिद्धान्त से व्यक्ति भविष्य निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है। वह केवल अपने कर्मों को सुधार कर किसी से भयभीत नहीं होता। वह अपने भाग्य को स्वयं बनाता है।

राजा खाण्डव्य के सामने जब राज्य और परलोक दोनों में से चुनने का अवसर आता है तो वह राज्य की उपेक्षा करके परलोक को ही पसन्द करते हैं। इस कथा में पृथ्वी के भौतिक सुखों और ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व दिया है। (६।६।२६-३१)।

४।२४।१४७ में काल की क्षति का उल्लेख है। भस्वर, महत और रघुवज्रियों का ऐश्वर्य भी ध्वस्त ही हुआ क्योंकि काल के बटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष न रही। किसी की यहाँ स्थायी रूप से रक्षा सम्भव नहीं है। कर्मों के अनुसार भोग भोग कर सभी को समयानुसार जाना है। तो फिर जब काल की तलवार घूमती है तो रोना, पीटना और दुखी होना कैसा? यह अज्ञानता और निश्चित तथ्यों पर अविश्वास का व्यक्त करना है। ज्ञानी वही है जो प्रसन्नतापूर्वक काल की गति को देखता है।

६।७।२८ में मन को बन्धन और मोक्ष का कारण बताया गया है और प्रेरणा दी गई है कि मन को विषयों से हटाकर मोक्ष मार्ग की ओर लगाना चाहिए। इस साधना में दक्ष व्यक्ति ही जीवन की सफलता प्राप्त करता है।

१।६।३-८ में ब्रह्मा से चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। ३।८।२०-३३ में चारों वर्णों के धर्मों का विवेचन है।

१।४।२२ में विष्णु को यज्ञ रूप कहा गया है। यज्ञ के उद्देश्य का सही कारण करते हुए कहा गया है "देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं। इससे यज्ञ कल्याण का मूल है" (१।६।७-८)। यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्थित को पा सकते हैं (१।६।१०)। यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है। मनुष्यों का उपकार करने वाला है और नित्य होने वाले पंच सूता पापों को दूर करने वाला है" (१।६।२८) यह सम्पूर्ण विश्व हवि से ही उत्पन्न हुआ है "(१।१३।२५)।" प्राचीन बर्हि ने यज्ञ द्वारा अपनी प्रजा

रचना का विस्तृत वर्णन है। वैसे तो सारा विष्णु पुराण ही ईश्वर की सत्ता और महत्ता की पुष्टि करता है परन्तु सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन १।२।१०, १५, २१, १।१।२।५७, ६७, ७४, १।१।४।२६, १।१।७।१५, २४, ६।४।३७-३८, में विशेष रूप से किया गया है।

१।६।१३ में मन की शुद्धि को परमात्म प्राप्ति का साधन बताया गया है। भगवान् उसी पर प्रसन्न होते हैं जो किमी की निन्दा और मिथ्या भाषण नहीं करता और खेदजनक वचन नहीं कहता (३।८।१३)। ईर्ष्यालु, निन्दक, सन्तो का तिरस्कार करने वाला और दान न देने वाला भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता (२।७।२६)

१।२।१६, ५०-५३, और ६।४।३४ में प्रकृति का चित्राकन किया गया है। १।२।२५, १।७।४२, ४३, ३।३।१, ६।४।१५-१६, ५।५।१ में विभिन्न प्रकार के प्रलयों का वर्णन है। इससे यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रलय ही स्वभाविक रूप से प्राप्ती है और प्राप्ती रहेगी। उत्तम साधक को सदैव अपने सामने प्रलय के दशन करते रहने चाहिए और निर्भय रूप से विचरना चाहिए। जो प्रलय से निर्भय हो गया, वह ससार की किसी भी विपत्ति से नहीं घबड़ा सकता।

तृतीय अंश के १८ वे अध्याय में एक कथा द्वारा भारतीय मनोविज्ञान को सुन्दर रूप से उभारा गया है जिससे निराश से निराश व्यक्तियों में भी आशा की उमंगें उछलने लगती हैं। २।१२।६६ में वेदान्त विज्ञान का सार दिया गया है।

१।१।१७, १।११।१७-१८, १।१६।५, ८ में कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और यह साहस पूर्वक कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरों का बुरा नहीं करना चाहता, उसको अकारण भी कभी बुरा नहीं होता। इसी सिद्धान्त से व्यक्ति भविष्य निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है। वह केवल अपने कर्मों को सुधार कर कितनी से भयभीत नहीं होता। वह अपने भाग्य को स्वयं बनाता है।

राजा खाण्डिव्य के सामने जब राज्य और परलोक दोनों में से चुनने का अवसर आता है तो वह राज्य की उपेक्षा करके परलोक को ही पसन्द करते हैं। इस कथा में पृथ्वी के भौतिक सुखों और ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व दिया है। (६।६।२६-३१)।

४।२४।१४७ में काल की शक्ति का उल्लेख है। भस्वर, महत और रघुवत्तियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ क्योंकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी खोप न रही। किसी की यहाँ स्थायी रूप से रक्षा सम्भव नहीं है। कर्मों के अनुसार भोग भोग कर सभी को समयानुसार जाना है। तो फिर जब काल की तलवार घूमती है तो रोना, पीटना और दुखी होना कंसा ? यह अज्ञानता और निश्चित तथ्यों पर अविश्वास का व्यक्त करना है। जानी बही है जो प्रसन्नतापूर्वक काल की गति को देखता है।

६।७।२८ में मन को बन्धन और मोक्ष का कारण बताया गया है और प्रेरणा दी गई है कि मन को विषयों से हटाकर मोक्ष मार्ग की ओर लगाना चाहिए। इस साधना में दश व्यक्ति ही जीवन की सफलता प्राप्त करता है।

१।६।३-८ में ब्रह्मा से चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। ३।८।२०-३३ में चारों वर्णों के धर्मों का विवेचन है।

१।४।२२ में विष्णु को यज्ञ रूप कहा गया है। यज्ञ के उद्देश्य का स्वीकार करते हुए कहा गया है "देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं। इससे यज्ञ कल्याण का मूल है" (१।६।७-८)। यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्वित को पा सकते हैं (१।६।१०)। यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है। मनुष्यों का उपकार करने वाला है और निरर्थक होने वाले पशु, सूना पापों को दूर करने वाला है" (१।६।२८) यह सम्पूर्ण विश्व ही है; हो उद्धार दृष्टा है "(१।१३।२५)।" प्राचीन बहिन ने दृष्ट - ... दृष्टा प्रजा

की अत्यन्त वृद्धि की "(१।१४।३) ।" राजाओं ने यज्ञेश्वर भगवान का महा-यज्ञों द्वारा यजन करके इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लिया (२।१।१२०) । इस तरह यज्ञ जैसी महान साधना को और प्रेरित किया गया है ।

गाय के प्रति भगवान कृष्ण का विशेष आकर्षण दिखाया गया है । (५।६।१८।१२) । इन्द्र यज्ञ की उपेक्षा करके गोवर्धन की पूजा आरम्भ की गई है (५।१०।४४) । इस का विद्वान यह अर्थ लगाते हैं कि यह गोवर को घन मानने की ओर सकेत है ।

पुराणों में प्रतीकात्मक वस्तु का स्वरूप मे प्रयोग किया जाता है । भगवान विष्णु का स्वरूप स्वयं इनसे गुथा हुआ है । उनकी चार भुजाएँ चार दिशाओं, यज्ञ कुण्ड, चार देवता, चारो वेद, विकास की चार अवस्थाओं, चार आधारभूत मानसिक, प्रक्रियाओं, चार आश्रमों, चार वर्णों, चारों ओर से सुरक्षा, चार देवी गुणों, जीवन के चतुर्मुखी उद्देश्य और अन्तःकरण की वृत्तियों को परिष्कृत करने की ओर सकेत है । उनकी आठ भुजाएँ स्वास्थ्य, विद्या, धन, व्यवसाय, संगठन, यज्ञ शोभ और सत्य के विकास की ओर इंगित करती हैं ।

जीवन को परिष्कृत करने वाले संस्कारों का भी विष्णुपुराण में वर्णन है । (३।१३।१) ने जन्म के समय का विधान दिया गया है और जातकर्म संस्कार करने को कहा गया है । (३।१०।८-१०) में नामकरण का विधान और नामकरण के सम्बन्ध में उपयोगी मनोवैज्ञानिक जानकारी दी गई है कि नाम किस प्रकार के होने चाहिए । उपनयन व विद्याध्ययन की भी प्रेरणा दी गई है । (३।१०।१२) फिर गृहस्थ में प्रवेश की आज्ञा दी गई है (१३) । विवाह और कन्या के चुनाव के सम्बन्ध में निर्देश दिये गए हैं (१७-२१) । सन्यास की भी चर्चा है (१४) । ३।१३।८-१३ में दाहसंस्कार का विधान दिया गया है ।

इस तरह से अत्यन्त उपयोगी विषयों का चमन इस पुराण में किया गया है ।

## विष्णुपुराण उच्चकोटि का सुधारात्मक व प्रेरणात्मक ग्रंथ है

आजकल भी कोई सुधारात्मक ग्रन्थ लिखा जाए तो सर्व प्रथम वर्तमान पतित समाज और कुशासन का निरीक्षण होगा और तत्पश्चात् सुधार के लिए सुझाव दिए जायेंगे। राष्ट्र विकास के चहुँमुखी सुझाव ही उपयोगी माने जायेंगे बजाए एकांगी विकास के। विष्णु पुराण ने सर्वांगीण उन्नति के लिए ही भूमिका तैयार की है। उन्होंने स्वभाविक रूप से पहले सामाजिक दुर्दशा, राजनीतिक परिस्थितियाँ, और नीतियों को प्रस्तुत किया है। वह भली प्रकार जानते थे कि भारतीय संस्कृति का गौरव महान है परन्तु फिर भी साहस के साथ ऐसे-ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया है जिनकी सरे विश्व में पुनरावृत्ति सम्भव नहीं हो सगी। ऐसे हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किए हैं कि पाठक को ग्रन्थाय के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है। उस समय की राजनीतिक अव्यवस्था अहकारी, निरकुश, ग्रन्थायी राजाओं के कारण हुई जो स्वयं को ही भगवान् समझते थे। वेन और हिरण्यकशिपु के नाम इसकोटि में आते हैं। कस ने सत्ता की स्थिरता के लिए क्रूरता का सहारा लिया। हिरण्यकशिपु ने विरोध को श्वाने लिये शक्ति का दुरुपयोग किया। छोटी-छोटी बातों पर हत्याएँ की जाती थी। माँस मंदिर का सेवन और जुए की कुश्रुति का प्रचलन था। नरमांस भक्षी के भी उदाहरण दिए गए हैं। बलराम तक मंदिर का सेवन करते थे। अंधविचार के परिणाम स्वरूप अर्बव संतान भी होती थी। बण्डु जैसे श्रद्धि भी कामासक्त होते दिखाए गए हैं। कृष्ण पर अशनीलता का आरोप लगाया गया है। राजा एक से अधिक पत्नी रखते थे। जनता में भी यह प्रवृत्ति हो गयी। अधिक पत्नियों से अधिक संतान होना स्वामासिक है। अधिक संतान के उचित पालन पोषण में अडचन पड़ती है। अनेकों प्रकार की उत्तमने उत्पन्न हो जाती है। गन्धर्व विवाहों का भी प्रचलन था। स्वप्न में रेशे मार के



साथ भी विवाह होने की विलक्षण घटनायें हैं अन्तर्गमन विवाहों की भी सूचना मिलती है। सपिण्ड विवाह भी खुले रूप में होते थे। ऊँच-नीच का भेदभाव भी माना जाता था, व्यवहारिक शिक्षता का अभाव था, बड़ों का उपहास किया जाता था। कन्याओं के अपहरण की भी कथायें दी गई हैं। जनता का नैतिक चरित्र गिरा हुआ था और शासन में अन्याय प्रत्याचार का बोझाला था।

आवश्यकता भाविष्कार की जननी है। जब अन्याय अपनी सीमाओं का उल्लंघन करने लगता है तो न्याय की स्थापना के लिए महान् आत्माएँ अवतरित होती हैं, प्रकृति इस सतुलन को बनाये रखना चाहती है। जब राजा वेन से जनता परेशान थी तो राष्ट्रीय नेताओं ने मिलकर वेन को हटा दिया। पृथु ने कृषि, शासन और अन्य आवश्यक सुधार किए। जब हिरण्यकशिपु के जुल्म बढ़े तो नृसिंह द्वारा उसका वध हुआ। कंस का कुण्ड द्वारा वध कराया गया। अन्याय शक्ति का घुन है। अन्यायी का भवन रेत की दीवार पर खड़ा बताया जाता है। यह विष्णुपुराण से भी स्पष्ट है कि क्योंकि शक्तिशाली सम्राटों का विरोध छोटी शक्तियों ने किया और उन्हें सफलता मिली।

पुराणकार केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता को ही पर्याप्त नहीं मानते हैं। वह सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करने के लिए नैतिक व आध्यात्मिक विकास भी आवश्यक समझते हैं। इसलिये सावधानी और सुरक्षा की भी सामग्री प्रस्तुत की गई है। उनका विचार है कि सद्गुणों के विकास के लिए प्रवृत्तियों पर पहले ध्यान देना होगा। अतः वह काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, तृष्णा, मोह, धन के अपभ्रंश, अविवेक, अशिष्टता, भोग-विलास, व्यभिचार, पशुबल व वैवाहिक कुश्रितियों की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं और चेतावनी देते हैं कि यदि उनसे बचा न गया तो व्यक्तिगत व सामाजिक उत्थान अशक्त हो जायेगा।

पुराणकार ने क्रमिक विकास का नियम अपनाया है। उन्होंने आचार की पूरी योजना प्रस्तुत की है। वह आत्मसाधना से पूर्व नागरिकता की परीक्षा

ई उत्तीर्ण होना आवश्यक मानते हैं। इसलिये प्रातः व साय के प्रलग-प्रलग प्रपन्नान योग्य आचार दिये हैं, लोकाचार व सदाचार की उपयोगी शिक्षाएँ दी हैं।

जीवन निर्माण के लगभग सभी मूत्रों का सकलन कर लिया गया है। गृहस्थ में प्रवेश करके दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए गूत्र दिये गए हैं, गृहस्थ को योग मानकर उसको साधना की प्रेरणा दी गई है, माता-पिता की सेवा, घृतिधि पूजन, गुरुजनो का सम्मान, शिक्षाचार व सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। पुरुषार्थ, वतंभ्यनिष्ठा से उत्थान की सम्भावनाएँ प्रदत्त की गई हैं। समय के सदुपयोग, सहनशीलता, क्षमाशीलता निर्भयता, उद्योग और क्रियाशीलता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। धर्म की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है और भक्ति ज्ञान, वैराग्य, निष्काम कर्मयोग और साम्ययोग द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया गया है। सर्वत्र आत्म-निरीक्षण द्वारा विवेक की स्थिरता, दोषों, दुर्गुणों पर पंजी रहि रहने की कहा है।

बन्धन और मोक्ष के कारणों पर भी विचार किया है और मोक्ष के लिए मन की शुद्धि को आवश्यक माना गया है। पृथ्वी के समस्त ऐश्वर्यों की प्रपक्षा परलोक मुधार को श्रेष्ठ माना गया है। कर्म, उद्योग, गर, पुरुषार्थ और वतंभ्य निष्ठा से उत्पत्ति के उच्चतम पद पर पहुँचने का आश्वासन दिया गया है। यह शिक्षाएँ क्रियात्मक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा प्रवृत्त की गई हैं जिनका विशेष प्रभाव पड़ा है।

उपयोगी भोजनादि के नियम से लेकर अर्द्धत तक वी राधनाग्रो का वर्णन है । बार-बार दोषों के परिमार्जन की चेतावनी और नैतिक विकास पर बल दिया गया है । पुराण का पाठ करते हुए पाठक के अपने दोष और दुर्गुण उभर कर सामने आ जाते हैं और कथाग्रो के माध्यम से यह भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है कि इनके यह दुष्परिणाम होंगे । इससे भय की उत्पत्ति और विवेक की जाग्रति होती है । इस मिश्रित प्रतिक्रिया से वह सुधार के आवश्यक पग उठाता है, अपनी आत्मा स्वयं उसे बार-बार धिक्कारती है और उसे अपने दुष्कर्मों पर ग्लानि होती है । आत्मग्लानि से घुटन उत्पन्न होती है । यह घुटन ही सुधार का मार्ग प्रशस्त करती है ।

उपरोक्त तथ्यों से विदित होगा कि विष्णुपुराण का लेखन एक विशेष उद्देश्य से किया गया है और वह है राष्ट्र का नैतिक व आध्यात्मिक सुधार । हमलिये इसे यदि उच्चकोटि का सुधारात्मक व प्रेरणात्मक ग्रंथ कहा जाये तो अनिशब्दोक्ति न होगी ।

